

प्रथम आवृत्ति



प्रकाशक और मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर,
स्वाध्याय मण्डल, भारत-मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) '
पारडी [जि. वलसाड]

कर्ण पर्व



महाभारत

कर्णपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिये नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिये ।

: १ :

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणे हते राजन्दुर्योधनमुखा नृपाः ।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! जब द्रोणाचार्य मारे गये, तब दुर्योधन आदि राजा लोग अत्यन्त दुःखित मन होके द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके पास गये ॥ १ ॥

ते द्रोणमुपशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः ।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम् ॥ २ ॥

वे सब राजा लोग जिनका बल और उत्साह शोकसे नष्ट हो गया था, द्रोणाचार्यको सोचते हुए, शोकसे व्याकुल हो, कृपीकुमार अश्वत्थामाके पास बैठ गये ॥ २ ॥

मुहूर्तं ते समाश्वास्य हेतुभिः शास्त्रसंमितैः ।
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥ ३ ॥

वे राजा लोग दो घडीतक शास्त्रकी रीतिसे अश्वत्थामाको समझाते रहे और सन्ध्याके समय सब अपने अपने डेरोंको चले गये ॥ ३ ॥

विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः ।
दुःशासनोऽथ शकुनिर्न निद्रामुपलेभिरे ॥ ४ ॥

विशेष करके सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन, दुःशासन और सुबलपुत्र शकुनि उस रात्रिभर निद्रा नहीं पा सके ॥ ४ ॥

ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन्सुखम् ।
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं निद्रां नैवोपलेभिरे ॥ ५ ॥

हे कुरुनन्दन ! वे सब महीपति अपने शिविरोंमें बैठकर भी सुख नहीं पा सके । वे अपने भयंकर विनाशपर सोचते रहे और निद्रा नहीं पा सके ॥ ५ ॥

सहितास्ते निशायां तु दुर्योधननिवेशने ।
अतिप्रचण्डाद्विद्वेषात्पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ६ ॥

वे सब उस रातको दुर्योधनके शिविरमें ही एकत्र रहकर, अत्यंत भयंकर द्वेषके कारण महात्मा पाण्डवोंको ॥ ६ ॥

यत्तद्द्यूतपरिक्लिष्टां कृष्णामानिन्यिरे सभाम् ।
तत्स्मरन्तोऽन्वतप्यन्त भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ७ ॥

जो द्यूत खेलनेके समय द्रुपद कन्या कृष्णाको सभामें लाया गया और उसे अनंत क्लेश दिया गया, उसका वार वार स्मरण करके वे दुःखित हो जाते थे और मनमें अत्यंत उद्विग्न होते थे ॥ ७ ॥

चिन्तयन्तश्च पार्थानां तान्क्लेशान्द्यूतकारितान् ।
कृच्छ्रेण क्षणदां राजन्निन्युरब्दशतोपमाम् ॥ ८ ॥

हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकारसे कुन्तीपुत्र पाण्डवोंको द्यूतसे दिये गये उन क्लेशोंका विचार करते उनकी वह रात्रि सौ वर्षोंके समान अत्यंत कष्टसे कट गयी ॥ ८ ॥

ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने ।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥

इसके पश्चात् विमल भोर होनेपर दैवकी आज्ञामें रहनेवाले उन राजा लोगोंने शास्त्रकी रीतिसे प्रातःकालके करने योग्य कर्मोंको किया ॥ ९ ॥

ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत ।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः ॥ १० ॥

हे भारत ! उन राजा लोगोंने नित्य कर्मोंको करके, आश्वस्त होकर सवारियोंको तैयार हो जानेकी आज्ञा दी और युद्ध करनेके लिये चले ॥ १० ॥

कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः ।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान्दधिपात्रघृताक्षतैः ॥ ११ ॥

आनन्दके साथ मङ्गलाचरण करके, कर्णको सेनापति बनाकर और वे सब दही, पात्र, घी और अक्षताओंसे उत्तम ब्राह्मणोंका आदरसत्कार करके युद्ध करनेको चले ॥ ११ ॥

निष्कैर्गोभिर्हिरण्येन वासोभिश्च महाधनैः ।
वर्ध्यमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः ॥ १२ ॥

सुवर्ण भूषण, गाय, सुवर्ण मुद्रा, मूल्यवान् वस्त्र इत्यादि महाधनको पाकर सूत, मागध और भाट प्रसन्न हुए, उनसे विजयदर्शक आशीर्वादोंसे युक्त होकर दुर्योधन आदि राजा लोग युद्ध करनेको चले ॥ १२ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्कृतसर्वाह्निकक्रियाः ।
शिबिरान्निर्ययू राजन्युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! ऐसे ही पाण्डव लोग प्रातःकालकी नित्य क्रिया करके शीघ्रताके साथ युद्ध करनेका दृढ निश्चय करके अपने डेरोंसे बाहर निकले ॥ १३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परवधैषिणाम् ॥ १४ ॥

इसके पश्चात् एक दूसरेको मारनेकी इच्छा रखनेवाले कौरव और पाण्डवोंका ऐसा भयानक युद्ध हुआ, जिसको देखकर रोएं खडे हो जायं ॥ १४ ॥

तयोर्द्वे दिवसे युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन्नभूदद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥

हे राजन् ! कर्णके सेनापति रहते, कौरव और पाण्डवोंकी सेनाओंमें दो दिनतक अद्भुत युद्ध हुआ ॥ १५ ॥

ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां फल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥

इसके पश्चात् उस युद्धमें अर्जुनने शत्रुकी महासेनाको अत्यंत नाश करनेवाले कर्णको धृतराष्ट्रके पुत्रोंके देखते देखते मार डाला ॥ १६ ॥

+

ततस्तत्सञ्जयः सर्वं गत्वा नागाह्वयं पुरम् ।
आचख्यौ धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर सञ्जयने शीघ्रताके साथ हस्तिनापुरमें जाके धृतराष्ट्रसे कुरुक्षेत्रका सब वृत्तान्त जो वहां हुआ, वह वर्णन करना आरम्भ किया ॥ १७ ॥

जनमेजय उवाच

आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणंच समरे परैः ।
यो जगाम परामार्तिं वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥ १८ ॥

राजा जनमेजय बोले— हे मुनिवर ! जो आम्बिकानन्दन वृद्ध राजा धृतराष्ट्र गङ्गापुत्र भीष्मको और महारथी द्रोणाचार्यको समरमें शत्रुओंसे मारा हुआ सुनके महा दुःखको प्राप्त हुए थे ॥१८॥

स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वही राजा धृतराष्ट्र दुर्योधनके हितकारी कर्णकी मृत्युको सुनके अत्यन्त दुःखी हो वे किस प्रकारसे जीते रहे ? ॥ १९ ॥

यस्मिञ्जयाशां पुत्राणाममन्यत स पार्थिवः ।
तस्मिन्हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥

कुरुनन्दन पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्र जिसके द्वारा अपने पुत्रोंके विजयकी आशा लगाये थे, उस कर्णके मारे जानेपर उन्होंने अपने प्राणको कैसे रक्खा ? ॥ २० ॥

दुर्मरं बत मन्येऽहं नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥

कर्णकी मृत्युको सुनकर भी जो राजा धृतराष्ट्र जीते रहे, उन्होंने अपने जीवनका त्याग नहीं किया, इससे मैं समझता हूं कि मनुष्योंको कैसा ही भारी दुःख पडे किन्तु वे अपनी इच्छासे नही मर सकते हैं, उनके लिये अपने प्राणोंका त्याग करना अत्यंत कठिन है ॥२१॥

तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन्बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥

हे वैशम्पायन मुने ! वृद्ध शान्तनुपुत्र भीष्म, वाह्लिक, द्रोणाचार्य, सोमदत्त और भूरिश्रवा ऐसे ही ॥ २२ ॥

तथैव चान्यान्सुहृदः पुत्रपौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात्प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥

और बहुत अन्य मित्र तथा पुत्र और पौत्रोंको भी शत्रुओंने मारा हुआ सुनकर जो धृतराष्ट्रने अपने प्राणको त्याग नहीं किया, इससे मैं मनुष्यके लिये स्वेच्छासे मरना बहुत ही कठिन काम समझता हूं ॥ २३ ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ २४ ॥

हे तपोधन वैशम्पायन ! इस सब कथाको आप विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये । मैं अपने पूर्वजोंके महान् चरित्रको सुनता हुआ तृप्त नहीं होता हूं ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा ।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ २५ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे जनमेजय महाराज ! कर्णके मारे जानेपर गवल्गणके पुत्र सञ्जय बहुत दीन होकर वायुके समान चलनेवाले घोडोंके रथपर बैठकर रात्रिमें हस्तिनापुरको चले ॥ २५ ॥

स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नमानसः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥ २६ ॥

बहुत घबडाये हुए और उद्विग्न मनवाले सञ्जय हस्तिनापुरमें पहुंचके बन्धु-बान्धवहीन धृतराष्ट्रके राजभवनमें गये ॥ २६ ॥

स समुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम् ।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥ २७ ॥

सञ्जयने राजा धृतराष्ट्रको दुःखसे मलिन और अनुत्साहित देखके हाथ जोडके और अपने सिरको राजाके चरणोंमें रखके प्रणाम किया ॥ २७ ॥

संपूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥ २८ ॥

सञ्जयने राजा धृतराष्ट्रका यथायोग्य संमान करके और हाय ! बहुत दुःखकी बात है, ऐसा कहके इस प्रकार बोलना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

सञ्जयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान् ।
स्वदोषेणापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यसि ॥ २९ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! मैं सञ्जय हूं, आप सुखी तो हैं ? अपनेही अपराधोंसे आपत्तिमें फंसकर अब आप मोहको प्राप्त तो नहीं होते हैं ? ॥ २९ ॥

हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगाङ्गेयकेशवैः ।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ३० ॥

विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म और श्रीकृष्णने आपसे हितकी बातें कहीं थीं पर आपने उनकी बातोंको ग्रहण नहीं किया था, अब उनको स्मरण करके आपको दुःख तो नहीं होता है ? ॥ ३० ॥

रामनारदकण्वैश्च हितमुक्तं सभातले ।
नगृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ३१ ॥
परशुराम, नारद और महर्षि कण्व आदिओंने जो सभामें हितकारी वचन कहे थे, आपने उनको ग्रहण नहीं किया था, अब उन्हें स्मरण करके आपको दुःख तो नहीं होता है ? ॥ ३१ ॥

सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान्भीष्मद्रोणमुखान्परैः ।
निहतान्युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ३२ ॥
जो भीष्म और द्रोणाचार्य आदि मित्र आपके हितकारी थे वे शत्रुओंके हाथसे संग्राममें मारे गये हैं, उन्हें स्मरण करके आप दुःखी तो नहीं हैं ? ॥ ३२ ॥

तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमभिनिःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥
राजा धृतराष्ट्र सूतपुत्र सञ्जयको हाथ जोडे ऐसे वचन कहते हुए देखके दुःखसे पीडित होकर दीर्घ निःश्वास छोडके सञ्जयसे यह वचन कहने लगे ॥ ३३ ॥

गाङ्गेये निहते शूरे दिव्यास्त्रवति सञ्जय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥ ३४ ॥
हे सञ्जय ! दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाले शूर गङ्गानन्दन भीष्म और महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्यके मारे जानेसे मेरा मन बहुत ही दुःखी है ॥ ३४ ॥

यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव हि ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसंभवः ॥ ३५ ॥
साक्षात् वसुका अवतार तेजस्वी भीष्म कवचधारी और शस्त्रादिसे सजे हुए दस हजार रथियोंको प्रतिदिन मारते थे ॥ ३५ ॥

स हतो यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन भृशं मे व्यथितं मनः ॥ ३६ ॥
उन भीष्मको यहाँ द्रुपदके पुत्र शिखण्डीने पाण्डुपुत्र अर्जुनकी सहायतासे मार डाला, इस वृत्तान्तको सुनके मेरा मन बडा दुःखी होता है ॥ ३६ ॥

भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महात्मने ।
साक्षाद्रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥ ३७ ॥
जिस महात्माको भृगुपुत्र परशुरामने महासंग्राममें दिव्य अस्त्र दिये थे, बालकपनमें साक्षात् परशुरामने धनुर्वेद विद्या सीखानेके लिये अपना शिष्य जिनको बनाया था ॥ ३७ ॥

यस्य प्रसादात्कौन्तेया राजपुत्रा महाबलाः ।
महारथत्वं संप्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥ ३८ ॥

जिसकी कृपासे कुन्तीपुत्र राजकुमार पाण्डव महाबलवान् हो गये तथा और दूसरे बहुत राजा लोग महारथी बने थे ॥ ३८ ॥

तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसंधं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥ ३९ ॥

उन सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको युद्धमें धृष्टद्युम्नने मार डाला, यह सुनके मेरा मन बडा दुःखी होता है ॥ ३९ ॥

त्रैलोक्ये यस्य शास्त्रेषु न पुमान्विद्यते समः ।
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥ ४० ॥

जिन द्रोणाचार्यके समान अस्त्र विद्याका जाननेवाला तीनों लोकोंमें कोई पुरुष नहीं है, उस द्रोणाचार्यकी मृत्युको सुनके हमारे पुत्रोंने क्या किया ? सो तुम कहो ॥ ४० ॥

संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ॥ ४१ ॥

पाण्डुपुत्र महात्मा अर्जुनने युद्धमें पराक्रम करके संशप्तकोंकी सब सेनाको जब यमलोकको पहुंचा दिया ॥ ४१ ॥

नारायणास्त्रे निहते द्रोणपुत्रस्य धीमतः ।
हतशेषेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ॥ ४२ ॥

और बुद्धिमान् द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका नारायण अस्त्र जब विध्वंस हो गया, तथा उस समय जब मरनेसे बची हुई हमारी सेना इधर उधरको भाग गई, तब मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥४२॥

विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नः शोकसागरे ।
प्लवमानान्हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे ॥ ४३ ॥

शोकसागरमें डूबे हुए मुझे ऐसा जान पडता है कि द्रोणाचार्यके मारे जानेपर हमारे सारे सैनिक भाग गये होंगे, उनकी अवस्था समुद्रमें नावके टूट जानेपर वहां स्वयं तैरनेवाले मनुष्योंके समान संकटमय हो गयी होगी ॥ ४३ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः ।
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ४४ ॥

दुर्योधन, कर्ण, भोजराज, कृतवर्मा, मद्रराज शल्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य ॥ ४४ ॥

मत्पुत्रशेषस्य तथा तथान्येषां च संजय ।
विप्रकीर्णेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत्कथम् ॥ ४५ ॥

और संजय ! मरनेसे बचे हुए मेरे पुत्रके और अन्य लोगोंके मुखकी कान्ति अपनी सेनाको भागती देखके कैसी हो गयी थी ? ॥ ४५ ॥

एतत्सर्वं यथा वृत्तं तत्त्वं गावल्गणे रणे ।
आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च सर्वशः ॥ ४६ ॥

हे गवल्गणपुत्र सञ्जय ! युद्धका यह सब वृत्तान्त तथा मेरे पुत्रों और पाण्डवोंके पराक्रमको तुम सब प्रकारसे वर्णन करो ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

पाण्डवेयैर्हि यद्वृत्तं कौरवेयेषु मारिष ।
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः ॥ ४७ ॥

सञ्जय बोले– हे माननीय महाराज ! तुम्हारे अपराधसे पाण्डवोंसे कौरवोंपर जो कुछ बीता है, उसको सुनके दुःख मत करो; क्योंकि दैववश जो दुःख प्राप्त होता है, उससे विद्वान् लोग दुःखी नहीं होते हैं ॥ ४७ ॥

यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति ।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद्व्यथते बुधः ॥ ४८ ॥

दैवाधीन मनुष्यके इच्छित–प्राप्त होनेवाले और न होनेवाले कार्य अवश्य ही होते हैं, इसलिये उसकी प्राप्ति और अप्राप्तिसे पण्डित लोग दुःखी नहीं होते ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

न व्यथा शृण्वतः काचिद्विद्यते मम सञ्जय ।
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! मुझे यह सुननेमें अधिक दुःख नहीं है, मैंने पहलेसे ही जान लिया है, कि यह सब दैवसे ही हो रहा है। इससे तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर्णन करो ॥४९॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ४९ ॥

: २ :

सञ्जय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः ।
बभूवुरश्वस्तमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! जब महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य मारे गये, तब तुम्हारे महारथी पुत्रोंका मुख मलिन और विषण्ण हो गया और चित्त व्याकुल हो गया ॥ १ ॥

अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशां पते ।
अप्रेक्षमाणाः शोकार्ता नाभ्यभाषन्परस्परम् ॥ २ ॥

हे पृथ्वीपते ! सब शस्त्रधारी वीर शोकसे व्याकुल नीचा मुख किये, एक दूसरेकी ओर देखते ही नहीं थे। कोई भी आपसमें बात नहीं करते थे ॥ २ ॥

तान्दृष्ट्वा व्यथिताकारान्सैन्यानि तव भारत ।
ऊर्ध्वमेवाभ्यवेक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३ ॥

भारत ! इन सबको दुःखी देखकर आपकी अनेक सेनाएं भी दुःखसे त्रस्त होकर ऊपरकी ओर देखने लगीं ॥ ३ ॥

शस्त्राण्येषां च राजेन्द्र शोणिताक्तान्यशेषतः ।
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ ४ ॥

हे राजेन्द्र ! युद्धमें द्रोणाचार्यको मारा हुआ देखकर रक्तमें भरे हुए इन लोगोंके शस्त्र हाथोंसे छूट छूट गिरने लगे ॥ ४ ॥

तानि बद्धान्यनिष्टानि लम्बमानानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥ ५ ॥

और भारत ! कमर आदिमें बंधे लटकते हुए वे शस्त्र शिथिल होकर आकाशसे गिरनेवाले नक्षत्रोंकी भांति भूमिपर गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ ५ ॥

तथार्तं स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्वमिव स्थितम् ।
स्वं बलं तन्महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

हे भारत ! उस समय इसी भांति अनेक कुशकुन होने लगे । हे महाराज ! अपनी सेनाको दुःखसे निश्चल रुकी हुई और प्राणहीन देखकर राजा दुर्योधन बोले ॥ ६ ॥

भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ॥ ७ ॥

आप लोगोंके भुजबलके आश्रयसे ही मैंने पाण्डवोंको युद्ध करनेको बुलाया है और यह संग्राम शुरू किया है ॥ ७ ॥

तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वतः ॥ ८ ॥

परन्तु द्रोणाचार्यके मारे जानेसे सब विषादसे व्याकुल दीखते हैं । समरमें युद्ध करनेवाले बहुत करके सब योद्धा शत्रुलोगोंसे मारे जाते ही हैं ॥ ८ ॥

जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे ।
भवेत्किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥ ९ ॥

संग्राममें लडनेवाले वीरकी कभी विजय होती है या कभी उसकी मृत्यु होती है, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इसलिये आप सब लोग सब ओरसे युद्ध करो ॥ ९ ॥

पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १० ॥

और अपने दिव्य अस्त्रोंके सहित युद्धमें विचरते हुए विकर्तनपुत्र महाधनुर्द्धारी, महाबली महात्मा कर्णको देखो ॥ १० ॥

यस्य वै युधि सन्त्रासात्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
निवर्तते सदामर्षात्सिंहात्क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११ ॥

जिसके भयसे मन्द कुन्तीनन्दन अर्जुन युद्धसे मुंह मोडके ऐसा भागता है, जैसे क्षुद्र मृग सिंहकी कृपासे उसके सामनेसे भाग जाता है ॥ ११ ॥

येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२ ॥

जिस कर्णने मनुष्य रीतिके युद्धमें ही दस हजार हाथियोंके समान बलवाले महाबलवान् भीमसेनकी बुरी दशा कर दी थी ॥ १२ ॥

येन दिव्यास्त्रविच्छूरो मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या निहतो भैरवं नदन् ॥ १३ ॥

जिस कर्णने दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले शूर मायावी समरमें भयंकर गर्जना करनेवाले घटोत्कचको अमोघ शक्तिसे मारा था ॥ १३ ॥

तस्य दुष्पारवीर्यस्य सत्यसन्धस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४ ॥

जिसके पराक्रमको पार करना कठीन है, उस सत्यप्रतिज्ञ बुद्धिमान् कर्णके अक्षय बाहुबलको आज युद्धमें देखो ॥ १४ ॥

द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पाण्डुपाञ्चालसैन्येषु द्रक्ष्यथापि महात्मनोः ॥ १५ ॥

आज द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और राधापुत्र कर्ण इन दोनों महात्माओंका पराक्रम आप लोग पाण्डव और पाञ्चालोंके सैन्यमें देखेंगे ॥ १५ ॥

सर्वं एव भवन्तश्च शूराः प्राज्ञाः कुलोद्गताः ।
शीलवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाद्य परस्परम् ॥ १६ ॥
आप सब शूरवीर, बुद्धिमान् , उत्तम कुलमें उत्पन्न, शीलसंपन्न और अस्त्र विद्या जाननेवाले हैं, इसलिये आज परस्पर स्वयंका पुरुषार्थ दिखावें ॥ १६ ॥

एवमुक्ते महाराज कर्णो वैकर्तनो नृपः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत महाबलः ॥ १७ ॥
ऐसा बोलनेपर महाबलवान् विकर्तनपुत्र राजा कर्ण जोरसे सिंहके समान गर्जना करके युद्ध करने लगा ॥ १७ ॥

स सृञ्जयानां सर्वेषां पाञ्चालानां च पश्यताम् ।
केकयानां विदेहानामकरोत्कदनं महत् ॥ १८ ॥
कर्णने सब सृञ्जय, पाञ्चाल, केकय और विदेहवंशी वीरोंका देखते देखते महान् संहार कर दिया ॥ १८ ॥

तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासञ्शरासनात् ।
अग्रे पुङ्खे च संसक्ता यथा भ्रमरपङ्क्तयः ॥ १९ ॥
कर्णकी धनुषसे अग्रभागमें पङ्ख लगे बाणोंकी सैकडों धाराएं ऐसी निकलने लगीं, जैसी भौरोंकी पंक्तियां ॥ १९ ॥

स पीडयित्वा पाञ्चालान्पाण्डवांश्च तरस्विनः ।
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ६९ ॥

कर्ण पाञ्चाल और प्रतापी वेगवान् पाण्डवोंको पीडा देकर और सहस्रों वीर योद्धाओंको मारकर पीछे रणभूमिमें अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ २० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ॥ ६९ ॥

: ३ :

वैशम्पायन उवाच
एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
शोकस्यान्तमपश्यन्वै हतं मत्वा सुयोधनम् ।
विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः ॥ १ ॥
श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे महाराज ! अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र इस कथाको सुनकर और अपार शोकसे दुःखी होकर समझे कि दुर्योधन भी अब मारा गया । धृतराष्ट्र व्याकुल और निःशक्त होके हाथीके समान भूमिमें गिर पडे ॥ १ ॥

×

तस्मिन्निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे ।
आर्तनादो महानासीत्स्त्रीणां भरतसत्तम ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजश्रेष्ठ धृतराष्ट्रके व्याकुल होके भूमिमें गिरते ही स्त्रियोंके रोनेका दुःखदाई महान् शब्द होने लगा ॥ २ ॥

स शब्दः पृथिवीं सर्वां पूरयामास सर्वशः ।
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः ॥ ३ ॥

स्त्रियोंके रोदनके शब्दसे सम्पूर्ण पृथ्वी भर गई । भरतकुलकी सम्पूर्ण स्त्रियां महाघोर शोकसागरमें डूब गई ॥ ३ ॥

राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! गान्धारी तथा सब अन्तःपुरकी स्त्रियां राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर चेतनाहीन होकर भूमिमें गिर पडीं ॥ ४ ॥

ततस्ताः संजयो राजन्समाश्वासयदातुराः ।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ! तब सञ्जयने अपने नेत्रोंसे आंसू गिरानेवाली महाव्याकुल हुई और जो मूर्च्छित हो रही थीं, उन अनेक स्त्रियोंको समझाया ॥ ५ ॥

समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः ।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥ ६ ॥

और समझानेपर भी वे स्त्रियां वारवार शोकके साथ रोती हुई कांप रही थीं । उन स्त्रियोंकी उस समय ऐसी दशा थी जैसी कदलीकी दशा आंधीमें होती है ॥ ६ ॥

राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥ ७ ॥

तब कुरुकुलनाथ प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रके ऊपर जल छींटकर होशमें लाकर विदुरने उनको समझाया ॥ ७ ॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां ताश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृप ।
उन्मत्त इव राजा स स्थितस्तूष्णीं विशां पते ॥ ८ ॥

हे राजन् ! पृथ्वीनाथ ! राजा धृतराष्ट्र धीरे धीरे चेतन हुए और स्त्रियोंको देखकर उन्मत्तके समान चुपचाप बैठे रह गये ॥ ८ ॥

ततो ध्यात्वा चिरं कालं निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
स्वान्पुत्रान्गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् ॥ ९ ॥

अनन्तर बहुत देरतक ध्यान करके और वारवार लंबी सांस लेकर अपने पुत्रोंकी निन्दा करने लगे और पाण्डवोंको उत्तम समझने लगे ॥ ९ ॥

गर्हयित्वात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च ।
ध्यात्वा च सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥

राजा धृतराष्ट्र अपनी और सुबलपुत्र शकुनिकी बुद्धिकी भी निन्दा करने लगे । और बहुत देरतक विचार करके बार बार कंपित होने लगे ॥ १० ॥

संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत संजयम् ॥ ११ ॥

राजा धृतराष्ट्र अपने मनको थामकर धैर्य धारण करके, गवल्गणके पुत्र सूत सञ्जयसे फिर ऐसा पूछने लगे ॥ ११ ॥

यत्त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं सञ्जय तन्मया ।
कच्चिद्दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ।
ब्रूहि संजय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥ १२ ॥

हे सञ्जय ! जो वचन तुमने कहे वह मैंने सुने, हे सूत ! दुर्योधन यमलोकमें तो नहीं चला गया ? हे सञ्जय ! तुम अपनी कही हुई इस कथाको सत्यरूपसे फिर कहो ॥ १२ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतो राजानं जनमेजय ।
हतो वैकर्तनो राजन्सह पुत्रैर्महारथैः ।
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः ॥ १३ ॥

हे राजन् जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रके ऐसे वचन सुनकर सूत सञ्जय राजासे बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! विकर्तनपुत्र महारथी कर्ण अपने पुत्रोंके तथा शरीरका अभिलाष छोडकर युद्ध करने वाले अपने महाधनुर्द्धारी सूतवर्गीय भाइओंके सहित मारा गया ॥ १३ ॥

दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना ।
पीतं च रुधिरं कोपाद्भीमसेनेन संयुगे ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ८३ ॥

ऐसे ही यशस्वी पाण्डुपुत्र भीमने युद्धमें दुःशासनको मार डाला और क्रोधपूर्वक उसके रुधिरको भीमसेनने संग्राममें पान किया ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ ८३ ॥

: ४ :

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
अब्रवीत्संजयं सूतं शोकव्याकुलचेतनः ॥ १ ॥

महर्षि वैशम्पायन बोले– हे महाराज ! अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र सञ्जयके इस वचनको सुन और शोकसे व्याकुल चित्त होकर सूत सञ्जयसे कहने लगे ॥ १ ॥

दुष्प्रणीतेन मे तात मनसाभिप्लुतात्मनः ।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति ॥ २ ॥

हे प्यारे ! मेरे अपने पूर्णतया भरे हुए मनके पापसे जो कर्ण मारा गया, इस कथाको सुनकर मेरे शरीरके मर्मस्थानोंको शोक काट डालता है ॥ २ ॥

कृतास्त्रपरमाः शल्ये दुःखपारं तितीर्षवः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के नु जीवन्ति के मृताः ॥ ३ ॥

मैं इस दुःखसे छूटना चाहता हूं, इस लिये तुम यह वर्णन करो कि कौरववंशी और सृञ्जय वंशियोंमें कौन कौन जीते और कौन कौन मरे हैं, तुम मेरे इस शल्यको दूर करो ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

हतः शांतनवो राजन्दुराधर्षः प्रतापवान् ।
हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! शत्रुओंसे जीतनेके अयोग्य प्रतापी शान्तनुपुत्र भीष्म पाण्डवोंके अरब वीरोंको दस दिनोंमें मारकर मारे गये ॥ ४ ॥

ततो द्रोणो महेष्वासः पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद्रुक्मरथो हतः ॥ ५ ॥

ऐसे ही सुवर्णमय रथवाले दुर्धर्ष महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य पाञ्चाल लोगोंके अनेक महारथियोंको मारकर युद्धमें मारे गये ॥ ५ ॥

हतशिष्टस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ ६ ॥

भीष्म और महात्मा द्रोणाचार्यके हाथसे मरनेसे जो पाण्डवोंकी सेना बच गई थी, उनमेंसे आधी सेनाको मार कर सूर्यपुत्र कर्ण भी मारा गया ॥ ६ ॥

विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥ ७ ॥

हे महाराज ! महाबलवान् राजपुत्र विविंशति आनर्त्त देशके सैकडों वीरोंको मारकर संग्राममें मारा गया ॥ ७ ॥

अथ पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान् ॥ ८ ॥

इसी प्रकार आपके शूरवीर पुत्र विकर्णके जब शस्त्र और रथ विनष्ट हो गये तब क्षत्रियोंके धर्म स्मरण करते हुए शत्रुओंके सम्मुख वह डटा हुआ था ॥ ८ ॥

घोररूपान्परिक्लेशान्दुर्योधनकृतान्बहून् ।
प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९ ॥

परंतु दुर्योधनके दिये हुए अनेक महा दुःख और अपनी प्रतिज्ञाको याद करके भीमसेनने उसे मार डाला ॥ ९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महाबलौ ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ १० ॥

अवन्तिकापुरीके महा बलवान् राजपुत्र विन्द और अनुविन्द भी कठिन कर्म करके यमराजके भवनको चले गये ॥ १० ॥

सिन्धुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यस्य वै ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥ ११ ॥

सिन्धुराष्ट्रको आदि लेके दस राष्ट्र जिस वीरके आधीन थे और जो सदा आपकी आज्ञामें रहता था ॥ ११ ॥

अक्षौहिणीर्दशैकां च निर्जित्य निशितैः शरैः ।
अर्जुनेन हतो राजन्महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२ ॥

उस महावीर जयद्रथको अर्जुनने आपकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको जीतकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार डाला ॥ १२ ॥

तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥ १३ ॥

ऐसे ही तेजस्वी वेगवान् युद्धमें मत्त होनेवाले और अपने पिताकी आज्ञामें रहनेवाले दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मणको सुभद्रानन्दन अभिमन्युने मार डाला ॥ १३ ॥

तथा दौःशासनिर्वीरो बाहुशाली रणोत्कटः ।
द्रौपदेयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ १४ ॥

ऐसे ही बडे बाहुशाली, रणोत्कट और दुःशासनके शूर पुत्र द्रौपदीके पुत्रसे पराक्रमके साथ लडकर यमलोकमें गया ॥ १४ ॥

किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् ।
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥ १५ ॥

समुद्रके खादर अर्थात् अनूपदेशके किरातोंका स्वामी और देवराज इन्द्रका अत्यंत प्यारा धर्मात्मा मित्र ॥ १५ ॥

भगदत्तो महीपालः क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ १६ ॥

सदा क्षत्रियोंके धर्ममें स्थिर रहनेवाला राजा भगदत्त अर्जुनसे पराक्रमयुक्त युद्ध करके यमराजके स्थानको चला गया ॥ १६ ॥

तथा कौरवदायादः सौमदत्तिर्महायशाः ।
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि ॥ १७ ॥

राजन् ! ऐसे ही कौरवोंका कुशल महायशस्वी शूर सोमदत्त भूरिश्रवाको भी युद्धमें सात्यकिने मार डाला ॥ १७ ॥

श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धनुर्धरः ।
चरन्नभीतवत्संख्ये निहतः सव्यसाचिना ॥ १८ ॥

क्षत्रियोंमें धनुर्धर, युद्धमें निर्भय होकर घूमनेवाले, अम्बष्ठ देशके राजा श्रुतायुको भी सव्य साची अर्जुनने मार डाला ॥ १८ ॥

तव पुत्रः सदा संख्ये कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! शस्त्रविद्याका अभ्यासी और सदाका रणमत्त तुम्हारा पुत्र दुःशासन भी भीमसेनके हाथोंसे मारा गया ॥ १९ ॥

यस्य राजन्गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥ २० ॥

राजन् ! जिसके अधिकारमें कई सहस्र हाथियोंकी अद्भुत सेना थी, उस राजा सुदक्षिणको भी सव्यसाची अर्जुनने युद्धमें मार डाला ॥ २० ॥

कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुशतान्परान् ।
सौभद्रेण हि विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २१ ॥

कोशलदेशका राजा बडे बडे श्रेष्ठ शत्रुओंको मारकर सुभद्राकुमार अभिमन्युसे पराक्रम युक्त युद्ध करके यमलोकको गया ॥ २१ ॥

बहुशो योधयित्वा च भीमसेनं महारथः ।
चित्रसेनस्तव सुतो भीमसेनेन पातितः ॥ २२ ॥

जो महारथी भीमसेनके साथ अनेक बार युद्ध कर चुका था, वह आपका पुत्र चित्रसेन भी भीमसेनके हाथोंसे मारा गया ॥ २२ ॥

मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्धनः ।
असिचर्मधरः श्रीमान्सौभद्रेण निपातितः ॥ २३ ॥

शत्रुओंको भय देनेवाले, खड्ग और ढालको रखनेवाले मद्रराजके तेजस्वी शूरवीर पुत्रको सुभद्रानन्दन अभिमन्युने मार डाला ॥ २३ ॥

समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रः कृतनिश्चयः ॥ २४ ॥

युद्धमें कर्णके समान पराक्रमी, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, दृढ निश्चयी, महातेजस्वी कर्णपुत्र वृषसेनको कर्णके देखते देखते ॥ २४ ॥

अभिमन्योर्वधं स्मृत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २५ ॥

अर्जुनने अभिमन्युकी मृत्युको और अपनी प्रतिज्ञाको याद करके अपने साथ भिडकर पराक्रम करनेवाले उसको यमलोक भेज दिया ॥ २५ ॥

नित्यप्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥ २६ ॥

जो सदा पाण्डवोंसे वैर रखता था, उस राजा श्रुतायु, कुन्तीपुत्र अर्जुनने उसकी शत्रुताका स्मरण कराकर मार डाला ॥ २६ ॥

शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन्भ्राता मातुलजो युधि ॥ २७ ॥

हे मारिष ! राजन् ! महापराक्रमी शल्यपुत्र रुक्मरथको अपने मामाका पुत्र होनेपर भी सहदेवने युद्धमें मार डाला ॥ २७ ॥

राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥ २८ ॥

वृद्ध राजा भगीरथ और केकयराज बृहत्क्षत्र, ये अत्यन्त बलवान्, महापराक्रमी दोनों राजा भी युद्धमें पराक्रम दिखाते हुए मारे गये ॥ २८ ॥

भगदत्तसुतो राजन्कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता संख्ये नकुलेन निपातितः ॥ २९ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! बुद्धिमान् महाबली भगदत्तके पुत्रको युद्धमें श्येनपक्षीके समान आक्रमण करके नकुलने मार डाला ॥ २९ ॥

पितामहस्तव तथा बाह्लिकः सह बाह्लिकैः ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३० ॥

आपके महापराक्रमी पितामह बाह्लीक भी बाह्लीक योद्धाओंके सहित भीमसेनसे पराक्रमके साथ युद्ध करते हुए यमलोकको गये ॥ ३० ॥

जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासंधिर्महाबलः ।
मागधो निहतः संख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! जरासन्धके महाबलवान् पुत्र मगध देशके राजा जयत्सेनको सुभद्राके पुत्र महात्मा अभिमन्युने युद्धमें मार डाला ॥ ३१ ॥

पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन्दुःसहश्च महारथः ।
गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥ ३२ ॥

राजन् ! अपनेको शूरवीर माननेवाले आपके पुत्र दुर्मुख और महारथी दुःसहको भीमसेनने गदासे मार डाला ॥ ३२ ॥

दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥

दुर्मर्षण, दुर्विषह और महारथी दुर्जय युद्धमें कठिन कर्म करके यमलोकको चले गये ॥ ३३ ॥

सचिवो वृषवर्मा ते सूतः परमवीर्यवान् ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३४ ॥

आपका मन्त्री महा पराक्रमी, वीर सूत वृषवर्मा भी भीमसेनसे युद्ध करके यमलोक को चला गया ॥ ३४ ॥

नागायुतबलो राजा नागायुतबलो महान् ।
सगणः पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥ ३५ ॥

ऐसेही दस हजार हाथियोंके समान बलशाली और महान् राजा पौरवको भी उनके सैनिकोंके साथ पाण्डुनन्दन सव्यसाची अर्जुनने मार डाला ॥ ३५ ॥

वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥ ३६ ॥

हे महाराज ! युद्धमें कुशलतापूर्वक लडनेवाले दो सहस्र वसाति और पराक्रमी शूरसेन भी सबके सब युद्धमें मारे गये ॥ ३६ ॥

अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो मदोत्कटाः ।
शिबयश्च रथोदाराः कलिङ्गसहिता हताः ॥ ३७ ॥

युद्धमें मदोत्कट होकर प्रहार करनेवाले, कवच पहिरनेवाले अभिषाह लोग, रथियोंमें श्रेष्ठ शिबिलोग ये सब कलिङ्ग सहित मारे गये ॥ ३७ ॥

गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोविदाः ।
श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३८ ॥

जो सदा गोकुलमें रहकर बढे थे, युद्धविद्यामें जो निष्णात थे, जिन शंसप्तकगणोंकी कई सहस्रोंकी श्रेणियां थीं वे सभी अर्जुनके सम्मुख जाके यमलोकमें चले गये ॥ ३८ ॥

स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ ।
त्वदर्थे संपराक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥ ३९ ॥

हे महाराज ! आपके दोनों साले राजा वृषक और अचल भी आपके निमित्त बहुत पराक्रम करके अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ ३९ ॥

उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।
शाल्वराजो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ ४० ॥

महाराज ! जो नाम और कर्मसे भी उग्रकर्मा थे, उन महाधनुर्द्धारी राजा शाल्वको भीमसेनने मार डाला ॥ ४० ॥

ओघवांश्च महाराज वृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ४१ ॥

महाराज ! मित्रके लिये समरमें मिलकर पराक्रम करनेवाले ओघवान् और वृहन्त ये दोनों वीर युद्धमें यमलोकको चले गये ॥ ४१ ॥

तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशां पते ।
निहतो गदया राजन्भीमसेनेन संयुगे ॥ ४२ ॥

हे पृथ्वीपते ! महाराज ! ऐसेही रथियोंमें श्रेष्ठ क्षेमधूर्तिको भी भीमसेनने युद्धमें गदासे मार डाला ॥ ४२ ॥

तथा राजा महेष्वासो जलसंधो महाबलः ।
सुमहत्कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥

ऐसेही महाधनुर्द्धारी, महाबली राजा जलसन्ध युद्धमें योद्धाओंका बहुत संहार करके सात्यकिके हाथसे मार डाला गया ॥ ४३ ॥

+

अलायुधो राक्षसेन्द्रः खरयुक्तरथालगः ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ४४ ॥

खच्चरके रथमें बैठनेवाले राक्षसोंके स्वामी अलायुधको घटोत्कचने पराक्रम प्रकाशित करके यमलोक भेज दिया ॥ ४४ ॥

राधेयाः सूतपुत्राश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥ ४५ ॥

राधापुत्र, सूतपुत्र, उनके महारथी भाई और सब केकयवंशियोंको अर्जुनने मार डाला ॥ ४५ ॥

मालवा मद्रकाश्चैव द्रविडाश्चोग्रविक्रमाः ।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥ ४६ ॥

मालवदेशी, मद्रदेशी और उग्र पराक्रम करनेवाले द्रविडदेशी, यौधेय, ललित्थ, क्षुद्रक, उशीनर ॥ ४६ ॥

मावेल्लकास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्चलाः ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४७ ॥

मावेल्लक, तुण्डिकेर, सावित्रिपुत्र, अश्चल, पूर्वदेशी, उत्तर देशी, पश्चिमदेशी और दक्षिणदेशके निवासी ॥ ४७ ॥

पत्तीनां निहताः संघा हयानामयुतानि च ।
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ४८ ॥

पदातियोंके समूह और घुडसवारोंकी सहस्रों सेना, घोडे, बडेबडे हाथी और रथोंके समूह मारे गये ॥ ४८ ॥

सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः ।
कालेन महता यत्ताः कुले ये च विवर्धिताः ॥ ४९ ॥

जो युद्धमें सदा दत्तचित्त रहनेवाले शूरवीर थे और जो उच्च कुलोंमें पाले गये थे, ध्वजा, पताका, शस्त्र, दिव्य वस्त्र और आभूषणों सहित ॥ ४९ ॥

ते हताः समरे राजन्पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥ ५० ॥

राजन् ! उन सबका अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले अर्जुनने नाश कर दिया। ऐसे ही दूसरे अनेक अतुल बलवान् और एक दूसरेको मारनेकी इच्छा करनेवाले वीर युद्धमें मारे गये ॥ ५० ॥

एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे ।
हताः सहस्रशो राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे ॥ ५१ ॥

हे महाराज ! ये तथा इनके अतिरिक्त और भी अनेक राजा लोग अपनी सेनाके साथ सहस्रोंकी संख्यामें युद्धमें मारे गये । जो आपने मुझसे पूंछा था सो मैंने कहा । इस प्रकार कर्ण और अर्जुनके युद्धमें यह भयंकर नाश हुआ है ॥ ५१ ॥

महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ।
यथा कृष्णेन निहतो मुरो रणनिपातितः ।
कार्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण हतो यथा ॥ ५२ ॥

कर्ण और अर्जुनका युद्ध ऐसे ही हुआ जैसे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरको, रामने रावणको, जैसे श्रीकृष्णने मुरको युद्धमें मारा था अथवा जैसे भृगुवंशी परशुरामने कार्तवीर्यको मारा था, ऐसे ही कर्णको अर्जुनने मारा ॥ ५२ ॥

सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः ।
रणे कृत्वा महायुद्धं घोरं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५३ ॥

जातिके लोगोंके और भाईयोंके सहित शूरवीर, युद्धमें रणमत्त, तीनों लोकोंमें विख्यात महाघोर युद्धमें कर्णको अर्जुनने मारा ॥ ५३ ॥

तथार्जुनेन निहतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ।
सामात्यबान्धवो राजन्कर्णः प्रहरतां वरः ॥ ५४ ॥

और राजन् ! अमात्य और बान्धवोंके सहित योद्धाओंमें श्रेष्ठ युद्धदुर्मद कर्णको अर्जुनने द्वैरथ युद्धमें मारा ॥ ५४ ॥

जयाशा धार्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ।
तीर्णं तत्पाण्डवै राजन्यत्पुरा नावबुध्यसे ॥ ५५ ॥

राजन् ! जिस कारणसे कर्णसे ही तुम्हारे पुत्रोंको जयकी आशा थी और वही वैरका आदि मुख था; इससे उसके मरनेसे पाण्डव उसके पार होगये जिसे तुम पहिले नहीं समझे थे ॥ ५५ ॥

उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकाङ्क्षिभिः ।
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं त्वां महात्ययम् ॥ ५६ ॥

महाराज ! पहले आपका हित चाहनेवाले बन्धुओंके कहनेपर भी उस ओर आपने ध्यान नहीं दिया, इसलिये यह बड़ा विनाश करनेवाला संकट आपको प्राप्त हुआ है ॥ ५६ ॥

पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन्हितैषिणा ।
अहितानीव चीर्णानि तेषां ते फलमागतम् ॥ ५७ ॥

तुमने राज्यकी अभिलाषा करनेवाले तुम्हारे पुत्रोंके हितकी इच्छा करके सदा पाण्डवोंके प्रति अहित ही किये हैं, तुम्हारे उन्हीं कर्मोंके ही यह सब फल प्राप्त हुए हैं ॥ ५७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः ।
निहतान्पाण्डवेयानां मामकैर्ब्रूहि सञ्जय ॥ ५८ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे प्यारे सञ्जय ! युद्धमें पाण्डवोंने हमारे पक्षके वीरोंको मारा उनका तुमने वर्णन किया, अब उनका भी वर्णन करो, कि पाण्डवोंके जिन योद्धाओंको हमारे वीरोंने मारा ॥ ५८ ॥

सञ्जय उवाच

कुन्तयो युधि विक्रान्ता महासत्त्वा महाबलाः ।
सानुबन्धाः सहामात्या भीष्मेण युधि पातिताः ॥ ५९ ॥

संजय बोले– युद्धमें बडे तीक्ष्ण, महापराक्रमी और महाबली कुन्तलोगोंको सगेसम्बन्धियों और मन्त्रियोंके सहित पितामह भीष्मने मार डाला ॥ ५९ ॥

समः किरीटिना संख्ये वीर्येण च बलेन च ।
सत्यजित्सत्यसन्धेन द्रोणेन निहतो रणे ॥ ६० ॥

सत्यजित् युद्धमें किरीटधारी अर्जुनके समान बल और पराक्रम युक्त था, उसे सत्यवादी द्रोणाचार्यने युद्धमें मार दिया ॥ ६० ॥

तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६१ ॥

ऐसे ही वृद्ध राजा विराट और राजा द्रुपद इन दोनों मित्रके निमित्त पराक्रम युक्त युद्ध करनेवालोंको उनके पुत्रोंसहित द्रोणाचार्यने युद्धमें मार डाला ॥ ६१ ॥

यो बाल एव समरे संमितः सव्यसाचिना ।
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन चाभिभूः ॥ ६२ ॥

जो बालक अवस्थाहीमें दुर्धर्ष और अपराजित वीर था, और सव्यसाची अर्जुन, श्रीकृष्ण और बलभद्रके समान माना जाता था ॥ ६२ ॥

स एष कदनं कृत्वा महद्रणविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ।
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ॥ ६३ ॥

जो महारथी युद्धको जानता था, जिसने शत्रुसंहार किया था, उस अभिमन्युको जब कोई अकेला न मार सका, तब (द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य और कृतवर्मा) इन छः बडे महारथियोंने जिनका अर्जुनपर वश नहीं होता था, मिलके चारों ओरसे घेरकर अर्जुनकी ईर्षासे मार डाला ॥ ६३ ॥

तं कृतं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ।
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान्रणे ॥ ६४ ॥

महाराज ! क्षत्रियोंके धर्ममें तत्पर रहनेवाले वीर सुभद्रापुत्र अभिमन्युको रथहीन करके दुःशासनके पुत्रने युद्धमें मारा ॥ ६४ ॥

बृहन्तस्तु महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ६५ ॥

महा धनुर्द्धारी, शस्त्रविद्याका जाननेवाला, रणमत्त बृहन्त नामक राजा दुःशासनसे युद्ध करके यमराजके घरको चला गया ॥ ६५ ॥

मणिमान्दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन विनिपातितौ ॥ ६६ ॥

युद्धमें मत्त रहनेवाले, राजा मणिमान् और दण्डधार मित्रके निमित्त बल दिखानेवालोंको द्रोणाचार्यने युद्धमें मार डाला ॥ ६६ ॥

अंशुमान्भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ६७ ॥

महारथी भोजराज अंशुमान्को उनकी सेनाके सहित महर्षि भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्यने यमलोकको भेज दिया ॥ ६७ ॥

चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा तौ कदनं महत् ।
चित्रमार्गेण विक्रम्य कर्णेन निहतौ युधि ॥ ६८ ॥

राजा चित्रायुध और राजा चित्रयोधी विचित्र मार्गसे पराक्रम युक्त युद्ध करके और शत्रुओंको व्याकुल करके दोनों युद्धमें कर्णके हाथसे मारे गये ॥ ६८ ॥

वृकोदरसमो युद्धे दृढः केकयजो युधि ।
केकयेनैव विक्रम्य भ्रात्रा भ्राता निपातितः ॥ ६९ ॥

जो केकयज युद्धमें भीमके समान था, दृढ निश्चयी था, वह अपने साथी केकय वीरोंके सहित अपने भाई कैकयके साथ युद्ध करके मारा गया ॥ ६९ ॥

जनमेजयो गदायोधी पार्वतीयः प्रतापवान् ।
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ॥ ७० ॥

महाराज ! जो गदायुद्धमें निपुण, पहाडी देशका राजा, प्रतापवान् जनमेजय था उसे तुम्हारे पुत्र दुर्मुखने मार डाला ॥ ७० ॥

रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव ।
द्रोणेन युगपद्राजन्दिवं संप्रेषितौ शरैः ॥ ७१ ॥

राजन् ! जिन दो भाइयोंका एकही नाम था, जो नरसिंह दो ग्रहोंके समान प्रकाशित थे, उन रोचमान नामक दोनों भाइओंको द्रोणाचार्यने एक साथ ही अपने बाणोंसे स्वर्गलोक भेज दिये ॥ ७१ ॥

नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशां पते ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ७२ ॥

पृथ्वीपते ! अन्य अनेक पराक्रमी राजा तुम्हारी सेनासे लडते हुए दुष्कर कर्म करके यम-लोकमें गये हैं ॥ ७२ ॥

पुरुजित्कुन्तिभोजश्च मातुलः सव्यसाचिनः ।
संग्रामनिर्जितांल्लोकान्गमितो द्रोणसायकैः ॥ ७३ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! युद्धमें पराक्रम दिखाते और युद्ध करते हुए अर्जुनके मामा पुरुजित् और कुन्तिभोज युद्धमें कठोर कर्म करके जो युद्धमें मारे जानेवाले वीरोंका प्राप्त होता है, उस लोकको चले गये । यह दोनों भी द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे गये ॥ ७३ ॥

अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः ।
वसुदानस्य पुत्रेण न्याजितो देहमाहवे ॥ ७४ ॥

काशिराज अभिभू अनेक काशीवासी वीरोंसे घिरे हुए थे, वसुदानके पुत्रने युद्धमें उनसे उनके देहका त्याग करवा दिया ॥ ७४ ॥

अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
निहत्य शतशः शूरान्परैर्विनिहतौ रणे ॥ ७५ ॥

महातेजस्वी युधामन्यु और प्रतापी उत्तमौजा सैंकडों वीरोंको मार कर युद्धमें शत्रुओंके हाथोंसे मारे गये ॥ ७५ ॥

क्षत्रधर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रवर्मा च मारिष ।
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ॥ ७६ ॥

हे महाराज ! पांचाल देशीय क्षत्रधर्मा और क्षत्रवर्मा इन दोनों महाधनुर्द्धारिओंको द्रोणाचार्यने यमपुरको भेज दिया ॥ ७६ ॥

शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ।
लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ॥ ७७ ॥

भारत ! युद्ध करनेवालोंके स्वामी शिखण्डीके पुत्र क्षत्रदेवको तुम्हारे पौत्र लक्ष्मणने युद्धमें मार डाला ॥ ७७ ॥

सुचित्रश्चित्रधर्मा च पितापुत्रौ महारथौ ।
प्रचरन्तौ महावीर्यौ द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ७८ ॥

सुचित्र और चित्रधर्मा युद्धमें विचरनेवाले इन महारथी महावीर पितापुत्रोंको युद्धमें द्रोणाचार्यने मार डाला ॥ ७८ ॥

वार्धक्षेमिर्महाराज कृत्वा कदनमाहवे ।
बाह्लिकेन महाराज कौरवेण निपातितः ॥ ७९ ॥

हे महाराज ! समरमें अत्यंत महान् संहार करनेके बाद वार्धक्षेमि कौरवराज बाह्लीकने मार डाला ॥ ७९ ॥

धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ८० ॥

हे महाराज ! चेदि देशके राजाओंमें श्रेष्ठ रथी धृष्टकेतु भी कठोर कर्म करनेके अनन्तर यमपुरीको चला गया ॥ ८० ॥

तथा सत्यधृतिस्तात कृत्वा कदनमाहवे ।
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम् ॥ ८१ ॥

हे तात ! ऐसे ही सत्यधृति युद्धमें शत्रुओंका नाश करके पाण्डवोंके लिये पराक्रम प्रकट करके शरीर त्यागकर यमपुरको चले गये ॥ ८१ ॥

पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपते ।
निहत्य शात्रवान्संख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥ ८२ ॥

हे पृथ्वीपते शिशुपालका पुत्र राजा सुकेतु युद्धमें शत्रुओंको मार कर रणभूमिमें द्रोणाचार्यके हाथसे स्वयं मारा गया ॥ ८२ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् ।
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ॥ ८३ ॥

ऐसे ही वीर सत्यधृति, बलवान् मदिराश्व और पराक्रमी सूर्यदत्त भी द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे गये ॥ ८३ ॥

श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ८४ ॥

हे महाराज ! पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाला श्रेणिमान् युद्धमें कठोर कर्म करके यमराजके भवनको चला गया ॥ ८४ ॥

तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परवीरहा ।
भीष्मेण निहतो राजन्युध्यमानः पराक्रमी ॥ ८५ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! इसी प्रकार शत्रुके वीरोंको मारनेवाला, पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाला पराक्रमी मगध देशका राजा भीष्मके बाणोंसे मारा गया ॥ ८५ ॥

वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ८६ ॥

वसुदानभी संग्राममें महाघोर संहार करके और भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्यसे युद्ध करके मारे गये ॥ ८६ ॥

एते चान्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः ।
हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८७ ॥

हे राजन् ! इनको आदि लेके पाण्डवोंके अनेक महारथी वीर द्रोणाचार्यके हाथसे मारे गये । जो आपने मुझसे पूंछा था वह मैंने कहा ॥ ८७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन्मामके वदतां वर ।
अहतान्शंस मे सूत येऽत्र जीवन्ति केचन ॥ ८८ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ संजय ! सूत ! जैसे तुमने मेरी सेनाके प्रमुख वीरोंके मारे जानेका वर्णन किया, वैसेही यह भी वर्णन करो कि कौन कौन वीर नहीं मारे गये । इस सेनामें जो कोई वीर जीवित हैं उनका वर्णन करो ॥ ८८ ॥

एतेषु निहतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः ।
अहतान्मन्यसे यांस्त्वं तेऽपि स्वर्गजितो मताः ॥ ८९ ॥

आज तुमने मरे हुए लोगोंके नाम कहे हैं, परंतु जो अब जीवित हैं, मारे नहीं गये हैं, ऐसा तुम समझते हो, उन्होंने भी स्वर्ग प्राप्त किया है, ऐसा मैं मानता हूं ॥ ८९ ॥

संजय उवाच

यस्मिन्महास्त्राणि समर्पितानि चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि ।
दिव्यानि राजन्निहितानि चैव द्रोणेन वीरद्विजसत्तमेन ॥ ९० ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! जिस वीरको ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने विचित्र और प्रकाशयुक्त चार प्रकारके दिव्य महान् अस्त्र प्रदान किये थे ॥ ९० ॥

महारथः कृतिमान्क्षिप्रहस्तो दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः ।
स वीर्यवान्द्रोणपुत्रस्तरस्वी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ९१ ॥

वही महारथी पुण्यवान्, शीघ्र हाथोंसे शस्त्र चलानेवाले, दृढ शस्त्रवाले, दृढ मुठीवाले, दृढ बाणवाले, महावेगवान् और पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आपके निमित्त युद्ध करनेको तैयार हैं ॥ ९१ ॥

आनर्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ महारथः सात्वतानां वरिष्ठः ।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ९२ ॥

हृदिकका पुत्र, सात्त्वत वंशियोंमें श्रेष्ठ, आनर्त्तदेशका रहनेवाला, महारथी, सब शस्त्रोंको जाननेवाला, भोजवंशी स्वयं कृतवर्मा आपके निमित्त युद्ध करनेको तैयार है ॥ ९२ ॥

शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्महाबलो बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद्भारसाहं व्यवस्थितो योत्स्यमानः प्रगृह्य ॥ ९३ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! महाभुज, अनेक भांतिके विचित्र अस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले गौतमवंशीय शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य अपने बहुत भार सहन करनेमें समर्थ विचित्र धनुषको लेकर आपकी ओर युद्ध करनेको डटे खडे हैं ॥ ९३ ॥

आर्तायनिः समरे दुष्प्रकम्प्यः सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम् ।
स्वस्रेयांस्तान्पाण्डवेयान्विसृज्य सत्यां वाचं तां चिकीर्षुस्तरस्वी ॥ ९४ ॥

समरमें जिसको विचलित करना अत्यंत कठिन है ऐसा, जो तुम्हारी सेनाके प्रमुख और वेगवान् वीर है, जिसने अपने वचनको सत्य करनेके लिये अपने भानजे पाण्डवोंको परित्याग कर दिया ॥ ९४ ॥

तेजोवधं सूतपुत्रस्य संख्ये प्रतिश्रुत्वाजातशत्रोः पुरस्तात् ।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ९५ ॥

जिसने प्रथम अजातशत्रु युधिष्ठिरके सामने समरभूमिमें प्रण किया था, कि मैं युद्धमें कर्णके तेज और बलको नाश करूंगा, वही इन्द्रके समान वीर्यवान् दुराधर्ष शल्य आपके लिये युद्ध करनेको प्रस्तुत हैं ॥ ९५ ॥

×

आजानेयैः सैन्धवैः पार्वतीयैर्नदीजकाम्बोजवनायुबाह्लिकैः ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ९६ ॥
गान्धार देशका राजा शकुनि आजानेय, सिन्धुदेशी, पर्वतवासी, नदी तटवासी, काम्बोज देशी और वनायु देशी लोगोंसे पूर्ण अपनी सेनाके साथ आपके निमित्त युद्ध करनेको खडा हुआ है ॥ ९६

तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं रथं समास्थाय कुरुप्रवीर ।
व्यवस्थितः कुरुमित्रो नरेन्द्र व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा वै ॥ ९७ ॥
हे कुरुकुलश्रेष्ठ वीर ! नरेन्द्र ! ऐसे ही आपका पुत्र कुरुमित्र युद्धके लिये अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान् रथपर बैठकर आकाशमें मेघरहित सूर्यके समान शोभित है ॥ ९७ ॥

दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये महावीर्यैः सह सैन्यप्रवीरैः ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ॥ ९८ ॥
हाथियोंकी सेनाके बीच और सेनाप्रमुखोंके साथ महाशौर्यशाली दुर्योधन सुवर्ण जटित रथमें बैठकर युद्ध करनेके लिये समरमें खडा है ॥ ९८ ॥

स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ ९९ ॥
पुरुषश्रेष्ठ वीर और कमलके समान कान्तिमान् दुर्योधन सुवर्णका विचित्र कवच पहिने राजाओंके बीचमें ऐसा शोभायमान् हो रहा है जैसे अल्प धुआं वाली अग्नि, वा मेघोंके बीचमें सूर्य ॥ ९९ ॥

तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणिस्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १०० ॥
हाथमें खड्ग और ढाल लिये आपका पुत्र सुषेण और वीर सत्यसेन ये दोनों ही चित्रसेनके सहित समरमें प्रसन्न चित्तसे युद्ध करनेको खडे हैं ॥ १०० ॥

ह्रीनिषेधा भरता राजपुत्राश्चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ।
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च व्यवस्थिता बलिनो योद्धुकामाः ॥ १०१ ॥
सदा लज्जाका त्याग करनेवाले, बलवान्, भरतवंशी राजपुत्र चित्रायुध, श्रुतवर्मा, जय, शल, सत्यव्रत, दुःशल– ये सब युद्ध करनेको खडे हैं ॥ १०१ ॥

कैतव्यानामधिपः शूरमानी रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ।
पत्री हयी नागरथप्रयायी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १०२ ॥
कैतव्य लोगोंका स्वामी, अपनेको वीर माननेवाला, हरएक युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला राजपुत्र जो रथ, घोडे, हाथी और पैदल सेनाके साथ चलता है, वही आपकी ओरसे युद्ध करनेको खडा है ॥ १०२ ॥

वीरः श्रुतायुश्च श्रुतायुधश्च चित्राङ्गदश्चित्रवर्मा स वीरः ।
व्यवस्थिता ये तु सैन्ये नराग्रयाः प्रहारिणो मानिनः सत्यसंधाः ॥१०३॥

वीर श्रुतायु, श्रुतायुध, चित्राङ्गद और वीर चित्रवर्मा ये सब नरश्रेष्ठ युद्धकी इच्छासे खडे हैं। ये सब लडनेमें कुशल, मानी और सत्य बोलनेवाले हैं ॥ १०३ ॥

कर्णात्मजः सत्यसेनो महात्मा व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ।
अथापरौ कर्णसुतौ वराहौ व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
बलं महद्दुर्भिदमल्पधैर्यैः समाश्रितौ योत्स्यमानौ त्वदर्थे ॥ १०४ ॥

महात्मा कर्णपुत्र सत्यसेन भी संग्राममें युद्धकी इच्छासे खडा है। हे नरेन्द्र ! ऐसे ही उत्तम शस्त्रधारी, शीघ्र शस्त्र छोडनेवाले, अल्प धैर्यवाले शत्रुओंसे भेदन करने अयोग्य विशाल सेनाको लिये, कर्णके और दो पुत्र युद्धकी इच्छासे खडे हुए हैं ॥ १०४ ॥

एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय ॥ १०५ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! इनको आदि लेके और और मुख्य और अतुल प्रभाववाले श्रेष्ठ वीरोंसे घिरा हुआ कुरुराज दुर्योधन समरभूमिमें जयके निमित्त खडा हुआ ऐसा शोभायमान है, जैसे हाथियोंके झुंडमें इन्द्रकी शोभा होती है ॥ १०५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता जीवमाना ये परेभ्योऽन्ये यथातथम् ।
इतीदमभिगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥ १०६ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले— हे संजय ! तुमने हमारे जो जीवित योद्धा हैं, और दूसरे जो शत्रुओंसे मारे जा चुके हैं, उन वीरोंका ठीक ठीक वर्णन किया, इसके फलसे मैं अर्थापत्ति प्रमाणसे समझ गया हूं कि मेरे पुत्रोंकी जय न होगी ॥ १०६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किंचिच्छेषं स्वकं बलम् ।
श्रुत्वा व्यामोहमगमच्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ॥ १०७ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र संजयसे अपनी सेनाके प्रमुख वीरोंको मारे, अधिकांश सेना नष्ट हो गयी और थोडी ही बाकी रही है यह सुनके, उक्त वाक्यको कहते, मूर्छित हो गये। धृतराष्ट्रकी इन्द्रियां शोकसे व्याकुल हो गईं ॥ १०७ ॥

मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्तं तिष्ठ सञ्जय ।
व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
नष्टचित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥ १०८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ १९१ ॥

और मोहित होते संजयसे बोले– हे संजय ! क्षणभर ठहर जाओ, हे प्यारे ! बहुत अप्रिय बातको सुनकर मेरा मन व्याकुल हो गया है। ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र मूर्च्छित हो गये ॥ १०८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ १९१ ॥

: ५ :

जनमेजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैवापलायिनः ।
नरेन्द्रः किंचिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥ १ ॥

महाराज जनमेजय बोले– हे महामुने ! युद्धमें कर्णको और अपने पुत्रोंको मरा सुनके और थोडा विश्राम लेके महाराज धृतराष्ट्रने सचेत हुए क्या कहा ? ॥ १ ॥

प्राप्तवान्परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन्यदुक्तवान्काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ २ ॥

पुत्रोंके मरनेके कारण महादुःखको पाकर, उस कालमें महाराज धृतराष्ट्रने जो कहा हो, वह आप मुझे सुनाइये, यही मैं आपसे पूंछता हूं ॥ २ ॥

वैशंपायन उवाच

श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसंमोहनं भीमं मेरोः पर्यसनं यथा ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! अविश्वनीय और अद्भुत, प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला, कर्णका मारा जाना ऐसा भयानक था, जैसे मेरु पर्वतका अपने स्थानसे हटकर अन्य स्थानको चलना ॥ ३ ॥

चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ।
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४ ॥

अथवा महाबुद्धिमान् भृगुपुत्र परशुरामके चित्तमें मोह आना, अथवा भयानक कर्म करनेवाले इन्द्रका अपने शत्रुओंसे हारना, जैसे असंभव है ॥ ३ ॥

दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युतेः ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥ ५ ॥

अथवा महातेजस्वी सूर्यका आकाशसे पृथ्वीमें गिरना, अथवा अक्षय जलसे भरे सागरका सूख जाना, मनमें सोचाही नहीं जाता ॥ ५ ॥

महीवियद्दिगीशानां सर्वनाशमिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥ ६ ॥

वा पृथ्वी, आकाश, दिशा और जलका सर्वनाश हो जाना अथवा पुण्य वा पापरूपी कर्मोंके फलका न मिलना जैसे आश्चर्यजनक है ॥ ६ ॥

संचिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति संचिन्त्य कर्णस्य निधनं प्रति ॥ ७ ॥

ऐसे युद्धमें कर्णवध रूपी असम्भव कर्मको सम्भव हुआ सुनकर और उसपर राजा धृतराष्ट्र बुद्धिपूर्वक विचार करने लगे, कि कर्ण नहीं मारा गया वरन् और सब लोग मर गये ॥७॥

प्राणिनामेतदात्मत्वात्स्यादपीति विनाशनम् ।
शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशयः ॥ ८ ॥

अर्थात् अब हमारी सेनाको कोई नहीं बचा सकता है, कर्णके समान दूसरे प्राणियोंका भी विनाश होगा । राजा धृतराष्ट्र कर्णके मरनेको सोचते हुए शोककी अग्निसे ऐसे जलने लगे जैसे भट्टीमें लोहा जलता है ॥ ८ ॥

विध्वस्तात्मा श्वसन्दीनो हा हेत्युक्त्वा सुदुःखितः ।
विललाप महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥

महाराज ! राजा धृतराष्ट्रके अङ्ग तपने लगे और हाय हाय कह दीनताके साथ लंबी सांस खींचकर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र विलाप करने लगे ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयाधिरथो वीरः सिंहद्विरदविक्रमः ।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिस्वनः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे संजय ! अधिरथ–कर्ण वीर, सिंह और हाथीके समान पराक्रमी, बैलके तुल्य कन्धोंवाला, वृषभके सदृश नेत्र, गति और आवाजवाला ॥ १० ॥

वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्तते ।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥ ११ ॥

जैसे एक बैलके सङ्ग युद्ध करनेवाला दूसरा बैल पीछे नहीं हटता उसी तरह वह भी युद्धमें पीछे नहीं हटता था, यदि इन्द्र जैसे शत्रु भी उसके सामने आवे तो भी वज्रके समान दृढ शरीरवाला वह नहीं डरता था, वह तरुण था ॥ ११ ॥

यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च ।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे ॥ १२ ॥

जिसकी धनुषटंकार और बाणवृष्टिके भयंकर शब्दसे भयभीत हो रथी, घोडे, मनुष्य और हाथी युद्धमें नहीं ठहरते थे ॥ १२ ॥

यमाश्रित्य महाबाहुं द्विषत्संघघ्नमच्युतम् ।
दुर्योधनोऽकरोद्वैरं पाण्डुपुत्रैर्महाबलैः ॥ १३ ॥

जिस शत्रुनाशक, दृढनिश्चयी महाभुजके आश्रयसे दुर्योधनने अपने शत्रु महाबलवान् पाण्डवोंसे वैर किया था ॥ १३ ॥

स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे ।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १४ ॥

जिसका पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य था, उस रथियोंमें श्रेष्ठ नरसिंह महाबली कर्णको कुन्तीपुत्र अर्जुनने किस प्रकारसे युद्धमें बलपूर्वक मारा? ॥ १४ ॥

यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं न धनंजयम् ।
न वृष्णीनपि तानन्यान्स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १५ ॥

जो कर्ण अपने भुजबलके आश्रयसे श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा वृष्णिवंशियोंको भी कुछ नहीं समझता था ॥ १५ ॥

शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।
अहं दिव्याद्रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥ १६ ॥

मैं अकेला ही दिव्य रथपर बैठे शार्ङ्ग धनुष और गाण्डीव धनुषके धारण करनेवाले दोनों अपराजित वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनको युद्धमें मार गिराऊंगा ॥ १६ ॥

इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम् ।
दुर्योधनमपादीनं राज्यकामुकमातुरम् ॥ १७ ॥

ऐसे जो राज्यकी इच्छा रखनेवाले, चिन्तातुर लोभसे मोहित दुर्योधनसे सदा यही कहता था ॥ १७ ॥

यश्चाजैषीदतिबलानमित्रानपि दुर्जयान् ।
गान्धारान्मद्रकान्मत्स्यांस्त्रिगर्तांस्तङ्गणाञ्शकान् ॥ १८ ॥

जिसने शत्रुओंके अत्यंत बलवान् दुर्जय लोगोंको भी जीत लिया और गान्धार, मद्र, मत्स्य, त्रिगर्त, तङ्गण, शक ॥ १८ ॥

पाञ्चालांश्च विदेहांश्च कुणिन्दान्काशिकोसलान् ।
सुह्मानङ्गांश्च पुण्ड्रांश्च निषादान्वङ्गकीचकान् ॥ १९ ॥

पाञ्चाल, विदेह, कुलिन्द, काशी, कोसल, सुह्म, अङ्ग, पुंड्र, निषाद, वंग, कीचक ॥१९॥

वत्सान्कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकांस्तथा ।
यो जित्वा समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥ २० ॥

वत्स, कलिङ्ग, तरल, अश्मक, ऋषिक इन देशोंमें रहनेवाले लोगोंको समरमें जीतकर पहले कर देनेवाला बनाया था ॥ २० ॥

उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ।
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ॥ २१ ॥

जैसे घोडोंमें उच्चैःश्रवा, राजाओंमें कुबेर, देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, वैसे ही युद्ध करनेवालोंमें कर्ण श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानार्थगौरवैः ।
अरौत्सीत्पार्थिवं क्षत्रमृते कौरवयादवान् ॥ २२ ॥

जिसकी मित्रतासे मगधदेशके राजाने आदरयुक्त भावनासे शान्त होकर कौरव और यादवोंको छोडकर अन्य सब राजाओंको घेर लिया था ॥ २२ ॥

तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना ।
शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा ॥ २३ ॥

उसी कर्णको सव्यसाची अर्जुनने द्वैरथयुद्धमें मार डाला, इस बातको सुनके मैं शोकसागरमें ऐसा डूबा हूं जैसे विना नावके मनुष्य समुद्रमें डूबता है ॥ २३ ॥

ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि संजय ।
वज्रादृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम् ॥ २४ ॥

हे सञ्जय ! ऐसे दुःखोंसे भी जो मैं नहीं मरता हूं, इससे मैं अपने हृदयको वज्रसे भी अधिक दृढ और दुर्भेद्य समझता हूं ॥ २४ ॥

ज्ञातिसंबन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराजयम् ।
को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात्सूत जीवितम् ॥ २५ ॥

सूत ! मेरे सिवाय कौन ऐसा मनुष्य होगा जो अपने जातिवाले, बान्धव और मित्रोंकी हारको सुनकर अपने जीवनका त्याग न करे ? ॥ २५ ॥

विषमग्निं प्रपातं वा पर्वतादहं वृणे ।
न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि संजय ॥ २६ ॥

हे संजय ! मैं चाहता हूं, कि विष खाकर, अग्निमें प्रवेश कर वा पहाडके शिखरसे गिरकर मर जाऊं, क्योंकि मुझसे यह कष्ट और दुःख नहीं सहा जाता है ॥ २६ ॥

संजय उवाच

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च ।
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम् ॥ २७ ॥

संजय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! आजकल महात्मा लोग लक्ष्मी, कुल, यश, तपस्या और विद्यासे आपको नाहुषपुत्र ययातिके समान मानते हैं ॥ २७ ॥

श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव ।
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः ॥ २८ ॥

हे राजन् ! आप वेद विद्यामें महाऋषियोंके तुल्य और जीवनमें कृतकृत्य हैं, इसलिये अपने मनको स्थिर कीजिये और किसी प्रकारका हृदयमें दुःख न कीजिये ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ।
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्र बोले– शालके समान शरीरवाले कर्ण युद्धमें मारे गये, इस बातको सुन हमें निश्चय है कि प्रारब्ध ही बडा बलवान् है; निरर्थक पौरुषको धिक्कार है ॥ २९ ॥

हत्वा युधिष्ठिरानीकं पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
प्रताप्य शरवर्षेण दिशः सर्वा महारथः ॥ ३० ॥

महारथी कर्णने युधिष्ठिरकी सेना और पाञ्चालदलके अनेक महारथियोंको मारकर और अपने बाणोंकी वर्षासे सब दिशाओंको पीडित कर दिया ॥ ३० ॥

मोहयित्वा रणे पार्थान्वज्रहस्त इवासुरान् ।
स कथं निहतः शेते वायुरुग्ण इव द्रुमः ॥ ३१ ॥

वीर कर्णने युद्धमें इस प्रकार कुन्तीपुत्र पाण्डवोंको मोहित किया जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंको युद्धमें मूर्च्छित कर देते हैं। सो वही महारथी आज किस तरह मारे जाकर वायुसे टूटे हुए वृक्षके समान पृथ्वीमें पडे हैं ? ॥ ३१ ॥

शोकस्यान्तं न पश्यामि समुद्रस्येव विप्लुकाः ।
चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षा चापि जायते ॥ ३२ ॥

मैं अपने शोकसमुद्रका पार नहीं देख पाता हूं । मेरी चिन्ता बहुत तीव्रतासे बढती जाती है और मरनेकी इच्छा प्रबल होती जाती है ॥ ३२ ॥

कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फल्गुनस्य च ।
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य संजय ॥ ३३ ॥

हे सञ्जय ! कर्णका मरना और अर्जुनकी विजय सुनकर भी हमें विश्वास नहीं होता कि कर्ण मर गया ॥ ३३ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते ॥ ३४ ॥

निश्चयही मेरा हृदय वज्रसे भी अधिक सुदृढ है, जो पुरुषसिंह कर्णकी मृत्यु सुनकर भी नहीं फटा ॥ ३४ ॥

आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवामीह सुदुःखितः ॥ ३५ ॥

कर्णकी मृत्यु सुनने पर भी मैं अभीतक अत्यंत दुःखी होनेपर भी जीता हूं, इससे निश्चय होता है कि पहले ही देवताओंने मेरी आयु बहुत बनायी है ॥ ३५ ॥

धिग्जीवितमिदं मेऽद्य सुहृद्धीनस्य संजय ।
अद्य चाहं दशामेतां गतः संजय गर्हिताम् ।
कृपणं वर्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः ॥ ३६ ॥

हे सञ्जय ! हमारे इस जीवनको धिकार है, जिसके सब मित्र मरते चले जाते हैं, अब मैं बहुत दुर्दशामें पड गया हूं । अब मन्दबुद्धि हम सबके लिये शोचनीय होकर दीन जीवन बिताएंगे ॥ ३६ ॥

अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः ।
परिभूतः कथं सूत पुनः शक्ष्यामि जीवितुम् ।
दुःखात्सुदुःखं व्यसनं प्राप्तवानस्मि संजय ॥ ३७ ॥

सूत ! पहले मैं सब लोगोंसे श्रेष्ठ और सम्मानित था, परन्तु अब फिर पराजित अपमानित होकर कैसे जीवित रह सकूंगा ? संजय ! एक दुःखसे अधिक दूसरा दुःख–संकट मुझे प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥

+

तस्माद्भीष्मवधे चैव द्रोणस्य च महात्मनः ।
नात्र शेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥ ३८ ॥
इसलिये भीष्म और महात्मा द्रोणाचार्यके वधसे और युद्धमें सूतपुत्र कर्णके मारे जानेसे मैं अपनी ओरके किसी भी योद्धाको नहीं देखता कि जो जीवित रह सके ॥ ३८ ॥

स हि पारं महानासीत्पुत्राणां मम संजय ।
युद्धे विनिहतः शूरो विसृजन्सायकान्बहून् ॥ ३९ ॥
हे सञ्जय ! शूर कर्ण ही तो मेरे पुत्रोंको पार लेनेवाली नौकाके समान महान् आश्रय था, परन्तु वही कर्ण अनेक बाणोंको छोडता हुआ आज युद्धमें मारा गया ॥ ३९ ॥

को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम् ।
रथादतिरथो नूनमपतत्सायकार्दितः ॥ ४० ॥
हे सूत ! अतिरथी कर्ण बाणोंसे पीडित होकर रथसे पृथ्वीपर निश्चित ही गिर गये, तो उस पुरुषश्रेष्ठके विना मेरे जीते रहनेमें क्या अर्थ है ? ॥ ४० ॥

पर्वतस्येव शिखरं वज्रपातविदारितम् ।
शयीत पृथिवीं नूनं शोभयन्रुधिरोक्षितः ।
मातङ्ग इव मत्तेन मातङ्गेन निपातितः ॥ ४१ ॥
अब रुधिर भरे कर्ण अपने तेजसे पृथ्वीको निःसंशय इस प्रकार प्रकाशित करके सो रहे हैं, जैसे वज्रके आघातसे कटा पर्वतका शिखर और जैसे मतवाला हाथी हाथीको मार डालता है ॥ ४१ ॥

यद्बलं धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ।
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ४२ ॥
जो हमारे पुत्रोंका बल और पाण्डवोंके लिये महाभय था, जो धनुषधारीयोंके लिये आदर्श था, उसही कर्णको अर्जुनने आज इस प्रकार मार डाला ॥ ४२ ॥

स हि वीरो महेष्वासः पुत्राणामभयंकरः ।
शेते विनिहतो वीरः शक्रेणेव यथा बलः ॥ ४३ ॥
जो सब पुत्रोंको अभय देते थे, वही महाधनुर्धर वीर कर्ण आज अर्जुनसे मारा जाकर समरमें उसी प्रकार सो रहे हैं जैसे देवराज इन्द्रके वज्रसे कटे हुए बली ॥ ४३ ॥

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ।
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्लुषः ॥ ४४ ॥
जैसे पंगुका मार्ग चलना, दरिद्रीकी इच्छापूर्ति और प्यासेकी तृषापूर्तिको कुछ ही जल बिंदु, ऐसे ही कर्णके मरनेसे दुर्योधनके सब अभिप्राय असम्भव हुए हैं ॥ ४४ ॥

अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत्तु जायते।
अहो नु बलवद्दैवं कालश्च दुरतिक्रमः ॥ ४५ ॥

प्रारब्ध बडा बलवान् है और काल बडा दुर्लंघ्य है । मनुष्य एक कामको एक प्रकारसे विचार करता है, परन्तु हो जाता है दूसरे प्रकारसे ॥ ४५ ॥

पलायमानः कृपणं दीनात्मा दीनपौरुषः ।
कच्चिन्न निहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम ॥ ४६ ॥

हे सूत ! कर्णके मरनेके पश्चात् हमारा पुत्र दुःशासन दीनात्मा और पौरुषहीन होकर कायरके समान भयसे पलायन करते हुए शत्रुओंके हाथसे मारा तो नहीं गया ? ॥ ४६ ॥

कच्चिन्न नीचाचरितं कृतवांस्तात संयुगे ।
कच्चिन्न निहतः शूरो यथा न क्षत्रिया हताः ॥ ४७ ॥

और उन्होंने युद्धमें कोई दीनके समान आचरण तो नहीं किया ? उस पराक्रमी वीरको अन्य क्षत्रियोंके समान तो नहीं मारा है ? ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिरस्य वचनं मा युद्धमिति सर्वदा ।
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम् ॥ ४८ ॥

हाय, युधिष्ठिर सदा जो कहा करते थे कि युद्ध मत करो, वह वचन मुझे अब स्मरण होता है । मूर्ख दुर्योधनने उनके वचनोंको इस प्रकार नहीं माना जैसे मरनेवाला रोगी पथ्य औषधिका सेवन नहीं करता ॥ ४८ ॥

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना ।
पानीयं याचितः पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलम् ॥ ४९ ॥

शरशय्यापर सोते हुए महात्मा भीष्मने जब पृथापुत्र अर्जुनसे जल माङ्गा, तब अर्जुनने पृथ्वीको छेद दिया ॥ ४९ ॥

जलस्य धारां विहितां दृष्ट्वा तां पाण्डवेन ह ।
अब्रवीत्स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः ॥ ५० ॥

इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनने पृथ्वीसे जल धारा निकाल दी थी, उस जलधाराको देख महाबाहु भीष्मने कहा, हे तात ! दुर्योधन ! तुम पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो ॥ ५० ॥

प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु च ।
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुङ्क्ष्व पाण्डुसुतैः सह ॥ ५१ ॥

सन्धिसे वैरकी शान्ति होगी, यह युद्ध मेरे अन्तसे ही समाप्त हो। इससे तुम्हारी और कुलकी वृद्धि होगी, तुम पाण्डवोंके सहित भ्रातृभावसे पृथ्वीका राज्य करो ॥ ५१ ॥

अकुर्वन्वचनं तस्य नूनं शोचति मे सुतः ।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः ॥ ५२ ॥

परन्तु उनका वचन न माननेके कारण निश्चित मेरा पुत्र शोक कर रहा है । दीर्घदर्शी भीष्मके वचन अब सफल होकर सामने दिखायी देते हैं ॥ ५२ ॥

अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च संजय ।
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः ॥ ५३ ॥

संजय ! मेरे अमात्य और पुत्र मारे गये हैं, यह उसी जुवेका फल है जो शकुनिने युधिष्ठिरके साथ खेला था । इस समय जुएके कारण मैं पंख कटे पक्षीके समान भारी संकटमें पडकर तडफ रहा हूं ॥ ५३ ॥

यथा हि शकुनिं गृह्य छित्वा पक्षौ च संजय ।
विसर्जयन्ति संहृष्टाः क्रीडमानाः कुमारकाः ॥ ५४ ॥

संजय ! जैसे खेलते हुए बालक पक्षीको पकडकर उसके दोनों पङ्ख उखाड देते हैं और आनन्दपूर्वक उसे छोड देते हैं ॥ ५४ ॥

छिन्नपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते ।
तथाहमपि संप्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः ॥ ५५ ॥

फिर पंख नष्ट होनेके कारण वह कहीं उडकर जा नहीं सकता, उसी कटे हुए पंखवाले पक्षीके समान भारी संकटमें पडकर मेरी भी अवस्था हो गयी है ॥ ५५ ॥

क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्बन्धुर्ज्ञातिवर्जितः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः ॥ ५६ ॥

मैं अशक्त, सब धन रहित और बन्धु तथा ज्ञाति बांधवोंसे वञ्चित हो गया हूं । अब शत्रुओंके आधीन होकर दीन वृत्तिसे किस ओर जाऊंगा ? ॥ ५६ ॥

दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं पृथिवीं योऽजयत्प्रभुः ।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः ॥ ५७ ॥

जिस महाबलवान् कर्णने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये सब पृथ्वीको जीत लिया था, वही पराक्रमी कर्ण आज समर्थ वीर्यशाली शूर पाण्डवोंसे समरमें जीता गया ॥ ५७ ॥

तस्मिन्हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना ।
के वीराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५८ ॥

हे सञ्जय ! युद्धमें किरीटधारी अर्जुनसे महाधनुषधारी कर्णके मारे जानेके पश्चात् कौन वीर युद्धमें खडे रहे ? सो हमसे कहो ॥ ५८ ॥

कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे ।
उक्तं त्वया पुरा वीर यथा वीरा निपातिताः ॥ ५९ ॥

हे वीर ! अकेला छोडा गया कर्णको सब पाण्डवोंने युद्धमें मारा, ऐसा तो नहीं हुआ ? कारण तुमने, पहले ही वीर कर्ण मारा गया, ऐसा कहा है ॥ ५९ ॥

भीष्ममप्रतियुध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः ।
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ६० ॥

सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मको शिखण्डीने जब वे युद्ध नहीं कर रहे थे, तब अपने उत्तम बाणोंसे युद्धमें मार दिया ॥ ६० ॥

तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि ।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः ।
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन संजय ॥ ६१ ॥

इसी प्रकार महाधनुर्धारी द्रोणाचार्य युद्धमें जब अपने सब शस्त्र त्यागकर योगरत होकर बैठे थे, तब द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नने अनंत बाणोंसे उन्हें ढककर, संजय ! तलवार उठाकर उनको मार डाला ॥ ६१ ॥

अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः ।
अश्रौषमहमेतद्वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ६२ ॥

इस रीतिसे इन दोनों वीरोंकी अवसर मिलनेपर, विशेष करके छलसे मारा । भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये वह मैंने सुना ही था ॥ ६२ ॥

भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद्वज्रभृत्स्वयम् ।
न्यायेन युध्यमानौ हि तद्वै सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६३ ॥

हमें यह निश्चय था और मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि न्यायसे लडनेवाले भीष्म और द्रोणाचार्यको स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी युद्धमें नहीं मार सकते ॥ ६३ ॥

कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ।
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत् ॥ ६४ ॥

इसी प्रकार अनेक दिव्य अस्त्र चलाते हुए इन्द्रके समान पराक्रमी वीर कर्णको भी मृत्यु कैसे स्पर्श कर सकी ? ॥ ६४ ॥

यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ।
प्रायच्छद्द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरन्दरः ॥ ६५ ॥

जिसको विजलीके समान चमकनेवाली, सब शत्रुओंका नाश करनेवाली, सुवर्णभूषित दिव्य शक्ति देवराज इन्द्रने दो कुण्डलोंके बदलेमें दी थी ॥ ६५ ॥

यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः कनकभूषणः ।
अशेत निहतः पत्री चन्दनेष्वरिसूदनः ॥ ६६ ॥

जिनका युद्धमें शत्रुनाशक तीक्ष्ण बाण सुवर्णभूषित, सर्पके समान मुखवाला भातेमें चंदनोंके चूर्णमें रक्षित था ॥ ६६ ॥

भीष्मद्रोणमुखान्वीरान्योऽवमन्य महारथान् ।
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्रह्ममस्त्रमशिक्षत ॥ ६७ ॥

जो महाराज भीष्म और द्रोणाचार्य आदि महारथी वीरोंका निरादर करते थे, जिन्होंने जमदग्निपुत्र परशुरामसे महाघोर ब्रह्म अस्त्र सीखा था ॥ ६७ ॥

यश्च द्रोणमुखान्दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः ।
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत्कार्मुकं शरैः ॥ ६८ ॥

जिस महाबाहु वीरने सुभद्राकुमार अभिमन्युके बाणोंसे पीडित महात्मा द्रोणाचार्य आदिको युद्धसे विरक्त देखकर स्वयं तीक्ष्ण बाणोंसे युद्ध करके उसके धनुषको काट दिया था ॥ ६८ ॥

यश्च नागायुतप्राणं वातरंहसमच्युतम् ।
विरथं भ्रातरं कृत्वा भीमसेनमुपाहसत् ॥ ६९ ॥

जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलवान्, वायुके समान वेगशाली, दृढ पराक्रमी भीमसेनको रथहीन कर दिया था और उसकी हंसी की थी ॥ ६९ ॥

सहदेवं च निर्जित्य शरैः संनतपर्वभिः ।
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद्धर्मवित्तया ॥ ७० ॥

जिसने तीक्ष्ण बाणोंसे सहदेवको जीता था, रथहीन कर दिया था और धर्म जानकर दयावश होकर उनको नहीं मारा था ॥ ७० ॥

यश्च मायासहस्राणि ध्वंसयित्वा रणोत्कटम् ।
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्याभिजघ्निवान् ॥ ७१ ॥

जिसने हजारों प्रकारकी मायासे युद्ध करके नाश करनेवाले रणमत्त भीमपुत्र घटोत्कच राक्षसराजको इन्द्रकी शक्तिसे मारा था ॥ ७१ ॥

एतानि दिवसान्यस्य युद्धे भीतो धनंजयः ।
नागमद्द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे ॥ ७२ ॥

जिसके ये सब पराक्रम देखकर इतने दिनोंतक अर्जुन डरकर उसके साथ द्वैरथ युद्ध नहीं कर सके, वह वीर कर्ण युद्धमें आज किसप्रकार अर्जुनके हाथसे मारा गया ? ॥ ७२ ॥

रथसङ्गो न चेत्तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ।
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः ॥ ७३ ॥

कर्णका न रथ टूट गया, न धनुषके टुकडे हुए और न अस्त्र विशीर्ण हो गये, तब शत्रुने उनको किस प्रकार मार डाला ? ॥ ७३ ॥

को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद्धनुः ।
विमुञ्चन्तं शरान्घोरान्दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगितम् ॥ ७४ ॥

अपना विशाल धनुष खींचते हुए कर्णको कौन मार सकता था ? शार्दूलके समान वेगवान् , पुरुषसिंह दिव्य अस्त्र और घोर बाणोंको छोडते हुए कर्णको युद्धमें कौन जीत सकता था ? ॥७४॥

ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि गतो महीम् ।
अस्त्राणि वा प्रनष्टानि यथा शंससि मे हतम् ।
न ह्यन्यदनुपश्यामि कारणं तस्य नाशने ॥ ७५ ॥

हमें निश्चय होता है कि कर्णका धनुष कट गया होगा अथवा रथ पृथ्वीमें घुस गया होगा और उसके अस्त्र नष्ट हो गये होंगे, तभी जैसा तुम कह रहे हो, कर्ण मरे होंगे, क्योंकि इन कारणोंके सिवाय कर्णके नष्ट होनेका दूसरा कोई कारण मुझे नहीं दीखता ॥ ७५ ॥

न हन्यामर्जुनं यावत्तावत्पादौ न धावये ।
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः ॥ ७६ ॥

महात्मा कर्णने महाघोर प्रतिज्ञा की थी, कि मैं बिना अर्जुनके मारे, पैर नहीं धोऊंगा ॥७६॥

यस्य भीतो रणे नित्यं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्रयोदश समा निद्रां न लेभे पुरुषर्षभः ॥ ७७ ॥

युद्धमें जिनको धर्मराज युधिष्ठिर सदा डरते थे, जिनके डरसे पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिरने तेरह वर्षों तक सुखसे नींद नहीं ली ॥ ७७ ॥

यस्य वीर्यवतो वीर्यं समाश्रित्य महात्मनः ।
मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान्बलात् ॥ ७८ ॥

जिन बलवान् महात्माके शौर्यका आश्रय करके, मेरा पुत्र पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदीको पकडकर सभामें बलपूर्वक खींच लाया था ॥ ७८ ॥

तत्र चापि सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम् ।
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ ७९ ॥

और वहीं भी सभामें उसने पाण्डवोंके देखते कुरुवंशियोंकी सभामें पाञ्चाल राजकुमारी द्रौपदीको दासपत्नी कहा था ॥ ७९ ॥

यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ।
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन्पार्थानवैक्षत ॥ ८० ॥

जिसने गाण्डीवधनुषसे छूटे हुए वज्रके समान बाणोंके आघातकी कुछ भी चिंता न करके, सभामें कुन्तीपुत्र पाण्डवोंकी ओर देखकर द्रौपदीसे कहा था, कि कृष्णे ! तुम पति हीन है ॥८०॥

यस्य नासीद्भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि संजय ॥ ८१ ॥

संजय ! तथा जिसे अपने बाहुबलके सहारेके कारण एक मुहूर्ततक भी पुत्रों सहित कुन्तीपुत्र पाण्डव और श्रीकृष्णसे कुछ भी डर नहीं था ॥ ८१ ॥

तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः ।
प्रतीपमुपधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः ॥ ८२ ॥

हे तात ! जिसको शत्रुपक्षसे इन्द्र सहित सब देवता भी आक्रमण करें, तो भी कर्ण मारा जायगा, ऐसा मैं नहीं मानता था, फिर पाण्डवोंकी तो कथा ही क्या है ? ८२ ॥

न हि ज्यां स्पृशमानस्य तलत्रे चापि गृह्णतः ।
पुमानाधिरथेः कश्चित्प्रमुखे स्थातुमर्हति ॥ ८३ ॥

अधिरथपुत्र कर्ण धनुषकी प्रत्यञ्चाको स्पर्श कर रहा हो, दस्ताने पहना हुआ हो, तो कोई पुरुष उसके सामने खडा नहीं हो सकता था ॥ ८३ ॥

अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः ।
न वधः पुरुषेन्द्रस्य समरेष्वपलायिनः ॥ ८४ ॥

चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभा युक्त किरणोंसे एकवार पृथ्वी भी रहित हो सकेगी, परन्तु युद्धमें पीछे न हटनेवाले पुरुषश्रेष्ठ कर्णका वध मुझे संभवनीय नहीं प्रतीत होता है ॥ ८४ ॥

यदि मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ।
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचयत् ॥ ८५ ॥

जिस मूर्ख और दुर्बुद्धि दुर्योधनने कर्ण और भाई दुःशासनकी सहायतासे श्रीकृष्णके वचनको नहीं मानना ही उचित समझा था ॥ ८५ ॥

स नूनमृषभस्कन्धं दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ।
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः ॥ ८६ ॥

वह मेरा पुत्र आज मतवाले बैलके कंधेके समान दृढ कंधेवाले कर्णको गिरा हुआ तथा अपने भाई दुःशासनको मरा देख, निश्चय ही सोच करता होगा, ऐसा मैं समझता हूं ॥ ८६ ॥

हतं वैकर्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ।
जयतः पाण्डवान्दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ८७ ॥

द्वैरथ युद्धमें कर्णको सव्यसाची अर्जुनसे मारा गया सुनके और पाण्डवोंको विजय युक्त देख दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ८७ ॥

दुर्मर्षणं हतं श्रुत्वा वृषसेनं च संयुगे ।
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः ॥ ८८ ॥

दुर्मर्षण और वृषसेन युद्धमें मारे गये, यह सुनकर, महारथी पाण्डवोंसे मारे जानेके कारण अपनी सेनाको भागते देखकर ॥ ८८ ॥

पराङ्मुखांस्तथा राज्ञः पलायनपरायणान् ।
विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः ॥ ८९ ॥

अपनी ओरके राजाओंको युद्धसे विन्मुख होकर भाग रहे हैं और रथियोंने पीठ दिखायी है, यह देखकर मेरा पुत्र शोक करता होगा, ऐसा मैं मानता हूं ॥ ८९ ॥

अनेयश्चाभिमानेन च बालबुद्धिरमर्षणः ।
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ९० ॥

जो स्वयंके अभिमानके कारण किसीका भी हितकर वचन नहीं मानता है, उस मूढ, क्रोधी दुर्योधनने अपनी सेनाको उत्साहहीन देखकर क्या कहा था ? ॥ ९० ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
रुधिरे पीयमानेन किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ९१ ॥

युद्धमें भीमसेनने भाई दुःशासनको मारकर उसका रुधिर पान किया, तब यह देखकर दुर्योधनने क्या कहा ? ९१ ॥

सह गान्धारराजेन सभायां यदभाषत ।
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन्किमब्रवीत् ॥ ९२ ॥

दुर्योधनने जो गान्धारराज शकुनिके सहित सभामें कहा था, कि कर्ण अर्जुनको युद्धमें मारेंगे, सो कर्णके मारे जानेपर दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ९२ ॥

द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ।
शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ॥ ९३ ॥

हे तात ! पहले जिस सुबलपुत्र शकुनिने जुआ खेलकर पाण्डवोंको ठगाया था और इस कारण जो प्रसन्न हुआ था, उसने कर्णको मारा हुआ देख क्या कहा था ? ॥ ९३ ॥

×

कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ।
कर्णं विनिहतं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत ॥ ९४ ॥

सात्वतवंशी महारथी महाधनुषधारी हृदिकपुत्र कृतवर्माने कर्णको मारा गया देख क्या कहा? ॥९४॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते ।
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः ॥ ९५ ॥

जिस बुद्धिमान् द्रोणपुत्रसे धनुर्वेद सीखनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य–धनुर्विद्याका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९५ ॥

युवा रूपेण संपन्नो दर्शनीयो महयशाः ।
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत संजय ॥ ९६ ॥

हे सञ्जय! उस तरुण, सुन्दर, रूपवान्, दर्शनीय वीर महायशस्वी अश्वत्थामाने कर्णको मारा हुआ देख क्या कहा ? ॥ ९६ ॥

आचार्यत्वं धनुर्वेदे गतः परमतत्त्ववित् ।
कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ॥ ९७ ॥

जो धनुर्वेदके आचार्य और परमतत्त्वविद् हैं, उन शरद्वतपुत्र कृपाचार्यने कर्णको मरा देख क्या कहा ? ॥ ९७ ॥

मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ।
दिष्टं तेन हि तत्सर्वं यथा कर्णो निपातितः ॥ ९८ ॥

सभाको शोभित करनेवाले, महाधनुर्धर मद्र देशके राजा शल्यने कर्णको मारा हुआ यह सब देखा था, तब उसने क्या कहा ? ॥ ९८ ॥

ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः ।
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा किमभाषन्त संजय ॥ ९९ ॥

हे सञ्जय ! पृथ्वीभरके जो कोई राजा युद्धके लिये आये थे, उन्होंने वैकर्तन कर्णको मारा हुआ देख, क्या कहा ? ॥ ९९ ॥

कर्णे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे ।
किं वो मुखमनीकानामासीत्संजय भागशः ॥ १०० ॥

संजय ! रथियोंमें सिंह, पुरुषश्रेष्ठ कर्णके मरनेके पीछे हमारी सेनाओंके कौन कौन वीर प्रधान हुए ? ॥ १०० ॥

मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १०१ ॥

संजय ! रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज शल्य किस प्रकार कर्णके सारथि किये गये ? सो हमसे कहो ॥ १०१ ॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य संयुगे ।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ १०२ ॥

युद्धमें वीर सूतपुत्र कर्णके दायें और बायें पहियोंकी कौन रक्षा करते थे ? और उनके रथके पीछे कौन थे ? ॥ १०२ ॥

के कर्णं वाजहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ।
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः ॥ १०३ ॥

किन किन शूरवीरोंने कर्णको नहीं छोडा ? और कौन क्षुद्र लोग छोडकर भयसे भाग गये और किस प्रकार तुम साथ मिलकर लडते थे, तब महारथी कर्णको मारा गया ? ॥ १०३ ॥

पाण्डवाश्च कथं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथम् ।
सृजन्तं शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदम् ॥ १०४ ॥

शूरवीर पाण्डव जलधारा बरसानेवाले मेघोंके समान बाण वर्षाते हुए महारथी कर्णके सामने आगे कैसे बढे ? ॥ १०४ ॥

स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १०५ ॥

कर्णका वह महान् बाणोंमें श्रेष्ठ दिव्य सर्पमुख बाण किस प्रकार व्यर्थ हो गया ? यह सब कथा हमसे कहो ॥ १०५ ॥

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य संजय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १०६ ॥

संजय ! हमारी इस सेनाका उत्साह नष्ट हो गया है । इस सेनाके श्रेष्ठ वीर कर्ण मारे गये हैं, इसलिये अब यह बचेगी, ऐसा मुझे दिखायी नहीं देता ॥ १०६ ॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे ॥ १०७ ॥

हमारे लिये कौरवोंके श्रेष्ठ वीर, धनुर्धर भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, यह सुनकर अब हम जीकर क्या करेंगे ? ॥ १०७ ॥

न मृष्यामि च राधेयं हतमाहवशोभिनम् ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतम् ॥ १०८ ॥

दस हजार हाथियोंके समान बाहुबलवाले, युद्धमें शोभित होनेवाले राधापुत्र कर्ण मारे गये, यह मुझसे सहा नहीं जाता ॥ १०८ ॥

द्रोणे हते च यद्वृत्तं कौरवाणां परैः सह ।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १०९ ॥

हे सञ्जय! द्रोणाचार्यके मरनेके पश्चात् युद्धमें नरवीर कौरवोंने शत्रुओंके साथ क्या किया, यह मुझे कहो ॥ १०९ ॥

यथा च कर्णः कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत् ।
यथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम् ॥ ११० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ३०१ ॥

जैसे शत्रुनाशन कर्णने कुन्तीपुत्र पाण्डवोंके साथ युद्ध किया और वह समरमें मारे गये, सो सब मुझे कहो ॥ ११० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पांचवा अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ ॥ ३०१ ॥

: ६ :

सञ्जय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत ।
कृते च मोघसंकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र! जिस दिन महाधनुषधारी द्रोणाचार्य मारे गये और जब महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका संकल्प व्यर्थ हुआ ॥ १ ॥

द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बले तथा ।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद्भ्रातृभिः सह ॥ २ ॥

उस समय कौरवोंकी बडी सेना इधर उधर भागने लगी, तब कुन्तीपुत्र अपने भाइयोंके समेत अपनी सेनाका व्यूह बनाकर खडे हो गये ॥ २ ॥

तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
द्रवच्च स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥ ३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ! जिस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने देखा, कि महाराज युधिष्ठिर अपनी सेनामें युद्धके लिये खडे हैं, और हमारी सेना भागी जाती है, तब उन्होंने बहुत पराक्रमपूर्वक यत्न करके अपनी सेनाको स्थिर किया ॥ ३ ॥

स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्ये व्यवस्थितः ।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत ॥ ४ ॥

भारत! उस समय राजा दुर्योधन अपनी सेनाको स्थिर करके, अपने बाहुबलके सहारेसे बहुत समयतक पाण्डवोंसे युद्ध करके ॥ ४ ॥

लब्धलक्षैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा ।
संध्याकालं समासाद्य प्रत्याहारमकारयत् ॥ ५ ॥

अपना लक्ष्य विजयसे हर्षित होनेसे, उत्साहसे और यत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले अपने शत्रुओंके साथ बहुत देर तक युद्ध करके सन्ध्या समय आनेपर उन्होंने अपनी सेनाको लौटाया ॥५॥

कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिबिरं स्वकम् ।
कुरवोऽऽत्महितं मन्त्रं मन्त्रयांचक्रिरे तदा ॥ ६ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन सब सेनाको लौटाकर आप अपने डेरोंमें गये, वहां कौरव अपने हितके लिये परस्पर विचार करने लगे ॥ ६ ॥

पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः ॥ ७ ॥

वे सब लोग कोई मूल्यवान् बिछौनोंसे युक्त उत्तम पलङ्ग और कोई उत्तम आसनोंपर बैठे हुए थे, उस समय उनकी शोभा ऐसी बढी जैसे स्वर्गमें सुखदशय्याओंपर विराजमान् देवताओंकी ॥ ७ ॥

ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना ।
तानाभाष्य महेष्वासान्प्राप्तकालमभाषत ॥ ८ ॥

तब राजा दुर्योधनने बहुत शान्तिके सहित उत्तम मधुर बाणीसे उन महाधनुषधारियोंसे समयके अनुसार ऐसे वचन कहे ॥ ८ ॥

मतिं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत माचिरम् ।
एवं गते तु यत्कार्यं भवेत्कार्यकरं नृपाः ॥ ९ ॥

हे बुद्धिवानोंमें श्रेष्ठ राजा लोगो ! आप लोग शीघ्र अपनी अपनी सम्मतिके अनुसार कहिये, कि इस समय हमको कौनसा अवश्य काम करना चाहिये ? ॥ ९ ॥

एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः ।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा ॥ १० ॥

राजा दुर्योधनके ऐसे वचन सुन सिंहासनोंपर बैठे पुरुषसिंह राजा लोग युद्धकी इच्छासे अनेक प्रकारकी चेष्टाएं करने लगे ॥ १० ॥

तेषां निशम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम् ।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसः ।
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे ॥ ११ ॥

उन युद्धमें प्राणोंकी आहुति देनेवाले राजाओंकी चेष्टाएं और प्रातःकालके सूर्यके समान तेजस्वी राजा दुर्योधनका मुख देख, वाक्यके अर्थको जाननेवाले प्राज्ञ द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा बोले ॥ ११ ॥

रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ।
उपायाः पण्डितैः प्रोक्ताः सर्वे दैवसमाश्रिताः ॥ १२ ॥

पण्डितोंने राजाके लिये अभीष्ट प्राप्तिके चार उपाय कहे हैं। एक स्वामिभक्ति, दूसरा देश और कालका विचारकर काम करना, तीसरा बलसे काम करना और चौथा नीतिसे विचार कर अपने प्रयोजनको देखना। परंतु ये चारों उपाय प्रारब्धके अधीन हैं ॥ १२ ॥

लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ।
नीतिमन्तास्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः ॥ १३ ॥

हमारी ओरके जो देवताओंके समान पराक्रमी जगत्प्रसिद्ध महारथी वीर थे, जो नीतिके जाननेवाले, काम करने योग्य और राजाके भक्त शूरवीर थे, सो सब मारे गये ॥ १३ ॥

न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ।
सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते ॥ १४ ॥

परन्तु उनके मरनेपर भी हम लोगोंको अपनी विजयकी आशा न छोडनी चाहिये, क्योंकि जिनकी नीति अच्छी है और जिनके पास सब सामग्री हैं, उनका प्रारब्ध भी अनुकूल हो जाता है ॥ १४ ॥

ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून् ॥ १५ ॥

इसलिये हम सब लोग सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सब गुणोंसे भरे कर्णको सेनापति बनाकर अवश्य सब शत्रुओंका नाश करेंगे ॥ १५ ॥

ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वा वचस्तदा ।
प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥ १६ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन उस प्रिय, प्रेम तथा सत्कार युक्त, सत्य, स्वयंके लिये हितकर और मंगल वचनको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥

स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥

महाराज ! और अपने मनको स्थिर कर तथा अपने बाहुबलका अभिमान करके दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे ऐसे कहा ॥ १७ ॥

कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं च परं मयि ।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः ॥ १८ ॥

हे कर्ण ! हे महाबाहो ! यद्यपि हम तुम्हारे शौर्यको जानते हैं और तुम हमसे बहुत प्रेम रखते हो, तो भी, हम तुमसे कुछ कल्याणसहित वचन कहना चाहते हैं ॥ १८ ॥

श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत्तव रोचते ।
भवान्प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥ १९ ॥

हमारे वचनोंको सुनकर आपको जो अच्छा लगे सो करना, क्योंकि आप परम बुद्धिमान् और सदैव मेरे श्रेष्ठ सहाय्यक भी हो ॥ १९ ॥

भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम ।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः ॥ २० ॥

पहले महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य ये दो हमारे सेनापति हुए थे, वे दोनो युद्धमें मारे गये । अब आप उनसे भी अधिक शक्तिशाली हैं, इस लिये हमारे सेनापति बनो ॥ २० ॥

वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनंजये ।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात्तव ॥ २१ ॥

हे राधापुत्र ! वे दोनों महा धनुषधारी बूढे थे और अर्जुनकी रक्षा करते थे, परन्तु राधेय ! तुम्हारे ही वचनसे मैं उन दोनोंका सम्मान करता था ॥ २१ ॥

पितामहत्वं संप्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे ।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव ह ॥ २२ ॥

हे प्यारे ! भीष्मने पाण्डवोंको अपने पोते जानकर दस दिनतक उस महायुद्धमें उनकी रक्षा की ॥ २२ ॥

न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फल्गुनेन महाहवे ॥ २३ ॥

उन दिनोंमें तुमने शस्त्र रख दिये थे, उसी समय महायुद्धमें शिखण्डीको आगे करके अर्जुनने भीष्म पितामहको मारा ॥ २३ ॥

हते तस्मिन्महाभागे शरतल्पगते तदा ।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत्पुरःसरः ॥ २४ ॥

हे पुरुषसिंह ! जिस समय महाभाग भीष्म घायल हो कर शरशय्यापर सो गये, तब तुम्हारे कहनेके अनुसार द्रोणाचार्य सेनापति हुए ॥ २४ ॥

तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिह संयुगे ।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम् ॥ २५ ॥

उन्होंने भी अपने शिष्य जानकर कुन्तीपुत्र पाण्डवोंकी युद्धमें रक्षा की । उस बूढे आचार्यको भी शीघ्र ही धृष्टद्युम्नने मार डाला ॥ २५ ॥

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रम ।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन् ॥ २६ ॥

हे अमितपराक्रमी वीर ! इन दोनों प्रधान वीरोंके मरनेपर हमारी बुद्धिमें हमारी ओर समरमें तुम्हारे समान और कोई वीर नहीं दीखता ॥ २६ ॥

भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः ।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तवैव विदितं हि तत् ॥ २७ ॥

इसमें सन्देह नहीं, कि हम लोगोमें तुम्हीसे हमारी विजय हो सकती है, इसलिये आप ही समर्थ हैं । पहले, बीचमें और पीछे भी यही हितकर है ॥ २७ ॥

स भवान्धुर्यवत्संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हसि ।
अभिषेचय सेनान्ये स्वयमात्मानमात्मना ॥ २८ ॥

तुम युद्धमें नेता पुरुषके समान सेनासंचालनकी धुरा वहन करनेके योग्य हैं, इसलिये स्वयं ही आपको सेनापतिपद पर अभिषिक्त करो ॥ २८ ॥

देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः
तथा भवानिमां सेनां धार्तराष्ट्रीं बिभर्तु मे ।
जहि शत्रुगणान्सर्वान्महेन्द्र इव दानवान् ॥ २९ ॥

जैसे अव्यय भगवान् स्वामीकार्त्तिक देवताओंके सेनापति हैं, वैसे ही आप धृतराष्ट्र पुत्रोंकी सेनाके सेनापति होकर हमारी शोभाको बढाइये । जैसे देवराज इन्द्र राक्षसोंका नाश करते हैं, वैसे आप हमारे सब शत्रुओंका वध कीजिये ॥ २९ ॥

अवस्थितं रणे ज्ञात्वा पाण्डवास्त्वां महारथम्
द्रविष्यन्ति सपाञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षेथा महाचमूम् ॥ ३० ॥

महारथी तुमको युद्धमें खडा हुआ जानकर, पाण्डव और पाञ्चाल लोग इस प्रकार युद्धसे भाग जायंगे, जैसे विष्णुको देख दानव भाग जाते हैं; इसलिये हे पुरुषसिंह ! आप इस विशाल सेनाका संचालन कीजिये ॥ ३० ॥

भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा गतचेतसः ।
भविष्यन्ति सहामात्याः पाञ्चालैः सृञ्जयैः सह ॥ ३१ ॥

आपको युद्धमें सावधानीके साथ खडे हुए देखते ही मूर्ख पाण्डव लोग अपने मन्त्रियोंके सहित तथा सृञ्जय और पाञ्चालोंके साथ युद्धमें प्राणहीन हो जायंगे ॥ ३१ ॥

यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन्स्वेन तेजसा ।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून्व्यपोह नः ॥ ३२ ॥

जैसे उदय हुआ सूर्य अपने तेजसे तपकर घोर अन्धकारको दूर करता है, वैसे आप अपने तेजसे हमारे शत्रुओंको नाश कीजिये ॥ ३२ ॥

कर्ण उवाच

उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव संनिधौ ।
जेष्यामि पाण्डवान्राजन्सपुत्रान्सजनार्दनान् ॥ ३३ ॥

कर्ण बोले– हे गान्धारीपुत्र ! राजन् ! हमने तुमसे पहले ही कहा था, कि हम अकेले सब पाण्डवोंको, उनके पुत्र और जनार्दनके सहित जीतेंगे ॥ ३३ ॥

सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः ।
स्थिरो भव महाराज जितान्विद्धि च पाण्डवान् ॥ ३४ ॥

महाराज ! अब हम आपके सेनापति होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। अब आप स्थिर चित्त हो जाईये, और समझ लीजिये कि, पाण्डव पराजित हो गये हैं ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो महातेजास्ततो दुर्योधनो नृपः ।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः ।
सेनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज धृतराष्ट्र ! कर्णके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधन अन्य राजाओंके समेत इस प्रकार उठे, जैसे देवताओंके सहित इन्द्र उठते हैं । अनन्तर सब कौरव राजाओंने कर्णका सेनापतिपदपर विधिपूर्वक इस प्रकार अभिषेक करके सत्कार किया, जैसे देवताओंने स्वामी कार्तिकका सेनापतिपदपर अभिषेक करके उनका सत्कार किया था ॥ ३५ ॥

ततोऽभिषिषिचुस्तूर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
दुर्योधनमुखा राजन्राजानो विजयैषिणः ।
शातकौम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ३६ ॥

राजन् ! अनन्तर शीघ्र ही उस समय विजयाभिलाषी दुर्योधन आदिक राजाओंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार कर्णका अभिषेक किया । अभिषेकके लिये सोने तथा मिट्टीके घडोंमें अभिमंत्रित जल भरकर रखे थे ॥ ३६ ॥

तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्वीपिखड्गमहर्षभैः ।
मणिमुक्तामयैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ३७ ॥

हाथी दांतके बने, गैंडे और बैलके सींगके बने हुए पात्रोंमें जल भर कर रखा गया था। उन पात्रोंमें मणि और मोती भी थे। उसमें अन्य पवित्र सुगन्धि युक्त पदार्थ और औष-धियां भी डाली गयी थीं ॥ ३७ ॥

औदुम्बरे समासीनमासने क्षौमसंवृतम् ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना संभारैश्च सुसंभृतैः ॥ ३८ ॥

अनन्तर गुलरके काठके सिंहासनपर रेशमका विछौना कर कर्णको बिठाया। फिर शास्त्रमें लिखी विधिके अनुसार सब सामग्री इकट्ठी करके कर्णका अभिषेक किया गया ॥ ३८ ॥

जय पार्थान्सगोविन्दान्सानुगांस्त्वं महाहवे ।
इति तं बन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च भरतर्षभ ॥ ३९ ॥

हे भरतर्षभ! तब सब ब्राह्मण और बन्दीजन कहने लगे, हे कर्ण! तुम श्रीकृष्ण और सहा-यकोंके सहित कुन्तीपुत्र पाण्डवोंको महायुद्धमें जीतो ॥ ३९ ॥

जहि पार्थान्सपाञ्चालान्राधेय विजयाय नः ।
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥ ४० ॥

हे राधापुत्र! जैसे सूर्य उदय होकर अपनी उग्र किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, वैसे ही तुम हमारी विजयके लिये कुन्तीकुमार पाण्डवोंको पाञ्चालों सहित मार डालो ॥ ४० ॥

न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां ते सकेशवाः ।
कृतघ्नाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥ ४१ ॥

जैसे सूर्यकी तेज किरणोंको कृतघ्न नहीं देख सकते, वैसे ही श्रीकृष्ण और पाण्डव तुम्हारे छोडे हुए बाणोंको नहीं सह सकते ॥ ४१ ॥

न हि पार्थाः सपाञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः ।
आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ॥ ४२ ॥

जैसे हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रको देख दानव उसके सामने युद्धमें नहीं खडे हो सकते, वैसे ही पाण्डव और पांचाल तुम्हारे आगे खडे नहीं हो सकते ॥ ४२ ॥

अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः ।
व्यत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ४३ ॥

उस समय अभिषेक होनेपर अमित तेजस्वी राधापुत्र कर्ण अपने तेज और रूपसे दूसरे सूर्यके समान शोभित होने लगा ॥ ४३ ॥

सेनापत्येन राधेयमभिषिच्य सुतस्तव ।
अमन्यत तदात्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥ ४४ ॥

हे राजेन्द्र ! जिस समय कालके वशमें पडे तुम्हारे पुत्रने राधापुत्र कर्णको सेनापतिपदपर अभिषिक्त किया, तब उसने जाना कि मैं अपना सब कार्य सिद्ध कर चुका ॥ ४४ ॥

कर्णोऽपि राजन्संप्राप्य सैनापत्यमरिंदमः ।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ४५ ॥

राजन् ! शत्रुदमन कर्णने भी सेनापति होकर सेनाको सूर्य उदय होते ही युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥

तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ३४७ ॥

भारत ! उस समय तुम्हारे पुत्रोंके सहित घिरा हुआ कर्णकी ऐसी शोभा बढी, जैसे तारकामय युद्धमें देवताओंसे घिरे हुए स्वामी कार्त्तिककी शोभा बढी थी ॥ ४६ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें छठवा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ ३४७ ॥

: ७ :

धृतराष्ट्र उवाच

सेनापत्यं तु संप्राप्य कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जब वैकर्तन कर्ण सेनापति हो चुका, और स्वयं राजा दुर्योधनके भाईके समान प्रेम भरे वचन सुन चुका ॥ १ ॥

योगमाज्ञाप्य सेनाया आदित्येऽभ्युदिते तदा ।
अकरोत्किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

तथा प्रातःकाल होते ही सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा कर चुका, इसके पश्चात् महाबुद्धिमान् कर्णने क्या किया ? सो हमसे कहो ॥ २ ॥

संजय उवाच

कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामास नान्दीतूर्यपुरःसरम् ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– हे भरतकुलमें श्रेष्ठ ! आपके पुत्रोंने कर्णके अभिप्रायको जानकर प्रातःकाल युद्धके लिये तैयार होनेके विषयमें हर्षसूचक वाद्य बजाकर आज्ञा घोषित की ॥ ३ ॥

महत्यपररात्रे तु तव पुत्रस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महारवनः ॥ ४ ॥

मारिष ! जब रात्रि तीन पहर बीत गई, तब तुम्हारी सेना युद्धके लिये उपस्थित होने लगी, उस समय आपके पुत्रका सहसा तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ का बडा भारी शब्द गूंज उठा ॥ ४ ॥

नागानां कल्पमानानां रथानां च वरूथिनाम् ।
संनह्यतां पदातीनां वाजिनां च विशां पते ॥ ५ ॥

पृथ्वीपते ! सजाये जाते हुए हाथियोंका, रथोंकी सेनाका, कवच धारण किये हुए पैदलोंका और घोडोंका ॥ ५ ॥

क्रोशतां चापि योधानां त्वरितानां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक्सुमहांस्तदा ॥ ६ ॥

शीघ्रतासे एक दूसरेको पुकारते हुए योद्धाओंका महान् शब्द होने लगा । उनका शब्द आकाशमें फैल गया ॥ ६ ॥

ततः श्वेतपताकेन बालार्काकारवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा हस्तिकक्ष्येण केतुना ॥ ७ ॥

उसी समय सूतपुत्र कर्ण सफेद ध्वजा, छोटे उगते सूर्यके समान घोडे, सोनेसे जिसका पृष्ठ-भाग मढा हुआ है ऐसा धनुष, हाथी चिन्ह युक्त ध्वजा ॥ ७ ॥

तूणेन शरपूर्णेन साङ्गदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिङ्किणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥ ८ ॥

बाणोंसे भरे हुए तूणीर, गदा, शतघ्नी, किंकिणी, शक्ति, शूल, तोमर आदि शस्त्रोंसे भरे हुए ॥ ८ ॥

कार्मुकेणोपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनातिपताकेन सूतपुत्रो व्यदृश्यत ॥ ९ ॥

और अनेक धनुषोंसे युक्त रथमें बैठकर युद्धको चलनेके लिये दिखलाई दिये । उस समय कर्णके पताकाओंसे सुशोभित रथका ऐसा तेज बढा जैसा उदय होते हुए निर्मल सूर्यका बढता है ॥ ९ ॥

धमन्तं वारिजं तात हेमजालविभूषितम् ।
विधुन्वानं महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १० ॥

राजन् ! सोनेके तारोंसे खिचा हुआ शंख बजाते, सुवर्णयुक्त विशाल धनुषकी टंकार करते ॥ १० ॥

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम् ।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो घ्नन्तं सहस्रशः ॥ ११ ॥

महाधनुर्धारी, रथियोंमें श्रेष्ठ, रथमें बैठे हुए कर्णको भयङ्कर अंधकारको नाश करनेवाले सहस्रों किरणोंसे उदित सूर्यके समान प्रकाशमान देख ॥ ११ ॥

न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष ।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १२ ॥

हे मारिष ! पुरुषसिंह ! उस समय सब कौरव भीष्म, द्रोणाचार्य और अन्य वीरोंके नाश हो जानेके दुःख कुछभी नहीं मानते थे ॥ १२ ॥

ततस्तु त्वरयन्योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
कर्णो निष्कासयामास कौरवाणां वरूथिनीम् ॥ १३ ॥

मारिष ! अनन्तर कर्णने अपने शङ्खके शब्दसे सब योद्धाओंको युद्धके लिये शीघ्र ही उपस्थित होनेकी आज्ञा देकर, कौरवोंकी सेनाको डेरोंसे बाहर निकाला ॥ १३ ॥

व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो माकरं शत्रुतापनः ।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान्विजिगीषया ॥ १४ ॥

शत्रुओंको तपानेवाले महाधनुषधारी कर्णने अपनी सेनाका मकर व्यूह बनाकर पाण्डवोंसे युद्ध करके जीतनेकी इच्छासे प्रस्थान किया ॥ १४ ॥

मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन्व्यवस्थितः ।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! उस मकर व्यूहके मुखभागमें कर्ण, नेत्रोंके स्थानमें शूर शकुनि और महारथी उलूक ॥ १५ ॥

द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः ।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥ १६ ॥

सिरके स्थानमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, गलेके भागमें दुर्योधनके सब भाई, पेटके स्थानमें बहुत सेनाके सहित राजा दुर्योधन खडे थे ॥ १६ ॥

वामे पादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः ।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदः ॥ १७ ॥

हे राजेन्द्र ! बायें पैरमें महायुद्ध करनेवाले ग्वालियोंके नारायणी सेनाके सहित कृतवर्मा खडा हुआ था ॥ १७ ॥

पादे तु दक्षिणे राजन्गौतमः सत्यविक्रमः ।
त्रिगर्तैश्च महेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥ १८ ॥

राजन् ! दाहिने पैरमें महाधनुषधारी त्रिगर्त्त देशके क्षत्रिय और दक्षिणी वीरोंके सहित सत्य पराक्रमी कृपाचार्य खडे थे ॥ १८ ॥

अनुपादस्तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥

बायें पैरके पिछले भागमें मद्रदेशकी महा सेनाके सहित राजा शल्य खडे थे ॥ १९ ॥

दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः ।
वृतो रथसहस्रैश्च दन्तिनां च शतैस्तथा ॥ २० ॥

दाहिने पैरके पिछले भागमें सैकडों हाथी और एक सहस्र रथियोंके सहित सत्य पराक्रमी सुषेण खडे थे ॥ २० ॥

पुच्छे आस्तां महावीरौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा ।
चित्रसेनश्च चित्रश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥

पूछके भागमें महान् सेनाके सहित महावीर राजा चित्रसेन और चित्र नामक दोनों भाई खडे हुए ॥ २१ ॥

ततः प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र ! नरश्रेष्ठ कर्णके इस प्रकारके व्यूहको देखकर धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार बोले ॥ २२ ॥

पश्य पार्थ महासेनां धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
कर्णेन निर्मितां वीर गुप्तां वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥

हे वीर अर्जुन ! देखो, कर्णने समरमें धृतराष्ट्र पुत्रकी महा सेनाको कैसा बनाया है। देखो, कैसे कैसे बडे बडे महारथी वीर रक्षा कर रहे हैं ॥ २३ ॥

हतवीरतमा शेषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥

महाबाहो ! हमारी बुद्धिमें कौरवोंकी इस महा सेनाके प्रधान वीर मारे जा चुके हैं, इसके छोटे सैनिक ही शेष रहे हैं, अब यह तिनकोंके समान रह गई है ॥ २४ ॥

एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो व्यवस्थितः ।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिंनरमहोरगैः ।
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ॥ २५ ॥

इस सेनामें अकेला महाधनुषधारी सूतपुत्र कर्ण ही वीर दीखता है। यह रथियोंमें श्रेष्ठ देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, बडे बडे नाग और चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंके लोगोंसे जीता जा नहीं सकता है ॥ २५ ॥

तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फल्गुन ।
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २६ ॥

हे महाबाहो ! अर्जुन ! जब आज तुम इसको मारोगे, तब ही तुम्हारी विजय होगी और बारह वर्षों तक जो शल्य दुःख दे रहा है, वह निकल जायगा। इस लिये यह जानकर, तुम इच्छानुसार व्यूह बनाओ ॥ २६ ॥

भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥ २७ ॥

अपने भाईके ऐसे वचन सुन पाण्डुपुत्र श्वेतवाहन अर्जुनने कौरवोंके विरोधमें अपनी सेनाका अर्द्धचन्द्र व्यूह बनाया ॥ २७ ॥

वामपार्श्वेऽभवद्राजन्भीमसेनो व्यवस्थितः ।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो महाबलः ॥ २८ ॥

राजन् ! उस व्यूहके बाई ओर भीमसेन, दाहिनी ओर महाधनुर्धर, महाबली धृष्टद्युम्न खडे हुए ॥ २८ ॥

मध्ये व्यूहस्य साक्षात्तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पृष्ठतः ॥ २९ ॥

उसके मध्यभागमें कृष्ण सारथि पांडुपुत्र स्वयं अर्जुन, तथा नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर पीछे खडे हुए ॥ २९ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३० ॥

उस दिन अर्जुनके रथके पहियोंकी रक्षा करनेके लिये पाञ्चाल देशके महापराक्रमी युधामन्यु और उत्तमौजा खडे हुए, किरीटधारी अर्जुन भी इन दोनोंकी रक्षा करते रहे। इन दोनोंने युद्धमें अर्जुनका साथ नहीं छोडा ॥ ३० ॥

पादे तु दक्षिणे राजन्गौतमः सत्यविक्रमः ।
त्रिगर्तैश्च महेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥ १८ ॥

राजन् ! दाहिने पैरमें महाधनुषधारी त्रिगर्त्त देशके क्षत्रिय और दक्षिणी वीरोंके सहित सत्य पराक्रमी कृपाचार्य खडे थे ॥ १८ ॥

अनुपादस्तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥

बायें पैरके पिछले भागमें मद्रदेशकी महा सेनाके सहित राजा शल्य खडे थे ॥ १९ ॥

दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः ।
वृतो रथसहस्रैश्च दन्तिनां च शतैस्तथा ॥ २० ॥

दाहिने पैरके पिछले भागमें सैकडों हाथी और एक सहस्र रथियोंके सहित सत्य पराक्रमी सुषेण खडे थे ॥ २० ॥

पुच्छे आस्तां महावीरौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा ।
चित्रसेनश्च चित्रश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥

पूछके भागमें महान् सेनाके सहित महावीर राजा चित्रसेन और चित्र नामक दोनों भाई खडे हुए ॥ २१ ॥

ततः प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र ! नरश्रेष्ठ कर्णके इस प्रकारके व्यूहको देखकर धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार बोले ॥ २२ ॥

पश्य पार्थ महासेनां धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
कर्णेन निर्मितां वीर गुप्तां वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥

हे वीर अर्जुन ! देखो, कर्णने समरमें धृतराष्ट्र पुत्रकी महा सेनाको कैसा बनाया है। देखो, कैसे कैसे बडे बडे महारथी वीर रक्षा कर रहे हैं ॥ २३ ॥

हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥

महाबाहो ! हमारी बुद्धिमें कौरवोंकी इस महा सेनाके प्रधान वीर मारे जा चुके हैं, इसके छोटे सैनिक ही शेष रहे हैं, अब यह तिनकोंके समान रह गई है ॥ २४ ॥

एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो व्यवस्थितः ।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिंनरमहोरगैः ।
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ॥ २५ ॥

इस सेनामें अकेला महाधनुषधारी सूतपुत्र कर्ण ही वीर दीखता है। यह रथियोंमें श्रेष्ठ देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, बडे बडे नाग और चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंके लोगोंसे जीता जा नहीं सकता है ॥ २५ ॥

तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फल्गुन ।
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २६ ॥

हे महाबाहो ! अर्जुन ! जब आज तुम इसको मारोगे, तब ही तुम्हारी विजय होगी और बारह वर्षों तक जो शल्य दुःख दे रहा है, वह निकल जायगा। इस लिये यह जानकर, तुम इच्छानुसार व्यूह बनाओ ॥ २६ ॥

भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥ २७ ॥

अपने भाईके ऐसे वचन सुन पाण्डुपुत्र श्वेतवाहन अर्जुनने कौरवोंके विरोधमें अपनी सेनाका अर्द्धचन्द्र व्यूह बनाया ॥ २७ ॥

वामपार्श्वेऽभवद्राजन्भीमसेनो व्यवस्थितः ।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो महाबलः ॥ २८ ॥

राजन् ! उस व्यूहके बाईं ओर भीमसेन, दाहिनी ओर महाधनुर्धर, महाबली धृष्टद्युम्न खडे हुए ॥ २८ ॥

मध्ये व्यूहस्य साक्षात्तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पृष्ठतः ॥ २९ ॥

उसके मध्यभागमें कृष्ण सारथि पांडुपुत्र स्वयं अर्जुन, तथा नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर पीछे खडे हुए ॥ २९ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३० ॥

उस दिन अर्जुनके रथके पहियोंकी रक्षा करनेके लिये पाञ्चाल देशके महापराक्रमी युधामन्यु और उत्तमौजा खडे हुए, किरीटधारी अर्जुन भी इन दोनोंकी रक्षा करते रहे। इन दोनोंने युद्धमें अर्जुनका साथ नहीं छोडा ॥ ३० ॥

शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
यथाभावं यथोत्साहं यथासत्त्वं च भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! पाण्डवोंके और सब शेष वीर राजा भी कवच धारण करके अपने अपने स्थानपर उत्साह और बलके अनुसार व्यूहमें लडनेको खडे हुए ॥ ३१ ॥

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥ ३२ ॥

हे भारत ! इस प्रकार अपनी सेनाका महाव्यूह बना कर पाण्डवों और तुम्हारे महाधनुर्धारियोंने युद्धमें ही मन लगाया ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान्पाण्डवान्मेने तव पुत्रः सहान्वयः ॥ ३३ ॥

समरमें सूतपुत्र कर्णके तुम्हारी सेनाके व्यूहको देखकर, साथियोंसहित तुम्हारे पुत्रने माना कि पाण्डवोंका नाश हो गया ॥ ३३ ॥

तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्तराष्ट्रान्हतान्मेने सकर्णान्वै जनाधिप ॥ ३४ ॥

प्रजापते ! इसी प्रकार अपनी पाण्डवोंकी सेनाके व्यूहको देखकर, महाराज युधिष्ठिरने कर्णके सहित आपके पुत्रोंको मारा हुआ मान लिया ॥ ३४ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त सशब्दाश्च समन्ततः ॥ ३५ ॥

अनन्तर दोनों सेनाओंमें चारों ओरसे शङ्ख, भेर, पणव, आनक, गोमुख, डिंडिम और झांझ सहसा महान् शब्द करके बजने लगीं ॥ ३५ ॥

सेनयोरुभयो राजन्प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! नगाडे बजने लगे । बाजा बजतेही दोनों ओरके वीर अपनी अपनी जयकी इच्छासे सिंहनाद करने लगे ॥ ३६ ॥

हयहेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहितम् ।
रथनेमिनास्वश्चोग्राः संबभूवुर्जनाधिप ॥ ३७ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! घोडोंके हींसनेका, हाथियोंके गर्जनेका और रथोंके पहियोंके घरघरानेका शब्द होने लगा । यह घोर शब्द सब दिशाओंमें पूरित हो गया ॥ ३७ ॥

न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥ ३८ ॥

भरतर्षभ ! उस समय महाधनुर्धारी कर्णको कवच पहनके सेनाके आगे खडा देखकर, सब लोग द्रोणाचार्यके मारे जानेके दुःखको भूल गये ॥ ३८ ॥

उभे सेने महासत्त्वे प्रहृष्टनरकुञ्जरे ।
योद्धुकामे स्थिते राजन्हन्तुमन्योन्यमञ्जसा ॥ ३९ ॥

राजन् ! उस समय उन दोनों सेनाओंके श्रेष्ठ, महाधैर्यवान् वीर प्रसन्नचित्त होकर परस्पर मारने और युद्ध करनेकी इच्छासे खडे हो गये ॥ ३९ ॥

तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ ।
अनीकमध्ये राजेन्द्र रेजतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ४० ॥

राजेन्द्र ! क्रुद्ध होकर सावधानतासे खडे हुए कर्ण और पाण्डव अपनी अपनी सेनामें शोभित होने लगे ॥ ४० ॥

नृत्यमाने तु ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तयोः पक्षैः प्रपक्षैश्च निर्जग्मुर्वै युयुत्सवः ॥ ४१ ॥

वे दोनों सेनाएं नृत्य करती हुई परस्पर भिड गयीं । युद्धकी इच्छा करनेवाले वीर दोनों व्यूहोंके पक्ष और प्रपक्षसे निकलने लगे ॥ ४१ ॥

ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथिनां च महाराज अन्योन्यं निघ्नतां दृढम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ३८९ ॥

हे महाराज ! तब एक दूसरेपर दृढ आघात करनेवाले वीर मनुष्य, हाथी, घोडे और रथियोंका तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ ३८९ ॥

: ८ :

संजय उवाच

ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ संप्रजह्राते देवासुरचमूपमे ॥ १ ॥

संजय बोले— इस प्रकार उन दोनों भारी सेनाके घोडे, मनुष्य और हाथी अत्यंत प्रसन्न होकर परस्पर भिडकर आघात करके युद्ध करने लगे, जैसे पहले समयमें देवता और राक्षसोंका युद्ध हुआ था ॥ १ ॥

×

ततो गजा रथाश्वाश्वाः पत्तयश्च महाहवे ।
संप्रहारं परं चक्रुर्देहपाप्मप्रणाशनम् ॥ २ ॥

तब रथोंपर चढे वीर और हाथी, घोडे तथा पैदल लोग शत्रुओंके मारनेके लिये शस्त्र चलाने लगे, जिससे शत्रुलोग अपने देह, सब पाप और प्राण छोडकर परलोकमें जाने लगे ॥ २ ॥

पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तित्विड्गन्धतः समैः ।
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥ ३ ॥

नरोंमें सिंहके समान पराक्रमी वीर शत्रुओंके पुरुषसिंहोंके शिरोंको काटकर पृथ्वीको पूरित करने लगे । उनको वे शिर पौर्णिमाके चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् और उत्तम कमलके समान सुगन्धित थे ॥ ३ ॥

अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः ।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥ ४ ॥

वीरोंके सिर अर्द्धचन्द्र, भाले, छुरे, खड्ग, पट्टिश और परश्वधसे कट कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ४ ॥

व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः ।
व्यायता बाहवः पेतुश्छिन्नमुष्ट्यायुधाङ्गदाः ॥ ५ ॥

बलवान् और बडे प्रशस्त हाथवाले वीरोंने बलवान् और बडे हाथवाले वीरोंके हाथोंको तोड कर पृथ्वीमें गिरा दिया, उन कटे हुए हाथोंसे, छिन्न मुट्टियोंसे और गिरी हुई आयुधों और अङ्गदोंसे वह युद्ध भूमि छागयी ॥ ५ ॥

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्ताङ्गुलितलैस्तदा ।
गरुडप्रहतैरुग्रैः पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ६ ॥

जिनके तलवे और अंगुलियां लाल रंगकी थीं उन तडपती हुई भुजाओंसे वह युद्धभूमि ऐसी शोभित हो गयी, जैसे गरुडसे मारे हुए भयंकर पांच मुखवाले फरकते हुए सापोंसे ॥ ६ ॥

हयस्यन्दननागेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः ।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥

शत्रुओंसे मारे गये वीर घोडे, हाथी और रथोंसे इस प्रकार गिरने लगे, जैसे स्वर्गवासी जीव पुण्य नाश होनेपर विमानोंसे गिरते हैं ॥ ७ ॥

गदाभिरन्यैर्गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि ।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८ ॥

किसी वीरने किसी शत्रुको भारी गदासे, किसीने मूसलसे और किसीने अपने शत्रुको परिघसे मारकर गिरा दिया । इससे सैकडों वीर कुचले जाकर मरकर रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ८ ॥

रथा रथैर्विनिहता मत्ता मत्तैर्द्विपैर्द्विपाः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन्परमसंकुले ॥ ९ ॥

उस भयंकर युद्धमें, रथोंने रथोंको, मतवाले हाथियोंने मदमत्त हाथियोंको और घुडसवारोंने घुडसवारोंको कुचल डाला ॥ ९ ॥

रथा वररथैर्नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥

कहीं रथपर चढे वीर रथी योद्धाओंको, कहीं रथपर चढे वीर हाथीपर चढे वीरोंसे और कहीं घोडेपर चढे वीर पैदलोंसे तथा पैदल वीर घुडसवारोंसे मारे जाकर युद्धभूमिमें सो रहे थे ॥ १० ॥

रथाश्वपत्तयो नागै रथैर्नागाश्च पत्तयः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वैर्नृभिश्चाश्वरथद्विपाः ॥ ११ ॥

उस युद्धमें हाथी और हाथीरोहियोंने रथी, घुडसवार और पैदलोंको, रथियोंने हाथी और पैदलोंको, घुडसवारोंने रथी, पैदल और हाथियोंको और पैदलोंने घुडसवार, रथि और हाथियोंको मार गिराया ॥ ११ ॥

रथाश्वेभनराणां च नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२ ॥

रथी, घुडसवार, हाथियोंपर चढे वीर और पैदलोंने दूसरी सेनाके रथ, हाथी, घोडोंपर चढे वीर और पैदलोंका हाथ, पैर, शस्त्र और रथोंसे महान् नाश कर दिया ॥ १२ ॥

तथा तस्मिन्बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च ।
अस्मानभ्यागमन्पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥

जिस समय उस युद्धमें शूरवीरोंसे वह सेना मारी जाने लगी और मारी गयी, तब कुन्तीपुत्र पाण्डवोंकी ओरके योद्धा भीमसेनको आगे करके हमारे साथ युद्ध करनेको आये ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पांचों पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि और चेकितान द्राविड देशकी सेना सङ्गमें लेकर युद्ध करनेको निकले ॥ १४ ॥

भृता वित्तेन महता पाण्ड्याश्चौड्राः सकेरलाः ।
व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः प्रियदर्शनाः ॥ १५ ॥

पांड्य, चौड्र और केरल देशके वडे हृदयवाले, वडे हाथ, सुंदर और ऊंचे कदके वीर व्यूह बनाकर युद्ध करनेको आये ॥ १५ ॥

आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥ १६ ॥

ये सब वीर महायोद्धा अनेक प्रकारके शिरोभूषण और हार धारण किए हुए, लाल दांतवाले, अनेक प्रकारके रंगीन वस्त्र धारण किये, मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और अनेक प्रकारकी सुगन्ध लगाये हुए थे ॥ १६ ॥

बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।
समानमृत्यवो राजन्ननीकस्थाः परस्परम् ॥ १७ ॥

उन्होंने कमरमें तलवारें बांधी थीं, वे फांसी खड्गको हाथमें लेकर युद्ध करनेको आये थे, ये सब वीर हाथीको भी निवारण करनेमें समर्थ थे, राजन् ! वे मृत्युकी पर्वाह नहीं करते थे और एक दूसरेका साथ करते थे ॥ १७ ॥

कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियाहवाः ।
पत्तयः सात्यकेरन्ध्रा घोररूपपराक्रमाः ॥ १८ ॥

उन्होंने शिरपर मोरपंख लगाये थे, वे धनुषधारी, लम्बे बालवाले, सदा युद्धको प्रिय माननेवाले थे, पैदल सैनिक सदा सत्याचरण करनेवाले और घोर पराक्रम करनेवाले थे ॥ १८ ॥

अथापरे पुनः शूराश्चेदिपाञ्चालकेकयाः ।
करूषाः कोसलाः काश्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः ॥ १९ ॥

इसके पीछे फिर दूसरे वीर चेदि, पाञ्चाल, केकय, करूष, कोसल, काशी और मगधदेशके क्षत्रिय लोग भी युद्ध करनेके लिये हमपर धावा करनेको आये ॥ १९ ॥

तेषां रथाश्च नागाश्च प्रवराश्चापि पत्तयः ।
नानाविधरवैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ २० ॥

उनकी सेनाके रथ और हाथी उत्तम प्रतीके थे; तथा पैदल सैनिक भी श्रेष्ठ थे; वे अनेक प्रकारके वाद्योंके शब्दोंसे आनन्दित होकर हंसते और नांचते थे ॥ २० ॥

तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः ।
मध्यं वृकोदरोऽभ्यागात्त्वदीयं नागधूर्गतः ॥ २१ ॥

उस बडी सेनाके बीचमें प्रधान सेनापतियोंके सहित घिरे हुए तुम्हारी सेनासे युद्ध करनेके लिये हाथीके ऊपर बैठकर भीमसेन आये ॥ २१ ॥

स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत्कल्पितो बभौ ।
उदयाद्र्यग्र्यभवनं यथाभ्युदितभास्करम् ॥ २२ ॥

उस समय उस अत्यन्त भयंकर, विधिवत् सजाया गया गजराजकी ऐसी शोभा बढी, जैसे उदयाचलके उच्च शिखरपर उदय होते हुए सूर्यकी ॥ २२ ॥

तस्यायसं वर्मवरं वररत्नविभूषितम् ।
तारोद्भासस्य नभसः शारदस्य समत्विषम् ॥ २३ ॥

भीमसेनका लोहेका उत्तम कवच तेजस्वी श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित होकर इस प्रकार चमकने लगा, जैसे ताराओंसे भरे हुए शरत्कालीन आकाश प्रकाशता है ॥ २३ ॥

स तोमरप्रासकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः ।
चरन्मध्यंदिनार्काभस्तेजसा व्यदहद्रिपून् ॥ २४ ॥

अच्छे किरीट और आभूषण परिधान किये हुए भीमसेन हाथमें तोमर और प्रास लेकर अपने तेजसे इस प्रकार शत्रुओंको तपाने लगे जैसे दोपहरका सूर्य प्रजाको तपाता है ॥ २४ ॥

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात्क्षेमधूर्तिर्द्विपास्थितः ।
आह्वयानोऽभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम् ॥ २५ ॥

भीमसेनको हाथीपर चढा हुआ दूरसे ही देख, हाथीपर चढे प्रसन्न मनवाले क्षेमधूर्तिने पुकारा और युद्ध करनेको प्रसन्न चित्तवाले भीमसेनकी ओर दौडा ॥ २५ ॥

तयोः समभवद्युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः ।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ २६ ॥

क्षेमधूर्ति और भीमसेनके उग्र रूपवाले दोनों हाथियोंमें इस प्रकार युद्ध हुआ जैसे वृक्षवाले दो महान् पर्वत दैवेच्छासे परस्पर टकरा रहे हैं ॥ २६ ॥

संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम् ।
बलवत्सूर्यरश्म्याभैर्भित्त्वा भित्त्वा विनेदतुः ॥ २७ ॥

जिनके हाथी एक दूसरेसे भिडे हुए थे, वे दोनों वीर भीमसेन और क्षेमधूर्ति परस्पर सूर्यकी किरणोंके समान तोमरोंसे बलपूर्वक युद्ध करते हुए परस्पर विदीर्ण करके गर्जने लगे ॥ २७ ॥

व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः ।
प्रगृह्य चैव धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम् ॥ २८ ॥

फिर वे दोनों अपने हाथियोंको पीछे लेकर मण्डलाकार घूमने और धनुष लेकर परस्पर बाणोंका वर्षाव करके अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैश्च सर्वशः ।
तौ जनान्हर्षयित्वा च सिंहनादान्प्रचक्रतुः ॥ २९ ॥

वे गर्जने, ताल ठोकने और धनुषबाणोंके शब्दसे चारों ओरके वीरोंको आनन्दित करके सिंहनाद करने लगे ॥ २९ ॥

समुच्छ्रितकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ।
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ ॥ ३० ॥
उन दोनों महाबलवान् वीरोंके हाथियोंने अपने सूंड ऊपरको उठा दिये थे और वे युद्ध कर रहे थे और दोनोंकी हाथियोंके ऊपर लगी हुई ध्वजाएं वायुसे उडने लगीं ॥ ३० ॥

तावन्योन्यस्य धनुषी छित्त्वान्योन्यं विनेदतुः।
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः ॥ ३१ ॥
फिर जैसे वर्षाकालके दो मेघजल वर्षते हैं वैसे ही शक्ति और तोमरोंकी वर्षासे इन दोनोंने दोनोंकी धनुष काट दीं और परस्पर गर्जने लगे ॥ ३१ ॥

क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे।
निर्बिभेद तु वेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन् ॥ ३२ ॥
फिर क्षेमधूर्तिने बहुत वेगसे भीमसेनकी छातीमें एक तोमर मारा और गर्जना करके उसने और छः तोमर मारे ॥ ३२ ॥

स भीमसेनः शुशुभे तोमरैरङ्गमाश्रितैः।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् ॥ ३३ ॥
उन तोमरोंके शरीरमें लगनेसे क्रोधभरे उद्दीप्त शरीरवाले भीमसेनकी ऐसी शोभा बढी जैसे मेघोंके सहित सात घोडेके रथमें बैठे हुए सूर्यकी ॥ ३३ ॥

ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम्।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान् ॥ ३४ ॥
तब भीमसेनने सूर्यके समान प्रकाशमान लोहेसे बना हुआ, तेज गतिवाला एक तोमर प्रयत्न-पूर्वक अपने शत्रुके शरीरमें मारा ॥ ३४ ॥

ततः कुलूताधिपतिश्चापमायम्य सायकैः।
दशभिस्तोमरं छित्त्वा शक्त्या विव्याध पाण्डवम् ॥ ३५ ॥
तब कुलूतदेशके राजा क्षेमधूर्तिने अपने धनुषपर बाण चढाकर दस बाणोंसे भीमसेनके तोमरको काटकर, पीछे भीमसेनके शरीरमें शक्ति मारी और घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

अथ कार्मुकमादाय महाजलदनिस्वनम्।
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्मदः पाण्डवः शरैः ॥ ३६ ॥
फिर भीमसेनने बडे मेघके समान शब्दवाले धनुष लेकर उसपर बाण चढाकर क्षेमधूर्तिके हाथीके शरीरमें मारकर उसको पीडित किया ॥ ३६ ॥

स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे ।
निगृह्यमाणो नातिष्ठद्वातध्वस्त इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥

युद्धमें भीमसेनके बाणोंके ओघसे व्याकुल होकर क्षेमधूर्तिका हाथी रोकनेपर भी इस प्रकार युद्धमें खडा नहीं रहा, जैसे वायुसे उद्धूत मेघ ॥ ३७ ॥

तमभ्यधावद्द्विरदं भीमसेनस्य नागराट् ।
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३८ ॥

भीमसेनका हाथी क्षेमधूर्तिके हाथीकी ओर इस प्रकार दौडा, जैसे आंधीके उडाये हुए मेघ वायुके वशमें हुए मेघकी तरफ दौडता है ॥ ३८ ॥

संनिवर्त्यात्मनो नागं क्षेमधूर्तिः प्रयत्नतः ।
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनं सकुञ्जरम् ॥ ३९ ॥

प्रयत्न पूर्वक क्षेमधूर्तिने अपने हाथीको लौटाकर, भीमसेन और सामने दौडते आते हुए हाथीको बाणोंसे व्याकुल किया ॥ ३९ ॥

ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेण पुरुषर्षभः ।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागममामित्रमार्दयत् ॥ ४० ॥

अनन्तर एक अच्छी तरह छोडे हुए तेज क्षुर बाणसे भीमसेनने शत्रुके धनुषको काटकर उसके हाथीको पीडित किया ॥ ४० ॥

ततः खजाकया भीमं क्षेमधूर्तिः पराभिनत् ।
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥ ४१ ॥

तब क्षेमधूर्तिने क्रोध करके खजाकसे भीमसेनको बहुत व्याकुल किया और उनके हाथीके सब मर्मस्थानोंमें अनेक नाराच बाण मारे ॥ ४१ ॥

पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ।
भीमसेनो रिपोर्नागं गदया समपोथयत् ॥ ४२ ॥

भीम हाथी गिरनेसे पहले ही हाथीसे कूदकर पृथ्वीपर खडे हो गये । भीमसेनने भी अपनी गदासे क्षेमधूर्तिके हाथीको मार डाला ॥ ४२ ॥

तस्मात्प्रमथितान्नागात्क्षेमधूर्तिमवद्रुतम् ।
उद्यतासिमुपायान्तं गदयाहन्वृकोदरः ॥ ४३ ॥

तब क्षेमधूर्ति भी मरे हुए हाथीसे कूदकर पृथ्वीपर खडे होगये, और खड्ग उठाकर भीमसेनकी ओर दौडे । उस समय भीमसेनने उस पर गदा मारकर प्रहार किया ॥ ४३ ॥

स पपात हतः सासिर्व्यसुः स्वमभितो द्विपम् ।
वज्रप्ररुग्णमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ॥ ४४ ॥

तब गदाके प्रहारसे क्षेमधूर्ति प्राणरहित होकर, तलवारके सहित अपने हाथीके पास ही गिर पडा। जैसे वज्र लगनेसे टूटकर गिरे हुए पर्वतके पास वज्रसे मारा हुआ सिंह गिरकर पडा हो ॥ ४४ ॥

निहतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम् ।
प्राद्रवद्व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ४३४ ॥

भरतर्षभ! भीमने उस कुलूतदेशके यशस्वी राजाको मारकर भूमिपर गिराया देख, आपकी सेना व्यथित होकर इधर उधर भाग गई ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें आठवा अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ ॥ ४३४ ॥

: ९ :

सञ्जय उवाच

ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
जघान समरे शूरः शरैः संनतपर्वभिः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन्! धृतराष्ट्र! तब महाधनुर्द्धारी शूर वीर कर्ण अपने तेज बाणोंसे युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाको मारने लगे ॥ १ ॥

तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा विनिजघ्नुर्महारथाः ॥ २ ॥

राजन्! इसी प्रकार महारथी क्रोधित पाण्डव लोग भी कर्णके सामनेही तुम्हारे पुत्रकी सेनाका नाश करने लगे ॥ २ ॥

कर्णो राजन्महाबाहुर्न्यवधीत्पाण्डवीं चमूम् ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥ ३ ॥

हे राजन्! तब महाबाहु कर्ण भी कारीगरोंके हाथसे धोकर अच्छे तीक्ष्ण किये हुए, सूर्य किरणोंके समान प्रकाशमान् नाराच बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ ३ ॥

तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः ।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ ४ ॥

भारत! वहां कर्णके नाराच बाणोंकी मार खाकर व्याकुल होकर हाथी चिल्लाने लगे, बैठने लगे, म्लान होने लगे और दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ४ ॥

वध्यमाने बले तस्मिन्सूतपुत्रेण मारिष ।
नकुलोऽभ्यद्रवत्तूर्णं सूतपुत्रं महारणे ॥ ५ ॥

मारिष ! जब सूतपुत्र कर्ण महायुद्धमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे, तब तुरंत ही उनसे युद्ध करनेको नकुल आये ॥ ५ ॥

भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत् ॥ ६ ॥

भीमसेनने दुष्कर कर्म करनेवाले अश्वत्थामाको और केकय देशके विन्द तथा अनुविन्दको सात्यकिने निवारण किया ॥ ६ ॥

श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः ।
प्रतिविन्ध्यं तथा चित्रश्चित्रकेतनकार्मुकः ॥ ७ ॥

सामने आते हुए चित्रकर्माको राजा श्रुतिकर्माने और प्रतिविन्ध्यको विचित्र ध्वज और धनुषधारी चित्रने रोका ॥ ७ ॥

दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
संशप्तकगणान्क्रुद्धो अभ्यधावद्धनंजयः ॥ ८ ॥

दुर्योधन धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरसे युद्ध करने लगे। अर्जुन क्रोध करके संशप्तक नामक वीरोंकी ओर दौडे ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नः कृपं चाथ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम् ॥ ९ ॥

श्रेष्ठ वीरोंका नाश करनेवाले उस युद्धमें धृष्टद्युम्न कृपाचार्यसे और शिखण्डी पराङ्मुख न होनेवाले कृतवर्मासे युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥

श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान् ॥ १० ॥

महाराज ! श्रुतकीर्ति शल्यसे और माद्रीपुत्र प्रतापी सहदेव तुम्हारे पुत्र दुःशासनसे युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

केकयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता ।
सात्यकिः केकयौ चैव छादयामास भारत ॥ ११ ॥

भारत ! केकय देशके राजकुमारोंने युद्धमें सात्यकिपर अनेक तेजस्वी प्रकाशमान् बाण चलाये, वैसे ही सात्यकिने भी अपने बाणोंकी वर्षासे उन दोनों केकयोंको छा दिया ॥ ११ ॥

*

तावेनं भ्रातरौ वीरं जघ्नतुर्हृदये भृशम् ।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महाहवे ॥ १२ ॥

उन दोनों भाईयोंने महायुद्धमें वीर सात्यकिके हृदयमें ऐसे तेज बाण मारे, जैसे महान् वनमें दो हाथी अपने विरोधी हाथीको दांतोंसे मारते हैं ॥ १२ ॥

शरसंभिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन्विव्यधतुः शरैः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! सात्यकिके बाणोंसे उन दोनोंके कवच छिन्न हो गये थे, परंतु उन दोनों भाईयोंने सत्यकर्म करनेवाले सात्यकिको रणभूमिमें अपने अनेक बाणोंसे विद्ध कर दिया ॥ १३ ॥

तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन्सर्वतोदिशम् ।
छादयञ्शरवर्षेण वारयामास भारत ॥ १४ ॥

महाराज ! भारत ! सात्यकिने हंसकर उन दोनों वीर भाईयोंके बाणोंको काट दिया । फिर अपने बाणोंसे दसों दिशाओंको आच्छादित कर दिया, और उनको रोका ॥ १४ ॥

वार्यमाणौ ततस्तौ तु शैनेयशरवृष्टिभिः ।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः ॥ १५ ॥

सात्यकिके बाणोंकी वर्षासे रोके जाते हुए उन दोनोंने उनके रथको शीघ्र ही अपने बाणोंसे छा दिया ॥ १५ ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महाहवे ।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैश्छादयामास दुःसहैः ॥ १६ ॥

अनन्तर महायुद्धमें सात्यकिने उन दोनोंके विचित्र धनुषोंको काट दिया और उनको अपने तीक्ष्ण दुःसह बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १६ ॥

अथान्ये धनुषी मृष्टे प्रगृह्य च महाशरान् ।
सात्यकिं पूरयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च ॥ १७ ॥

फिर उन दोनोंने दूसरे तेजस्वी धनुष और उत्तम बाण लेकर सात्यकिको छा दिया, और उत्तम तथा शीघ्र गतिसे घूमने लगे ॥ १७ ॥

ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः स्वर्णभूषणाः ॥ १८ ॥

उन दोनोंके कङ्क और मोरके पङ्ख लगे सुवर्णभूषित महान् बाण धनुषसे छूटकर चारों ओर प्रकाशित होकर गिरने लगे ॥ १८ ॥

बाणान्धकारमभवत्तयो राजन्महाहवे ।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! उस महायुद्धमें उन दोनोंके बाणोंसे अन्धकार हो गया, फिर इन तीनों महारथियोंने एक दूसरेके धनुष काट दिये ॥ १९ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः ।
धनुरन्यत्समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् ॥ २० ॥

हे महाराज ! तब युद्धदुर्मद सात्यकिको बहुत क्रोध हुआ और उसने युद्धमें दूसरा धनुष ग्रहण करके, उसको सज्ज किया, फिर एक तेज क्षुरप्र बाणसे अनुविन्दके शिरको काट दिया ॥ २० ॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ कुण्डलोत्पीडितं महत् ।
शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महारणे ।
शोषयन्केकयान्सर्वाञ्जगामाशु वसुंधराम् ॥ २१ ॥

हे राजन् ! अनुविन्दका वह कुण्डलभूषित महान् शिर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा, जैसे शम्बरका शिर महायुद्धमें कटकर गिरा था। वह अनुविन्दका शिर सब केकय देशियोंका शोच बढाता हुआ शीघ्र पृथ्वीमें गिर पडा ॥ २१ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः ।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा शैनेयं प्रत्यवारयत् ॥ २२ ॥

उस शूरवीरको मारा हुआ देखकर, उसके महारथी भाईने अपना दृढ धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढाई और सात्यकिका निवारण किया ॥ २२ ॥

स शक्त्या सात्यकिं विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ननाद बलवन्नादं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २३ ॥

उस वीरने शिलापर तेज किये सोनेके पंख लगाए शक्तिसे सात्यकिको विद्ध किया और जोरसे गर्जना करके खडा रह खडा रह कहने लगा ॥ २३ ॥

स सात्यकिं पुनः क्रुद्धः केकयानां महारथः ।
शरैरग्निशिखाकारैर्बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ २४ ॥

फिर उस केकय देशके महारथिने पुनः क्रोधित होकर सात्यकिके हृदय और हाथोंमें अग्निकी ज्वालाओंके समान अनेक बाण मारे ॥ २४ ॥

स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्वतः सत्त्वकोविदः ।
रराज समरे राजन्सपत्र इव किंशुकः　॥ २५ ॥

हे राजन् ! इन बाणोंके लगनेसे समरमें सत्वकोविद सात्यकिके सब अङ्ग क्षतविक्षत हो उनसे रुधिर बहने लगा, उस समय सात्यकिकी ऐसी शोभा बढी जैसे फूले हुए कचनारकी ॥२५॥

सात्यकिः समरे विद्धः केकयेन महात्मना ।
केकयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव　॥ २६ ॥

फिर महात्मा केकयसे समरमें विद्ध हुए सात्यकिने भी हंसकर विन्दके शरीरमें पचीस बाण मारकर उसको घायल किया ॥ २६ ॥

शतचन्द्राचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तु तौ ।
व्यरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ　॥ २७ ॥

सुंदर बाहुवाले वे दोनों सौ चन्द्रमाओंके चिन्ह युक्त ढाल और उत्तम खड्ग धारण किये हुए, उस महान् युद्धके रङ्गस्थलमें ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे देवासुर संग्राममें महाबलवान् इन्द्र और जम्भासुर शोभित हो रहे थे ॥ २७ ॥

मण्डलानि ततस्तौ च विचरन्तौ महारणे ।
अन्योन्यमसिभिस्तूर्णं समाजघ्नतुराहवे　॥ २८ ॥

वे दोनों महायुद्धमें विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरने लगे, वे एक दूसरेको खड्गोंसे शीघ्रही मारनेका यत्न करने लगे ॥ २८ ॥

केकयस्य ततश्चर्म द्विधा चिच्छेद सात्वतः ।
सात्यकेश्च तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः　॥ २९ ॥

फिर सात्यकिने विन्दकी ढालके दो टुकडे कर दिये । इसी प्रकार राजा विन्दने भी सात्यकिकी ढालको काट दिया ॥ २९ ॥

चर्म च्छित्त्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ।
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च　॥ ३० ॥

सैंकडों तारोंके चिन्होंसे युक्त सात्यकिकी ढाल काटकर विन्द गत और प्रत्यागत आदि अनेक प्रकारकी मण्डलाकार गतिसे युद्धमें घूमने लगा ॥ ३० ॥

तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः　॥ ३१ ॥

युद्धके महान् रङ्गस्थलमें उत्तम खड्ग धारण करके विचरते हुए विन्दको सात्यकिने शीघ्रतासे एक खड्ग मारा और उसको काट डाला ॥ ३१ ॥

सवर्मा केकयो राजन्द्विधा छिन्नो महाहवे ।
निपपात महेष्वासो वज्रनुन्न इवाचलः ॥ ३२ ॥

राजन् ! उसके लगनेसे वह महाधनुर्धारी राजा केकय कवचके समेत महायुद्धमें दो टुकडे होकर पृथ्वी पर गिर गया । वह महारथी इस प्रकार पृथ्वीपर गिरा जैसे वज्रके लगनेसे पर्वत गिरता है ॥ ३२ ॥

तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ।
युधामन्यो रथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ३३ ॥

उसको युद्धमें मारकर रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन शूर सात्यकि शीघ्रही युधामन्युके रथपर चढ गये ॥ ३३ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
केकयानां महत्सैन्यं व्यधमत्सात्यकिः शरैः ॥ ३४ ॥

फिर विधिपूर्वक सजाए हुए दूसरे रथपर चढकर, सात्यकि अपने बाणोंसे उस केकय देशकी विशाल सेनाका नाश करने लगे ॥ ३४ ॥

सा वध्यमाना समरे केकयस्य महाचमूः ।
तमुत्सृज्य रथं शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ४६९ ॥

अनन्तर युद्धमें मारी जाती हुई केकय राजाकी वह विशाल सेना उस रथशत्रुको छोडकर दसों दिशाओंमें इधर उधर भागने लगी ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें नवां अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ ४६९ ॥

: 10 :

संजय उवाच

श्रुतकर्मा महाराज चित्रसेनं महीपतिम् ।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले- हे महाराज धृतराष्ट्र ! समरमें क्रुद्ध होकर श्रुतकर्माने राजा चित्रसेनके शरीरमें पचास तेज बाण मारे ॥ १ ॥

अभिसारस्तु तं राजा नवभिर्निशितैः शरैः ।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ २ ॥

हे राजन् ! फिर अभिसार देशके राजा चित्रसेनने श्रुतकर्माके शरीरमें नौ तेज बाण मारे और पांच बाणोंसे उसके सारथिको भी व्यथित किया ॥ २ ॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समर्दयत् ॥ ३ ॥

फिर श्रुतकर्माने क्रोध करके सेनाके अग्रभागपर चित्रसेनके मर्म स्थानपर एक तेज मुखवाले नाराच बाणसे आघात किया ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः ।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥ ४ ॥

इतने समयमें महायशस्वी श्रुतकीर्तिने राजा चित्रसेनको नव्वे बाणोंसे छा दिया ॥ ४ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ५ ॥

अनन्तर महारथी चित्रसेनने चैतन्य होकर एक भल्लबाणसे उनका धनुष काट दिया और उनके शरीरमें सात बाण मारकर घायल किया ॥ ५ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषणम् ।
चित्ररूपतरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ६ ॥

श्रुतकर्माने शत्रुवेगनाशन दूसरा सुवर्णभूषित धनुष लेकर चित्रसेनको अपने बाणोंके ओघसे बिचित्र रूपवाला बना दिया ॥ ६ ॥

स शरैश्चित्रितो राजंश्चित्रमाल्यधरो युवा ।
युवेव समशोभत्स गोष्ठीमध्ये स्वलंकृतः ॥ ७ ॥

राजन् ! उन बाणोंके लगनेसे विचित्रमालाधारी तरुण राजा चित्रसेनकी ऐसी शोभा बढी, जैसे गौओंके समूहमें सुवर्णादिसे अलंकृत सींगवाले जवान सांडकी शोभा होती है ॥ ७ ॥

श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
बिभेद समरे क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

फिर उसने क्रोध करके युद्धमें राजा श्रुतकर्माके हृदयमें बडे वेगसे एक तीक्ष्ण नाराच बाण मारा और कहा कि खडा रह, खडा रह ॥ ८ ॥

श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्दितः ।
सुस्राव रुधिरं भूरि गैरिकाम्भ इवाचलः ॥ ९ ॥

उस नाराच बाणके लगनेसे घायल हुए राजा श्रुतकर्माके शरीरसे इस प्रकार समरमें रुधिर बहने लगा जैसे पर्वतसे गेरूके पनारे बहते हैं ॥ ९ ॥

ततः स रुधिराक्ताङ्गो रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ॥ १० ॥

राजन् ! उस रुधिरसे भरे हुए अंगोंवाले राजा श्रुतकर्माकी उस रुधिरसे समरमें ऐसी शोभा बढी, जैसे फूले हुए कचनारकी ॥ १० ॥

श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रूणां समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवरणं कृत्वा द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ११ ॥

राजन् ! फिर शत्रुओंसे आक्रमित श्रुतकर्माने क्रोध करके चित्रसेनके शत्रुनिवारक धनुषके दो टुकडे कर दिये ॥ ११ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां त्रिभिः शतैः ।
विव्याध भरतश्रेष्ठ श्रुतकर्मा महायशाः ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! धनुष कट जानेपर महायशस्वी श्रुतकर्माने तीन सौ नाराच बाणोंसे चित्रसेनको विद्ध किया ॥ १२ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन भृशं तीक्ष्णेन सत्वरः ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

फिर दूसरे अत्यंत तेज भल्लबाणसे शीघ्रतासे शिरस्त्राणके सहित महात्मा चित्रसेनके शिरको काट दिया ॥ १३ ॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ सुमहच्चित्रवर्मणः ।
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतले ॥ १४ ॥

राजा चित्रसेनका वह महान् विचित्र कवचवाला शिर इस प्रकार कट कर पृथ्वीपर गिर पडा, मानो दैवेच्छासे स्वर्गमेंसे चन्द्रमा टूटकर पृथ्वीमें गिरा है ॥ १४ ॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा अभिसारं च मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥ १५ ॥

मारिष ! अभिसारदेशके राजा चित्रसेनको मारा हुआ देख उसकी सेना बडे वेगसे इधर उधर भागी ॥ १५ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ।
द्रावयन्निषुभिस्तूर्णं श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥ १६ ॥

अनन्तर महाधनुर्धर राजा श्रुतकर्मा क्रोध करके अपने बाणोंसे उस भागती हुई सेनाको इस प्रकार मारने लगे, जैसे प्रलय समयमें यमराज क्रोध करके सब प्राणियोंका नाश करता है । उस सेनाको अपने बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक खदेडते हुए श्रुतकर्मा शोभायमान दीखते थे ॥ १६ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः ।
सारथिं त्रिभिरानर्च्छद् ध्वजमेकेषुणा ततः ॥ १७ ॥

अनन्तर प्रतिविन्ध्यने चित्रके शरीरमें तेज चलनेवाले पांच बाण मारकर उसको घायल किया, तीन बाणोंसे उसके सारथिको विद्ध किया और एक बाणसे उसके ध्वजाको काट कर गिरा दिया ॥ १७ ॥

तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्दयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः शीलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ १८ ॥

राजा चित्रने भी प्रतिविन्ध्यके दोनों हाथ और हृदयमें सुवर्णभूपित, शीलापर धोए हुए, कंक और मयूरके पंखोंसे युक्त तेज नौ भल्ल बाण मारकर उसको घायल किया ॥ १८ ॥

प्रतिविन्ध्यो धनुस्तस्य छित्त्वा भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं समप्रजाग्निवान् ॥ १९ ॥

हे भारत ! फिर प्रतिविन्ध्यने अपने बाणोंसे चित्रके धनुषको काट दिया, और पांच तीक्ष्ण बाण उसके हृदयमें मारकर घायल किया ॥ १९ ॥

ततः शक्तिं महाराज हेमदण्डां दुरासदाम् ।
प्राहिणोत्तव पुत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥ २० ॥

हे राजेन्द्र ! तब चित्रने सोनेके दण्डसे भूपित, घोर, आगकी ज्वालाके समान एक दूर्धर शक्ति तुम्हारे पुत्र पर चलायी ॥ २० ॥

तामापतन्तीं सहसा शक्तिमुल्कामिवाम्बरात् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥ २१ ॥

समरमें प्रतिविन्ध्यने हंसकर उस आकाशसे उल्काके समान सहसा आती हुई शक्तिको मार्गहीमें काटकर दो टुकडे कर दिये ॥ २१ ॥

सा पपात तदा छिन्ना प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।
युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाशनिः ॥ २२ ॥

वह शक्ति प्रतिविन्ध्यके तीक्ष्ण बाणोंसे कटकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरी, जैसे प्रलयकालमें सब प्रजाको डराता हुआ वज्र गिरता है ॥ २२ ॥

शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम् ।
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम् ॥ २३ ॥

उस शक्तिको नष्ट हुई देख चित्रने एक सोनेके तारोंसे विभूषित हुई भारी गदा हाथमें लेकर उसे प्रतिविन्ध्यकी ओर चलाई ॥ २३ ॥

स जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे ।
रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २४ ॥

महायुद्धमें उस गदाने प्रतिविन्ध्यके घोडों और सारथिको मार डाला और रथको भी चूर्ण करके वह बडे वेगसे भूमिमें प्रविष्ट हो गयी ॥ २४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णघण्टामलंकृताम् ॥ २५ ॥

भारत ! उसी समय प्रतिविन्ध्य अपने रथसे कूदे और एक सोनेके घण्टोंसे भूषित शक्ति चित्रके ऊपर मारी ॥ २५ ॥

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन्महामनाः ।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय भारत ॥ २६ ॥

राजन् ! भारत ! तब महात्मा चित्रने अपनी ओर आती हुई उस शक्तिको हाथसे पकड लिया और फिर उसीको प्रतिविन्ध्यकी ओर चलाई ॥ २६ ॥

समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिताभासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥ २७ ॥

वह अत्यन्त दीप्तिमती शक्ति युद्धमें वीर प्रतिविन्ध्यको लग गयी और उसके दहिने हाथको छेद् कर पृथ्वी पर गिर गई, वह जहां गिरी उस भूमिको बिजलीके समान प्रकाशित करने लगी ॥ २७ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकाम्यया ॥ २८ ॥

हे राजन् ! अनन्तर अत्यंत क्रुद्ध होकर प्रतिविन्ध्यने चित्रके मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर सुवर्णभूषित एक तोमर चलाया ॥ २८ ॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ २९ ॥

वह तोमर चित्रके देह कवच सहित हृदयको छेदकर तुरंत ही इस प्रकार पृथ्वीमें घुस गया, जैसे कोई बडा सर्प तालावको छेदकर पातालको चला जाता है ॥ २९ ॥

स पपात तदा राजंस्तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसंनिभौ ॥ ३० ॥

राजन् ! तोमरके बडे आघातसे वह राजा अपने परिघके समान पुष्ट और विशाल हाथोंको फैलाकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ३० ॥

×

चित्रं संप्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥ ३१ ॥

चित्रको मारा गया देख युद्धमें शोभित तुम्हारे वीर योद्धा सब ओरसे प्रतिविन्ध्यकी ओर वेगसे दौडे ॥ ३१ ॥

सृजन्तो विविधान्बाणाञ्शतघ्नीश्च सकिङ्किणीः ।
त एनं छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ ३२ ॥

वे लोग चारों ओरसे प्रतिविन्ध्यके ऊपर अनेक प्रकारके बाण और घंटियों सहित शतघ्नी आदि अनेक शस्त्र चलाने लगे, उन सबसे प्रतिविन्ध्य ऐसे छिप गये, जैसे काले मेघोंसे सूर्य छिप जाते हैं ॥ ३२ ॥

तानपास्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत्तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३३ ॥

उन सबको युद्धमें महाबाहु प्रतिविन्ध्यने अपने बाणोंकी वर्षासे नष्ट करके, तुम्हारी सेनाको इस प्रकार भगा दिया, जैसे राक्षसोंकी सेनाको वज्रधारी इन्द्र भगाते हैं ॥ ३३ ॥

ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्रकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ॥ ३४ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सेना समरमें पाण्डवोंकी मार खाकर ऐसे इधर उधर भागी, जैसे वायुके लगनेसे मेघ बिखर जाते हैं ॥ ३४ ॥

विप्रद्रुते बले तस्मिन्वध्यमाने समन्ततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात्तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥ ३५ ॥

जब उनसे वह सब सेना मरने और चारों ओर भागने लगी, तब अकेले अश्वत्थामा शीघ्रही महाबलवान् भीमसेनकी ओर आक्रमणके लिये दौडे ॥ ३५ ॥

ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरभूत् ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ५०५ ॥

तब अश्वत्थामा और भीमसेनका इस प्रकार सहसा युद्ध होने लगा, जैसे देवासुर युद्धमें वृत्रासुर और इन्द्रका हुआ था ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें दसवां अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ५०५ ॥

: ११ :

संजय उवाच

भीमसेनं ततो द्रौणी राजन्विव्याध पत्रिणा ।
त्वरया परया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! उस युद्धमें अत्यंत शीघ्रतासे अपनी हाथकी कुशलता दिखलाकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भीमसेनको एक बाणसे विद्ध किया ॥ १ ॥

अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः ।
सर्वमर्माणि संप्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥ २ ॥

फिर शीघ्रतासे कुशलतापूर्ण अस्त्र चलानेवाले योद्धाके समान मर्म जाननेवाले अश्वत्थामाने भीमके शरीरके सब मर्मोंमें उनको निशाना करके नब्बे तेज बाण मारे ॥ २ ॥

भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः ।
रराज समरे राजन्रश्मिवानिव भास्करः ॥ ३ ॥

हे राजन् ! द्रोणपुत्रके उन तीक्ष्ण बाणोंसे छा गये हुए भीमसेन उस रणभूमिमें किरणसहित सूर्यके समान शोभित होने लगे ॥ ३ ॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४ ॥

फिर पाण्डुपुत्र भीमसेनने भी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको एक सहस्र बाण अच्छी तरहसे चलाकर आच्छादित किया और वे सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ४ ॥

शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्यहनद्राजन्नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५ ॥

हे राजन् ! अश्वत्थामाने अपने बाणोंसे उन सब बाणोंका निवारण करके पाण्डुपुत्र भीमसेनके माथेमें युद्धमें हंसते हुए एक नाराच बाण मारा ॥ ५ ॥

ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पाण्डवः ।
यथा शृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥ ६ ॥

उस माथेमें लगे हुए बाणको भीमसेनने इस प्रकार धारण किया, जैसे मतवाला गैंडा वनमें सींगको धारण करता है ॥ ६ ॥

ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥ ७ ॥

फिर पराक्रमी भीमने युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करते हुए अश्वत्थामाके माथेमें भी हंसते हुए तीन नाराच बाण मारे ॥ ७ ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणः स व्यरोचत ।
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥ ८ ॥

उन तीन बाणोंके माथेमें लगनेसे वह ब्राह्मण अश्वत्थामा इस प्रकार शोभित हुआ, जैसे वर्षा कालमें जलसे भींगा हुआ तीन शिखरवाला उत्तम पर्वत शोभित होता है ॥ ८ ॥

ततः शरशतैर्द्रौणिमर्दयामास पाण्डवः ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥ ९ ॥

फिर अश्वत्थामाको पाण्डुपुत्र भीमसेनने सैकड़ों बाणोंसे पीड़ित किया, परंतु उन बाणोंके लगनेसे वह इस प्रकार कम्पित नहीं हो सका जैसे हवा लगनेसे पर्वत ॥ ९ ॥

तथैव पाण्डवं युद्धे द्रौणिः शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १० ॥

इसी प्रकार हर्षमें भरा हुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी सैकड़ों तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करके पाण्डुपुत्र भीमसेनको युद्धमें इस प्रकार विचलित नहीं कर सके, जैसे जलकी धारासे पर्वत नहीं हिलता है ॥ १० ॥

तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथचर्यागतौ शूरौ शुशुभाते रणोत्कटौ ॥ ११ ॥

वे दोनों रणमत्त और महारथी शूरवीर उत्तम रथोंपर बैठकर परस्पर घोर बाणोंकी वर्षा करके आच्छादित करते हुए, युद्धमें शोभित होने लगे ॥ ११ ॥

आदित्याविव संदीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः ॥ १२ ॥

उस समय एक दूसरेको अपने उत्तम बाणोंसे तपानेवाले उन दोनोंकी ऐसी शोभा बढ़ी, जैसे प्रलयकालमें सब लोकोंको नष्ट करनेके लिये उगे हुए दो तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंसे परस्पर ताप दे रहे हैं ॥ १२ ॥

कृतप्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ च महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्नं चक्राते तावभीतवत् ॥ १३ ॥

वे दोनों बेडर होकर महायुद्धमें एक दूसरेका बदला लेनेका प्रयत्न करते हुए, परस्पर घात-प्रतिघात करके, अपने अपने विजयका यत्न करने लगे ॥ १३ ॥

व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ महारथौ ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापव्यात्तौ भयानकौ ॥ १४ ॥

वे दोनों महारथी युद्धमें दो व्याघ्रोंके समान घूमने लगे । धनुष उन व्याघ्रोंके मुख और बाण उनकी दाढें थीं । वे दोनों दुर्धर्ष और भयानक दीखते थे ॥ १४ ॥

अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः ।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥ १५ ॥

किसी समय वे दोनों सब ओरसे बाणोंसे ऐसे छिपकर अदृश्य हो जाते थे, जैसे आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य मेघोंके समूहोंसे आच्छादित हो जाते हैं ॥ १५ ॥

प्रकाशौ च मुहूर्तेन तत्रैवास्तामरिंदमौ ।
विमुक्तौ मेघजालेन शशिसूर्यौ यथा दिवि । ॥ १६ ॥

फिर किसी समय वे दोनों शत्रुदमन वीर बाणोंके जालसे इस प्रकार बाहर निकलकर प्रकाशित होने लगते थे, जैसे मेघोंसे निकलकर आकाशमें चंद्र और सूर्य ॥ १६ ॥

अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम् ।
किरञ्शरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम् ॥ १७ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भीमको अपने बाईं ओर कर लिया और उनके ऊपर इस प्रकार घोर सैकडों बाणोंकी वर्षा करके अच्छादित करने लगा, जैसे पर्वतको मेघ जलधाराओंसे ढक देता है ॥ १७ ॥

न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम् ।
प्रतिचक्रे च तं राजन्पाण्डवोऽप्यपसव्यतः ॥ १८ ॥

परन्तु भीम अपने शत्रुकी इस विजय सूचक लक्षणको न सह सके और राजन् ! पाण्डुपुत्र भीमने भी उसको दाहिने ओर कर लिया ॥ १८ ॥

मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ।
बभूव तुमुलं युद्धं तयोस्तत्र महामृधे ॥ १९ ॥

फिर ये दोनों अनेक प्रकारकी गत-प्रत्यागत मण्डलोंकी गतियोंसे घुमने लगे, और उस महायुद्धमें उन दोनोंका तुमुल युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥

चरित्वा विविधान्मार्गान्मण्डलं स्थानमेव च ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २० ॥

अनेक प्रकारके मार्गोंसे मण्डल और स्थान घूमकर, वे धनुषकी प्रत्यञ्चा पूर्णरूपसे खींचकर छोडे हुए बाणोंसे परस्पर विद्ध करने लगे ॥ २० ॥

अन्योन्यस्य वधे यत्नं चक्रतुस्तौ महारथौ ।
ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे ॥ २१ ॥

वे दोनों महारथी एक दूसरेको मारनेका यत्न करने लगे और दोनोंही युद्धमें एक दूसरेको विरथ करनेकी इच्छा करने लगे ॥ २१ ॥

ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ।
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽस्य पाण्डवः　　॥ २२ ॥

तब महारथी अश्वत्थामाने युद्धमें महान् दिव्य अस्त्र प्रकट किये। पाण्डुपुत्र भीमसेननेभी समरमें अपने अस्त्रोंसे अश्वत्थामाके अस्त्रोंको नष्ट कर दिया ॥ २२ ॥

ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्तत ।
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे अभूत्　　॥ २३ ॥

महाराज ! तब पुनः दोनोंमें घोर अस्त्र युद्ध होने लगा। उन दोनोंके अस्त्रोंका, आकाशमें प्रजाओंके संहारके लिये ग्रहोंके घोर युद्धके समान युद्ध होने लगा ॥ २३ ॥

ते बाणाः समसज्जन्त क्षिप्तास्ताभ्यां तु भारत ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तच्च सैन्यं समन्ततः　　॥ २४ ॥

भारत ! उस समय उन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए बाणोंके परस्पर घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होनेसे दस दिशाओंमें प्रकाश दीखने लगा और इससे तुम्हारी सेनाभी चारों ओरसे प्रकाशित हुई ॥ २४ ॥

बाणसंघावृतं घोरमाकाशं समपद्यत ।
उल्कापातकृतं यद्वत्प्रजानां संक्षये नृप　　॥ २५ ॥

हे नृप ! उन बाणसमूहोंसे व्याप्त हुआ आकाश उसी प्रकार भयंकर दीखने लगा, जिसप्रकार प्रजाओंके संहारके समयमें अनेक उल्कापातोंसे दीखता है ॥ २५ ॥

बाणाभिघातात्संजज्ञे तत्र भारत पावकः ।
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिः सोऽदहद्वाहिनीद्वयम्　　॥ २६ ॥

हे भारत ! वहां उनके बाणोंके परस्पर घिसनेसे ज्वाला और स्फुलिंगोंसे युक्त अग्नि निकलकर दोनों सेनाओंको जलाने लगी ॥ २६ ॥

तत्र सिद्धा महाराज संपतन्तोऽब्रुवन्वचः ।
अति युद्धानि सर्वाणि युद्धमेतत्ततोऽधिकम्　　॥ २७ ॥

महाराज ! सब सिद्ध लोग वहां आकर कहने लगे कि, यह युद्ध सब महायुद्धोंमें बढकर है ॥ २७ ॥

सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
नैतादृशं पुनर्युद्धं न भूतं न भविष्यति　　॥ २८ ॥

अन्य सब युद्ध उसकी सोलहवीं कलामें भी योग्य नहीं है। ऐसा युद्ध कभी हुआ नहीं और फिर कभी न होगा ॥ २८ ॥

अहो ज्ञानेन संयुक्तावुभौ चोग्रपराक्रमौ ।
अहो भीमे बलं भीममेतयोश्च कृतास्त्रता ॥ २९ ॥

ये दोनों ज्ञानसंपन्न और अत्यंत पराक्रमी हैं, अहो, भीमसेन बलवान् हैं । इन दोनोंकी अस्त्रनिपुणता अद्भुत है ॥ २९ ॥

अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः ।
स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ ॥ ३० ॥

अहो, इनके वीर्यकी श्रेष्ठता विलक्षण है, इनका युद्धकौशल्य सुंदर है। ये दोनों युद्धमें यमराज और कालके समान जान पडते हैं ॥ ३० ॥

रुद्रौ द्वाविव संभूतौ यथा द्वाविव भास्करौ ।
यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपाविमौ रणे ॥ ३१ ॥

ये भयंकर रूपधारी दोनों पुरुषसिंह युद्धमें दो रुद्र, दो सूर्य अथवा दो यमराजके समान प्रकट हुए हैं ॥ ३१ ॥

श्रूयन्ते स्म तदा वाचः सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ।
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयोर्मृधे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार सिद्धोंकी वाणी बारबार सुननेमें आने लगी। तब इन दोनोंके अद्भुत और अचिन्त्य कर्मको युद्धमें देखकर युद्ध देखनेके लिये आये हुए देवता लोग हर्षसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३२॥

तौ शूरौ समरे राजन्परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदैक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! परस्पर अतिक्रम करनेवाले वे दोनों शूरवीर समरमें एक दूसरेकी ओर आंख फैलाकर और क्रोधमें भरकर देखने लगे ॥ ३३ ॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात्प्रस्फुरिताधरौ ।
क्रोधात्संदष्टदशनौ संदष्टदशनच्छदौ ॥ ३४ ॥

क्रोधके मारे उन दोनोंके नेत्र लाल हो गये, क्रोधसे उनके ओठ फरकने लगे, और क्रोधसे दोनों दांत और ओठ चबाने लगे ॥ ३४ ॥

अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ ।
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥ ३५ ॥

वे दोनों महारथी धनुष शस्त्ररूपी बिजलीसे प्रकाशित होनेवाले बादलोंके समान बाणोंकी जल-वर्षासे समरमें परस्पर आच्छादित करने लगे ॥ ३५ ॥

तावन्योन्यं ध्वजवै विद्ध्वा सारथी च महारथौ ।
अन्योन्यस्य हयान्विद्ध्वा बिभिदाते परस्परम् ॥ ३६ ॥

उन दोनों महारथियोंने एक दूसरेके ध्वज, सारथि और घोडोंको विद्ध किया, फिर वे परस्पर क्षतविक्षत करने लगे ॥ ३६ ॥

ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे ।
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥ ३७ ॥

फिर उस महायुद्धमें दोनोंने क्रोध करके एक दूसरेके वधकी इच्छासे शीघ्रही दो बाण चलाये ॥ ३७ ॥

तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे ।
आजघ्नाते समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥ ३८ ॥

हे महाराज ! वे दोनों वज्रके वेगके समान दुर्जय बाण, सेनाके अग्रभागपर प्रकाशित होकर उन दोनोंके पास पहुंचे और उन्होंने उन दोनोंको घायल किया ॥ ३८ ॥

तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ ।
निपेततुर्महावीरौ स्वरथोपस्थयोस्तदा ॥ ३९ ॥

परस्पर वेगसे छूटे हुए उन बाणोंसे वे दोनों महावीर अत्यंत घायल हो गये और अपने रथमें गिर पडे ॥ ३९ ॥

ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम् ।
अपोवाह रणाद्राजन्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ४० ॥

राजन् ! अब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सारथिने देखा कि, अश्वत्थामा मूर्छित हुआ है, तब सब योद्धाओंके देखते उसके रथको युद्धसे हटा लिया ॥ ४० ॥

तथैव पाण्डवं राजन्विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ५४६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार शत्रुतापन पाण्डुपुत्र भीमसेनको वारंवार अत्यन्त विह्वल होते हुए देखकर, उसके सारथि विशोकने उसके रथको युद्धभूमिसे हटा लिया ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ५४६ ॥

: १२ :

धृतराष्ट्र उवाच

यथा संशप्तकैः सार्धमर्जुनस्याभवद्रणः ।
अन्येषां च मदीयानां पाण्डवैस्तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! संशप्तकोंके साथ अर्जुनका युद्ध किस प्रकार हुआ ? तथा पाण्डवोंके साथ और सब राजाओंका युद्ध किस प्रकार हुआ, सो हमसे कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्यथावृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम ।
वीराणां शत्रुभिः सार्धं देहपाप्मप्रणाशनम् ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जिस प्रकार उन कौरव वीरोंका शत्रुओंके साथ देह, प्राण और पातकोंका नाशक घोर युद्ध हुआ, वह सब कह रहा हूं, सुनो ॥ २ ॥

पार्थः संशप्तकगणं प्रविश्यार्णवसंनिभम् ।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ॥ ३ ॥

शत्रुनाशन अर्जुनने समुद्रके समान संशप्तक सेनामें इस प्रकार प्रवेश किया और शत्रुओंको व्याकुल कर डाला, जैसे समुद्रमें वायु वेगसे प्रवेश करके समुद्रको क्षुब्ध कर देती है ॥३॥

शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनंजयः ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ।
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव ॥ ४ ॥

अर्जुनने अपने तेज भल्ल बाणोंसे अनेक वीरोंके पूर्ण चन्द्रमाके समान सुंदर मुखवाले तथा अच्छी भ्रुकुटी, नेत्र और दांतवाले शिर काटकर शीघ्रही पृथ्वीपर गिरा दिये । शिरोंसे वह भूमि इस प्रकार भर गई, मानों विना नालके कमल बिछाये हैं ॥ ४ ॥

सुवृत्तानायतान्पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान् ।
सायुधान्सतनुत्राणान्पञ्चास्योरगसंनिभान् ।
बाहून्क्षुरैरमित्राणां विचकर्तार्जुनो रणे ॥ ५ ॥

अर्जुनने युद्धमें अपने क्षुर बाणोंसे देह–कवच और शस्त्रोंके सहित शत्रुओंके हाथ जो गोल, लंबे, पुष्ट तथा चंदन अगुरु लगाये हुए थे, काटकर पृथ्वीमें गिरा दिये । वे हाथ पांच मुखवाले सापोंके समान दीखते थे ॥ ५ ॥

*

धुर्यान्धुर्यतरान्सूतान्ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीनरत्नीनलङ्कृद्भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ६ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने शत्रुओंके रथोंमें जुते हुए घोडे, सारथि, धनुष, बाण और ध्वजाओंको तथा योद्धाओंके रत्नभूषित हाथोंको अपने भल्ल बाणोंसे काट डाला ॥ ६ ॥

द्विपान्हयान्रथांश्चैव सारोहानर्जुनो रणे ।
शरैरनेकसाहस्रै राजन्निन्ये यमक्षयम् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! अर्जुनने कई हजार बाण मारकर हाथी, घोडे, रथ और उनके सवारोंको यमलोकको भेजा ॥ ७ ॥

तं प्रवीरं प्रतीयाता नर्दमाना इवर्षभाः ।
वाशितार्थमभिक्रुद्धा हुंकृत्वा चाभिदुद्रुवुः ।
निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृङ्गैरिवर्षभाः ॥ ८ ॥

अनन्तर अनेक वीर अत्यंत क्रोध करके गायके लिये लडनेवाले सांढोंके समान गर्जन और हुंकार करके वीर श्रेष्ठ अर्जुनपर आक्रमणके लिये दौडे, और सांड जैसे एक दूसरेको सींगोंसे मारते हैं, वैसेही अपने ऊपर प्रहार करनेवाले अर्जुनको बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

तस्य तेषां च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ९ ॥

तब अर्जुन और संशप्तकोंका वह ऐसा घोर युद्ध हुआ कि, जिसको देखकर रोमाञ्च खडे होने लगे । यह ऐसा युद्ध हुआ, जैसा त्रैलोक्य विजयके लिये वज्रधारी इन्द्रके साथ राक्षसोंका हुआ था ॥ ९ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विद्ध्वा प्राणान्जहार सः ॥ १० ॥

अर्जुनने चारों ओरसे अपने अस्त्रोंसे शत्रुओंके अस्त्रोंको निवारण करके, शीघ्रही अनेक बाणोंसे उनको विद्ध करके, उन सबके प्राण नष्ट किये ॥ १० ॥

छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान्हतयोधाश्वसारथीन् ।
विध्वस्तायुधतूणीरान्समुन्मथितकेतनान् ॥ ११ ॥

अर्जुनने संशप्तक लोगोंके त्रिवेणु, पहिये और धुरोंको छिन्न किया; योद्धा, घोडे और सारथियोंको मार दिया; शस्त्र और तूणीर नष्ट किये; ध्वजाओंके टुकडे कर दिये ॥ ११ ॥

संछिन्नयोक्त्ररश्मीकान्विचित्रवेणून्विकूबरान् ।
विध्वस्तबन्धुरयुगान्विशस्तायुधमण्डलान् ।
रथान्विशकलीकुर्वन्महाभ्राणीव मारुतः ॥ १२ ॥

जोत और लगाम काट दिये; त्रिवेणू और कूबरोंका नाश किया; रथतल्प और जूए नष्ट किये; शस्त्र रखनेके स्थानोंके टुकडे कर दिये; जैसे वायु बडे बडे मेघोंको छिन्नभिन्न कर देती है, वैसे ही अर्जुनने रथोंके टुकडे कर दिये ॥ १२ ॥

विस्मापयन्प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम् ।
महारथसहस्रस्य समं कर्मार्जुनोऽकरोत् ॥ १३ ॥

अर्जुनने सब योद्धाओंको आश्चर्य देकर अकेले ही हजारों महारथियोंके समान प्रेक्षणीय कर्म किया, यह शत्रुओंका भय वृद्धिंगत करनेवाला था ॥ १३ ॥

सिद्धदेवर्षिसंघाश्च चारणाश्चैव तुष्टुवुः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ।
केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाक्चाशरीरिणी ॥ १४ ॥

सिद्ध और देवर्षियोंके समूह और चारण भी अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, देवताओं नगाडे बजाने लगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके शिरपर फूल वर्षाने लगे। उस समय आकाशवाणीने यह कहा ॥ १४ ॥

चन्द्रार्कानिलवह्नीनां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः ।
यौ सदा बिभ्रतुर्वीरौ ताविमौ केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥

जो चंद्रमा, सूर्य, वायु और अग्निकी कांति, दीप्ति, बल और तेज सदा धारण करते हैं, वे ही अब ये दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं ॥ १५ ॥

ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ।
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणावुभौ ॥ १६ ॥

ये एक रथपर बैठे हुए दोनों ब्रह्मा और शिवके समान अजेय और बडे वीर हैं, सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ ये दोनों नर और नारायणके अवतार हैं ॥ १६ ॥

इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ।
अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद्रणे ॥ १७ ॥

हे भारत ! यह अत्यंत आश्चर्यजनक बात सुन और देखकर अश्वत्थामा चैतन्य होकर समरमें अर्जुन और श्रीकृष्णकी ओर दौडे ॥ १७ ॥

अथ पाण्डवमस्यन्तं यमकालान्तकाञ्शरान् ।
सेषुणा पाणिनाहूय हसन्द्रौणिरथाब्रवीत् ॥ १८ ॥

फिर एक बाण हाथमें लेकर, बुलाकर, हंसते हुए अश्वत्थामा यम और कालके समान विनाश करनेवाले बाणोंको छोडनेवाले अर्जुनसे ऐसे बोले ॥ १८ ॥

यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिवातिथिम् ।
ततः सर्वात्मनाद्य त्वं युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ॥ १९ ॥

हे वीर अर्जुन ! मैं यहां अतिथिरूपसे तुम्हारे पास आया हूं, तुम यदि हमें योग्य अतिथि मानते हो, तो प्रसन्न होकर आज युद्ध भिक्षा हमें देकर हमारा आतिथ्य करो ॥ १९ ॥

एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ।
बहु मेनेऽर्जुनोऽऽत्मानमिदं चाह जनार्दनम् ॥ २० ॥

आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके ऐसे युद्धकी इच्छासे बुलाये जानेवाले वचन सुन, अर्जुनने अपनेको धन्य माना; और श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ २० ॥

संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ।
यदत्रानन्तरं प्राप्तं प्रशाधि त्वं महाभुज ॥ २१ ॥

हे महाभुज माधव ! हमने संशप्तकोंके मारनेकी प्रतिज्ञा की है और अब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा हमें युद्ध करनेको पुकारते हैं, इस समय जो पहले हमें करने योग्य हो, सो आप कहिये ॥ २१ ॥

एवमुक्तोऽवहत्पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिकम् ।
जैत्रेण विधिनाहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥ २२ ॥

अर्जुनके ऐसे वचन सुन श्रीकृष्णने वीरविधिसे युद्धके लिये आहूत होनेके कारण, इस प्रकार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास विजयी अर्जुनको रथसे पहुंचाया, जैसे वैदिक विधिसे आवाहित इन्द्रको लेकर वायु यज्ञकी ओर जाती है ॥ २२ ॥

तमामन्त्र्यैकमनसा केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन्स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥ २३ ॥

अनन्तर उनके पास जाकर श्रीकृष्णने स्थिरचित्त अश्वत्थामाको पुकारकर कहा— हे आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा ! अब तुम सावधान होकर शीघ्र युद्ध करो और हमारे बाणोंको भी सहन करो ॥ २३ ॥

निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ॥ २४ ॥

इस समय अपने स्वामीके अन्नको सफल करनेका उनपर निर्भर रहनेवालोंके लिये यही समय है । ब्राह्मणोंका विचार बहुत सूक्ष्म है; और क्षत्रियोंका जीतना हारना स्थूल विचार है ॥ २४ ॥

यां न संक्षमसे मोहाद्दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन्युध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वाद्य पाण्डवम् ॥ २५ ॥

अर्जुनको मोहवश होकर पुकारके उससे दिव्य सत्कारकी इच्छा कर रहे हो, वह तुम सहन नहीं करोगे । अब इससे पानेकी इच्छासे आज तुम स्थिर होकर पाण्डुपुत्रसे युद्ध करो ॥ २५ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः ।
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥ २६ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन ब्राह्मणश्रेष्ठ अश्वत्थामाने बहुत अच्छा, ऐसा कहकर, श्रीकृष्णको साठ और अर्जुनको तीन नाराच बाण मारकर विद्ध किया ॥ २६ ॥

तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्भल्लैः शरासनम् ।
चिच्छेदाथान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥ २७ ॥

अर्जुनने अत्यंत क्रोध करके तीन भल्ल बाणोंसे अश्वत्थामाका धनुष काट दिया, अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने दूसरा घोर धनुष लेकर ॥ २७ ॥

सज्यं कृत्वा निमेषात्तद्विव्याधार्जुनकेशवौ ।
त्रिभिः शरैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥ २८ ॥

एक पलभरमें उसपर रोदा चढाया; फिर तीन सौ बाण श्रीकृष्णको और एक सहस्र बाण अर्जुनको मारकर उनको विद्ध किया ॥ २८ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ॥ २९ ॥

फिर अश्वत्थामाने प्रयत्नसे अर्जुनको युद्धमें रोककर सहस्रों, लक्षों और अरबों बाण अर्जुनके ऊपर छोडे ॥ २९ ॥

इषुधेर्धनुषो ज्याया अङ्गुलीभ्यश्च मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥ ३० ॥
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च ।
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३१ ॥

मारिष ! तब ब्रह्मवादी अश्वत्थामाके भाते, धनुष, रोदे, अंगुलियां, बाहु, हाथ, छाती, मुंह, नाक, नेत्र, कान, शिर, रोम, कवच, रथ, ध्वजा और सब अङ्गोंसे बाण छूटने लगे ॥ ३०–३१ ॥

शरजालेन महता विद्ध्वा केशवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिस्वनः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार अपने बाणोंके महान् समूहोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीरको पीडित करके प्रसन्न हुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा बडे बादलोंके शब्दके समान गर्जना करने लगे ॥ ३२ ॥

तस्य नानदतः श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत् ।
पश्य माधव दौरात्म्यं द्रोणपुत्रस्य मां प्रति ॥ ३३ ॥

उसे गर्जते हुए सुन कर पाण्डुपुत्र अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! देखिये, द्रोण पुत्र हमसे कैसी दुष्टता करते हैं ॥ ३३ ॥

वधप्राप्तौ मन्यते नौ प्रवेश्य शरवेश्मनि ।
एषोऽस्य हन्मि संकल्पं शिक्षया च बलेन च ॥ ३४ ॥

हम दोनोंको बाणोंके बीचमें जान कर, मारा हुआ मानता है । हम अपनी विद्या और बलसे इसके इस मनोरथको नष्ट करते हैं ॥ ३४ ॥

अश्वत्थाम्नः शरानस्तांश्छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा ।
व्यधमद्भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ॥ ३५ ॥

ऐसा कह कर भरतश्रेष्ठ अर्जुनने अश्वत्थामाके धनुपसे छूटे हुए बाणोंमेंसे हरेकके तीन तीन टुकडे कर दिये; फिर कुहरको दूर करनेवाले वायुके समान अश्वत्थामाकी बाणवर्षाको निवारण किया ॥ ३५ ॥

ततः संशप्तकान्भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥ ३६ ॥

फिर पाण्डुपुत्र अर्जुन संशप्तक वीरोंके घोडे, सारथि, रथ, हाथी, ध्वजा और पैदल सैनिकोंको अपने उग्र बाणोंसे मारने लगे ॥ ३६ ॥

ये ये ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपं यथा यथा ।
ते ते तत्तच्छरैर्व्याप्तं मेनिरेऽऽत्मानमेव च ॥ ३७ ॥

जितने वीर जिस रूपके उस समय वहां उस सेनामें दीखते थे, उन सबने अपने शरीरोंको बाणोंसे भरा हुआ माना ॥ ३७ ॥

ते गाण्डीवप्रणुदिता नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान्घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान्रणे ॥ ३८ ॥

अर्जुनकी गाण्डीव धनुपसे छूटे हुए विचित्र अनेक प्रकारके बाण युद्धमें एक कोससे भी दूर तक खडे हुए हाथी और वीरोंको मारने लगे ॥ ३८ ॥

भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदकर्षिणाम् ।
छिन्ना यथा परशुभिः प्रवृद्धाः शरदि द्रुमाः ॥ ३९ ॥

अर्जुनके भल्ल बाणोंसे कट कर मदकी धारा बहानेवाले हाथियोंके सूण्ड इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने लगे, जैसे वनके बीच शरद ऋतुमें कुल्हाडोंसे काटे जाने पर बडे बडे वृक्ष गिरते हैं ॥ ३९ ॥

पश्चात्तु शैलवत्पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः ।
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥ ४० ॥

सूंड कट जानेके पश्चात् वे पर्वतप्राय हाथी अपने सवारों सहित इस प्रकार गिरे, जैसे वज्रवाले इन्द्रका वज्र लगनेसे विदीर्ण हुए पर्वत गिरते हैं ॥ ४० ॥

गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
विनीतजवनान्युक्तानास्थितान्युद्धदुर्मदान् ॥ ४१ ॥
शरैर्विशदलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
अलंकृतानश्वसादीन्पत्तींश्चाहन्धनंजयः ॥ ४२ ॥

अर्जुनने उत्तम शिक्षित घोडोंसे और रणदुर्मद रथी वीरोंसे युक्त, गन्धर्व नगरोंके समान आकारवाले विधियुक्त सज्जित रथोंको अपने बाणोंसे काट दिया। अर्जुन शत्रुओंपर अपने बाणोंकी वर्षा करके, सजे घुडसवारों और पैदलोंको भी मार डालते थे ॥ ४१–४२ ॥

धनंजययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीव्रैः शरगभस्तिभिः ॥ ४३ ॥

अर्जुनरूपी प्रलयकालके सूर्यने बाणरूपी तीव्र किरणोंसे संशप्तक सैन्यरूपी महासमुद्रको जिसका शोषण करना दुष्कर था, उसे सुखा दिया ॥ ४३ ॥

पुनर्द्रौणिमहाशैलं नाराचैः सूर्यसंनिभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन्वज्रीव पर्वतम् ॥ ४४ ॥

फिर अश्वत्थामारूपी महान् शैलकी ओर इस प्रकार अर्जुनने अत्यंत वेगवान्, सूर्यके समान प्रखर नाराच बाण चलाये, जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वत पर वज्र चलाते हैं ॥ ४४ ॥

तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुर्नाशकद्योद्धुं पार्थस्तानन्तराच्छिनत् ॥ ४५ ॥

तब आचार्यपुत्र अश्वत्थामा क्रोध करके सारथि श्रीकृष्ण सहित अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छासे बाणोंके साथ आये, परंतु लड नहीं सके, कुन्तीपुत्र अर्जुनने उसके सब बाणोंको बीचमें ही काट दिया ॥ ४५ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः काण्डकोशानवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥ ४६ ॥

तब अश्वत्थामा अत्यंत क्रोध करके, गृहको आये हुए अभिरूप अतिथिके समान अर्जुनके ऊपर बाणोंका वर्षाव करने लगा ॥ ४६ ॥

अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपाङ्क्तेयमिव त्यक्त्वा दाता पाङ्क्तेयमर्थिनम् ॥ ४७ ॥

फिर संशप्तकोंको छोडकर अर्जुन इस प्रकार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ओर चले, जैसे दानी अपंक्त अतिथिको छोडकर पंक्ति योग्य याचक अतिथिकी ओर जाता है ॥ ४७ ॥

ततः समभवद्युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव　　॥ ४८ ॥

अनन्तर शुक्र और आंगिरसके समान सामर्थ्यवाले अर्जुन और अश्वत्थामाका इस प्रकार युद्ध हुआ, जैसे आकाशमें नक्षत्रके उद्देश्यसे शुक्र और बृहस्पतिका होता है ॥ ४८ ॥

संतापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव　　॥ ४९ ॥

वे दोनों तेजस्वी वीर अपनी बाणरूपी दीप्त किरणोंसे एक दूसरेको तपाने लगे, जैसे उन्मार्गस्थ दो ग्रह सब लोकोंको भय निर्माण करते हैं ॥ ४९ ॥

ततोऽविध्यद्भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम् ।
स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः　　॥ ५० ॥

फिर अर्जुनने अश्वत्थामाकी दोनों भौहोंके बीचमें एक नाराच बाण मारकर गम्भीर चोट की, उसके लगनेसे अश्वत्थामाकी ऐसी शोभा बढी जैसे ऊंची किरणवाले सूर्यकी ॥ ५० ॥

अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम् ।
सरश्मिजालनिकरौ युगान्तार्काविवासतुः　　॥ ५१ ॥

जब अनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन अश्वत्थामाके सैकडों बाणोंसे बहुत विद्ध हुए, तब वे दोनों प्रलयकालके किरणवाले प्रदीप्त दो सूर्योंकी भांति प्रकाशमान् दीखने लगे ॥ ५१ ॥

ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्रमवासृजद्वासुदेवाभिगुप्तः ।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत्पृषत्कैर्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः　　॥ ५२ ॥

फिर श्रीकृष्ण भगवानसे संरक्षित अर्जुनने अश्वत्थामा पर सब ओरसे शस्त्रोंकी धारा छोडनेवाले एक अस्त्र छोडा तथा वज्र, अग्नि और यमदंडके समान अनेक बाण द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके शरीरमें मारे ॥ ५२ ॥

स केशवं चार्जुनं चातितेजा विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा ।
बाणैः सुयुक्तैरतितीव्रवेगैर्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत　　॥ ५३ ॥

अनन्तर भयंकर कर्म करनेवाले महातेजस्वी अश्वत्थामाने सुयुक्त छोडे हुए अतिशीघ्र चलनेवाले बाण अर्जुन और श्रीकृष्णके शरीरकी सन्धियोंमें मारे; वे बाण ऐसे तेज थे, जिनके लगनेसे मृत्यु भी व्यथित हो सकती थी ॥ ५३ ॥

द्रौणेरिषूनर्जुनः संनिवार्य व्यायच्छतस्तद्द्विगुणैः सुपुङ्खैः ।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीरमावृत्य संशप्तकसैन्यमार्छत्　　॥ ५४ ॥

अर्जुनने अश्वत्थामाके सब बाणोंको अपने सुंदर पंखवाले दुगुने बाणोंसे निवारण करके, उनके घोडे, सारथि और ध्वजाके साथ उस एक वीरको छा दिया, और फिर वे संशप्तक वीरोंको पीडित करने लगे ॥ ५४ ॥

धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः पाणीन्भुजान्पाणिगतं च शस्त्रम् ।
छत्राणि केतूंस्तुरगानथैषां वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥ ५५ ॥
चर्माणि वर्माणि मनोरथांश्च प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव ।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां प्रमुक्तैर्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम् ॥ ५६ ॥

तब अर्जुनने अपने उत्तम रीतिसे छोडे गये बाणोंसे पराङ्मुख न होकर सामने खडे हुए शत्रुओंके धनुष, बाण, तूणीर, प्रत्यञ्चा, हाथ, भुजा और हाथमें रक्खे हुए शस्त्र, छत्र, ध्वज, घोडे, रथ, ईषा, वस्त्र, माला, आभूषण, ढाल, कवच, सबोंके प्रिय मनोरथ और शिर—इन सबको काट दिया ॥ ५५–५६ ॥

सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः समास्थिताः कृतयत्नैर्नृवीरैः ।
पार्थेरितैर्बाणगणैर्निरस्तास्तैरेव सार्धं नृवरैर्निपेतुः ॥ ५७ ॥

उत्तम रीतिसे सजाये रथ, घोडे और हाथी खडे थे, बहुत प्रयत्नसे युद्ध करनेवाले वीर बैठे थे, परन्तु फिर भी अर्जुनके बाण समुहोंके मारे विद्ध होकर वे सब वाहन उन नरवीरोंके सङ्ग ही गिरने लगे ॥ ५७ ॥

पद्मार्कपूर्णेन्दुसमाननानि किरीटमालामुकुटोत्कटानि ।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरहिंसितानि प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ५८ ॥

जिनके मुख कमल, सूर्य और पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर और किरीटमाला और मुकुटोंसे शोभित ऐसे असंख्य मनुष्योंके शिर भल्ल, अर्धचन्द्र और क्षुर बाणोंसे कटकर पृथ्वी पर गिर गये ॥ ५८ ॥

अथ द्विपैर्देवपतिद्विपाभैर्देवारिदर्पोल्बणमन्युदर्पैः ।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ ५९ ॥

फिर कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग और निषाद देशके उत्पन्न हुए वीर देवराज इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान बडे हाथियोंपर सवार होकर, देवशत्रु राक्षसोंके समान दर्प–क्रोध करके पाण्डुपुत्र अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे दौडकर आये ॥ ५९ ॥

तेषां द्विपानां विचकर्त पार्थो वर्माणि मर्माणि करान्नियन्तॄन् ।
ध्वजाः पताकाश्च ततः प्रपेतुर्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ ६० ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुनने उन सब हाथियोंके कवच, मर्मस्थान, सूंड, महावत, ध्वजा और पताकाको काट डाला, फिर वे हाथी इस प्रकार पृथ्वीमें गिरे जैसे वज्रके लगनेसे पर्वतके शिखर गिरते हैं ॥ ६० ॥

×

तेषु प्ररुग्णेषु गुरोस्तनूजं बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः ।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालैर्वायुः समुद्युक्तमिवांशुमन्तम् ॥ ६१ ॥
जब वे सब भग्न हो गये, तब बडे मेघोंसे उगते हुए किरणोंवाले सूर्यको छिपानेवाले वायुके समान, अर्जुनने अपने गुरुपुत्र अश्वत्थामाको प्रातःकालके सूर्यके समान प्रकाशमान बाणोंसे छा दिया ॥ ६१ ॥

ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य द्रौणिः शरैरर्जुनवासुदेवौ ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते ॥ ६२ ॥
तब अश्वत्थामाने अर्जुनके बाणोंको अपने तेज बाणोंसे निवारण कर, श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित किया और आकाशमें सूर्य और चन्द्रमाको ढककर गर्जनेवाले वर्षा कालके मेघके समान वह गर्जने लगा ॥ ६२ ॥

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीयानभ्यर्दितस्तैरविकृत्तशस्त्रैः ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः ॥ ६३ ॥
फिर बाणोंसे पीडित हुए अर्जुनने सहसा शस्त्रोंसे शत्रुके बाणोंका अन्धकार नष्ट कर दिया और सुंदर पंखवाले बाणोंसे अश्वत्थामा और तुम्हारी सब सेनाको फिर विद्ध किया ॥ ६३ ॥

नाप्याददत्संदधन्नैव मुञ्चन्बाणान्रणेऽदृश्यत सव्यसाची ।
हतांश्च नागांस्तुरगान्पदातीन्संस्यूतदेहान्ददृशुः रथांश्च ॥ ६४ ॥
उस समय यह न मालूम होता था कि युद्धमें सव्यसाची अर्जुन कब बाण निकालते हैं, कब चढाते और कब खींचते हैं तथा कब छोडते हैं और कब शत्रुओंको लगते हैं । केवल इतना ही देख सकते थे कि शत्रुओंके रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंके शरीर उनके बाणोंसे ग्रथित हुए हैं और वे मर गये हैं ॥ ६४ ॥

संधाय नाराचवरान्दशाशु द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज ।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुमुक्ताः ॥ ६५ ॥
अनन्तर अश्वत्थामाने शीघ्रतासे अपने धनुष पर एक बार दस श्रेष्ठ नाराच बाण चढाकर, उन सबको एक साथ छोड दिया । उनमेंसे पांच नाराच बाणोंने अर्जुनको विद्ध किया और पांचने श्रीकृष्णको घायल किया ॥ ६५ ॥

तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्यावसृक्क्षरन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ ।
समाप्तविद्येन यथाभिभूतौ हतौ स्विदेतौ किमु मेनिरेऽन्ये ॥ ६६ ॥
उन बाणोंके लगनेसे सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ, कुबेर और इन्द्रके समान पराक्रमी वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने शरीरांगोंसे रुधिर बहाने लगे । सब विद्या पूर्ण करनेवाले अश्वत्थामासे इस प्रकार पराभवको प्राप्त हुए उनको अन्य सबने माना कि वे रणभूमिमें मारे गये ॥ ६६ ॥

अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् ।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽसौ कष्टो भवेद्व्याधिरिवाक्रियावान् ॥ ६७ ॥

उस समय दशार्ह वंशके स्वामी श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले— हे अर्जुन ! इस समय तुम भूल क्यों करते हो ? तुम शीघ्र इस योद्धाको मार डालो, इसकी उपेक्षा करनेसे यह बडा अनर्थ करेगा, क्योंकि औषधि चिकित्सा न करनेसे रोग असाध्य हो जाता है ॥ ६७ ॥

तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष ।
छित्त्वाश्वरश्मींस्तुरगानविध्यत्ते तं रणादूहुरतीव दूरम् ॥ ६८ ॥

श्रीकृष्णके वचन सुन सावधान अर्जुनने बहुत अच्छा कहकर अश्वत्थामाके शरीरमें प्रयत्न-पूर्वक बाण मार कर उसे क्षत विक्षत किया । फिर अर्जुनने उसके घोडेकी लगाम काट दी, फिर घोडोंको विद्ध कर दिया, तब घोडे अश्वत्थामाको लेकर युद्धसे बहुत दूर भाग गये ॥ ६८ ॥

आवृत्य नैयेष पुनस्तु युद्धं पार्थेन सार्धं मतिमान्विमृश्य ।
जानञ्जयं नियतं वृष्णिवीरे धनंजये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ ६९ ॥

बुद्धिमान् अश्वत्थामाने मनमें विचार करके फिर लौटकर अर्जुनसे युद्ध करनेका विचार छोड दिया । वृष्णिवीर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी विजय निश्चित होगी, यह अङ्गिराकुलश्रेष्ठ अश्वत्थामाने जान लिया था ॥ ६९ ॥

प्रतीपकाये तु रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियादानैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥ ७० ॥

विरुद्ध कार्य करनेवाले अश्वत्थामाको उसके घोडे समरमेंसे दूर हटाकर ले गये, जैसे मन्त्र, औषधि, चिकित्सा और दानके बलसे शरीरको छोडकर रोग भाग जाता है ॥ ७० ॥

संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥ ७१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ६१७ ॥

फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन जलौघके समान शब्दवाले, वायुसे फहराती हुई उत्तम ध्वजा युक्त रथ पर बैठकर संशप्तक सेनासे युद्ध करनेको चले गये ॥ ७१ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बारहवा अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ६१७ ॥

: १३ :

सञ्जय उवाच

अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः ।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! तब उत्तर दिशाकी ओरसे राजा दण्डधारके द्वारा वधको प्राप्त हुई पाण्डवोंकी सेनामें रथ, हाथी, घोडे और पैदल योद्धाओंका घोर शब्द उठने लगा ॥ १ ॥

निवर्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान्गरुडानिलरंहसः ॥ २ ॥

तब श्रीकृष्णने अपना रथ लौटाकर गरुड और वायुके समान वेगवाले घोडोंको हांकते हुए, अर्जुनसे कहा ॥ २ ॥

मागधोऽथाप्यतिक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! मगधदेशका राजा भी बहुत पराक्रमी है, शत्रुओंको मथ डालनेवाला हाथी है, तथा युद्ध विद्या और बल युक्त है, इसलिये यह शौर्यमें भगदत्तसे कम नहीं है ॥ ३ ॥

एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत्पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति । ॥ ४ ॥

तब पहले इसको मारकर पीछे संशप्तकोंको मारना । ऐसा कहकर श्रीकृष्णने अर्जुनको राजा दण्डधारके पास पहुंचा दिया ॥ ४ ॥

स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहो ग्रहेष्वसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥ ५ ॥

वह मगधदेशका वीर श्रेष्ठ राजा हाथमें अंकुश धारण करके हस्तीयुद्धमें निपुण, सब ग्रहोंमें असह्य पराक्रमी केतुग्रहके समान था, वह भयंकर वीर इस प्रकार अपने शत्रुओंकी सब सेनाका नाश करने लगा, जैसे उत्पातके समय धूमकेतुग्रह सब भूमिको नष्ट करता है ॥ ५ ॥

सुकल्पितं दानवनागसंनिभं महाभ्रसंह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान्सहस्रशः समास्थितो हन्ति शरैर्द्विपानपि ॥ ६ ॥

वह दण्डधार सुसज्जित, राक्षसराजके हाथीके समान दीखनेवाले, बडे मेघके समान शब्दवाले, शत्रुओंके विनाशक हाथीपर चढकर, अपने बाणोंसे सहस्रों रथ, घोडे, मदमत्त हाथी और पैदल योद्धाओंका संहार करने लगा ॥ ६ ॥

रथानधिष्ठाय सवाजिसारथीन्रथांश्च पद्भिस्त्वरितो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां चरणैः करेण च द्विपास्थितो हन्ति स कालचक्रवत् ॥ ७ ॥
उसका उत्तम हाथी रथोंपर पैर रखकर घोडे, सारथि सहित रथोंको अपने पैरोंसे शीघ्रतासे पीसने लगा, हाथियोंको भी पैरोंसे और सूंडसे कुचलता था। इस प्रकार हाथीपर बैठा हुआ वह कालचक्रके समान सेनाका नाश करने लगा ॥ ७ ॥

नरांश्च कार्ष्णायसवर्मभूषणान्निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह ।
व्यपोथयद्दन्तिवरेण शुष्मिणा सशब्दवत्स्थूलनडान्यथा तथा ॥ ८ ॥
तब राजा दण्डधारने अपने श्रेष्ठ हाथीसे अनेक लोहेके कवच पहने हुए और उत्तम आभूषण धारण किए हुए घुडसवारोंको घोडे और पैदलोंके सहित मारकर, अग्निदग्ध सशब्द स्थूल नडतृणके समान भूमिपर गिरा दिया ॥ ८ ॥

अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिस्वने मृदङ्गभेरीबहुशङ्खनादिते ।
नराश्वमातङ्गसहस्रनादिते रथोत्तमेनाभ्यपतद्द्विपोत्तमम् ॥ ९ ॥
अनन्तर अर्जुन धनुषकी टङ्कार, रथके पहियोंका शब्द, मृदङ्ग भेरी और अनेक शंखोंके शब्दसे पूरित और सहस्रों मनुष्य, घोडे और हाथियोंकी आवाजसे नादित रणभूमिमें उत्तम रथसे उस मतवाले हाथीकी ओर जा पहुंचे ॥ ९ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमैर्जनार्दनं षोडशभिः समार्दयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभिस्ततो ननाद प्रजहास चासकृत् ॥ १० ॥
अनन्तर राजा दण्डधारने अर्जुनको बारह और श्रीकृष्णको सोलह उत्तम बाण मारे और चारों घोडोंको तीन तीन बाण मारकर घायल करके, बार बार हंसने और गर्जने लगा ॥ १० ॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन्सह पादगोप्तृभिस्ततस्तु चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः ॥ ११ ॥
अनन्तर पृथापुत्र अर्जुनने अपने भल्लबाणोंसे बाण और रोदेके सहित राजा दण्डधारके धनुष और अलंकृत ध्वजाको काट दिया। फिर हाथीकी रक्षा करनेवालोंके साथ महावतोंको मार डाला, इस कारण गिरिव्रजका स्वामी क्रोधित हो गया ॥ ११ ॥

ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना घनाघनेनानिलतुल्यरंहसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं धनंजयं चाभिजघान तोमरैः ॥ १२ ॥
तब क्रोध करके राजा दण्डधारने मदधारा बहानेवाले, मेघके समान काले, वायुके समान वेगवान् मतवाले हाथीको श्रीकृष्ण और अर्जुनको क्षुब्ध करनेकी इच्छासे चलाकर उनके शरीरमें अनेक तोमर मारे ॥ १२ ॥

अथास्य बाहू द्विपहस्तसंनिभौ शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डवस्ततो द्विपं बाणशतैः समार्दयत् ॥ १३ ॥

तब अर्जुनने हाथीके सूंडके समान सुन्दर राजा दण्डधारके दोनों हाथ और पूर्णचन्द्रमाके समान सुन्दर मुख सहित शिरको तीन क्षुर बाणोंसे एकसाथ काट दिया। फिर हाथीके ऊपर सैकडों बाण छोडे ॥ १३ ॥

स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः समारुचत्काञ्चनवर्मभृद्द्विपः।
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा दवाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः ॥ १४ ॥

वह सोनेका कवच धारण करनेवाला हाथी सुवर्ण लगे हुए अर्जुनके बाणोंसे ऐसा शोभित हुआ जैसे दावाग्निसे प्रज्वलित औषधिवृक्षोंसे युक्त पर्वत रातको शोभित होता है ॥ १४ ॥

स वेदनार्तोऽम्बुदनिस्वनो नदंश्चलन्भ्रमन्प्रस्खलितोऽऽतुरोऽद्रवन्।
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा यथा गिरिर्वज्रनिपातचूर्णितः ॥ १५ ॥

उन बाणोंके लगनेसे वह वेदनासे पीडित हाथी मेघके समान शब्द करके विचरने लगा, घूमने लगा, चिल्लाने लगा और डगमगाता हुआ भागने लगा। अन्तको अधिक घायल होनेसे वह महावतोंके साथही वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर गया ॥१५॥

हिमावदातेन सुवर्णमालिना हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रजज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनंजयम् ॥ १६ ॥

अपने भाईको समरमें मारा हुआ देखकर बर्फके समान गौरवर्ण, सुवर्णमालासे युक्त, हिमाचलशिखरके समान विशाल शरीरवाले मतवाले हाथीपर बैठकर दण्ड नामक राजा श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारनेके लिये उनकी ओर दौडा ॥ १६ ॥

स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभिर्जनार्दनं पञ्चभिरेव चार्जुनम्।
समर्पयित्वा विननाद चार्दयंस्ततोऽस्य बाहू विचकर्त पाण्डवः ॥ १७ ॥

और सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान तीन तोमर श्रीकृष्णके और पांच अर्जुनके ऊपर मारकर घायल किया और फिर जोरसे गर्जना की; तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंसे उसके दोनों हाथ काट लिये ॥ १७ ॥

क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ च्युताङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ।
गजात्पतन्तौ युगपद्विरेजतुर्यथाद्रिशृङ्गात्पतितौ महोरगौ ॥ १८ ॥

चन्दन लगे, तोमर सहित उस राजाके दोनों सुन्दर विशाल हाथ हाथी परसे क्षुर बाणोंसे कट कर इस प्रकार गिरे, जैसे पर्वतके शिखरसे दो सुंदर और बडे सर्प गिरते हैं ॥१८॥

अथार्धचन्द्रेण हृतं किरीटिना पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात् ।
तच्छोणिनार्द्रं निपतद्विरेजे दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम् ॥ १९ ॥
फिर किरीटधारी अर्जुनसे एक अर्धचन्द्र बाणसे कट कर दण्डका शिर हाथीसे पृथ्वीमें गिर पडा । वह रुधिरसे भरा हुआ सिर इस प्रकार हाथीपरसे गिरा जैसे सन्ध्या समय अस्ताचलसे पश्चिम दिशामें सूर्य डूबते हैं ॥ १९ ॥

अथ द्विपं श्वेतनगाग्रसंनिभं दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
बिभेद पार्थः स पपात नानदन्हिमाद्रिकूटः कुलिशाहतो यथा ॥ २० ॥
फिर सफेद पर्वतशिखरके समान सुन्दर हाथीको अर्जुनने सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी उत्तम बाणोंसे मारा, वह शब्द करता हुआ वज्रसे कटे हुए हिमालयके शिखरके समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥ २० ॥

ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा जिगीषवः संयति सव्यसाचिनम् ।
तथा कृतास्तेन यथैव तौ द्विपौ ततः प्रभग्नं सुमहद्द्विपोर्बलम् ॥ २१ ॥
तब अर्जुनने उसीके समान और भी अनेक बडे हाथियोंको जो सव्यसाची अर्जुनके साथ युद्ध करके विजयकी इच्छासे आये थे, मार कर गिरा दिया, जैसे पहले दोनों हाथियोंको मारा था । तब शत्रुकी वह विशाल सेना इधर उधरको भाग गई ॥ २१ ॥

गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च संघशः परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परप्रस्खलिताः समाहता भृशं च तत्तत्कुलभाषिणो हताः ॥ २२ ॥
सेनाके भागनेसे हाथी, रथ, घोडे और पैदल मनुष्योंके समूह परस्पर आघात करके युद्धमें टूट पडे थे । वे आपसमें परस्परकी चोटसे विद्ध होकर लडखडाते और बोलते हुए मरकर गिर गये थे ॥ २२ ॥

अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः पुरंदरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः ॥ २३ ॥
अनन्तर देवराज इन्द्रको घेरकर खडे हुए देवताओंके समान अपनी ही सेनाके मनुष्य अर्जुनके पास आकर यह कहने लगे, हे वीर ! जैसे प्रजा मृत्युसे डरती है, वैसे हम जिसको डरते थे, उस शत्रुको आपने दैवयोगसे मार डाला ॥ २३ ॥

न चेत्परित्रास्य इमाञ्जनान्भयाद्द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितान् ।
तथाभविष्यद्द्विषतां प्रमोदनं यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिषु त्वया ॥ २४ ॥
यदि आप बलवान् शत्रुओंसे इस प्रकार पीडित हुए अपने स्वजनोंको भयसे नहीं बचाते, तो वे शत्रु ऐसे ही प्रसन्न होते जैसे उनके मरनेसे हम लोग यहां प्रसन्न हो रहे हैं ॥ २४ ॥

इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीरिता निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः ।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं जगाम संशप्तकसंघहा पुनः ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ६४२ ॥

अपने मित्रोंके ऐसे अनेक वचन सुनकर अर्जुनको मनमें बडी प्रसन्नता हुई, वे उनका उचित सन्मान करके प्रसन्न चित्तसे फिर संशप्तक सेनाके साथ युद्ध करनेके लिये चले गये ॥२५॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तेरहवा अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ६४२ ॥

: १४ :

संजय उवाच

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुरहन्संशप्तकान्बहून् ।
वक्रानुवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! विजयी अर्जुनने फिर संशप्तक सेनामें आकरके रथको अनेक प्रकार चलाकर उनका इस प्रकार नाश करना आरंभ किया, जैसे मङ्गल ग्रह प्रजाका वक्र वा अतिवक्र होके नाश करता है ॥ १ ॥

पार्थबाणहता राजन्नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेदुः पेतुर्मम्लुश्च मारिष ॥ २ ॥

हे मारिष ! अर्जुनके बाण लगनेसे अनेक मनुष्य, घोडे, रथ और हाथी विचलित होने लगे, भ्रान्त होने लगे, गर्जने लगे, कांपने लगे और डरने लगे ॥ २ ॥

धुर्यं धुर्यतरान्सूतान्रथांश्च परिसंक्षिपन् ।
पाणीन्पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥

धुर और धुरोंपर बैठे हुए वीर, सारथि, रथ, हाथ, हाथमें रक्खे हुए शस्त्र, बाहु और शिरोंको भी काट दिया ॥ ३ ॥

भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥ ४ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने तेज धारवाले भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र, वत्सदन्त आदि बाणोंसे युद्धमें सामना करते हुए शत्रुओंके वीरोंको काट डाला ॥ ४ ॥

वाशितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
आपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥

जैसे एक गौके लिये एक बैलसे अनेक बैल युद्ध करनेको आते हैं, वैसेही अर्जुनसे लडनेको सैकडों, हजारों शूर वीर आते थे ॥ ५ ॥

तेषां तस्य च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥

उन सब योद्धाओंका और अर्जुनका वह ऐसा घोर रोमांचकारी युद्ध हुआ, जैसा तीनों लोकोंके विजयके लिये वज्रधारी इन्द्रके सङ्ग दानवोंका हुआ था ॥ ६ ॥

तमविध्यत्त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधस्ततस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥

तब उग्रायुधके पुत्रने तीक्ष्ण विषवाले सर्पोंके समान बहुत तेज तीन बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया, तब अर्जुनने अपने बाणसे उसका सिर धडसे उतार दिया ॥ ७ ॥

तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन् ।
मरुद्भिः प्रेषिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥

तब सब वीर क्रोध करके अर्जुनपर सब ओरसे अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, जैसे ग्रीष्म ऋतुके समाप्त होनेपर वायु प्रेषित मेघ हिमाचल पर वर्षा करते हैं ॥ ८ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वान्सहितानहनद्बहून् ॥ ९ ॥

अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे शत्रुओंके अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके, अच्छी तरह चलाये गये बाणोंसे अनेक वीरोंको मार डाला ॥ ९ ॥

छिन्नत्रिवेणुजङ्घेषान्निहतपार्ष्णिसारथीन् ।
संछिन्नरश्मियोक्त्राक्षान्व्यनुकर्षयुगान्रथान् ।
विध्वस्तसर्वसंनाहान्बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्त्वरन् ॥ १० ॥

उस समय अर्जुनके बाणोंसे किसी रथके त्रिवेणु और जंघे भी काटे गये, किसी रथके सारथि और वार्ष्णि मारे गये, घोडोंके लगाम, जोत और रथके धुरे, उनके अनुकर्ष और जूए भी नष्ट हो गये । ऐसी अर्जुनके बाणोंसे शत्रुओंके रथोंकी खराब दशा हो गई ॥ १० ॥

ते रथास्तत्र विध्वस्ताः परार्ध्या भान्त्यनेकशः ।
धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः ॥ ११ ॥

वे टूटे हुए अनेक रथ उस युद्धभूमिमें इस प्रकार शोभित हुए, जैसे आग, वायु या पानीसे नष्ट हुए धनिकोंके घर ॥ ११ ॥

द्विपाः संभिन्नमर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः ।
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रवाताग्निभिर्यथा ॥ १२ ॥

अनेक हाथी वज्र और बिजलीके समान बाणोंसे कवच विदीर्ण हो जानेसे कटकर इस प्रकार गिरे, जैसे वज्र, वायु और आगसे जलकर नष्ट हुए पर्वतोंके शिखरके ऊपरके गृह गिरते हैं ॥ १२ ॥

*

सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः ।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः ॥ १३ ॥
अर्जुनके बाणोंसे ताडित होकर अनेक घोडे और घोडोंपर चढे वीर रुधिरसे भींग कर पृथ्वीमें गिरे; किसी वीरकी जिह्वा और किसीकी आंते बाहर निकल आयी थीं। उनको देखना कठिन था ॥ १३ ॥

नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥ १४ ॥
मारिष ! अर्जुनके नाराच बाणोंसे पीडित होकर अनेक मनुष्य, घोडे और हाथी घूमने, लडखडाने, गिरने, आर्तनाद करने और मरने लगे ॥ १४ ॥

अणकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः ।
शरैर्निजघ्निवान्पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥ १५ ॥
शिलापर धोए हुए वज्र, अशनि और विषके समान अनेक तेज बाणोंसे अर्जुनने शत्रुओंका इस प्रकार नाश किया, जैसे देवराज इन्द्र वज्रसे दानवोंको मारते हैं ॥ १५ ॥

महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः ।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥ १६ ॥
अर्जुनके बाणोंसे उत्तम कवच और अलंकार तथा नाना रंगके वस्त्र और आयुध लिये हुए अनेक वीर घोडे, ध्वजा और रथोंके सहित मरकर पृथ्वीपर सो गये ॥ १६ ॥

विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः ।
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥ १७ ॥
वे धर्मात्मा, विशिष्ट ज्ञान संपन्न वीर लोग युद्धमें पराजित होकर इस शरीरको पृथ्वीपर छोड कर, अपने उत्तम कर्मके अनुसार स्वर्गको चले गये ॥ १७ ॥

अथार्जुनरथं वीरास्त्वदीयाः समुपाद्रवन् ।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥ १८ ॥
अनन्तर अर्जुनके रथकी ओर तुम्हारी सेनाके प्रधान वीर जो अनेक प्रकारके जनपदोंके अधिपति थे क्रोध करके अपनी सेनाके सहित आक्रमण करने लगे ॥ १८ ॥

उह्यमाना रथाश्वैस्ते पत्तयश्च जिघांसवः ।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥ १९ ॥
घोडे, हाथी और रथों पर चढे वीर तथा पैदल योद्धा उन्हें मार डालनेकी इच्छासे अनेक प्रकारके शस्त्र चलाते हुए शीघ्रतासे अर्जुनकी ओर आये ॥ १९ ॥

तदायुधमहावर्षं क्षिप्तं योधमहाम्बुदैः ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २० ॥

उस सेनारूपी महामेघोंसे वर्षती हुई शस्त्रोंकी उस महावर्षाको अर्जुनरूपी वायुने तीक्ष्ण बाणोंसे दूर कर दिया ॥ २० ॥

साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसप्लवम् ।
सहसा संतितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥ २१ ॥

हाथी, घोडे, रथ और पैदलरूपी जलसे भरे हुए, महान् शस्त्ररूपी तरङ्गयुक्त उस सेनासमुद्रको अर्जुन अपनी अस्त्र-शस्त्ररूपी पुल बांध सहसा पार होना चाहते थे ॥ २१ ॥

अथाब्रवीद्वासुदेवः पार्थं किं क्रीडसेऽनघ ।
संशप्तकान्प्रमथ्यैतांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥ २२ ॥

उस समय श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले, हे पापरहित पाण्डव ! तुम इन सबके सङ्ग क्यों खेल कर रहे हो ? इनका नाश कर कर्णके मारनेका शीघ्र उपाय करो ॥ २२ ॥

तथेत्युक्त्वार्जुनः क्षिप्रं शिष्टान्संशप्तकांस्तदा ।
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद्दैत्यानिन्द्र इवावधीत् ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन अर्जुनने कहा बहुत अच्छा । फिर तेज शस्त्र चलाकर शेष संशप्तक सेनाका इस प्रकार बलपूर्वक नाश करने लगे, जैसे इन्द्र दैत्योंका ॥ २३ ॥

आददत्संदधन्नेषून्दृष्टः कैश्चिद्रणेऽर्जुनः ।
विमुञ्चन्वा शराञ्शीघ्रं दृश्यते स्म हि कैरपि ॥ २४ ॥

उस समय युद्धमें अर्जुनका किसीने यह कर्म न देखा था, कि कब वे बाण लेते हैं, कब धनुष खींचते हैं, कब बाण चलाते और कब छोडते हैं ॥ २४ ॥

आश्चर्यमिति गोविन्दो ब्रुवन्नश्वानचोदयत् ।
हंसांसगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् ॥ २५ ॥

'आश्चर्य है' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने घोडोंको आगे चलाया । अर्जुनके हंसके समान गौर-वर्णवाले घोडे उस सेनामें इस प्रकार घुसे, जैसे तलावमें हंस प्रवेश करते हैं ॥ २५ ॥

ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

इस प्रकार जब जनसंहार होने लगा, तब उस युद्धभूमिको देखकर श्रीकृष्णने सव्यसाचि अर्जुनसे कहा ॥ २६ ॥

एष पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ २७ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! देखो, दुर्योधनके दोषके कारण आज सब भरतवंशियोंकी और पृथ्वीपरके राजाओंकी सेनाका अत्यंत घोर नाश हो रहा है ॥ २७ ॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
महतामपविद्धानि कलापानिषुधीस्तथा ॥ २८ ॥

हे भारत ! यह देखो, अनेक धनुषधारियोंके सोनेके पृष्ठभागवाले धनुष, तूणीर, बाण और शस्त्र पडे हैं ॥ २८ ॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान्निर्मुक्तानिव पन्नगान् ॥ २९ ॥

देखो, सोनेके पंखवाले, झुकी हुई गांठवाले ये बाण और तैलमें धोये हुए, अनेक नाराच बाण धनुषसे छूटकर, केंचुलीसे मुक्त हुए सांपोंके समान पडे हैं ॥ २९ ॥

हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
आकीर्णांस्तोमरांश्चापांश्चित्रान्हेमविभूषितान् ॥ ३० ॥

देखो, हाथी दांतकी मुठीवाली सुवर्णजटित तलवारें और सोनेके तारोंसे खिंचे हुए अनेक विचित्र तोमर और धनुष पडे हुए हैं ॥ ३० ॥

वर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि भारत ।
सुवर्णविकृतान्प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषिताः ॥ ३१ ॥

भारत ! और देखो, सोनेकी पीठवाले कटे हुए कवच पडे हैं, अनेक सुवर्णभूपित प्रास और शक्तियां पडी हैं ॥ ३१ ॥

जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ।
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान्हेमभूषितान् ॥ ३२ ॥

सोनेके पत्रोंसे जडी हुई बडी गदाएं, सुवर्ण भूपित ऋष्टि, सुवर्णमय पट्टिश ॥ ३२ ॥

दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान्
अयस्कुशान्तान्पतितान्मुसलानि गुरूणि च ॥ ३३ ॥

और सोनेके दण्डवाले फरसे पृथ्वीमें फेंके पडे हैं और लोहेके बने हुए भाले और भारी भारी मुसल पडे हैं ॥ ३३ ॥

शतघ्नीः पश्य चित्राश्च विपुलान्परिघांस्तथा ।
चक्राणि चापविद्धानि मुद्गरांश्च बहून्रणे ॥ ३४ ॥

देखो, चित्र विचित्र शतघ्नी, असंख्य परिघ, चक्र और बाणोंसे कटे हुए मुद्गर रणांगणमें पडे हुए हैं ॥ ३४ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ।
जीवन्त इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥ ३५ ॥

ये देखो, जयकी इच्छा करनेवाले अनेक वेगशाली वीर, जीवितसे रहित होने पर भी अनेक प्रकारके शस्त्रोंको हाथमें लिये हुए, सजीवकी भांति दीखते हैं ॥ ३५ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ।
गजवाजिरथक्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः ॥ ३६ ॥

ये देखो, गदाओंके प्रहारसे इनके अंग चूर हो गये हैं और मूसलोंकी मारसे शिर फट गये हैं । हाथी, घोडे, रथ भग्न हुए हैं और सहस्रों वीर योद्धा मरकर पृथ्वीपर पडे हैं ॥ ३६ ॥

मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७ ॥
शरीरैर्बहुधा भिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥ ३८ ॥

हे शत्रुनाशन ! ये देखो, मनुष्य, हाथी और घोडोंके शरीर बाण, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, तलवार, पट्टिश, प्रास, नखर, लगुड आदि शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हुए हैं और ये सब रुधिरसे भींगे हुए प्राणरहित होकर रणभूमिमें गिरे हैं । देखो, उन सबसे रणभूमि कैसी भर गई है ॥ ३७–३८ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः ।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९ ॥

हे भारत ! चन्दन और अगुरुसे चर्चित, बाजूबन्द और उत्तम भूषणोंसे आभूषित, तलत्र और केयूरोंसे युक्त कटे हुए हाथोंसे रणभूमिकी शोभा अद्भुत दीखती है ॥ ३९ ॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ४० ॥

अंगुलित्र और आभूषणोंसे अलंकृत हाथ फेंके पडे हैं, और वेगवान् वीरोंकी हाथीके सूण्डके समान कटी हुई जांघोंसे यह भूमि भर गई है ॥ ४० ॥

बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
निकृत्तैर्वृषभाक्षाणां विराजति वसुंधरा ॥ ४१ ॥

इनपर सुंदर चूडामणि बंधी है । ये देखो, कुण्डल और मुकुट सहित अनेक सिर कटे हुए पडे हैं, कटे हुए बैलोंके शकटोंसे पृथ्वी शोभित हो रही है ॥ ४१ ॥

कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः ॥ ४२ ॥

रुधिरसे भरे हुए शरीरोंसे और छिन्न भिन्न अवयव और सिरोंसे युक्त कबंधोंसे यह भूमि, शान्त हुई अग्नि ज्वालाके समान दीखती है ॥ ४२ ॥

रथान्बहुविधानभग्नान्हेमकिङ्किणिनः शुभान्।
अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिप्लुतान् ॥ ४३ ॥

देखो, स्वर्ण घण्टाओंसे शोभित अनेक प्रकारके रथ टूटे पडे हैं। रुधिरसे भींगे अनेक घोडे पडे हैं ॥ ४३ ॥

योधानां च महाशङ्खान्पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्।
निरस्तजिह्वान्मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ॥ ४४ ॥

देखो, योद्धाओंके ये बडे बडे शंख तथा शुभ्र चंवर पृथ्वीपर पडे हैं, और पर्वतके समान हाथी जीभ निकाल कर सोये हैं ॥ ४४ ॥

वैजयन्तीविचित्रांश्च हतांश्च गजयोधिनः।
वारणानां परिस्तोमान्सुयुक्ताम्बरकम्बलान् ॥ ४५ ॥

अनेक विचित्र वैजयन्ती मालाएं पडी हैं, ये सहस्रों हाथियोंपर चढनेवाले वीर मरे पडे हैं; ये कम्बलोंसे युक्त हाथियोंके झूल बिखरे पडे हैं ॥ ४५ ॥

विपाटिता विचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥ ४६ ॥

ये देखो, बहुत मोलवाली हाथियोंकी सहस्रों विचित्र झूल फट जानेके कारण विचित्र हो गई हैं; छूटकर गिरे हुए अनेक घण्टे हाथियोंके पडनेसे चूर हो गये हैं ॥ ४६ ॥

वैडूर्यमणिदण्डांश्च पतितानङ्कुशान्भुवि।
बद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कशाः ॥ ४७ ॥

देखो, वैडूर्यमणि रत्नसे जडे हुए दण्ड और सहस्रों अंकुश पृथ्वीपर पडे हुए हैं; ये घुडसवारोंकी अनेक ध्वजा और पताकाओंके अग्रभागमें सुनहरे चाबुक अटके पडे हैं ॥४७॥

विचित्रान्मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान्।
अश्वास्तरपरिस्तोमान्राङ्कवान्पतितान्भुवि ॥ ४८ ॥

घोडोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले विचित्र, मणियोंसे जडे हुए, सोनेके तारोंसे बने, रंकु मृगके चमडेके बने खोगिर और जीनपोश पृथ्वीपर पडे हैं ॥ ४८ ॥

चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥ ४९ ॥

ये देखो, राजाओंके चूडामणि, ये सोनेकी विचित्र माला, छत्र, चामर और पंखे पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ४९ ॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ।
वदनैः पश्य संछन्नां महीं शोणितकर्दमाम् ॥ ५० ॥

ये सुंदर कुण्डल सहित और चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंके समान तेजस्वी और दाढी-मूछ युक्त वीरोंके अलंकृत मुखोंसे तथा उनके रुधिरके कीचडसे भरी हुई, इस भूमिको देखो ॥५०॥

सजीवांश्च नरान्पश्य कूजमानान्समन्ततः ।
उपास्यमानान्बहुभिर्न्यस्तशस्त्रैर्विशां पते ॥ ५१ ॥

हे पृथ्वीपते ! देखो, चारों ओर कितने ही प्राण धारण करनेवाले मनुष्य बिलाप कर रहे हैं, कितने ही शस्त्रोंका त्याग करके पीडितोंकी सेवा कर रहे हैं ॥ ५१ ॥

ज्ञातिभिः सहितैस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः ।
व्युत्क्रान्तानपरान्योधांश्छादयित्वा तरस्विनः ।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ५२ ॥

शत्रुओंके योद्धा जो युद्धमें मारे गये हैं उनको वस्त्रोंसे ढककर, उनके जातिबांधव बार बार रुदन कर रहे हैं । फिर कितने ही बलवान् वीर विजयकी अभिलाषासे क्रोधित होकर युद्ध करनेके लिये जाते हैं ॥ ५२ ॥

अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानिनः ।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम् ॥ ५३ ॥

युद्धमें पतन हुए अपने शूर ज्ञाति बांधवोंसें जलकी याचना करनेपर उनको जल प्रदान करनेके लिये दूसरे कितने ही मनस्वी वीर इधर उधर दौड रहे हैं ॥ ५३ ॥

जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन ।
संनिवृत्ताश्च ते शूरास्तान्दृष्ट्वैव विचेतसः ॥ ५४ ॥

अर्जुन ! कितने ही पानी लानेके लिये जाते ही, इतनेमें ये विद्ध हुए वीर प्राणरहित हो जाते हैं । वापस आनेपर वे शूर वीर उनको चेतनाहीन देखते हैं ॥ ५४ ॥

जलं दृष्ट्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम् ।
जलं पीत्वा मृतान्पश्य पिबतोऽन्यांश्च भारत ॥ ५५ ॥

पानी लाया हुआ देखकर, परस्पर झगडकर पानीके लिये वे तृपित वीर दौडते हैं। भारत ! देखो, कितने ही पानी पीकर मर जाते हैं और दूसरे पानी पीते पीते ही मरते हैं ॥ ५५ ॥

परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान्बान्धवप्रिय ।
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे: ॥ ५६ ॥

हे बान्धव प्रिय ! दूसरे कितने ही मारे हुए अपने प्रिय बान्धवोंको युद्धभूमिमें इधर उधर छोडकर चले जाते दीखते हैं ॥ ५६ ॥

पश्यापरान्नरश्रेष्ठ संदष्टौष्ठपुटान्पुनः ।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान्समन्ततः ॥ ५७ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! देखो, फिर दूसरे कितने ही अपने होंठ चबाते, भौंहोंको टेढी किये हुए मुखोंसे इधर उधर देख रहे हैं ॥ ५७ ॥

एतत्तवैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ।
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत्कृतमाहवे ॥ ५८ ॥

हे अर्जुन ! तुमने जो महा युद्धमें पराक्रम किया, सो तुम्हारे ही योग्य है और स्वर्गमें देवराज इन्द्रके योग्य है ॥ ५८ ॥

एवं तां दर्शयन्कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ।
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् ॥ ५९ ॥

इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको उस युद्धभूमिको दिखलाते हुए श्रीकृष्णने जाते जाते दुर्योधनकी सेनामें महान् शब्द सुना ॥ ५९ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषान्भेरीपणवमिश्रितान् ।
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् ॥ ६० ॥

शङ्ख और दुंदुभियोंका, भेरी और पणव आदियोंका मिश्रित घोष हो रहा था। रथ, घोडे और हाथियोंकी आवाज तथा शस्त्रोंके दारुण शब्द सुनाई देते थे ॥ ६० ॥

प्रविश्य तद्बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगिभिः ।
पाण्ड्येनाभ्यर्दितां सेनां त्वदीयां वीक्ष्य धिष्ठितः ॥ ६१ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णने वायुवेगके समान तेज घोडोंसे उस सेनामें प्रवेश करके, पाण्ड्यदेशके राजाके हाथसे तुम्हारी सेनाको व्याकुल होती हुई देखकर, वे खडे हो गये ॥ ६१ ॥

स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वासप्रवरो युधि ।
न्यहनद्द्विषतां व्रातान्गतासूनन्तको यथा ॥ ६२ ॥

तब कृष्णने देखा, कि धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्यराजाने युद्धमें दुर्योधनकी सेनापर अनेक प्रकारके बाण चलाने आरम्भ किये, और उन शत्रुसेना समूहोंका इस प्रकार नाश किया, जैसे यमराज आयुष्य समाप्तिके समय प्रजाका नाश करता है ॥ ६२ ॥

गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ।
भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूंश्चकार सः ॥ ६३ ॥

प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ वह पाण्डय राजा अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हाथी, घोडे और मनुष्योंके शरीरोंको छिन्न भिन्न करके, उनको प्राणरहित देहोंके करता था ॥ ६३ ॥

शत्रुप्रवीरैरस्तानि नानाशस्त्राणि सायकैः ।
भित्त्वा तानहनत्पाण्डयः शत्रूञ्शक्र इवासुरान् ॥ ६४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ७०६ ॥

पाण्डयदेशके राजाने शत्रुवीरोंके चलाये अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंसे काटकर, उन शत्रुओंका इस प्रकार नाश किया; जैसे दानवोंका इन्द्रने ॥ ६४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ७०६ ॥

: १५ :

धृतराष्ट्र उवाच

प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः ।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया संजय कीर्तितम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! तुमने हमसे पहले कहा था, कि पाण्डयदेशका राजा जगत् विदित महापराक्रमी और महावीर है । परन्तु उसके युद्धमें किये कर्मका तुमने हमसे कुछ वर्णन नहीं किया ॥ १ ॥

तस्य विस्तरतो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम् ।
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २ ॥

अब तुम उस विदित प्रमुख वीरके पराक्रम, विद्या, प्रभाव, वीर्य, अभिमान और तेजका वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

द्रोणभीष्मकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान् ।
समाप्तविद्यान्धनुषि श्रेष्ठान्यान्मन्यसे युधि ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तुम द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्ण आदिको युद्धमें विद्वान् और धनुर्विद्यामें श्रेष्ठ मानते हैं ॥ ३ ॥

तुल्यता कर्णभीष्माभ्यामात्मनो येन दृश्यते ।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नात्मनीच्छति ॥ ४ ॥

जो अपनेको भीष्म और कर्णसे अधिक समझते हैं और अपनेको श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान मानते हैं, अपनेमें न्यूनता माननेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कर्णस्यानीकमवधीत्परिभूत इवान्तकः ॥ ५ ॥

उन राजाओंमें श्रेष्ठ, सब शस्त्रधारियोंमें उत्तम पाण्ड्यदेशके राजाने कर्णकी सेनाको क्रोध करके इस प्रकार नाश करना आरम्भ किया, जैसे प्रलय कालमें क्रोध करके यमराज प्रजाका नाश करता है ॥ ५ ॥

तदुदीर्णरथाश्वं च पत्तिप्रवरकुञ्जरम् ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तं पाण्ड्येनाधिष्ठितं बलम् ॥ ६ ॥

रथ, घोडे, हाथी और श्रेष्ठ पैदलोंसे भरी हुई सेना पाण्ड्यदेशके राजाके बाणोंसे पीडित होकर कुम्हारके चाकके समान घूमने लगी ॥ ६ ॥

व्यश्वसूतध्वजरथान्विप्रविद्धायुधान्रिपून् ।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ॥ ७ ॥

पाण्ड्यदेशके राजाने अपने यथार्थ बाणोंसे शत्रुओंको घोडे, सारथि, ध्वज और रथ बिहीन कर दिया तथा आयुधों और शत्रुओंका नाश किया जैसे वायु मेघोंको उडा देती है ॥ ७ ॥

द्विरदान्प्रहतप्रोथान्विपताकध्वजायुधान् ।
सपादरक्षानवधीद्वज्रेणारीनिवारिहा ॥ ८ ॥

हाथी और हाथियोंपर चढें वीरोंको ध्वजा, पताका, शस्त्र और पाद रक्षा करनेवालोंके सहित मारकर इस प्रकार गिरा दिया जैसे इन्द्र वज्रसे मारकर दानवोंको गिराते हैं ॥ ८ ॥

सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान्हयानपि ।
पुलिन्दखशबाह्लीकान्निषादान्ध्रकतङ्गणान् ॥ ९ ॥

पुलिन्द, खश, वाह्लीक, निषाद, आन्ध्रक और तङ्गण देशके उत्पन्न हुए वीरोंको पाण्ड्यदेशके राजाने बाणोंसे शक्ति, प्रास, तूणीर और घोडोंके सहित घुडसवारोंको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ९ ॥

दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च क्रूरान्संग्रामकर्कशान् ।
विशस्त्रकवचान्बाणैः कृत्वा पाण्ड्योऽकरोद्व्यसून् ॥ १० ॥

इसी प्रकार क्रूर और रणकर्कश दक्षिणी और भोज देशके क्षत्रिययोद्धाओंको भी शस्त्र, कवच और प्राण रहित करके पाण्ड्यने पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १० ॥

चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे ।
दृष्ट्वा द्रौणिरसंभ्रान्तमसंभ्रान्ततरोऽभ्ययात् ॥ ११ ॥

इस प्रकार पाण्ड्यदेशके राजाको विना सम्भ्रमके अपने बाणोंसे युद्धमें कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका नाश करते देख, अश्वत्थामा सावधान होकर युद्ध करनेको आये ॥ ११ ॥

आभाष्य चैनं मधुरमभि नृत्यन्नभीतवत् ।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयन् ॥ १२ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने वहां आकर हंस करके मीठी वाणी बोल वेडर पांड्यदेशके राजाको युद्ध करनेको पुकारा और निर्भयचित्तसे कहा ॥ १२ ॥

राजन्कमलपत्राक्ष प्रधानायुधवाहन ।
वज्रसंहननप्रख्य प्रधानबलपौरुष ॥ १३ ॥

हे राजन् ! हे कमलनेत्र ! आप श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले हैं । आपके बाण वज्रके समान हैं । जगत्में तुम्हारे बल और पुरुषार्थ प्रसिद्ध हैं ॥ १३ ॥

मुष्टिश्लिष्टायुधाभ्यां च व्यायताभ्यां महद्धनुः ।
दोर्भ्यां विस्फारयन्भासि महाजलदवच्छ्रशम् ॥ १४ ॥

तुम अपने दोनों बडे बडे हाथोंसे विशाल धनुष खींचते हो और मुट्ठीसे टंकारते हुए, बडे मेघके समान शोभायमान दीखते हैं ॥ १४ ॥

शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः ।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥ १५ ॥

तुम जब बडे वेगसे शत्रुओंपर बाणोंकी वर्षा करते हैं, उस समय मैं इस सेनामें तुमसे लडने योग्य तुम्हारे सिवाय किसी और वीरको नहीं देखता हूं ॥ १५ ॥

रथद्विरदपत्त्यश्वानेकः प्रमथसे बहून् ।
मृगसङ्घानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः ॥ १६ ॥

तुम अकेले ही रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंको इस प्रकार काट रहे हो, जैसे अत्यंत बलवान् सिंह बनमें निडर हो मृगसमूहोंको मारता है ॥ १६ ॥

महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन् ।
वर्षान्ते सस्यहा पीथो भाभिरापूरयन्निव ॥ १७ ॥

तुम रथके महा शब्दसे आकाश और पृथ्वीको पूरित करते हुए सेनाका इस प्रकार नाश कर रहे हो, जैसे वर्षाऋतुके अन्तमें जल धानके खेतोंको डुबाता है ॥ १७ ॥

संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान् ।
मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेणान्धको यथा ॥ १८ ॥

तुम विषैले सांपके समान बाणोंको अपने तूणीरसे निकालकर केवल हमारे ही साथ युद्ध करो तुम्हारा और हमारा तीक्ष्ण ऐसा युद्ध होगा, जैसे पहले समयमें शिव और अन्धक राक्षसका हुआ था ॥ १८ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः ।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः ॥ १९ ॥

राजा मलयध्वज पाण्डयने अश्वत्थामाके वचनोंको स्वीकार किया और कहा कि आप बाण चलाओ। अश्वत्थामाने उनपर अपना बाण चलाया। तब पाण्डयने एक कर्णि बाण अश्वत्थामाके शरीरमें मारा और उनको विद्ध किया ॥ १९ ॥

मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः ।
स्मयन्नभ्यहनद्द्रौणिः पाण्डयमाचार्यसत्तमः ॥ २० ॥

अनन्तर पढानेवालोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने हंसकर मलयध्वजकी ओर मर्म काटनेवाले आगकी ज्वालाके समान अत्यंत तेज बाण चलाकर उसको घायल कर दिया ॥ २० ॥

ततो नवापरांस्तीक्ष्णान्नाराचान्कङ्कवाससः ।
गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामा व्यवासृजत् ॥ २१ ॥

फिर अश्वत्थामाने बहुत तेज धारावाले नये अनेक लोहेके नाराच बाण दशवी गतिकी रीतिसे राजा मलयध्वजकी ओर चलाये ॥ २१ ॥

तेषां पश्चाच्छिनत्पाण्डयः पंचभिर्निशितैः शरैः ।
चत्वारोऽभ्याहनन्वाहानाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥ २२ ॥

तब पांडयदेशके राजा मलयध्वजने बहुत शीघ्रतासे उनमेंसे, पांच बाणोंको अपने पांच तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया । और चार बाणोंसे अश्वत्थामाके घोडोंको मार डाला ॥ २२ ॥

अथ द्रोणसुतस्येषूंस्तांश्छित्त्वा निशितैः शरैः ।
धनुर्ज्यां विततां पाण्डयश्चिच्छेदादित्यवर्चसः ॥ २३ ॥

फिर सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाके बाणोंको पांडयराजने अपने तेज बाणोंसे काटकर उनके धनुषके विस्तीर्ण रोदेको भी काट दिया ॥ २३ ॥

विज्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा ।
ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डयतः ।
इषुसंबाधमाकाशमकरोद्दिश एव च ॥ २४ ॥

फिर जब शत्रुनाशन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने दृढ धनुष लेकर प्रत्यञ्चा चढाकर फिर सहस्रों बाण मलयध्वजकी ओर चलाये, उन बाणोंसे सब आकाश और दसों दिशाएं पूरित हो गयीं ॥ २४ ॥

ततस्तानस्यतः सर्वान्द्रौणेर्बाणान्महात्मनः ।
जानानोऽप्यक्षयान्पाण्ड्योऽशातयत्पुरुषर्षभः ॥ २५ ॥

अनन्तर महात्मा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंका नाश नहीं हो सकता ऐसा जानकर भी पुरुषश्रेष्ठ राजा मलयध्वज अपने बाणोंसे उनके बाणोंको काटने लगे ॥ २५ ॥

प्रहितांस्तान्प्रयत्नेन छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः ।
चक्ररक्षौ ततस्तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सब बाणोंको बहुत यत्न करके उसके शत्रु राजा मलयध्वजने काट दिया । फिर अश्वत्थामाके पहियोंकी रक्षा करनेवालोंको अपने तेज बाणोंसे मार डाला ॥२६॥

अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ।
प्रास्यद्द्रोणसुतो बाणान्वृष्टिं पूषानुजो यथा ॥ २७ ॥

अपने शत्रुकी ऐसी शीघ्रता देखकर अश्वत्थामाने अपने धनुष खींचकर मण्डलाकार बनाकर इस प्रकार बाण वर्षाये जैसे मेघ जल वर्षाते हैं ॥ २७ ॥

अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम् ।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष ॥ २८ ॥

मारिष ! आठ बैलोंवाले आठ छकटे भरे हुए आयुध अश्वत्थामाने उस दिनके आठवें भागमें चलाये ॥ २८ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकालान्तकोपमम् ।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन् ॥ २९ ॥

उस समय यमराजके समान क्रोधित अश्वत्थामा कालका भी काल जान पडता था । उनकी चेष्टा देखकर वहीं वीरोंको मूर्च्छा आती थी ॥ २९ ॥

पर्जन्य इव घर्मान्ते वृष्ट्या साद्रिद्रुमां महीम् ।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥ ३० ॥

जैसे वर्षाकालमें मेघ अपनी जलधाराओंसे पर्वत और वृक्षोंके सहित पृथ्वीको भिगो देता है, वैसे ही आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने अपने बाणोंकी वर्षासे उस सब सेनाको पीडित कर दिया ॥ ३० ॥

द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम् ।
वायव्यास्त्रेण स क्षिप्रं रुद्ध्वा पाण्ड्यानिलोऽनदत् ॥ ३१ ॥

अश्वत्थामारूपी मेघसे छुटी हुई उस दुःसह बाणवर्षाको मलयध्वज पाण्डयराजरूपी वायुने शीघ्र ही वायव्य अस्त्रके वेगसे नष्ट कर दिया और वह गर्जने लगा ॥ ३१ ॥

तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुभूषितम् ।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्त्वाश्वांश्चतुरोऽहनत् ॥ ३२ ॥

अश्वत्थामाने चन्दन और अगुरु लगी हुई गर्जना करनेवाले राजा मलयध्वजकी मलयके समान ध्वजाको काटकर गिरा दिया, फिर उसके चारों घोडोंको मार डाला ॥ ३२ ॥

सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिस्वनम् ।
धनुश्छित्त्वार्धचन्द्रेण व्यधमत्तिलशो रथम् ॥ ३३ ॥

फिर एक बाणसे सारथिको मारा और बडे मेघके समान शब्दवाले राजा मलयध्वजके धनुषको अर्ध चन्द्राकार बाणसे काट दिया। फिर उसके रथको तिलके समान काट दिया ॥३३॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य छित्त्वा सर्वायुधानि च ।
प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया ॥ ३४ ॥

अश्वत्थामाने अपने अस्त्रोंसे राजा मलयध्वजके सब अस्त्रोंका निवारण करके उसके सब आयुध काट दिये, परन्तु अश्वत्थामाने युद्ध करनेकी इच्छासे अपने वशमें आये हुए उन्हें न मारा ॥ ३४ ॥

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पितस्त्वराभिसृष्टः प्रतिशर्मगो बली ।
तमध्यतिष्ठन्मलयेश्वरो महान्यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा ॥ ३५ ॥

उस समय एक सजाया, श्रेष्ठ, बलवान् मतवाला हाथी अपने स्वामीको मरा हुआ देख, गर्जता और वेगसे दौडता हुआ आया, उस महान् हाथीको पास आया हुआ देख, राजा मलयध्वज उसकी पीठपर इस प्रकार चढ बैठे, जैसे गर्जता हुआ सिंह पर्वतके शिखरपर चढ बैठे ॥ ३५ ॥

स तोमरं भास्कररश्मिसंनिभं बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः ।
ससर्ज शीघ्रं प्रतिपीडयन्गजं गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन् ॥ ३६ ॥

पर्वतदेशके राजा मलयध्वजने शीघ्र ही उस हाथीको पीडित करके, अस्त्र प्रहारके लिये श्रेष्ठ प्रयत्न, वीर्य और क्रोधित होकर, सूर्यकी किरणके समान प्रकाशमान एक तोमर हाथमें लेकर और गर्जकर आचार्य द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ओर चलाया ॥ ३६ ॥

मणिप्रतानोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतोऽस्यसावित्यसकृन्मुदा नदन्पराभिनद्द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥ ३७ ॥

उत्तम मणि, तेजस्वी हीरक, सुवर्ण, वस्त्र, माला और मौक्तिकसे भूषित अश्वत्थामाके मुकुट-पर उस तोमरसे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक प्रहार किया और राजा मलयध्वजने कहा कि अश्वत्थामा मारा गया ॥ ३७ ॥

तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं भृशाविघातात्पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महावनं यथाद्रिशृङ्गं धरणीतले तथा ॥ ३८ ॥

वह सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और अग्निके समान प्रकाशमान सुन्दर मुकुट तोमरके गहरे आघातसे चूर होकर इस प्रकार गिरकर टूट गया, जैसे इन्द्रका वज्र लगनेसे महावनयुक्त पर्वतका शिखर पृथ्वीमें गिरता है ॥ ३८ ॥

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना पदाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समादधे चान्तकदण्डसंनिभानिषूनमित्रान्तकरांश्चतुर्दश ॥ ३९ ॥

उसके गिरनेसे अश्वत्थामाको ऐसा अत्यंत क्रोध हुआ जैसे लातके लगनेसे सर्पराजको क्रोध होता है। तब यमराजके दण्डके समान शत्रुओंका नाश करनेवाले चौदह बाण हाथमें ले लिये ॥ ३९ ॥

पस्य पादाग्रकरान्स पञ्चभिर्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः।
जघान षड्भिः षड्तूत्तमत्विषः स पाण्डयराजानुचरान्महारथान् ॥ ४०॥

फिर उसने पांच बाणोंसे हाथीके सूंड और पैरोंको, तीनसे राजा मलयध्वजके दोनों हाथ और शिरको काट दिया। शेष छः बाणोंसे राजा मलयध्वजके पीछे चलनेवाले छः महातेजस्वी महारथियोंको मार दिया ॥ ४० ॥

सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४१ ॥

रत्न, मोती, मणि और सोनेके भूषणोंसे युक्त, उत्तम चन्दन लगे, मोटे और लम्बे राजा मलयध्वजके दोनों हाथ कटकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरे जैसे गरुडके मारे दो सांप ॥४१॥

शिरश्च तत्पूर्णशशिप्रभाननं सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितौ विबभ्राज पतत्सकुण्डलं विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ॥ ४२ ॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुख और क्रोध भरे लालनेत्रवाला और ऊंची नासिका युक्त वह पाण्डयराजका शिर कुण्डलोंके सहित कटकर पृथ्वीपर इस प्रकार गिरा, जैसे विशाखाके मध्यभागमें रहनेवाला चन्द्रमा गिरता है ॥ ४२ ॥

समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः ।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ७४९ ॥

राजा मलयध्वजके मरनेके पश्चात् समस्त विद्या जाननेवाले और समस्त कर्मको समाप्त करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पास आकर प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने सुहृदोंसहित इस प्रकार स्तुति की, जैसे बलिके जीतनेपर देवताओंके राजा इन्द्रने विष्णुकी की थी ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ७४९ ॥

: १६ :

धृतराष्ट्र उवाच

पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि संजय ।
एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! युद्धमें राजा मलयध्वज पाण्ड्यराजके मारे जानेके पश्चात् और महावीर कर्णने शत्रु पाण्डवोंकी सेनाको भगाया, तब अर्जुनने क्या किया ? ॥ १ ॥

समाप्तविद्यो बलवान्युक्तो वीरश्च पाण्डवः ।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शंकरेण महात्मना ॥ २ ॥

क्योंकि पाण्डुपुत्र अर्जुनने समस्त धनुर्वेद विद्याकी शिक्षा समाप्त की है, विजय प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए बलवान् वीर हैं और साक्षात् भगवान् शिवने उसे आशीर्वाद दिया है कि तुम किसीसे युद्धमें नहीं हारोगे ॥ २ ॥

तस्मान्महद्भयं तीव्रममित्रघ्नाद्धनंजयात् ।
स यत्तत्राकरोत्पार्थस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

इसलिये हम शत्रुनाशन अर्जुनसे बहुत डरते हैं । अतः संजय ! कुन्तीपुत्र अर्जुनने वहां जो कर्म किया हो, सो हमसे कहो ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम् ।
पश्यातिमान्यं राजानमपयातांश्च पाण्डवान् ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! राजा मलयध्वज पाण्ड्यके मरनेके पश्चात् शीघ्रतासे कृष्णने अर्जुनसे हितका वचन कहा, देखो, हम माननीय राजा युधिष्ठिरको तथा युद्धभूमिसे हटे हुए अन्य पाण्डवोंको नहीं देखते हैं ॥ ४ ॥

अश्वत्थाम्नश्च संकल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः ।
तथाश्वनरनागानां कृतं च कदनं महत् ।
इत्याचष्ट सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने ॥ ५ ॥

देखो, अश्वत्थामाके संकल्पके अनुसार कर्णने सृञ्जय वीरोंका नाश किया है, तथा कर्णने अपनी सेनाके हाथी, घोडे और रथोंका अत्यंत नाश कर दिया है, इत्यादि सब सुदुर्धर्ष वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णने किरीटधारी अर्जुनसे कहा ॥ ५ ॥

एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम् ।
वाहयाश्वान्हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन, युद्धको देख और अपने भाईके ऊपर आये हुए घोर और महान् भयको जानके अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, हृषीकेश ! हमारे घोडोंको शीघ्र चलाओ ॥ ६ ॥

ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना ।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत्समागमः ॥ ७ ॥

अर्जुनके वचन सुन, श्रीकृष्ण जिसका सामना करनेके लिये और कोई योद्धा नहीं है ऐसे रथसे आगे चले । तब फिर दारुण युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८ ॥

हे महाराज ! अनन्तर यमराजकी पुरीको भरनेवाला कर्ण और पाण्डवोंका घोर युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥

धनूंषि बाणान्परिघानसितोमरपट्टिशान् ।
मुसलानि भुशुण्डीश्च शक्तिऋष्टिपरश्वधान् ॥ ९ ॥

योद्धा लोग धनुष, बाण, परिघ, खड्ग, तोमर, पट्टिश, मुसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, फरश ॥ ९ ॥

गदाः प्रासानसीन्कुन्तान्भिण्डिपालान्महाङ्कुशान् ।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिगीषया ॥ १० ॥

गदा, प्रास, तलवार, कुन्तल, भिन्डिपाल और बडे अंकुश लेकर एक दूसरेको जीतनेके लिये शीघ्रतासे प्रहार करने लगे ॥ १० ॥

बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत् ।
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान् ॥ ११ ॥

वीरोंके धनुष, बाण और प्रत्यञ्चाके शब्दसे दिशा, कोने और आकाश पूरित होगए; तथा रथोंकी पहियोंके शब्दसे भूमिको नादित करते हुए शत्रुओंकी ओर बढने लगे ॥ ११ ॥

तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम् ।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः ॥ १२ ॥

उस बडे शब्दसे प्रसन्न होकर, कलहका अन्त करनेकी इच्छासे वे वीर लोग दूसरे वीरोंसे बडा घोर युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

ज्यातलत्रधनुःशब्दाः कुञ्जराणां च बृंहितम् ।
ताडितानां च पततां निनादः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

उस युद्धमें डोरी, तलत्राण और धनुषका शब्द, तथा गर्जते हुए हाथियोंकी आवाज, मारनेवाले और गिरनेवाले वीरोंका घोर शब्द होने लगा ॥ १३ ॥

बाणशब्दांश्च विविधाञ्शूराणामभिगर्जताम् ।
श्रुत्वा शब्दं भृशं त्रेसुर्जघ्नुर्मम्लुश्च भारत ॥ १४ ॥

भारत ! शूरवीरोंकी गर्जना और बाणोंके विविध शब्दको सुनकर कितने ही सैनिक भयभीत होते थे, अनेक मरते थे और म्लान हो जाते थे ॥ १४ ॥

तेषां नानद्यतां चैव शस्त्रवृष्टिं च मुञ्चताम् ।
बहूनाधिरथिः कर्णः प्रममाथ रणेषुभिः ॥ १५ ॥

इस प्रकार गर्जते हुए और शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए शत्रुसैनिकोंमेंसे अनेक वीरोंको महारथि कर्णने अपने बाणोंसे युद्धमें मार डाला ॥ १५ ॥

पञ्च पाञ्चालवीराणां रथान्दश च पञ्च च ।
साश्वसूतध्वजान्कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १६ ॥

कर्णने अपने बाणोंसे पाञ्चाल देशके महारथियोंमेंसे पहले पांच, फिर दश और फिर पांच योद्धाओंको अश्व, सारथि और ध्वजाओंके सहित मारकर यमपुरीमें भेज दिया ॥ १६ ॥

योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे ।
शीघ्रास्त्रा दिवमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ १७ ॥

तब समरमें पाण्डवोंकी सेनाके शीघ्र शस्त्र चलानेवाले महापराक्रमी प्रधान योद्धा कर्णके चारों ओर आ घिरे ॥ १७ ॥

ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन् ।
विजगाहेऽण्डजापूर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥ १८ ॥

तब कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे उस शत्रु सेनाको इस प्रकार मथा, जैसे मछलीसे भरे हुए कमलपूर्ण तालावको मतवाला यूथपति हाथी मथता है ॥ १८ ॥

द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम् ।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥ १९ ॥

राधापुत्र कर्ण शत्रुसेनाके मध्यभागमें पहुंचकर अपने उत्तम धनुषको घुमाते हुए युद्धमें तीक्ष्ण बाणोंसे अनेक शत्रुओंके शिरोंको काटकर पृथ्वीमें गिराने लगा ॥ १९ ॥

चर्मवर्माणि संछिन्द्य निर्वापमिव देहिनाम् ।
विषेहुर्नास्य संपर्कं द्वितीयस्य पतत्त्रिणः ॥ २० ॥

देहधारी वीरोंके चमडे और कवच कटकर पृथ्वीमें गिर गये। वह शत्रुसेना सूर्यके समान तेजस्वी कर्णके दूसरे बाणोंका स्पर्श न सह सकी ॥ २० ॥

वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः मच्युतैः शरैः ।
मौर्व्या तलत्रैन्यर्वधीत्कशया वाजिनो यथा ॥ २१ ॥

कर्ण अपने धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे इस प्रकार सेनाके वीरोंके कवच, शरीर और प्राणोंको मथने लगा, जैसे सारथि घोडोंको कोडे मारता है ॥ २१ ॥

पाण्डुसृञ्जयपाञ्चालाञ्शरगोचरमानयत् ।
ममर्द कर्णस्तरसा सिंहो मृगगणानिव ॥ २२ ॥

पाञ्चाल, सृञ्जय और जो पाण्डवोंकी सेनाके वीर कर्णके बाणोंके पहुंचके भीतर आये, उन्हें उसने बडे वेगसे कुचल डाला, जैसे सिंह अपनी दृष्टिमें आये हुए मृगोंको वेगपूर्वक मारता है ॥ २२ ॥

ततः पाञ्चालपुत्राश्च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥ २३ ॥

मारिष ! तब कर्णसे युद्ध करनेके लिये पाञ्चालपुत्र, द्रौपदीके पांचों पुत्र, नकुल, सहदेव और युयुधान एक साथ आये ॥ २३ ॥

व्यायच्छमानाः सुभृशं कुरुपाण्डवसृञ्जयाः ।
प्रियानसूत्रणे त्यक्त्वा योधा जग्मुः परस्परम् ॥ २४ ॥

इस प्रकारसे कुरु, सृञ्जय और पाण्डवोंके योद्धा यत्नपूर्वक युद्ध करते थे, तब अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोडकर सब योद्धा समरमें परस्पर प्रहार करने लगे ॥ २४ ॥

सुसंनद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः ।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महारथाः ॥ २५ ॥

सुसज्ज कवच, शिरस्त्राण और भूषण धारण किये हुए महारथि क्षत्रिय लोग गदा, मुसल तथा परिघ आदि लेकर युद्ध करनेको आए ॥ २५ ॥

समभ्यधावन्त भृशं देवा दण्डैरिवोद्यतैः ।
नदन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥ २६ ॥

मारिष ! वीर लोग देवताओंके दण्डके समान शस्त्र उठाये, नाचते, कूदते, पुकारते और गर्जते हुए परस्पर युद्ध करनेको आए ॥ २६ ॥

ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चाहवताडिताः ।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विस्रस्तिष्केक्षणा युधि ॥ २७ ॥

अनन्तर वे एक दूसरेको मारने लगे, कोई युद्धमें बिद्ध होकर मारकर गिरने लगे । किसीके शरीरसे रुधिर बहने लगा, किसीका शिर कट गया । किसीकी आखें और शस्त्र निकल पडी ॥ २७ ॥

दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसंनिभैः ।
जीवन्त इव चाप्येते तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः ॥ २८ ॥

किसीके मुखमें रक्तरंजित दांत इस प्रकार दीखते थे, जैसे खिला हुआ अनार; अनेक मरे मनुष्य रुधिरसे भीगे हुए और अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त इस प्रकार पडे थे, मानो जीते ही हैं ॥२८॥

परस्परं चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिण्डिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ २९ ॥

कोई पट्टिशसे, कोई खड्गसे, शक्तिसे, कोई तोमरसे, कोई भिन्दिपालसे, कोई नाखून और कोई प्राससे परस्पर मार कर गिर गए ॥ २९ ॥

ततक्षुश्चिच्छिदुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा ।
संचकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा निर्बिभिदुश्च ह ॥ ३० ॥

उस युद्धमें परस्पर कुपित हुए योद्धा हर प्रकार एक दूसरेका छेदन, भेदन, विदारण, क्षेपण, कर्तन और संहार करने लगे ॥ ३० ॥

पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।
क्षरन्तः स्वरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥ ३१ ॥

एक दूसरेके आघातसे मारे गये वीर रुधिरमें भीगकर, मरकर पृथ्वीमें पडे थे और अपने अंगोंसे रुधिर बहा रहे थे । रुधिरमें भीगे वीरोंकी ऐसी शोभा बढी जैसे लाल रस बहाते हुए कटे हुए चन्दनके वृक्षकी ॥ ३१ ॥

रथै रथा विनिहता हस्तिनश्चापि हस्तिभिः ।
नरा नरवरैः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३२ ॥

रथियोंसे रथि, हाथियोंने हाथियोंको, योद्धा पैदल मनुष्योंने मनुष्योंको और घोडोंने घोडोंको समरमें सहस्रोंकी संख्यामें मार डाला ॥ ३२ ॥

ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः ।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च छिन्नाः शस्त्राणि तत्यजुः ॥ ३३ ॥

ध्वज, शिर, छत्र, हाथियोंके सूंड और मनुष्योंके हाथ ये सब क्षुर, भल्ल तथा अर्धचन्द्रोंसे कटकर अस्त्र-शस्त्रोंको त्यागकर गिर पडे ॥ ३३ ॥

नरांश्च नागांश्च रथान्हयान्नस्मृदुराहवे ।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥ ३४ ॥

घुडसवारोंने अनेक शूरवीरोंको मार डाला और दन्तार हाथियोंकी सूंडें काट लीं । सूंड कटे हुए हाथियोंने मनुष्यों, हाथियों, रथों और घोडोंको कुचल डाला ॥ ३४ ॥

सपताका ध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः ।
पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥ ३५ ॥

पताका और ध्वजोंसहित अनेक हाथी पहाडोंके समान कटकर पृथ्वीमें गिर गये, पैदल वीरोंसे आक्रमण किये हुए अनेक हाथी और रथ पडे थे ॥ ३५ ॥

प्रहता हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः ।
अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ।
सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते ॥ ३६ ॥

मारे गये और मारे जाते हुए सब ओर पडे हुए थे । घुडसवार शीघ्रतासे पैदल वीरोंके पास पहुंचते ही उनसे मारे गये । घुडसवारोंके आघातसे अनेक पैदल सैनिक मारे जाकर युद्धमें नित्यलीन हो गये ॥ ३६ ॥

मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ।
हतानां वदनान्यासन्गात्राणि च महामते ॥ ३७ ॥

हे महाबुद्धिवान् राजन् ! उस महायुद्धमें मारे हुए वीरोंके मुख और शरीर ऐसे दीखते थे, जैसे कुचले हुए कमल और सूखी हुई कमल माला ॥ ३७ ॥

रूपाण्यत्यर्थकाम्यानि द्विरदाश्वनृणां नृप ।
समुन्नानीव वस्त्राणि प्रापुर्दुर्दर्शतां परम् ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७८७ ॥

हे राजन् ! बहुत सुन्दर हाथी, घोडे और मनुष्योंको मरनेसे शोभा इस प्रकार नष्ट होगई, जैसे क्षारसे आर्द्र होनेसे अच्छे वस्त्रोंकी होती है । उनकी ओर देखना कठिन था ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ७८७ ॥

: १७ :

सञ्जय उवाच

हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर, महावत धृष्टद्युम्नके मारनेकी इच्छासे क्रोधित होकर हाथियोंके साथ उनपर टूट पडे ॥ १ ॥

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवीरा गजयोधिनः ।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २ ॥

पूर्व और दक्षिण देशके श्रेष्ठ हाथिवीर, अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र, मगध और ताम्रलिप्त ॥ २ ॥

मेकलाः कोशला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा ।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! मेकल, कोशल, मद्र, दशार्ण, निपध और कलिङ्गदेशके गजयुद्धमें कुशल क्षत्रियोंके सहित अनेक वीर ॥ ३ ॥

शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालाचलमाहवे ॥ ४ ॥

वे सब लोग मिलकर समरमें पाञ्चाल सेनाके ऊपर इस प्रकार वाण, तोमर और नाराचोंकी वर्षा करने लगे, जैसे मेघ जल वर्षाते हैं ॥ ४ ॥

तान्संमिमर्दिषुर्नागान्पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्भृशम् ।
पोथितान्पार्षतो बाणैर्नाराचैश्चाभ्यवीवृषत् ॥ ५ ॥

उस समय शत्रुओंके द्वारा पार्ष्णि, अंगूठे और अंकुशोंसे वारवार वेगसे प्रेरित होकर आये हुए उन हाथियोंको मार डालनेकी इच्छावाले द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने उनपर नाराच बाणोंकी वर्षा की ॥ ५ ॥

एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत ।
द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्शरैः ।
प्रच्छाद्यमानो द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरः ॥ ६ ॥

भारत ! धृष्टद्युम्न उन पर्वततुल्य शरीरवाले हाथियोंमेंसे एकेकको दस दस, छः छः और आठ आठ नाराच बाणोंसे विद्ध करने लगे । उस समय जैसे मेघ सूर्यको घेर लेते हैं, इस प्रकार हाथियोंने धृष्टद्युम्नको घेर लिया ॥ ६ ॥

पर्यास्थुः पाण्डुपाञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ।
तान्नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीशरनादितैः ॥ ७ ॥

तब गरजते हुए, तेज आयुध धारण करनेवाले पाण्डव और पाञ्चाल धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये दौडे । वे सब वीर अपने बाणोंको हाथियोंपर वर्षाते हुए और प्रत्यञ्चा रूपी वीणाको बाणोंसे झंकारते कौरवोंकी सेनापर टूट पडे ॥ ७ ॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् ॥ ८ ॥

नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पांचों पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, शिखण्डी, वीर्यवान् चेकितान आदि वीरोंने उस हस्ती सेनाके ऊपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान्रथानपि ।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ ९ ॥

म्लेच्छ वीरोंसे प्रेरित होकर उनके हाथियोंने अत्यंत क्रुद्ध होकर सूण्डमें पकडकर अनेक घोडे, रथ और मनुष्योंको मार डाला; उन हाथियोंने पैरोंसे वीरोंको पीस दिया ॥ ९ ॥

बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः ।
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥ १० ॥

उन्होंने अपने दांतोंके अग्र भागसे कितनोंको चीर दिया और सूंडोंसे पकडकर अनेक वीरोंको फेंक दिया । दूसरे कितने वीर उनके दांतोंमें गूंथकर भयंकर स्थितियें नीचे गिर गये ॥ १० ॥

प्रमुखे वर्तमानं तु द्विपं वङ्गस्य सात्यकिः ।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्मण्यपातयत् ॥ ११ ॥

सात्यकिने अपने आगे खडे हुए वङ्गदेशके वीरके हाथीको मर्मस्थलमें वेगवान् तेज तीक्ष्ण नाराच बाणसे प्रहार कर उसे विदीर्ण करके भूमिपर गिराया ॥ ११ ॥

तस्यावर्जितनागस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाभिनद्वक्षः सोऽपतद्भुवि सात्यकेः ॥ १२ ॥

वङ्ग देशका वीर गिरनेवाले हाथीसे उतरने लगा और उसने उतरते ही सात्यकिके हृदयमें एक नाराच बाण मारा और घायल हुआ वह भूमिमें गिर पडा ॥ १२ ॥

पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् ।
सहदेवः प्रयत्नात्तैर्नाराचैर्व्यहनात्त्रिभिः ॥ १३ ॥

धावा करनेवाले पुण्ड्रदेशके राजाके चलते हुए पर्वतके समान हाथीको सहदेवने प्रयत्नपूर्वक चलाये तीन नाराच बाणोंसे व्याकुल कर दिया ॥ १३ ॥

विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् ।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्यगात् ॥ १४ ॥

पुण्ड्रदेशके राजाके हाथीको पताका, महावत, कवच, ध्वजा और प्राणोंसे रहित करके सहदेव अङ्गदेशके राजासे लडनेको चले गये ॥ १४ ॥

सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत् ।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन च ॥ १५ ॥

नकुलने सहदेवको अङ्ग देशके राजासे लडनेको रोक दिया और स्वयं आपही उससे लडने लगे । यमराजके दण्डके समान तीन और सौ नाराच बाणोंसे अंगराजके हाथीको पीडित किया ॥ १५ ॥

दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान् ।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत् ॥ १६ ॥

अङ्गदेशके राजाने सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी आठ सौ तोमर नकुलकी ओर चलाये, परन्तु नकुलने बाणोंसे एकएकके तीन तीन टुकडे कर दिये ॥ १६ ॥

तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः ।
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना ॥ १७ ॥

फिर एक अर्द्धचन्द्र बाणसे पाण्डुपुत्र नकुलने उसका शिर काट दिया, तब म्लेच्छ अंगराज अपने हाथी समेत पृथ्वीपर गिर गया ॥ १७ ॥

आचार्यपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे ।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः ॥ १८ ॥

जब हाथीके युद्धमें विशारद वह आचार्य पुत्र मारा गया, तब अङ्गदेशके महावतोंने क्रोध करके शीघ्रतासे हाथियोंद्वारा नकुलपर आक्रमण किया ॥ १८ ॥

चलत्पताकैः प्रमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः ।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः ॥ १९ ॥

अङ्गदेशके वीर प्रकाशमान् पताकाओंके सहित, अच्छे मुखवाले, सुवर्णकी डोरी और कवचसे युक्त, अपने हाथियोंको दौडाते हुए, नकुलको कुचलवा देनेकी इच्छासे इस प्रकार उनसे युद्ध करनेको आये, जैसे जलते हुए पर्वत दौडते हैं ॥ १९ ॥

मेकलोत्कलकालिङ्गा निषादास्ताम्रलिप्तकाः ।
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः ॥ २० ॥

मेकल, उत्कल, कालिङ्ग, निषादा और ताम्रलिप्तदेशके वीर नकुलको मारनेकी इच्छासे उनके ऊपर बाण और तोमर वर्षाने लगे ॥ २० ॥

तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः ।
परि पेतुः सुसंरब्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ २१ ॥

उन सबसे नकुल इस प्रकार छिप गये, जैसे मेघोंसे सूर्य छिप जाते हैं । तब पाण्डव, पाञ्चाल और सोमकवंशी क्षत्रिय वीर क्रोध करके युद्ध करनेको आये ॥ २१ ॥

ततस्तदभवद्युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह ।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः ॥ २२ ॥

तब रथियोंका हाथियोंके साथ घोर युद्ध हुआ । वे वीर लोग सहस्रों तोमर और बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

नागानां प्रस्फुटुः कुम्भा मर्माणि विविधानि च ।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च ॥ २३ ॥

उस समय हाथियोंके गंडस्थल और अनेक मर्मस्थान भिन्न होने लगे तथा नाराच बाणोंसे हाथियोंके दांत और अलंकार टूटने लगे ॥ २३ ॥

तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः ।
सहदेवो जघानाशु ते पेतुः सह सादिभिः ॥ २४ ॥

अनन्तर सहदेवने अपने तेज चौसठ बाणोंसे उनमेंसे आठ बडे हाथियोंको उनके सवारोंसहित पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २४ ॥

अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद्धनुरुत्तमम् ।
नाराचैरहनन्नागान्नकुलः कुरुनन्दन ॥ २५ ॥

कुरुनंदन ! इसी प्रकार नकुलने भी प्रयत्नपूर्वक उत्तम धनुषको खींचकर अपने तेज चलनेवाले नाराच बाणोंसे अनेक हाथियोंको काट डाला ॥ २५ ॥

ततः शैनेयपाञ्चाल्यौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
शिखण्डी च महानागान्सिषिचुः शरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥

तब धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक और शिखण्डीने उन महान् हाथियोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा की ॥ २६ ॥

ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः ।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥ २७ ॥

तब पर्वतके समान शत्रुओंके सब हाथी, उन मेघरूपी पाण्डव समान वीरोंके बाणोंकी वृष्टिसे आहत होकर इस प्रकार मरने लगे, जैसे वज्र वर्षासे पर्वत कटते हैं ॥ २७ ॥

*

एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुनरकुञ्जराः ।
द्रुतं सेनामवैक्षन्त छिन्नकूलामिवापगाम् ॥ २८ ॥

इस प्रकार उन पाण्डव नरश्रेष्ठोंने तुम्हारे हाथियोंका नाश करके देखा कि तुम्हारी वह सेना बांध तोडकर बहनेवाली नदीके समान भाग रही है ॥ २८ ॥

ते तां सेनामवालोक्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णमेवाभिदुद्रुवुः ॥ २९ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके वीर सैनिक तुम्हारी सेनाको इस प्रकार विक्षुब्ध कर फिर कर्णसे युद्ध करनेके लिये चले गए ॥ २९ ॥

सहदेवं ततः क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम् ।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥ ३० ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! जिस समय क्रोधमें भरे सहदेव तुम्हारी सेनाको दग्ध करने लगे, तब भाई दुःशासन अपने उस भाईसे युद्ध करनेको चला ॥ ३० ॥

तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र नराधिपाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ ३१ ॥

उन दोनों भाइयोंको महायुद्धमें एकत्र आये हुए देखकर, वहां सब नरेश सिंहनाद करने और वस्त्र घुमाने लगे ॥ ३१ ॥

ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना ।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥ ३२ ॥

हे भारत ! तब तुम्हारे धनुर्धर पुत्रने क्रोध करके बलवान् पाण्डुपुत्र सहदेवके हृदयमें तीन बाण मारकर आघात किया ॥ ३२ ॥

सहदेवस्ततो राजन्नाराचेन तवात्मजम् ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! तब सहदेवने तुम्हारे पुत्रको एक नाराचसे घायल करके फिर सत्तर बाणोंसे विद्ध किया और तीन तीन बाण सारथिके शरीरमें मारे ॥ ३३ ॥

दुःशासनस्तदा राजंश्छित्त्वा चापं महाहवे ।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! तब दुःशासनने उस महायुद्धमें सहदेवके धनुषको काट दिया, फिर उनके हाथ और हृदयमें तिहत्तर बाण मारे ॥ ३४ ॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे ।
व्याविध्यत युधां श्रेष्ठः श्रीमांस्तव सुतं प्रति ॥ ३५ ॥

तब सहदेवने अत्यंत क्रोध करके महायुद्धमें खड्ग धारण किया और वह योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीमान् सहदेवने तुम्हारे पुत्रकी ओर चलाया ॥ ३५ ॥

समार्गणगणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः ।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥ ३६ ॥

वह खड्ग तुम्हारे पुत्रके धनुष, रोदा और बाणको काटकर आकाशसे गिरनेवाले सर्पके समान पृथ्वीमें गिर गया ॥ ३६ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान् ।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः ॥ ३७ ॥

अनन्तर प्रतापवान् सहदेवने दूसरा धनुष लेकर एक विनाशक बाण दुःशासनकी ओर चलाया ॥ ३७ ॥

तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम् ।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ॥ ३८ ॥

उस समय यमराजके दण्डके समान कान्तिवाले बाणको आते देख, दुःशासनने अपने तेज खड्गसे उसके दो टुकडे कर दिये ॥ ३८ ॥

तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः ।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव ॥ ३९ ॥

तब सहदेवने हंसकर सहसा आते हुए उस खड्गको अपने तेज बाणोंसे काटकर समरमें गिरा दिया ॥ ३९ ॥

ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे ।
सहदेवरथे तूर्णं पातयामास भारत ॥ ४० ॥

हे भारत ! अनन्तर तुम्हारे पुत्रने उस महा युद्धमें सहदेवके रथकी ओर तुरंत ही चौसठ बाण चलाये ॥ ४० ॥

तान्शरान्समरे राजन्वेगेनापततो बहून् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत ॥ ४१ ॥

राजन् ! तब युद्धमें सहदेवने उन बाणोंको वेगसे आते देख, एक एकको अपने पांच पांच बाणोंसे काट दिया ॥ ४१ ॥

स निवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् ।
अथास्मै सुबहून्बाणान्माद्रीपुत्रः समाचिनोत् ॥ ४२ ॥

तुम्हारे पुत्रके चलाये उन सब महाबाणोंका निवारण करके, माद्रीपुत्र सहदेवने तुम्हारे पुत्रकी ओर अनेक बाण चलाये ॥ ४२ ॥

तत: क्रुद्धो महाराज सहदेव: प्रतापवान् ।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ।
विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् ॥ ४३ ॥

हे महाराज ! तब प्रतापवान् सहदेवने महा क्रोध करके मृत्यु, काल और यमराजके समान भयंकर एक बाण धनुषपर चढाया; फिर उसने कानतक बलपूर्वक धनुष खींचकर तुम्हारे पुत्रपर वह बाण मारा ॥ ४३ ॥

स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत् ।
प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नग: ।
तत: स मुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथ: ॥ ४४ ॥

राजन् ! वह बाण दु:शासनको और उसके बडे कवचको वेगसे भेदकर इस प्रकार पृथ्वीमें घुस गया, जैसे बिलमें सांप चला जाता है, उस बाणसे तुम्हारे पुत्र महारथी दु:शासनको मूर्च्छा हो गई ॥ ४४ ॥

मूढं चैनं समालक्ष्य सारथिस्त्वरितो रथम् ।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानं शितै: शरै: ॥ ४५ ॥

उनको विकल और सहदेवके तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध होते हुए देखकर, भयभीत हुए उनके सारथिने शीघ्रतासे रथको युद्धसे हटा दिया ॥ ४५ ॥

पराजित्य रणे तं तु पाण्डव: पाण्डुपूर्वज ।
दुर्योधनबलं हृष्ट: प्रामथद्वै समन्तत: ॥ ४६ ॥

हे पाण्डुके बडे भाई ! इस प्रकार दु:शासनको पराजित कर पाण्डुपुत्र सहदेवने प्रसन्न होकर दुर्योधनकी सेनाको सब ओरसे मथ डाला ॥ ४६ ॥

पिपीलिकापुटं राजन्यथामृद्नान्नरो रुषा ।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत ॥ ४७ ॥

हे भारत ! जिस प्रकार कोई पुरुष क्रोधसे व्याप्त होकर चींटियोंके दलको तोड डालता है, ऐसे ही तुम्हारी कौरव सेनाको सहदेवने काट डाला ॥ ४७ ॥

नकुलं रभसं युद्धे दारयन्तं वरूथिनीम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास वै तदा ॥ ४८ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! बलवान् नकुल जब युद्धमें तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे, तब वैकर्तन कर्ण उनको निवारण करने लगे ॥ ४८ ॥

नकुलश्च तदा कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्यचक्षुषा ॥ ४९ ॥

तब नकुल कर्णको देखकर हंसकर ऐसा कहने लगे, आज बहुत दिनोंके बाद देवताओंने मुझे सौम्य दृष्टिसे देखा है, यह हमारे प्रारब्धहीका फल है ॥ ४९ ॥

यस्य मे त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतः।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥ ५० ॥

हे पापी! तुम इस युद्धमें हमारी आंखोंके सामने आ गया है; तूही इन सर्वनाश करनेवाले अनर्थ, वैर और कलहका मूल है ॥ ५० ॥

त्वद्दोषात्कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम्।
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ५१ ॥

तेरे ही दोषसे कौरव परस्पर लडकर क्षीण हो गये हैं, आज तुझे युद्धमें मारकर मैं कृतार्थ और सन्तापरहित हो जाऊंगा ॥ ५१ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥ ५२ ॥

नकुलके ऐसे वचन कहनेपर सूतपुत्र कर्णने कहा– तुम राजकुमारके विशेष करके धनुर्धर योद्धाके समान कार्य करो ॥ ५२ ॥

प्रहरस्व रणे बाल पश्यामस्तव पौरुषम्।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ५३ ॥

हे बालक! तुम युद्धमें शस्त्र चलाओ, हम तुम्हारे बलको देखते हैं; हे शूर! पहले युद्धमें कुछ कर्म करके ही उस विषयमें तुम्हें बातें करना योग्य है, वृथा नहीं ॥ ५३ ॥

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः।
स युध्यस्व मया शक्त्या विनेष्ये दर्पमद्य ते ॥ ५४ ॥

हे प्यारे! वीर लोग समरमें विना कुछ कहे ही अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करते है। तुम तुम्हारी पूरी शक्तिसे हमसे लडो, हम तुम्हारे अभिमानको आज नष्ट करेंगे ॥ ५४ ॥

इत्युक्त्वा प्राहरत्तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ ५५ ॥

ऐसा कहकर सूतपुत्र कर्णने पाण्डुपुत्र नकुलपर शीघ्र ही प्रहार किया और समरमें तिहत्तर बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५५ ॥

नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ५६ ॥

भारत! सूतपुत्रसे घायल होकर नकुलने भी विषीले सर्पके समान अस्सी बाण कर्णकी ओर चलाये और उसे व्याकुल कर दिया ॥ ५६ ॥

तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमार्दयत् ॥ ५७ ॥

तब महाधनुर्धर कर्णने अपने सोनेके पङ्खवाले तेज बाणोंसे नकुलका धनुष काट दिया । और उनको तीस बाणोंसे पीडित किया ॥ ५७ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलं पपुः ॥ ५८ ॥

वे बाण नकुलका कवच तोड कर इस प्रकार युद्धमें उनका रुधिर पीने लगे, जैसे विषीले सांप पृथ्वी तोडकर पानी पीते हैं ॥ ५८ ॥

अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ ५९ ॥

अनन्तर नकुलने सुवर्ण भूषित पीठवाला दूसरा दुर्धर धनुष लेकर कर्णकी ओर बीस और उनके सारथिकी ओर तीन बाण चलाये और घायल किया ॥ ५९ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुरच्छिनत् ॥ ६० ॥

हे महाराज ! तब शत्रुनाशन नकुलने महा क्रोध कर अत्यन्त तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे कर्णका धनुष काट दिया ॥ ६० ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः ।
आजघ्ने प्रहसन्वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥ ६१ ॥

फिर धनुष रहित महावीर सब लोगोंमें विख्यात महारथी कर्णके ऊपर नकुलने हंसकर तीन सौ बाण चलाये ॥ ६१ ॥

कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष ।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥ ६२ ॥

मारिष ! पाण्डुपुत्र नकुलके बाणोंसे कर्णको व्याकुल देखकर, सब देवता और रथी वीर लोग महान् आश्चर्य करने लगे ॥ ६२ ॥

अथान्यद्धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्दयत् ॥ ६३ ॥

अनन्तर विकर्तनपुत्र कर्णने दूसरा धनुष लेकर नकुलके कंधे और कोखके सन्धिमें पांच बाण मारे ॥ ६३ ॥

उरःस्थैरथ नैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यरोचत ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन्प्रभाम् ॥ ६४ ॥

उन पांचों बाणोंके वक्षमें लगनेसे माद्रीपुत्र नकुलकी ऐसी शोभा बढी, जैसे जगत्में अपनी किरणोंसे प्रकाश करते हुए सूर्यकी ॥ ६४ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिरायसैः ।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥ ६५ ॥

मारिष ! अनन्तर नकुलने कर्णको सात बाणोंसे विद्ध किया और उनके धनुषके नोकको फिर काट दिया ॥ ६५ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् ।
नकुलस्य ततो बाणैः सर्वतोऽवारयद्दिशः ॥ ६६ ॥

कर्णने समरमें अत्यंत वेगशाली दूसरा धनुष लेकर नकुलको सब दिशाओंसे बाणोंसे आच्छादित किया ॥ ६६ ॥

संछाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः ।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥ ६७ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे सहसा आच्छादित होते हुए महारथी नकुलने अपने बाणोंसे कर्णके सब बाणोंको शीघ्र ही काट दिया ॥ ६७ ॥

ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्न्यदृश्यत ।
खद्योतानां गणैरेव संपतद्भिर्यथा नभः ॥ ६८ ॥

उस समय इन दोनोंके बाणोंके जालसे आकाश इस प्रकार छा गया, जैसे वर्षाकालकी रात्रिमें जुगुनुओंके समूहोंसे छा जाता है ॥ ६८ ॥

तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा ।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीत्समाकुलम् ॥ ६९ ॥

उस समय इन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए सौ–सौ बाणोंसे आच्छादित हुआ आकाश टीड्डियोंके समूहोंसे भरा हुआ जान पडता था ॥ ६९ ॥

ते शरा हेमविकृताः संपतन्तो मुहुर्मुहुः ।
श्रेणीकृता अभासन्त हंसाः श्रेणीगता इव ॥ ७० ॥

उन दोनोंके बार बार गिरते हुए वे सुवर्णभूषित बाण श्रेणिबद्ध होकर ऐसे शोभित होते थे, जैसे हंस पंक्तिबद्ध होकर उड रहे हैं ॥ ७० ॥

बाणजालावृते व्योम्नि छादिते च दिवाकरे ।
समसर्पत्ततो भूतं किंचिदेव विशां पते ॥ ७१ ॥

पृथ्वीपते ! जब आकाश बाणोंके जालसे छा गया और सूर्य छिप गये, तब कोई प्राणी वस्तु चल नहीं सकी ॥ ७१ ॥

निरुद्धे तत्र मार्गे तु शरसंघैः समन्ततः ।
व्यरोचतां महाभागौ बालसूर्याविवोदितौ ॥ ७२ ॥

उस समय उन दोनोंने बाणोंके समूहसे वहां सब ओरका मार्ग बन्द कर दिया। युद्धकालमें उन दोनों महाभागोंकी ऐसी शोभा बढी, जैसे दो बाल सूर्य उदय होते हैं ॥ ७२ ॥

कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः ।
अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्ताः शरार्दिताः ॥ ७३ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे विद्ध होकर, सोमक देशके वीर पीडासे व्याकुल हो गये और बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर छिपने लगे ॥ ७३ ॥

नकुलस्य तथा बाणैर्वध्यमाना चमूस्तव ।
व्यशीर्यत दिशो राजन्वातनुन्ना इवाम्बुदाः ॥ ७४ ॥

राजन् ! इसी प्रकार नकुलके बाणोंसे मारी जाती हुई तुम्हारी महा सेना चारों ओरसे इस प्रकार भागने लगी, जैसे वायुके वेगसे मेघ भागते हैं ॥ ७४ ॥

ते सेने वध्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः ।
शरपातमपक्रम्य ततः प्रेक्षकवत्स्थिते ॥ ७५ ॥

उन दोनों वीरोंके दिव्य महा बाणोंसे व्याकुल होती हुई वे दोनों सेनाएं उनके बाण पतन प्रदेशके बाहर दूर रहकर, युद्ध देखनेको प्रेक्षक बनकर खडी रहीं ॥ ७५ ॥

प्रोत्सारिते जने तस्मिन्कर्णपाण्डवयोः शरैः ।
विव्याधाते महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः ॥ ७६ ॥

थोडे समयमें कर्ण और नकुलके बाणोंसे जब दोनों सेनाओंके वीर दूर हो गये, तब ये दोनों महात्मा वीर एक दूसरेपर अपने बाणोंकी वर्षा करके परस्पर विद्ध करने लगे ॥ ७६ ॥

निदर्शयन्तौ त्वस्त्राणि दिव्यानि रणमूर्धनि ।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥ ७७ ॥

युद्धके अग्रभागमें नकुल और कर्ण अपनी दिव्य अस्त्र विद्याको दिखलाते हुए, एक दूसरेके ऊपर दिव्य बाण चलाकर परस्पर आच्छादित करने लगे और एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे घोर युद्ध करने लगे ॥ ७७ ॥

नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः ।
ते तु कर्णमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथा परे ॥ ७८ ॥

नकुलकी धनुषसे छूटे हुए कंक और मयूरके पङ्ख लगे बाण कर्णको चारों ओरसे छिपाकर, आकाशमें स्थित होते थे, उसी प्रकार कर्णके भी ॥ ७८ ॥

शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन ।
चन्द्रसूर्यौ यथा राजंश्छाद्यमानौ जलागमे ॥ ७९ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा मेघोंके आनेसे नहीं दीखते, वैसे ही बाण निर्मित भवनमें प्रविष्ट होनेसे नकुल और कर्ण किसीको न दिखलाई दिये ॥ ७९ ॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः ।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ८० ॥

अनन्तर अत्यंत घोर स्वरूप धारण करके कर्णने समरमें महा क्रोध करके पाण्डुपुत्र नकुलको चारों ओरसे अपने बाणोंकी वर्षासे छा लिया ॥ ८० ॥

स च्छाद्यमानः समरे सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न चकार व्यथां राजन्भास्करो जलदैर्यथा ॥ ८१ ॥

हे राजन् ! सूतपुत्रके बाणोंसे युद्धमें आच्छादित कर दिये जानेपर भी नकुल, मेघोंसे ढके होनेपर भी व्यथित न होनेवाले सूर्यके समान थोडा भी व्यथित न हुएं ॥ ८१ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष ।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८२ ॥

मारिष ! अनन्तर कर्णने हंसकर सैकडों सहस्रों बाण चलाकर युद्धमें बाणोंके जाल बिछा दिये ॥ ८२ ॥

एकच्छायमभूत्सर्वं तस्य बाणैर्महात्मनः ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे संपतद्भिः शरोत्तमैः ॥ ८३ ॥

उस समय महात्मा कर्णके उत्तम बाणोंसे घिर जानेसे सबकुछ अंधेरेमें छा गया, जैसे मेघोंसे घिरे जानेसे सब ओर अंधेरा हो जाता है ॥ ८३ ॥

ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः ।
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ८४ ॥

हे महाराज ! तब हंसकर कर्णने महात्मा नकुलका धनुष काट दिया और उनके सारथिको रथकी बैठकसे मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ८४ ॥

×

तथाश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
यमस्य सदनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ८५ ॥

भारत ! फिर चार तेज बाणोंसे नकुलके चारों घोडोंको भी शीघ्र ही मारकर यमराजके घर भेज दिया ॥ ८५ ॥

अथास्य तं रथं तूर्णं तिलशो व्यधमच्छरैः ।
पताकां चक्ररक्षौ च ध्वजं खड्गं च मारिष ।
शतचन्द्रं ततश्चर्म सर्वोपकरणानि च ॥ ८६ ॥

मारिष ! फिर उसने अपने बाणोंसे नकुलके रथको तिलके समान तुरंत ही काट दिया, तथा पताका, पहियोंकी रक्षा करनेवाले, ध्वज और खड्गको भी नष्ट कर डाला । सौ चन्द्रमाके चिन्होंसे प्रकाशमान् ढाल और दूसरे सब आयुधोंको भी नष्ट कर दिया ॥ ८६ ॥

हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशां पते ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य विष्ठितः ॥ ८७ ॥

हे राजेन्द्र ! तब घोडे, रथ और कवच रहित होकर, नकुल शीघ्रतासहित रथसे उतरे और हाथमें एक परिघ लेकर खडे हो गये ॥ ८७ ॥

तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ।
व्यहनत्सायकै राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८८ ॥

राजन् ! तब सूतपुत्र कर्णने अपने सैकडों हजारों तेज बाणोंसे नकुलके उठे हुए अत्यंत घोर परिघको काट दिया ॥ ८८ ॥

व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः संनतपर्वभिः ।
आर्दयद्बहुशः कर्णो न चैनं समपीडयत् ॥ ८९ ॥

अनन्तर नकुलको अस्त्र शस्त्र रहित देखकर, अनेक तेज बाण उनके शरीरमें मारे और घायल किया; परन्तु उन्हें मार नहीं डाला ॥ ८९ ॥

स वध्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ।
प्राद्रवत्सहसा राजन्नकुलो व्याकुलेन्द्रियः ॥ ९० ॥

राजन् ! अस्त्रविद्याके जाननेवाले और बलवान् कर्णके बाणोंसे समरमें आहत होकर सहसा नकुल युद्ध छोडकर भागे, उस समय उनकी सारी इंद्रिया व्याकुल हो गयी थीं ॥ ९० ॥

तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन्वै पुनः पुनः ।
सज्यमस्य धनुः कण्ठे सोऽवासृजत भारत ॥ ९१ ॥

तब बार बार हंसते हुए राधापुत्र कर्ण भी उनके पीछे दौडे, फिर उनके गलेमें अपना सज्य धनुष डाल दिया ॥ ९१ ॥

ततः स शुशुभे राजन्कण्ठासक्तमहाधनुः ।
परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद्व्योम्नि चन्द्रमाः ।
यथैव च सितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥ ९२ ॥

राजन् ! गलेमें पडे हुए उस महा धनुषसे नकुलकी ऐसी शोभा बढी, जैसी आकाशमें मण्डलसे युक्त चन्द्रमाकी वा इन्द्र धनुषसे युक्त काले मेघकी ॥ ९२ ॥

तमब्रवीत्तदा कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि ।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यं मां त्वं पुनः पुनः ॥ ९३ ॥

तब कर्णने नकुलसे कहा, तुमने पहले वृथा ही बक बक की थी, अब बार बार तुम मुझे मारोगे ऐसी ही बातें फिर प्रसन्न होकर बोले ॥ ९३ ॥

मा योत्सीर्गुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव ।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव ।
गृहं वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफल्गुनौ ॥ ९४ ॥

हे पाण्डव ! तुम बलवान् श्रेष्ठ योद्धाओंके साथ कभी युद्ध न करना, तात ! अपने समान वीरोंसे लडो और इस हारकी कुछ लज्जा भी न करना । हे माद्रीपुत्र ! तुम अपने घरको चले जाओ; अथवा जहां श्री कृष्ण और अर्जुन हैं वहां जाओ ॥ ९४ ॥

एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं ततः ।
वधप्राप्तं तु तं राजन्नावधीत्सूतनन्दनः ।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत् ॥ ९५ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर कर्णने नकुलको छोड दिया । राजन् ! सूतपुत्र कर्णने, यदि नकुल वधके योग्य अवस्थामें उसके पास आये थे, तो भी कुन्तीको दिये वचनको स्मरण करके, उस समय उन्हें न मारके, जीवित ही छोड दिया ॥ ९५ ॥

विसृष्टः पाण्डवो राजन्सूतपुत्रेण धन्विना ।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ९६ ॥

राजन् ! धनुषधारी सूतपुत्र कर्णसे छूटकर पाण्डुपुत्र नकुल लज्जित होकर वहांसे युधिष्ठिरके रथकी ओर चले गये ॥ ९६ ॥

आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः ।
निःश्वसन्दुःखसंतप्तः कुम्भे क्षिप्त इवोरगः ॥ ९७ ॥

फिर सूतपुत्रसे सताये, दुःखसे संतप्त दीर्घ सांस लेते हुए नकुल युधिष्ठिरके रथपर इस प्रकार चढे, जैसे घडेमें बन्द हुआ सांप ॥ ९७ ॥

तं विसृज्य रणे कर्णः पाञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च ॥ ९८ ॥

नकुलको युद्धमें छोडकर कर्ण भी ऊंची ध्वजा युक्त और चंद्रके समान श्वेत वर्णवाले घोडोंसे युक्त रथसे शीघ्र ही पाञ्चाल देशके क्षत्रियोंकी ओर लडनेको चले गए ॥ ९८ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्पाण्डवानां विशां पते ।
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पाञ्चालानां रथव्रजान् ॥ ९९ ॥

प्रजापते ! सेनापति कर्णको पाञ्चाल रथियोंकी ओर आते देख, पाण्डवोंकी सेनामें महा शब्द होने लगा ॥ ९९ ॥

तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः ।
मध्यं गते दिनकरे चक्रवत्प्रचरन्प्रभुः ॥ १०० ॥

हे महाराज ! उस समय सूर्य दो पहर दिन विता चुका था, तब बलवान् सूतपुत्र कर्ण चक्रके समान चारों ओर सेनामें घूमकर वीरोंको मारने लगे ॥ १०० ॥

भग्नचक्रै रथैः केचिच्छिन्नध्वजपताकिभिः ।
ससूतैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष ।
ह्रियमाणानपश्याम पाञ्चालानां रथव्रजान् ॥ १०१ ॥

मारिष ! किसीके रथके चक्र कट गये, किसीके ध्वज और पताकाएं टूट गयीं, किसीके घोडे, किसीके सारथि मारे गये, किसीके रथोंके अक्ष कट गये। उस समय हमने पाञ्चालोंके रथसमूहोंको रणभूमिसे दूर भागते हुए देखा ॥ १०१ ॥

तत्र तत्र च संभ्रान्ता विचेरुर्मत्तकुञ्जराः ।
दवाग्निना परीताङ्गा यथैव स्युर्महावने ॥ १०२ ॥

महावनमें दावाग्निसे दग्धशरीर हुएके समान मतवाले हाथी वहां भ्रान्त होकर इधर उधर घूमने लगे ॥ १०२ ॥

भिन्नकुम्भा विरुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः ।
भिन्नगात्रवराश्चैव च्छिन्नवालाश्च मारिष ।
छिन्नाभ्राणीव संपेतुर्वध्यमाना महात्मना ॥ १०३ ॥

मारिष ! उस समय कितने ही हाथियोंके गण्डस्थल फट गये, वे रक्तसे भींग गये थे। कितनोंकी सूंडें कट गयी थीं, कितनोंके कवच टूट गये थे, पूंछें कट गयी थीं। कितने ही महात्मा कर्णसे मारे जाकर खण्डित मेघोंके समान पृथ्वीमें गिर गए ॥ १०३ ॥

अपरे त्रासिता नागा नाराचशततोमरैः ।
तमेवाभिमुखा यान्ति शलभा इव पावकम् ॥ १०४ ॥

दूसरे अनेक हाथी नाराच वाण और सैकडों तोमरोंके लगनेसे संत्रस्त होकर इस प्रकार कर्णके सामने दौडे जाते थे, जैसे अग्निमें जलनेको पतङ्ग दौडते हैं ॥ १०४ ॥

अपरे निष्टनन्तः स्म व्यदृश्यन्त महाद्विपाः ।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलप्लवम् ॥ १०५ ॥

दूसरे अनेक हाथी अपने शरीरोंसे पहाडोंके झरनेके समान रुधिर वहाते दिखायी देते थे ॥ १०५ ॥

उरश्छदैर्विमुक्ताश्च वालबन्धैश्च वाजिनः ।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥ १०६ ॥

उस समय अश्वोंकी भी बुरी दशा हुई, उनके उरच्छद और वालबंध कटकर पृथ्वीमें गिर गये थे, उनके सुवर्ण, रजत और कांस्यके अलंकार टूट गये थे ॥ १०६ ॥

हीना आस्तरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जिताः ।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥ १०७ ॥

उनके आवरण और वागडोर भग्न हुई थीं, चामर और जिनपोस तथा वाणोंके भाते उन परसे गिरे थे ॥ १०७ ॥

निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभिभिः ।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान्हयोत्तमान् ॥ १०८ ॥

और उनके ऊपरके रणको शोभित करनेवाले शूरवीर सवार भी मारे गये थे । ऐसी अवस्थामें युद्धमें संभ्रमित होकर इधर उधर घूमते हुए उत्तम घोडोंको हमने देखा ॥ १०८ ॥

प्रासैः खड्गैश्च संस्यूतानृष्टिभिश्च नराधिप ।
हययोधानपश्याम कंचुकोष्णीषधारिणः ॥ १०९ ॥

नराधिप ! कवच और पगडी बांधे अनेक घुडसवार वीरोंको खड्ग, वाण और ऋषिओंके सहित मारा गया हमने देखा ॥ १०९ ॥

रथान्हेमपरिष्कारान्सुयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
भ्रममाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम् ॥ ११० ॥

सारथि और वीरोंके मरनेसे अनेक उत्तम वेगशाली घोडोंवाले सुवर्णभूपित रथ युद्धभूमिमें वेगपूर्वक घूमते दिखायी देते थे ॥ ११० ॥

भग्नाक्षकूबरान्कांश्चिच्छिन्नचक्रांश्च मारिष ।
विपताकाध्वजांश्चान्यान्छिन्नेषायुगबन्धुरान् ॥ १११ ॥

मारिष ! किसीकी धुरी टूट गई, किसीके जुए, किसी रथके पहिए कट गए; किसीकी पताका और ध्वजा खंडित हो गई, तथा किसीके ईषादण्ड और बन्धुरोंके टुकडे हो गये ॥ १११ ॥

विहीनान्रथिनस्तत्र धावमानान्समन्ततः ।
सूर्यपुत्रशरैस्त्रस्तानपश्याम विशां पते ॥ ११२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! सूर्यपुत्र कर्णके तेजबाणोंसे त्रस्त होकर शस्त्ररहित अनेक रथियोंको इधर उधर भागते हमने देखा ॥ ११२ ॥

विशस्त्रांश्च तथैवान्यान्सशस्त्रांश्च बहून्हतान् ।
तावकाञ्जालसंछन्नानुरोघण्टाविभूषितान् ॥ ११३ ॥

अनेक शस्त्ररहित और दूसरे अनेक शस्त्रसहित वीरोंको युद्धमें मारे हुए देखा । इसी प्रकार झूलोंसे आच्छादित और घण्टाओंसे विभूषित, ॥ ११३ ॥

नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान् ।
पदातीनन्वपश्याम धावमानान्समन्ततः ॥ ११४ ॥

अनेक रङ्गवाली ध्वजाओंसे सुशोभित पदातियोंको हमने चारों ओर भागते देखा ॥ ११४ ॥

शिरांसि बाहूनूरूंश्च छिन्नानन्यांस्तथा युधि ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम विनाकृतान् ॥ ११५ ॥

हमने कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे अनेक योद्धाओंके शिर, हाथ, और जांघें कटकर युद्धमें गिर रही हैं, यह देखा ॥ ११५ ॥

महान्व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वदृश्यत ।
कर्णसायकनुन्नानां हतानां निशितैः शरैः ॥ ११६ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे मारे जाते हुए योद्धाओंका महान् और घोर संग्राम दीखने लगा ॥ ११६ ॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
तमेवाभिमुखा यान्ति पतंगा इव पावकम् ॥ ११७ ॥

युद्धमें कर्णके बाणोंसे पीडित होनेपर भी, सृञ्जयवंशी क्षत्रिय इस प्रकार कर्णके सामने दौडते थे, जैसे अग्निकी ओर पतङ्ग ॥ ११७ ॥

तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम् ।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ११८ ॥

प्रलयकालकी उज्ज्वल अग्निके समान तेजस्वी महारथी कर्ण पाण्डवसेनाको दग्ध कर रहे थे, उस समय अनेक प्रधान क्षत्रिय लोग उनसे युद्ध करना छोडके दूर हटकर जाने लगे ॥ ११८ ॥

हतशेषास्तु ये वीराः पाञ्चालानां महारथाः ।
तान्प्रभग्नान्द्रुतान्कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः ।
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान् ॥ ११९ ॥

पाञ्चालदेशके जो मरनेसे बचे हुए महारथी वीर युद्धको छोडकर भागने लगे, तब कर्ण भी बाण छोडते हुए उनके पीछे दौडे। तेजस्वी कर्ण अपने बाणोंसे कवच और ध्वजारहित म्लान् क्षत्रियोंको मारने लगे ॥ ११९ ॥

तापयामास तान्बाणैः सूतपुत्रो महारथः ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः ॥ १२० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ९०७ ॥

उस समय सूतपुत्र महारथि कर्ण अपने बाणोंसे शत्रु सैनिकोंको इस प्रकार संतप्त करने लगा, जैसे प्राणियोंको तपानेवाले दोपहरके सूर्य ॥ १२० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सतरहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ९०७ ॥

: १८ :

संजय उवाच

युयुत्सुं तव पुत्रं तु प्राद्रवन्तं महद्बलम् ।
उलूकोऽभ्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय बोले- हे राजन् धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्र युयुत्सुको विशाल सेनाको खदेडते हुए देख, उसके सङ्ग युद्ध करनेके लिये खडे रहो ! खडे रहो ! कहता हुआ शीघ्र ही उलूक आया ॥ १ ॥

युयुत्सुस्तु ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा ।
उलूकं ताडयामास वज्रेणेन्द्र इवाचलम् ॥ २ ॥

हे राजन् ! तब युयुत्सुने तीक्ष्ण धारवाला एक बाण उलूकको मारा जैसे इन्द्र पर्वतपर वज्रका आघात करते हैं ॥ २ ॥

उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ताडयामास कर्णिना ॥ ३ ॥

उलूकने क्रोध करके युद्धमें एक क्षुरप्र बाणसे तुम्हारे पुत्र युयुत्सुका धनुष काट दिया और कर्णि बाणसे युयुत्सुको विद्ध किया ॥ ३ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम् ।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४ ॥

तब क्रोधसे लाल नेत्रवाले युयुत्सुने वह टूटा धनुष त्यागकर दूसरा अत्यंत वेगवान् और बहुत बडा धनुष धारण किया ॥ ४ ॥

शाकुनिं च ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
सारथिं त्रिभिरानर्च्छत्तं च भूयो व्यविध्यत ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब शकुनिपुत्र उलूकको साठ बाणोंसे विद्ध किया तथा उसके सारथिको तीन बाणोंसे विह्वल किया । फिर उसे और भी घायल किया ॥ ५ ॥

उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा हेमविभूषितैः ।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ६ ॥

फिर उलूकने भी क्रोधसे युयुत्सुको युद्धमें सुवर्णभूषित बीस बाणोंसे विद्ध करके उनकी सोनेकी ध्वजा काट दी ॥ ६ ॥

स च्छिन्नयष्टिः सुमहाञ्शीर्यमाणो महाध्वजः ।
पपात प्रमुखे राजन्युयुत्सोः काञ्चनोज्ज्वलः ॥ ७ ॥

राजन् ! उस ध्वजका दण्ड कट जानेसे युयुत्सुका वह महान् सुवर्णमय उज्ज्वल ध्वज भग्न होकर उसको सामने ही गिर पडा ॥ ७ ॥

ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्छितः ।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

अपनी ध्वजाको भग्न हुई देख, युयुत्सु महा क्रोधसे मूर्च्छित हुआ और उसने पांच बाण उलूककी छातीमें मारा ॥ ८ ॥

उलूकस्तस्य भल्लेन तैलधौतेन मारिष ।
शिरश्चिच्छेद सहसा यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९ ॥

हे भरतकुल श्रेष्ठ ! उलूकने भी एक तेलसे धोये हुए भल्ल बाणोंसे युयुत्सुके सारथिका सिर काट दिया ॥ ९ ॥

जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः ।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ १० ॥

फिर उलूकने युयुत्सुके चार घोडोंको मारकर, उनके शरीरमें भी पांच बाण मारकर घायल कर दिया। बलवान् वीरके बाणोंसे अत्यंत पीडित होकर युयुत्सु दूसरे रथपर चढ गये और वहांसे भाग गये ॥ १० ॥

तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ ।
पाञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन्निशितैः शरैः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! युयुत्सुको युद्धमें पराजित करके उलूक शीघ्र ही पाञ्चाल और सृंजय देशके क्षत्रियोंसे लडनेको चले गये और उन्हें अपने तेज बाणोंसे मारने लगे ॥ ११ ॥

शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसंभ्रमम् ॥ १२ ॥

हे राजन् ! उसी समय तुम्हारे पुत्र श्रुतकर्माने क्षणमात्रमें शतानीकके रथको सारथि और घोडोंसे रहित कर दिया ॥ १२ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महाबलः ।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ १३ ॥

मारिष ! तब महाबलवान् शतानीकने क्रुद्ध होकर अपने अश्वरहित रथपर खडे होकर एक भारी गदा तुम्हारे पुत्रपर चलाई ॥ १३ ॥

सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन् ।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १४ ॥

भारत ! वह गदा श्रुतकर्माके घोडे, सारथि और रथका चूरा करके पृथ्वीको विदीर्ण करती हुईसी गिर गई ॥ १४ ॥

तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ ।
अपाक्रमेतां युद्धार्तौ प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥ १५ ॥

तब वे दोनों कुरुवंशकी कीर्ति वृद्धिगत करनेवाले युयुत्सु वीर रथहीन हो पृथ्वीमें खडे होकर एक दूसरेको देखते हुए युद्धसे निवृत्त हुए ॥ १५ ॥

पुत्रस्तु तव संभ्रान्तो विवित्सो रथमाविशत् ।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥ १६ ॥

तब तुम्हारे पुत्र श्रुतकर्मा घबराकर विवित्सुके रथपर चढ गये, इसी प्रकार शतानीक भी प्रतिविन्ध्यके रथपर शीघ्र ही जा चढे ॥ १६ ॥

*

सुतसोमस्तु शकुनिं विव्याध निशितैः शरैः ।
नाकम्पयत संरब्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १७ ॥

शकुनिको श्रुतसोमने अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया, परन्तु क्रुद्ध सुतसोम उसको विचलित नहीं कर सका, जैसे जलका प्रवाह पर्वतको नहीं हिला सकता ॥ १७ ॥

सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १८ ॥

हे भारत ! सुतसोमने अपने पिताके महा शत्रुको आगे खडा देख, अनेक सहस्रों बाण उसकी ओर चलाकर उसे आच्छादित कर दिया ॥ १८ ॥

ताञ्शराञ्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः ।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥ १९ ॥

शस्त्रविद्याके जाननेवाले, युद्धमें विजयी और विचित्र युद्धमें कुशल शकुनिने सुतसोमके सब बाणोंको शीघ्र ही अपने दूसरे बाणोंसे काट दिया ॥ १९ ॥

निवार्य समरे चापि शरांस्तान्निशितैः शरैः ।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥ २० ॥

उसने समरमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सुतसोमके बाणोंका निवारण किया और क्रोध करके सुतसोमको तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ २० ॥

तस्याश्वान्केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः ।
स्यालस्तव महावीर्यस्ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ २१ ॥

अनन्तर तुम्हारे साले महा पराक्रमी शकुनिने सुतसोमके घोडे, सारथि और ध्वजाको भी बाणोंसे तिल–तिल करके काट डाला, तब सब लोग हाहाकार करने लगे ॥ २१ ॥

हताश्वो विरथश्चैव छिन्नधन्वा च मारिष ।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद्भूमावतिष्ठत ।
व्यसृजत्सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ॥ २२ ॥

मारिष ! परन्तु धनुर्धर सुतसोम घोडे, रथ और धनुष नष्ट होनेपर भी अपने हाथमें श्रेष्ठ धनुष लेकर रथसे उतरकर पृथ्वीपर खडा हो गया । फिर उसने तेज सुवर्ण पङ्खवाले अनेक बाण छोडे ॥ २२ ॥

छादयामासुरथ ते तव स्यालस्य तं रथम् ।
पतंगानामिव व्राताः शरव्राता महारथम् ॥ २३ ॥

फिर उन बाणोंसे तुम्हारे महारथी सालेके रथको छा दिया । उसके बाणसमूह टिड्डीदलोंके समान दीखते थे ॥ २३ ॥

रथोपस्थान्समीक्ष्यापि विव्यथे नैव सौबलः ।
प्रमृद्नंश्च शरांस्तांस्ताञ्शरव्रातैर्महायशाः ॥ २४ ॥
उन बाणोंको अपने रथके समीप देखकर भी महा यशस्वी सुबलपुत्र शकुनि कुछ न डरे और अपने बाणोंसे सुतसोमके सब बाणोंको काट डाला ॥ २४ ॥

तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ।
सुतसोमस्य तत्कर्म दृष्ट्वाश्रद्धेयमद्भुतम्
रथस्थं नृपतिं तं तु पदातिः सन्नयोधयत् । ॥ २५ ॥
नीचे पैदल खडे होकर सुतसोम रथमें बैठे हुए राजा शकुनिसे युद्ध करता था, उसके यह अविश्वसनीय और अद्भुत कर्मको देखकर सब योद्धा और आकाशमें स्थित सिद्धोंने बहुत प्रसन्न होकर उसकी बडी प्रशंसा की ॥ २५ ॥

तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः संनतपर्वभिः ।
व्यहनत्कार्मुकं राजा तूणीरंचैव सर्वशः ॥ २६ ॥
तब राजा शकुनिने अपने वेगशाली और तेज भल्ल बाणोंसे उसके धनुष, रोदे और तूणीरों-को सब तरहसे काट दिया ॥ २६ ॥

स च्छिन्नधन्वा समरे खड्गमुद्यम्य नानदन् ।
वैडूर्योत्पलवर्णाभं हस्तिदन्तमयत्सरुम् ॥ २७ ॥
रथ और धनुषहीन सुतसोम युद्धमें लहसुनिया और नील पद्मके समान सुन्दर और हाथीदांतकी मूठवाले खड्गको ऊपर उठाकर गर्जने लगा ॥ २७ ॥

भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम् ।
कालोपमं ततो मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥ २८ ॥
उस निर्मल आकाशके समान प्रकाशमान् खड्गको लेकर बुद्धिमान् सुतसोम घुमाने लगा, उस समय शकुनिने उसे साक्षात् यमराजके समान माना ॥ २८ ॥

सोऽचरत्सहसा खड्गी मण्डलानि सहस्रशः ।
चतुर्विंशन्महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥ २९ ॥
हे महाराज ! शिक्षा और बलसे भरे हुए बुद्धिमान् सुतसोम उस खड्गको लेकर सहसा उसकी चौबीस प्रकारकी गतियोंसे युद्धमें सब ओर घूमने लगा ॥ २९ ॥

सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान् ।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥ ३० ॥
वीर सुबलपुत्र शकुनि भी सुतसोमके ऊपर अनेक तेज बाण चलाते रहे, परन्तु सुतसोमने अपने उत्तम खड्गसे उन सब बाणोंको शीघ्र ही काट दिया ॥ ३० ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा ।
प्राहिणोत्सुतसोमस्य शरानाशीविषोपमान् ॥ ३१ ॥

हे महाराज ! तव शत्रुनाशन सुबलपुत्र शकुनिने क्रोध करके सुतसोमपर विषीले सांपोंके समान बाण चलाये ॥ ३१ ॥

चिच्छेद तांश्च खड्गेन शिक्षया च बलेन च ।
दर्शयल्लाँघवं युद्धे तार्क्ष्यवीर्यसमद्युतिः ॥ ३२ ॥

गरुडके समान पराक्रमी तेजस्वी सुतसोमने अपनी विद्या और बलके अनुसार युद्धमें शीघ्रता दिखाते हुए उन सब बाणोंको काट दिया ॥ ३२ ॥

तस्य संचरतो राजन्मण्डलावर्तने तदा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! युद्धमें मण्डलाकार घूमते हुए सुतसोमके प्रकाशमान् खड्गको शकुनिने एक तेज क्षुरप्र बाणसे काट दिया ॥ ३३ ॥

स च्छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः ।
अवशस्य स्थितं हस्ते तं खड्गं सत्सरुं तदा ॥ ३४ ॥

वह महान् खड्ग कटकर सहसा पृथ्वीपर गिर पडा और उत्तम मूठवाले उस खड्का आधा भाग सुतसोमके हाथमें रह गया ॥ ३४ ॥

छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥ ३५ ॥

अपने खड्गको कटा हुआ जानकर महारथी सुतसोम छः पग कूदे और उसी आधे शेष भागको शकुनिपर फेंका ॥ ३५ ॥

स च्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः ।
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितः ।
सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम् ॥ ३६ ॥

वह सुवर्ण और हीरेसे विभूषित श्रेष्ठ खड्ग समरमें महात्मा शकुनिके धनुषको रोदेके सहित काटकर शीघ्र ही पृथ्वीमें गिर गया । तदनन्तर सुतसोम श्रुतकीर्त्तिके विशाल रथपर चढ गये ॥ ३६ ॥

सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत्सुदुःसहम् ।
अभ्ययात्पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान्बहून् ॥ ३७ ॥

शकुनि भी दूसरा घोर और अत्यंत दुःसह धनुष लेकर शत्रु सेनाका नाश करता हुआ पाण्डवसेनाकी ओर गया ॥ ३७ ॥

तत्र नादो महानासीत्पाण्डवानां विशां पते ।
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत् ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! सुबलपुत्र शकुनिको बेडर होकर समरमें घूमते देख, पाण्डवोंकी सेनामें महान् शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥

तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ।
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना ॥ ३९ ॥

महात्मा शकुनिको मत्त हुए शस्त्रयुक्त महान् सैनिकोंको भगाते हुए, हमने देखा ॥ ३९ ॥

यथा दैत्यचमूं राजन्देवराजो ममर्द ह ।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥ ४० ॥

राजन् ! जैसे दैत्योंकी सेनाको देवराज इन्द्रने मसल दिया था, वैसे ही सुबलपुत्र शकुनिने पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर दिया ॥ ४० ॥

धृष्टद्युम्नं कृपो राजन्वारयामास संयुगे ।
यथा दृप्तं वने नागं शरभो वारयेद्युधि ॥ ४१ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! धृष्टद्युम्नको उसके संग युद्ध करते हुए कृपाचार्यने इस प्रकार रोक दिया, जैसे वनमें मत्त हाथीको शरभ रोकता है ॥ ४१ ॥

निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा ।
पदात्पदं विचलितुं नाशक्नोत्तत्र भारत ॥ ४२ ॥

हे भारत ! गौतमवंशी बलवान् कृपाचार्यसे निरुद्ध होकर धृष्टद्युम्न युद्धमें एक पग भी चल न सके ॥ ४२ ॥

गौतमस्य वपुर्दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥ ४३ ॥

धृष्टद्युम्नके रथकी ओर कृपाचार्यको स्वयं जाते देख, सब प्राणी त्रस्त हो गये और सबको निश्चय हो गया कि धृष्टद्युम्न जीते नहीं बचेंगे ॥ ४३ ॥

तत्रावोचन्विमनसो रथिनः सादिनस्तथा ।
द्रोणस्य निधने नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥ ४४ ॥

उस समय रथी और घोडोंपर चढे वीर खिन्न होकर कहने लगे, कि द्रोणाचार्यके मारे जानेसे नरश्रेष्ठ कृपाचार्यको अत्यंत क्रोध हुआ है ॥ ४४ ॥

शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥ ४५ ॥

शरद्वान्‌के पुत्र महातेजस्वी कृपाचार्य दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले और उदार बुद्धिवाले हैं, क्या आज गौतमवंशी कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्न कुशलपूर्वक बच सकेंगे ? ॥ ४५ ॥

अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात् ।
अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान्न नो हन्यात्समागतान् ॥ ४६ ॥

क्या आज यह सब सेना महान् भयसे मुक्त हो सकेगी ? क्या यह ब्राह्मणश्रेष्ठ यहां आये हुए हम सबका वध तो नहीं कर डालेगा ? ॥ ४६ ॥

यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम् ।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य संयुगे ॥ ४७ ॥

कृपाचार्यका रूप इस समय यमराजके समान भयंकर दिखाई दे रहा है, इससे आज कृपाचार्य भी द्रोणाचार्यके रास्तेपर पहुंचेगे ॥ ४७ ॥

आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि ।
अस्त्रवान्वीर्यसंपन्नः क्रोधेन च समन्वितः ॥ ४८ ॥

कृपाचार्य शीघ्र शस्त्र चलानेवाले, अस्त्रविद्याके जाननेवाले, बलवान और सदा युद्ध जीतनेवाले हैं। इस समय कृपाचार्य क्रोधसे भरे हैं ॥ ४८ ॥

पार्षतश्च भृशं युद्धे विमुखोऽद्यापि लक्ष्यते ।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ॥ ४९ ॥

आज महायुद्धमें धृष्टद्युम्न पराङ्मुख होता दीखता है। इस प्रकार तुम्हारे सैनिकोंकी शत्रुसैनिकोंसे अनेक प्रकारकी बातें होने लगीं ॥ ४९ ॥

विनिःश्वस्य ततः क्रुद्धः कृपः शारद्वतो नृप ।
पार्षतं छादयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु ॥ ५० ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने क्रोधमें भरकर लंबी सांस लेकर निःश्चेष्ट धृष्टद्युम्नके मर्मस्थानोंमें अनेक बाण मारे ॥ ५० ॥

स वध्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ।
कर्तव्यं न प्रजानाति मोहितः परमाहवे ॥ ५१ ॥

समरमें महात्मा कृपाचार्यसे ताडित होते हुए भी धृष्टद्युम्नको अपना कर्तव्य नहीं सूझता था। वे महायुद्धमें मोहित हो गये थे ॥ ५१ ॥

तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित्क्षेमं नु पार्षत ।
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं कदाचन ॥ ५२ ॥

तब उनके सारथिने उनसे कहा— हे महाराज धृष्टद्युम्न ! आप कुशलसे तो हैं ? इससे पहले किसी युद्धमें ऐसी आपकी दुःखद दशा कभी भी नहीं देखी थी ॥ ५२ ॥

दैवयोगात्तु ते बाणा नातरन्मर्मभेदिनः ।
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वशः ॥ ५३ ॥

आज हमारे प्रारब्धसे आपके मर्मस्थानोंमें वे मर्मभेदी बाण नहीं लगे हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्यने सब ओरसे आपके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके बाण मारे थे ॥ ५३ ॥

व्यावर्तये तव रथं नदीवेगमिवार्णवात् ।
अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः ॥ ५४ ॥

इस लिये हमारी इच्छा यह है, कि जैसे समुद्रको प्राप्त होकर नदीका वेग पीछे हटता है, वैसे ही आपके रथको युद्धसे लौटावें। ये ब्राह्मण अवध्य हैं, जिनसे आपका बल नष्ट हो गया ॥ ५४ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद्वचः ।
मुह्यते मे मनस्तात गात्रे स्वेदश्च जायते ॥ ५५ ॥

राजन् ! सारथिके ऐसे वचन सुन धृष्टद्युम्न धीरेसे बोले, हे सारथि ! मेरा मन मोहित हो गया है, शरीर पसीनेसे भीजा जाता है ॥ ५५ ॥

वेपथुं च शरीरे मे रोमहर्षं च पश्य वै ।
वर्जयन्ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽच्युतः ॥ ५६ ॥

देखो, रोवें खडे हुए जाते हैं और मेरे अङ्ग कांप रहे हैं। तुम हमारे रथको युद्धमें इस ब्राह्मणको छोडते हुए धीरेसे जहां श्रीकृष्ण हैं वहां ले चलो ॥ ५६ ॥

अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे ।
क्षेममद्य भवेद्यन्तरिति मे नैष्ठिकी मतिः ॥ ५७ ॥

हे सारथे ! हमको निश्चय है कि युद्धमें भीमसेन या अर्जुनके पास पहुंचनेपर ही आज हमारा कल्याण होगा ॥ ५७ ॥

ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन्हयान् ।
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः ॥ ५८ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नके ऐसे वचन सुन, सारथिने घोडोंको शीघ्र हांका, थोडे समयमें जहां महाधनुर्धर भीमसेन तुम्हारे सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहे थे, वहां जा पहुंचे ॥ ५८ ॥

प्रद्रुतं तु रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ।
किरञ्शरशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा ॥ ५९ ॥

हे मारिष ! धृष्टद्युम्नके रथको भागते देख, कृपाचार्य सैकडों बाण छोडते हुए उनके पीछे दौडे ॥ ५९ ॥

शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिंदमः ।
पार्षतं प्राद्रवद्यन्तं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ६० ॥

शत्रुदमन कृपाचार्यने बार बार शङ्ख बजाया और भागनेवाले धृष्टद्युम्नको इस प्रकार डराया जैसे इन्द्रने शंवरको ॥ ६० ॥

शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम् ।
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः ॥ ६१ ॥

अनन्तर भीष्मको मारनेवाले दुर्धर्ष शिखण्डीको हार्दिक्य युद्धमें बार बार हंसते हुए निवारण करने लगे ॥ ६१ ॥

शिखण्डी च समासाद्य हृदिकानां महारथम् ।
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समार्दयत् ॥ ६२ ॥

शिखण्डीने हृदिकवंशियोंके महारथी कृतवर्माके आगे होकर उसके जत्रुदेशमें पांच तेज भल्ल बाण चलाये ॥ ६२ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्टिभिराशुगैः ।
धनुरेकेन चिच्छेद हसन्राजन्महारथः ॥ ६३ ॥

राजन् ! महारथी कृतवर्माने क्रुद्ध होकर अपने छः बाणोंसे शिखण्डीको घायल कर दिया और एक बाणसे हंसकर उसका धनुष काट दिया ॥ ६३ ॥

अथान्यद्धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ।
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ॥ ६४ ॥

तब द्रुपदके पुत्र बलवान् शिखण्डीने दूसरा धनुष धारण किया और कृतवर्मासे क्रोधपूर्वक कहा– खडा रह ! खडा रह ! ॥ ६४ ॥

ततोऽस्य नवतिं बाणान्रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ।
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ६५ ॥

राजेन्द्र ! फिर शिखण्डीने सोनेके पङ्खवाले नब्बे तेज बाण कृतवर्माकी ओर चलाये, वे बाण कृतवर्माके कवचमें लगकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ६५ ॥

वितथांस्तान्समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे बली ॥ ६६ ॥

बलवान् शिखण्डीने अपने बाणोंको विफल होकर पृथ्वीमें गिरते देख, एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे कृतवर्माका धनुष काट दिया ॥ ६६ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम् ।
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ ६७ ॥

धनुष कट जानेसे कृतवर्मा टूटे सींगवाले बैलके समान हो गये। उस समय शिखण्डीने क्रुद्ध होकर उनके दोनों बाहु और छातीमें अस्सी बाण मारे ॥ ६७ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः कृतविक्षतः ।
धनुरन्यत्समादाय समार्गणगणं प्रभो ।
शिखण्डिनं बाणवरैः स्कन्धदेशेऽभ्यताडयत् ॥ ६८ ॥

उन बाणोंसे घायल होनेपर कृतवर्माको अत्यन्त क्रोध हुआ। हे प्रभो ! अनन्तर कृतवर्माने बाण और रोदे सहित दूसरा धनुष लेकर शिखण्डीके कन्धेमें अपने उत्तम बाण मारे ॥ ६८ ॥

स्कन्धदेशे स्थितैर्बाणैः शिखण्डी च रराज ह ।
शाखाप्रतानैर्विमलैः सुमहान्स यथा द्रुमः ॥ ६९ ॥

कंधोंमें घुसे हुए उन बाणोंसे अनेक विमल विस्तृत शाखाओंसे युक्त महान् वृक्षके समान शिखण्डी शोभायमान् दीखने लगे ॥ ६९ ॥

तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ।
अन्योन्यशृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव ॥ ७० ॥

तब ये दोनों वीर एक दूसरेको अत्यंत विद्ध करके रुधिरसे भींग गये, उस समय एक दूसरेके सींगोंके प्रहारसे विद्ध हुए दो बैलोंके समान वे दोनों शोभित होने लगे ॥ ७० ॥

अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ।
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः ॥ ७१ ॥

एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्न करनेवाले वे दोनों महारथी अपने रथसे सहस्रों प्रकारकी गतियोंसे मण्डलाकार युद्धमें घूमने लगे ॥ ७१ ॥

कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ।
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ७२ ॥

महाराज ! अनन्तर कृतवर्माने युद्धमें सोनेके पङ्खवाले शिलापर घिसे हुए सत्तर तीक्ष्ण बाण द्रुपदपुत्र शिखण्डीकी ओर चलाये, और विद्ध किया ॥ ७२ ॥

ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ।
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः ॥ ७३ ॥

फिर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ कृतवर्माने उसपर युद्धमें शीघ्रतासे एक घोर जीवनका अन्त करनेवाला बाण मारा ॥ ७३ ॥

स तेनाभिहतो राजन्मूर्च्छामाशु समाविशत् ।
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः ॥ ७४ ॥

राजन् ! उस बाणके लगनेसे शिखण्डी तत्काल मूर्च्छित हो गया, और उसने सहसा मोहित होकर ध्वजाके बांसका आश्रय ले लिया ॥ ७४ ॥

अपोवाह रणात्तं तु सारथी रथिनां वरम् ।
हार्दिक्यशरसंतप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ॥ ७५ ॥

कृतवर्माके बाणोंसे पीडित होकर बार बार लंबी सांस लेते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको उनका सारथि शीघ्रतासे युद्धसे हटा ले गया ॥ ७५ ॥

पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्य सुते प्रभो ।
प्राद्रवत्पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ९८३ ॥

हे प्रभो ! द्रुपदके पुत्र शूर शिखण्डीके पराजित हो जानेपर सब ओरसे ताडित होती हुई पाण्डवोंकी सेना, इधर उधर भागने लगी ॥ ७६ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ॥ ९८३ ॥

: १९ :

संजय उवाच

श्वेताश्वोऽपि महाराज व्यधमत्तावकं बलम् ।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज धृतराष्ट्र ! जैसे वायु रुईके ढेरको सब ओर उडाती है, वैसे ही श्वेतवाहन अर्जुनने ही तुम्हारी सेनाको मारना और भगाना आरम्भ किया ॥ १ ॥

प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्तास्तं शिबयः कौरवैः सह ।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च यत् ॥ २ ॥

उनसे लडनेके लिये त्रिगर्त, शिवि, कौरवोंके साथ शाल्व, संशप्तक और नारायणी सेनाके वीर चले ॥ २ ॥

सत्यसेनः सत्यकीर्तिर्मित्रदेवः श्रुतंजयः ।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत ॥ ३ ॥
हे भारत ! सत्यसेन, सत्यकीर्ति, मित्रदेव, श्रुतञ्जय, सौश्रुति, चित्रसेन तथा मित्रवर्मा ३॥

त्रिगर्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः ।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रधरैर्युधि ॥ ४ ॥
और त्रिगर्त देशका राजा अपने भाई और महाधनुर्धर युद्धमें अनेक प्रकारके शस्त्र धारण किये हुए पुत्रोंके सहित अर्जुनसे युद्ध करनेको आये ॥ ४ ॥

ते सृजन्तः शरव्रातान्किरन्तोऽर्जुनमाहवे ।
अभ्यद्रवन्त समरे वार्योघा इव सागरम् ॥ ५ ॥
वे सब वीर युद्धमें अर्जुनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा करने लगे और इस प्रकार उसपर आक्रमण करने लगे जैसे जलप्रवाह समुद्रकी ओर जाता है ॥ ५ ॥

ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः ।
अगच्छन्विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः ॥ ६ ॥
अर्जुनके पास आते ही वे सब लाखों योद्धा इस प्रकार प्राणशून्य हो गये, कि जैसे गरुडको देखते ही सांप ॥ ६ ॥

ते वध्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं तदा ।
दह्यमाना यथा राजञ्शलभा इव पावकम् ॥ ७ ॥
हे राजन् ! जैसे पतङ्ग जलने पर भी अग्निको नहीं छोडते, वैसे ही वे वीर युद्धमें मारे जाने पर भी पाण्डुपुत्र अर्जुनको नहीं छोड सके ॥ ७ ॥

सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम् ।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या च चन्द्रदेवश्च सप्तभिः ॥ ८ ॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि पञ्चभिः ।
शत्रुंजयश्च विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः ॥ ९ ॥
सत्यसेनने तीन, मित्रदेवने तिरसठ, चन्द्रदेवने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर, सौश्रुतिने पांच, शत्रुञ्जयने बीस और सुशर्माने नौ बाणोंसे युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुनको विद्ध किया ॥ ८-९ ॥

शत्रुञ्जयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः ।
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १० ॥
राजा शत्रुञ्जयको शिलापर घिसे हुए अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर, फिर सौश्रुतिके शिरको शिरस्त्राणके सहित शरीरसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया । फिर शीघ्रही चंद्रदेवको भी अनेक बाणोंसे मारकर यमलोकमें पहुंचा दिया ॥ १० ॥

अथेतरान्महाराज यतमानान्महारथान् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत् ॥ ११ ॥

महाराज ! विजयके लिये यत्न करनेवाले अन्य सब महारथियोंमेंसे एकेकको पांच पांच बाणोंसे निवारण किया ॥ ११ ॥

सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत् ।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च ॥ १२ ॥

अत्यन्त क्रुद्ध सत्यसेनने युद्धमें सिंहके समान गर्जना की और एक भारी तोमर श्रीकृष्णके उद्देश्यसे मारा ॥ १२ ॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः ।
अयस्मयो महाचण्डो जगाम धरणीं तदा ॥ १३ ॥

वह महान् भयंकर लोहेका तोमर महात्मा श्रीकृष्णके बाएं हाथको छेदकर पृथ्वीमें चला गया ॥ १३ ॥

माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे ।
प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद्रश्मयश्च विशां पते ॥ १४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! महायुद्धमें तोमरसे विद्ध हुए श्रीकृष्णके हाथसे घोडोंकी रास और चाबुक गिर गये ॥ १४ ॥

स प्रतोदं पुनर्गृह्य रश्मींश्चैव महायशाः ।
वाहयामास तानश्वान्सत्यसेनरथं प्रति ॥ १५ ॥

फिर महायशस्वी श्रीकृष्णने दूसरा कोडा लिया और रास पकडकर उन घोडोंको सत्यसेनकी ओर हांका ॥ १५ ॥

विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं प्रेक्ष्य पार्थो धनंजयः ।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्दारयित्वा महाबलः ॥ १६ ॥

महा बलवान् कुन्तीपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णको घायल हुआ देख, सत्यसेनके ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ १६ ॥

ततः सुनिशितैर्बाणैः राज्ञस्तस्य महच्छिरः ।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त पृतनान्तरे ॥ १७ ॥

और अर्जुनने अपने अत्यंत तेज बाणोंसे उस राजाके महान् शिरको सेनामें कुण्डल सहित शरीरसे काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १७ ॥

तं निहत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत् ।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥ १८ ॥

मारिष ! उसको मारकर तीक्ष्ण बाणोंसे मित्रवर्माको और एक तीक्ष्ण वत्सदन्त बाणसे उसके सारथिको भी मार दिया ॥ १८ ॥

ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान्वशी ।
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

फिर अत्यंत क्रुद्ध तेजस्वी अर्जुनने अपने सैकडों बाणोंसे सैकडों—सहस्रों संशप्तक गणोंका वध किया ॥ १९ ॥

ततो रजतपुङ्खेन राज्ञः शीर्षं महात्मनः ।
मित्रदेवस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महायशाः ।
सुशर्माणं च संक्रुद्धो जत्रुदेशे समार्दयत् ॥ २० ॥

अनन्तर महायशस्वी अर्जुनने चांदीके पङ्खवाले तेज क्षुरप्र बाणसे महात्मा राजा मित्रदेवका सिर काट लिया। फिर सुशर्माके हृदयमें क्रोध करके बाण मारकर उसको घायल किया ॥ २० ॥

ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ।
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश ॥ २१ ॥

तब सब संशप्तकोंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया; क्रोध करके दसों दिशाओंको नादित करते हुए अनेक शस्त्र चलाकर पीडा देने लगे ॥ २१ ॥

अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः ।
ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्विशां पते ॥ २२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! उनके शस्त्रोंसे व्याकुल होकर इन्द्र तुल्य पराक्रमी, अमेयात्मा, महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र चलाया, तब उस अस्त्रसे सहस्रों बाण निकलने लगे ॥ २२ ॥

ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च संयुगे ।
रथानां सपताकानां तूणीराणां शरैः सह ॥ २३ ॥

उन बाणोंसे युद्धमें ध्वज, धनुष, पताकाओंके साथ रथ और बाणों सहित तूणीर कटने लगे ॥ २३ ॥

अक्षाणामथ योक्त्राणां चक्राणां रश्मिभिः सह ।
कूबराणां वरूथानां पृषत्कानां च संयुगे ॥ २४ ॥

धुरी, जूए, पहिये, लगाम, कूबर, वरूथ और बाण युद्धमें कट गये ॥ २४ ॥

अश्मनां पततां चैव प्रासानामृष्टिभिः सह ।
गदानां परिघाणां च शक्तीनां तोमरैः सह ॥ २५ ॥
वज्र, प्रास, ऋष्टि, गदा, परिघ, शक्ति और तोमर गिर गये ॥ २५ ॥

शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानामूरुभिः सह ।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥ २६ ॥
मारिष ! चक्रसहित शतघ्नी और बाहु–जांघें, कण्ठसूत्र, अंगद और केयूर ॥ २६ ॥

हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत ।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ।
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशां पते ॥ २७ ॥
हार, सुवर्णभूषण, कवच, छत्र, व्यजन और मुकुटसहित शिर कटकर गिर गये । तब सब ओर महान् शब्द सुनायी देने लगा ॥ २७ ॥

सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ।
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त तारागण इवाम्बरे ॥ २८ ॥
अनेक कुण्डल और सुंदर आंखोंसे युक्त पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशमान् शिर इस प्रकार पृथ्वीमें दीखने लगे, जैसे आकाशमें ताराओंके समूह दीखते हैं ॥ २८ ॥

सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ।
शरीराणि व्यदृश्यन्त हतानां च महीतले ।
गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥ २९ ॥
अच्छी माला और वस्त्रोंसे युक्त चन्दनसे लिप्त मृत योद्धाओंके अनेक शरीर रणभूमिमें पडे हुए दीखने लगे । उससे वह युद्धभूमि गन्धर्वोंके नगरके समान भयानक दीखने लगी ॥२९॥

निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः ।
हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरगैश्चाभवन्मही ।
अगम्यमार्गा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ३० ॥
अनेक राजपुत्र और अनेक महा बलवान् क्षत्रिय तथा अनेक हाथी, घोडे मरकर पृथ्वीमें गिर गये । इससे विशीर्ण पर्वतोंके समान वह युद्धभूमि अगम्य हो गई ॥ ३० ॥

नासीच्चक्रपथश्चैव पाण्डवस्य महात्मनः ।
निघ्नतः शात्रवान्भल्लैर्हस्त्यश्वं चामितं महत् ॥ ३१ ॥
उस समय अपने भल्ल बाणोंसे शत्रुओंको और उनके असंख्य हाथी, घोडेके महान् समूहको मारते हुए महात्मा अर्जुनके रथके पहियोंको चलनेको मार्ग न रहा ॥ ३१ ॥

आ तुम्बादवसीदन्ति रथचक्राणि मारिष ।
रणे विचरतस्तस्य तस्मिंल्लोहितकर्दमे ॥ ३२ ॥

मारिष ! उस रुधिरकी कीच भरे समरमें घूमनेवाले अर्जुनके रथके चक्र मानो भयभीत होकर शिथिल हो गये थे ॥ ३२ ॥

सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ।
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ॥ ३३ ॥

उस समय अर्जुनके मन और वायुके समान वेगवाले घोडे भी युद्धभूमिमें वहां धंसते हुए चक्रोंको बहुत कष्टसे खींच सकते थे ॥ ३३ ॥

वध्यमानं तु तत्सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ।
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत संयुगे ॥ ३४ ॥

धनुर्धारी पाण्डुपुत्र अर्जुनसे ताडित होकर तुम्हारी सब सेना प्रायः विमुख होकर भाग गयी, वह वहां ठहर न सकी ॥ ३४ ॥

ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान्बहून् ।
रराज स महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३५ ॥

हे महाराज ! विजयी अर्जुन युद्धमें उस संशप्तक सेनाको पराजित करके इस प्रकार शोभित हुए, जैसे धूमरहित प्रज्वलित अग्नि शोभित होती है ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान्बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ ३६ ॥

हे महाराज धृतराष्ट्र ! अनेक बाण छोडते हुए राजा युधिष्ठिरसे निडर राजा दुर्योधन स्वयं युद्ध करनेको गये ॥ ३६ ॥

तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महाबलम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३७ ॥

तुम्हारे महाबलवान् पुत्रको सहसा आते देख धर्मराज युधिष्ठिरने शीघ्रतासे उसे विद्ध करके कहा– खडा रह ! खडा रह ! ॥ ३७ ॥

स च तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥ ३८ ॥

तब राजा दुर्योधनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तेज नौ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको विद्ध करके एक भल्ल बाणसे उनके सारथिको विद्ध किया ॥ ३८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा हेमपुङ्खाञ्शिलीमुखान् ।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ३९ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने सोनेके पङ्खवाले, शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण तेरह बाण दुर्योधनकी ओर चलाए ॥ ३९ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात्सारथेस्तु समाक्षिपत् ॥ ४० ॥

महारथी युधिष्ठिरने चार बाणोंसे दुर्योधनके चारों घोडोंको मार डाला और पांचवें बाणसे उसके सारथिका मस्तक धडसे काट दिया ॥ ४० ॥

षष्ठेन च ध्वजं राज्ञः सप्तमेन च कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ।
पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद्भृशम् ॥ ४१ ॥

छठे बाणसे राजाका ध्वज, सातवेंसे धनुष और आठवेंसे खड्गको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया और पांच बाण धर्मराजने राजा दुर्योधनको मारकर उनको अत्यन्त घायल किया ॥ ४१ ॥

हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ।
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेव व्यतिष्ठत ॥ ४२ ॥

अश्वरहित रथसे कूदकर तुम्हारे पुत्र बडे संकटमें पडनेपर भी वहां ही भूमिपर खडे रह गये ॥ ४२ ॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ।
अभ्यवर्तन्त सहिताः परीप्सन्तो नराधिपम् ॥ ४३ ॥

राजा दुर्योधनको ऐसे दुःखमें पडा देख कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदिक वीर राजा दुर्योधनकी रक्षा करनेकी इच्छासे सब एक साथ ही युधिष्ठिरके आगे आये ॥ ४३ ॥

अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
अभ्ययुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ४४ ॥

तब सब पाण्डवोंने राजा युधिष्ठिरको घेर लिया । हे राजन् ! और उन्होंने युद्धमें आक्रमण किया, तब उनका घोर युद्ध होने लगा ॥ ४४ ॥

अथ तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ।
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन्महीपते ।
यदभ्यगच्छन्समरे पाञ्चालाः कौरवैः सह ॥ ४५ ॥

तब महायुद्धमें अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और हे पृथ्वीपते ! वहां बडे आवाज तथा किलकिलाहटके शब्द होने लगे, जहांपर पाञ्चालोंका कौरवोंके साथ घोर युद्ध हो रहा था ॥ ४५ ॥

नरा नरैः समाजग्मुर्वारिणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥ ४६ ॥

मनुष्य मनुष्योंसे, हाथी हाथियोंसे, रथी रथियोंसे और घुडसवार घुडसवारोंसे युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥

द्वंद्वान्यासन्महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विस्मापनान्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ ४७ ॥

हे महाराज ! उस युद्धमें होनेवाले विस्मयकारक, अचिन्त्य, शस्त्रयुक्त और उत्तम द्वंद्वयुद्ध प्रेक्षणीय थे ॥ ४७ ॥

अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
न हि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथंचन ॥ ४८ ॥

वे महावेगवान् योद्धा लोग एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे । वीरोंके व्रतका पालन करनेवाले वे वीर एक दूसरेको मारने लगे और वे लोग सामने खडे युद्ध करते रहे, किसीने भी किसी तरह युद्धमें पीठ नहीं दिखाई ॥ ४८ ॥

मुहूर्तमेव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्तत ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! थोडे समय यह युद्ध देखनेमें सुंदर होता रहा, फिर किसीको कुछ ध्यान न रहा, सब मर्यादा छोडकर उन्मत्तके समान लडने लगे ॥ ४९ ॥

रथी नागं समासाद्य विचरन्रणमूर्धनि ।
प्रेषयामास कालाय शरैः संनतपर्वभिः ॥ ५० ॥

तब रथमें बैठा वीर हाथीका सामना करके युद्धके अग्रभागमें घूमता हुआ, अपने तेज बाणोंसे उसको मृत्युलोकमें भेजने लगा ॥ ५० ॥

नागा हयान्समासाद्य विक्षिपन्तो बहूनथ ।
द्रावयामासुरत्युग्रास्तत्र तत्र तदा तदा ॥ ५१ ॥

हाथी अनेक घोडोंको पकडकर इधर उधर फेंकने और विदीर्ण करके मारने तथा भगाने लगे । वे अत्यंत उग्र दीखते थे ॥ ५१ ॥

विद्राव्य च बहूनश्वान्नागा राजन्बलोत्कटाः ।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ ५२ ॥

राजन् ! कितने ही बलोन्मत्त हाथियोंने घोडोंको भगाकर, उन्हें अपने दांतोंसे मार डाला और पैरोंसे कुचल डाला ॥ ५२ ॥

×

साश्वारोहांश्च तुरगान्विषाणैर्बिभिदू रणे ।
अपरांश्चिक्षिपुर्वेगात्प्रगृह्यातिबलास्तथा ॥ ५३ ॥

अनेक हाथियोंने युद्धमें सवारों सहित घोडोंको अपने दांतोंसे चूर कर दिया और अत्यन्त वलवान् हाथियोंने दूसरे घोडोंको सूंडसे पकडकर वेगसे दूर फेंक दिया ॥ ५३ ॥

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं व्यद्रवन्त दिशो दश ॥ ५४ ॥

इसी प्रकार पैदलोंने अवसर पाकर हाथियोंको विद्ध किया । तव वे घोर आर्तनाद करते हुए चारों ओरको भागने लगे ॥ ५४ ॥

पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महामृधे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमवप्लुत्य रणाजिरे ॥ ५५ ॥

पैदल लोग महायुद्धमें अपने भूषण उतारकर शीघ्र ही कूदकर भागने लगे ॥ ५५ ॥

निमित्तं मन्यमानास्तु परिणम्य महागजाः ।
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च ॥ ५६ ॥

तव वडे हाथी भागनेवाले पैदलोंके उन नाना प्रकारके विचित्र अलंकारोंको अपने ऊपरके प्रहारके लिये निमित्त मानकर उन्हें उठा लेते और दांतोंसे फोड डालते थे ॥ ५६ ॥

प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ॥ ५७ ॥

अन्य पैदल सैनिक प्रास, तोमर और शक्तिसे शत्रुपक्षीय हाथियोंके कुम्भस्थल और दांतोंके वीचमें मारकर उन्हें वशमें लाते थे ॥ ५७ ॥

निगृह्य च गदाः केचित्पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः ।
रथाश्वसादिभिस्तत्र संभिन्ना न्यपतन्भुवि ॥ ५८ ॥

गदा लिये हुए पैदल उनको रोकते थे, फिर पीछे खडे हुए अत्यंत दारुण रथी और घुडसवार उन्हें वाणोंसे छिन्न भिन्न करते थे, इससे वे हाथी भूमिपर गिर जाते थे ॥ ५८ ॥

सरथं सादिनं तत्र अपरे तु महागजाः ।
भूमावमृद्नन्वेगेन सवर्माणं पताकिनम् ॥ ५९ ॥

दूसरे वडे हाथियोंने रथोंसहित रथी और घुडसवारोंको उनके कवच और पताकाओंसहित भूमिपर वेगपूर्वक कुचल दिया ॥ ५९ ॥

रथं नागाः समासाद्य धुरि गृह्य च मारिष ।
व्याक्षिपन्सहसा तत्र घोररूपे महामृधे ॥ ६० ॥

मारिष ! उस घोर महायुद्धमें कितने ही हाथी रथोंके पास आकर, उनकी धुरियां पकडकर, उन्हें सहसा दूर फेंक देते थे ॥ ६० ॥

नाराचैर्निहताश्चापि निपेतुस्ते महागजाः ।
पर्वतस्येव शिखरं वज्रभग्नं महीतले ॥ ६१ ॥
वे महाबलवान् हाथी नाराच बाणोंसे मारे जाकर वज्रसे भग्न हुए पर्वत-शिखरके समान पृथ्वीमें गिर पडते थे ॥ ६१ ॥

योधा योधान्समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन्युधि ।
केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिच्छिदुर्बिभिदुः सह ॥ ६२ ॥
योद्धा दूसरे योद्धाओंके पास जाकर युद्धमें उनपर मुष्टिसे प्रहार करते थे। कितने ही दूसरेके बाल पकडकर परस्पर खींचते थे, फेंक देते थे और घायल करते थे ॥ ६२ ॥

उद्यम्य च भुजावन्यो निक्षिप्य च महीतले ।
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतो व्यहनच्छिरः ॥ ६३ ॥
कोई अपने दोनों हाथ उठाकर उनसे शत्रुको पृथ्वीपर फेंक देता था और उसके छातीपर एक पैर रखकर, दबाकर उसके तडफडानेपर भी शत्रुका शिर काटता था ॥ ६३ ॥

मृतमन्यो महाराज पद्भ्यां ताडितवांस्तदा ।
जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् ॥ ६४ ॥
महाराज ! कोई शत्रुको मरा हुआ मानकर उसको लात मारता था; कोई जीते हुए शत्रुके शरीरमें कटार मारता था ॥ ६४ ॥

मुष्टियुद्धं महच्चासीद्योधानां तत्र भारत ।
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च केवलम् ॥ ६५ ॥
हे भारत ! योद्धा वीरोंमें वहां महान् मुष्टियुद्ध हो रहा था । उसी प्रकार केशग्रहण और केवल बाहुयुद्ध भी चल रहा था ॥ ६५ ॥

समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ।
जहार समरे प्राणान्नानाशस्त्रैरनेकधा ॥ ६६ ॥
कोई दूसरेके साथ युद्ध करते हुए वीरसे स्वयं उसको न जानते हुए भी अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युद्धमें उसके प्राणोंका हरण करता था ॥ ६६ ॥

संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ।
कबन्धान्युत्थितानि स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६७ ॥
जब सब वीर युद्धमें लगे थे और भयंकर था, तब उस युद्धमें सैंकडों और सहस्रों कबन्ध उठ खडे हुए थे ॥ ६७ ।

लोहितैः सिच्यमानानि शस्त्राणि कवचानि च ।
महारङ्गानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ॥ ६८ ॥

रुधिरमें भीगे हुए अनेक शस्त्र और कवच भूमिमें पडे हुए थे । वे अच्छे रंगमें रंगे हुए वस्त्रोंके समान शोभित हो रहे थे ॥ ६८ ॥

एवमेतन्महायुद्धं दारुणं भृशसंकुलम् ।
उन्मत्तरङ्गप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ॥ ६९ ॥

इस प्रकार यह अत्यंत घोर महायुद्ध उन्मत्त रंगभूमिके समान सब जगत्को अपने शब्दसे पूरित कर रहा था ॥ ६९ ॥

नैव स्वे न परे राजन्विज्ञायन्ते शरातुराः ।
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ॥ ७० ॥

राजन् ! उस समय बाणोंसे बिद्ध हुए किसीको यह नहीं जान पडता था, कि यह हमारी सेनाका मनुष्य है, वा दूसरीका ! उस समय विजयकी इच्छा रखनेवाले राजा लोग युद्ध करना कर्तव्य है, यह मानकर ही लड रहे थे ॥ ७० ॥

स्वान्स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान् ।
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ॥ ७१ ॥

महाराज ! आगे आये हुए अपने और शत्रुओंके वीरोंको भी अपने ही पक्षके लोग मारते थे । दोनों सेनाओंके वीर मर्यादा रहित होकर लडते थे ॥ ७१ ॥

रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ।
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ॥ ७२ ॥

हे राजन् ! भग्न हुए रथ, मरकर गिरे हुए हाथी, मरे हुए घोडे और गिराये गये मनुष्योंसे ॥ ७२ ॥

अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।
क्षणेनासीन्महाराज क्षतजौघप्रवर्तिनी ॥ ७३ ॥

रक्त और मांसके कीचडसे भरी हुई वह भूमि चलने फिरने योग्य नहीं रही थी। महाराज! उस युद्धमें क्षणमात्रमें रुधिरकी नदी वहने लगी ॥ ७३ ॥

पाञ्चालानवधीत्कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनंजयः ।
भीमसेनः कुरून्राजन्हस्त्यनीकं च सर्वशः ॥ ७४ ॥

पाञ्चालोंका कर्ण और त्रिगर्तोंका अर्जुन वध करने लगे, राजन् ! इसी प्रकार भीमसेनने भी कौरवों और तुम्हारी गजसेनाका सर्वथा नाश कर दिया ॥ ७४ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे महाराज काङ्क्षन्त्योर्विपुलं जयम् ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ १०५८ ॥

हे महाराज ! इस प्रकार दोपहरमें कौरव और पाण्डवोंकी सेनामें महान् यश प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले वीरोंका यह विनाश हुआ ॥ ७९ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ १०५८ ॥

: २० :

धृतराष्ट्र उवाच

अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च ।
तवाहं संजयाश्रौषं पुत्राणां मम संक्षयम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! हमने तुम्हारे मुखसे न सहने योग्य अनेक अति तीव्र दुःखकी बातें सुनीं, यह भी सुना कि हमारे पुत्रोंका नाश होता जाता है ॥ १ ॥

तथा तु मे कथयसे यथा युद्धं तु वर्तते ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे नैष्ठिकी मतिः ॥ २ ॥

जैसा युद्ध हुआ वैसा ही हमसे तुमने कहा । हे सूत ! हमें यह दृढ निश्चय है कि इस युद्धमें सब कौरवोंका नाश हो जायगा ॥ २ ॥

दुर्योधनस्तु विरथः कृतस्तत्र महारणे ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्मिन्वा नृपतिः कथम् ॥ ३ ॥

दुर्योधन वहां उस महा समरमें रथहीन कर दिया गया, उस युद्धमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर और दुर्योधनने क्या किया, सो हमसे कहो ॥ ३ ॥

अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४ ॥

हे सञ्जय ! दोपहरमें कैसे वह रोमांचकारी युद्ध हुआ ? वह हमसे अच्छी तरहसे कहो, क्योंकि तुम इस विषयका अच्छी प्रकार वर्णन कर सकते हो ॥ ४ ॥

संजय उवाच

संसक्तेषु च सैन्येषु युध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशां पते ॥ ५ ॥

सञ्जय बोले— हे पृथ्वीनाथ ! जब सब सेनाएं अनेक भागोंमें विभक्त होकर जूझकर युद्ध करने लगीं, तब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दूसरे रथपर चढ गया ॥ ५ ॥

क्रोधेन महताविष्टः सविषो भुजगो यथा ।
दुर्योधनस्तु दृष्ट्वा वै धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
उवाच सूत त्वरित याहि याहीति भारत ॥ ६ ॥

और विषैले सांपके समान अत्यंत क्रोध करके धर्मराज युधिष्ठिरको दुर्योधनने देखकर, हे भारत ! उसने अपने सारथिसे कहा– चलो चलो ॥ ६ ॥

अत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ।
ध्रियमाणेन छत्रेण राजा राजति दंशितः ॥ ७ ॥

सारथे ! हमारे रथको शीघ्र पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके पास पहुंचाओ, जहां कवच बांधकर छत्र धारण किये युधिष्ठिर खडे हैं, वहीं हमारे रथको ले चलो ॥ ७ ॥

स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ।
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ॥ ८ ॥

राजा दुर्योधनके वचनसे प्रेरित होकर सारथिने दुर्योधनके उत्तम रथको युद्धमें धर्मराज युधिष्ठिरके सामने हांका ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रमत्तः इव सद्गवः ।
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ॥ ९ ॥

तब महाराज युधिष्ठिरने मतवाले सांडके समान क्रुद्ध होकर, अपने सारथिसे कहा, तुम शीघ्र हमारे रथको जहां दुर्योधन है, वहीं ले चलो ॥ ९ ॥

तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ।
समेत्य च महावीर्यौ संनद्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ततक्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ १० ॥

तब वे दोनों महारथी, महावीर, महाधनुर्धारी रणदुर्मद भाई एक दूसरेके सामने आ गये और युद्धमें परस्पर भिडकर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष ।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ।
तं नामृष्यत संक्रुद्धो व्यवसायं युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

मारिष ! अनन्तर युद्धमें दुर्योधनने शिलापर घिसे हुए अपने तेज भल्ल बाणोंसे धर्मात्मा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ! राजा युधिष्ठिर इस कृत्यको सहन न कर सके और वे बहुत क्रोधित हो गये ॥ ११ ॥

अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ॥ १२ ॥

क्रोधके मारे उनके नेत्र लाल हो गये, उन्होंने कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष ले लिया और सब सेनाके आगे ॥ १२ ॥

दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ।
अथान्यद्धनुरादाय प्रत्यविध्यत पाण्डवम् ॥ १३ ॥

दुर्योधनके ध्वज और धनुषको काट दिया; तब दुर्योधन भी दूसरा धनुष लेकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको विद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

तावन्योन्यं सुसंरब्धौ शरवर्षाण्यमुञ्चताम् ।
सिंहाविव सुसंक्रुद्धौ परस्परजिगीषया ॥ १४ ॥

वे दोनों परस्पर विजयकी इच्छासे रोषमें भरे हुए दो सिंहोंके समान गर्जने लगे और अत्यंत क्रुद्ध होकर एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १४ ॥

अन्योन्यं जघ्नतुश्चैव नर्दमानौ वृषाविव ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ ॥ १५ ॥

और मतवाले लडनेवाले दो बैलोंके समान गरजते हुए एक दूसरेको मारने लगे। वे दोनों महारथी परस्पर देखते हुए विचरने लगे ॥ १५ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यं सुकृतव्रणौ ।
विरेजतुर्महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १६ ॥

महाराज ! धनुषको पूरी तरहसे खींचकर छोडे गये बाणोंसे वे दोनों वीर घायल हो गये । रुधिर बहनेसे उन दोनोंकी ऐसी शोभा बढी जैसे फूले हुए कचनारकी ॥ १६ ॥

ततो राजन्प्रतिभयान्सिंहनादान्मुहुर्मुहुः ।
तलयोश्च तथा शब्दान्धनुषोश्च महाहवे ॥ १७ ॥

राजन् ! वे दोनों वारंवार भयजनक सिंहनाद करते हुए उस महायुद्धमें तालियां बजाने और धनुषकी टंकार करने लगे ॥ १७ ॥

शङ्खशब्दरवांश्चैव चक्रतुस्तौ रथोत्तमौ ।
अन्योन्यं च महाराज पीडयांचक्रतुर्भृशम् ॥ १८ ॥

वे दोनों श्रेष्ठ रथी वीर शङ्ख बजाने लगे । महाराज ! वे दोनों राजा अपने बाणोंसे एक दूसरेको अत्यंत पीडा देते थे ॥ १८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रं त्रिभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगो दुरासदः ॥ १९ ॥

तब वज्रके समान वेगशाली, दुर्धर्ष राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे पुत्रकी छातीमें क्रोधपूर्वक तीन बाण मारे ॥ १९ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिम् ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २० ॥

तब तुम्हारे पुत्रने भी राजा युधिष्ठिरके शिलापर घसकर तेज किये सुवर्ण पंखवाले पांच तीक्ष्ण बाण शीघ्रही मारकर घायल किया ॥ २० ॥

ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ।
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा ॥ २१ ॥

हे भारत ! तब राजा दुर्योधनने पूर्णतया लोहेकी बनी हुई एक तीक्ष्ण बडी उल्काके समान शक्ति चलाई ॥ २१ ॥

तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शिलाशितैः ।
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २२ ॥

अपने ऊपर सहसा आती हुई उस शक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरने अपने शिलापर घसे हुए तीन तेज बाणोंसे काटा और सात बाणोंसे दुर्योधनको विद्ध किया ॥ २२ ॥

निपपात ततः साथ हेमदण्डा महाघना ।
निपतन्ती महोल्केव व्यराजच्छिखिसंनिभा ॥ २३ ॥

वह सोनेके दण्डवाली बडी भारी शक्ति उन बाणोंसे कटकर आकाशसे गिरती हुई बडी उल्काके समान पृथ्वीमें गिर गई और वह अग्निके समान प्रकाशित होती थी ॥ २३ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशां पते ।
नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

पृथ्वीपते ! जब तुम्हारे पुत्रने अपनी शक्तिको निष्फल देखा, तब उसने युधिष्ठिरके शरीरमें नौ तीक्ष्ण भल्ल बाण मारे ॥ २४ ॥

सोऽतिविद्धो बलवतामग्रणीः शत्रुतापनः ।
दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः ॥ २५ ॥

शत्रुनाशन श्रेष्ठ युधिष्ठिरने बलवान् शत्रुके बाणोंसे विद्ध होनेपर शीघ्रही दुर्योधनको लक्ष्य करके एक बाण अपने हाथमें लिया ॥ २५ ॥

समाधत्त च तं बाणं धनुष्युग्रं महाबलः ।
चिक्षेप च ततो राजा राज्ञः क्रुद्धः पराक्रमी ॥ २६ ॥

फिर महाबलवान् पराक्रमी युधिष्ठिरने उस घोर बाणको धनुषपर चढाया और क्रोधमें भरकर राजा युधिष्ठिरने उसे राजा दुर्योधनपर छोडा ॥ २६ ॥

स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम् ।
व्यामोहयत राजानं धरणीं च जगाम ह ॥ २७ ॥

वह बाण तुम्हारे पुत्र महारथी राजा दुर्योधनको घायल करके और मूर्च्छित करके पृथ्वीको छेद गया ॥ २७ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ।
विधित्सुः कलहस्यान्तमभिदुद्राव पाण्डवम् ॥ २८ ॥

दुर्योधनने महा क्रोधित होकर, इस कलहको समाप्त करनेकी इच्छासे वेगपूर्वक एक गदा लेकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २८ ॥

तमालक्ष्योद्यतगदं दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत्तव सूनवे ।
दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥ २९ ॥

दण्डधारी यमराजके समान दुर्योधनको गदा उठाये आते देख, धर्मराज युधिष्ठिरने देदीप्यमान, वेगवती, जलती हुई बडी उल्काके समान एक महाशक्ति दुर्योधनकी ओर चलाई ॥ २९ ॥

रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्त्वा महाहवे ।
भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥ ३० ॥

उस शक्तिसे रथपर बैठे हुए दुर्योधनका कवच महायुद्धमें कट गया, इससे अत्यंत उद्विग्न चित्त होकर दुर्योधन गिर गया और मूर्च्छित हो गया ॥ ३० ॥

ततस्त्वरितमागत्य कृतवर्मा तवात्मजम् ।
प्रत्यपद्यत राजानं मग्नं वै व्यसनार्णवे ॥ ३१ ॥

संकटके समुद्रमें डूबे हुए तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनकी रक्षा करनेके लिये बहुत शीघ्रतासे कृतवर्मा उनके पास आये ॥ ३१ ॥

भीमोऽपि महतीं गृह्य गदां हेमपरिष्कृताम् ।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ।
एवं तदभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ १०९० ॥

इधर भीमसेनने भी सोनेके तारोंसे जडी हुई बडी गदाको लेकर युद्धमें वेगसे कृतवर्मापर धावा किया, तब इस प्रकार तुम्हारी और युधिष्ठिरकी सेना युद्ध करने लगी ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ॥ १०९० ॥

*

: २१ :

संजय उवाच

ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः ।
पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् धृतराष्ट्र ! तब तुम्हारे सब युद्धदुर्मद वीर कर्णको आगे करके फिर लौटकर देवासुरके संग्रामके समान युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

द्विरदरथनराश्वशङ्खशब्दैः परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः ।
द्विरदरथपदातिसार्थवाहाः परिपतिताभिमुखाः प्रजह्रिरे ते ॥ २ ॥

हाथी, मनुष्य, रथ, घोडे और शङ्खके शब्दोंसे प्रसन्न होकर, हाथीसवार, रथी, पैदल और घुडसवार वीर क्रोध करके अनेक प्रकारके अस्त्र चलाकर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

शरपरशुवरासिपट्टिशैरिषुभिरनेकविधैश्च सादिताः ।
द्विरदरथहया महाहवे वरपुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥ ३ ॥

सवारोंके सहित अनेक हाथी, रथ, घोडे और मनुष्योंको श्रेष्ठ वीरोंने बाण, परशु, उत्तम तलवार, पट्टिश, वाहन और अनेक प्रकारके बाणोंसे महायुद्धमें मार डाला ॥ ३ ॥

कमलदिनकरेन्दुसंनिभैः सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः ।
रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही पुरुषशिरोभिरवस्तृता बभौ ॥ ४ ॥

इसी प्रकार वाहनोंने मनुष्योंको और मनुष्योंने वाहनोंको मार डाला । कमल, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखवाले, सफेद दांत, सुंदर मुख, नेत्र और नासिकाएंवाले, मनोहर मुकुट और कुण्डल सहित कटे हुए शिरोंसे पृथ्वी भर गई, उसकी शोभा अद्भुत थी ॥ ४ ॥

परिघमुसलशक्तितोमरैर्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्द्रुताः ।
द्विरदनरहयाः सहस्रशो रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥ ५ ॥

सहस्रों हाथी, नर और घोडे परिघ, मुसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी और गदाओंसे आहत होकर पृथ्वीमें गिर गये और युद्धमें रुधिरकी नदी बहने लगी ॥ ५ ॥

प्रहतनररथाश्वकुञ्जरं प्रतिभयदर्शनमुल्बणं तदा ।
तदहितनिहतं बभौ बलं पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥ ६ ॥

जैसे प्रलयकालमें यमराजकी पुरी भयानक होती है, वैसे ही नष्ट हुए रथ, घोडे, हाथी और मनुष्योंसे भरी और शत्रुओंकी मारी हुई सेनासे वह रणभूमि भयानक मालूम होने लगी ॥ ६ ॥

अथ तव नरदेव सैनिकास्तव च सुताः सुरसूनुसंनिभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे कुरुवृषभाः शिनिपुत्रमभ्ययुः ॥ ७ ॥

हे नरदेव ! इसके पश्चात् तुम्हारे सब सैनिक और देवपुत्रोंके समान कुरुश्रेष्ठ तुम्हारे सब पुत्र अमित सेना साथ लेकर समरमें शिनिपुत्र सात्यकिसे युद्ध करनेको चले ॥ ७ ॥

तदतिरुचिरभीममाबभौ पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं बलममरासुरसैन्यसंनिभम् ॥ ८ ॥

उत्तम घोडे, रथ, हाथी और मनुष्योंसे भरी, समुद्रके समान गर्जनेवाली, अत्यंत सुंदर और पराक्रमी वह सेना देवता और राक्षसोंकी सेनाके समान दीखती थी ॥ ८ ॥

सुरपतिसमविक्रमस्ततस्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ॥ ९ ॥

देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी सूर्यपुत्र कर्णने सूर्यके किरणोंके समान प्रकाशमान बाणोंसे युद्धमें इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रके समान शक्तिमान् शिनिकुलमें श्रेष्ठ सात्यकिको मारना आरंभ किया ॥ ९ ॥

तमपि सरथवाजिसारथिं शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् ।
भुजगविषसमप्रभै रणे पुरुषवरं समवास्तृणोत्तदा ॥ १० ॥

शिनिवंश श्रेष्ठ सत्यकिने भी युद्धमें शीघ्रतासे सर्पविषके समान प्रभावशाली अपने अनेक प्रकारके बाणोंसे रथ, घोडे और सारथि सहित पुरुषश्रेष्ठ कर्णको छिपा दिया ॥ १० ॥

शिनिवृषभशरप्रपीडितं तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११ ॥

महारथी कर्णको शिनिवंश श्रेष्ठ सात्यकिके बाणोंसे पीडित देखकर रथ, घोडे, हाथी और पैदलोंकी सेना साथ लेकर तुम्हारे हित चाहनेवाले सुहृद अतिरथी योद्धालोग शीघ्रही उसके पास आ गये ॥ ११ ॥

तमुदधिनिभमाद्रवद्बली त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतसखस्तदाकरोत्पुरुषरथाश्वगजक्षयं महत् ॥ १२ ॥

तब उधरसे भी धृष्टद्युम्न आदि शीघ्रता करनेवाले शत्रुओंने तुम्हारी समुद्रके समान बडी सेनापर आक्रमण किया; तुम्हारी सेनाने भी शत्रुओंपर धावा किया । तब यह हाथी, घोडे, रथ और मनुष्योंका महान् नाश करनेवाला घोर युद्ध होने लगा ॥ १२ ॥

अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३ ॥

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण मध्यान्हकी सन्ध्या करके और जगत्के पति शिवकी विधिपूर्वक पूजा करके, शत्रुओंके वधका दृढ संकल्प करके शीघ्रही तुम्हारी सेनापर चढ आये ॥ १३ ॥

जलदनिनदनिस्वनं रथं पवनविधूनपताककेतनम् ।
सितहयमुपयान्तमन्तिकं हृतमनसो ददृशुस्तवारयः ॥ १४ ॥

शत्रुओंने मेघकी गर्जनाके समान ध्वनि करनेवाले, वायुसे उडते हुए पताकावाले, सफेद घोडे युक्त अर्जुनके रथको विमनस्क हृदयसे निकट आते देखा ॥ १४ ॥

अथ विस्फार्य गाण्डीवं रणे नृत्यन्निवार्जुनः ।
शरसंबाधमकरोत्खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १५ ॥

अनन्तर युद्धमें नृत्य करते हुएसे अर्जुनने गाण्डीव धनुषपर टङ्कार देकर अपने बाणोंसे आकाश, दिशा और उपदिशाओंको पूरित कर दिया ॥ १५ ॥

रथान्विमानप्रतिमान्सज्जयन्त्रायुधध्वजान् ।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥ १६ ॥

अर्जुन अपने बाणोंसे आयुध, ध्वजा और सारथियोंके सहित विमानके समान अनेक रथोंको मेघोंको नष्ट करनेवाले वायुके समान नष्ट कर दिया ॥ १६ ॥

गजान्गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान् ।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १७ ॥

उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पताका, ध्वज और आयुधों सहित हाथी और हाथीसवारों, घोडों और घोडोंपर चढे अनेक वीरों तथा पैदलोंको भी यमलोकको भेज दिया ॥ १७ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम् ।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन्बाणैः पृथग्विधैः ॥ १८ ॥

कालके समान क्रोधी अनिवार्य महारथी अर्जुनपर बाणोंसे अनेक प्रकारके प्रहार करके अकेला दुर्योधन उनके सामने गया ॥ १८ ॥

तस्यार्जुनो धनुः सूतं केतुमश्वांश्च सायकैः ।
हत्वा सप्तभिरेकैकं छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥ १९ ॥

अर्जुनने सात बाणोंमें एकेकसे उनके धनुष, सारथि, घोडे और ध्वजको नष्ट करके एक बाणसे छत्र भी काट दिया ॥ १९ ॥

नवमं च समासाद्य व्यसृजत्प्राणघातिनम् ।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत् ॥ २० ॥

फिर प्राण नाश करनेवाला नौवा बाण धनुषपर चढाकर दुर्योधनकी ओर छोडा, परन्तु उस उत्तम बाणको अश्वत्थामाने बीचहीमें सप्तधा काट डाला ॥ २० ॥

ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्ववराञ्शरैः ।
कृपस्यापि तथात्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २१ ॥

फिर पाण्डुपुत्र अर्जुनने अश्वत्थामाका धनुष काटकर, उसके घोडेको अपने उत्तम बाणोंसे नष्ट करके कृपाचार्यके अति उग्र धनुषको काट दिया ॥ २१ ॥

हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं चाश्वं तथावधीत् ।
दुःशासनस्येषुवरं छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥ २२ ॥

फिर कृतवर्माका धनुष काटकर उसके ध्वज और घोडोंको नष्ट कर दिया। अनन्तर दुःशासनके श्रेष्ठ धनुषको काटकर राधापुत्र कर्णसे युद्ध करनेको चले गये ॥ २२ ॥

अथ सात्यकिमुत्सृज्य त्वरन्कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः ।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या कृष्णं पार्थं पुनस्त्रिभिः ॥ २३ ॥

अनन्तर कर्णने सात्यकिको छोडकर अर्जुनको तीन बाणोंसे विद्ध किया और श्रीकृष्णको बीस बाण मारकर, फिर कुन्तीपुत्र अर्जुनको तीन बाण मारे ॥ २३ ॥

अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्दयत् ॥ २४ ॥

तब सात्यकिने लौटकर कर्णको तीक्ष्ण उग्र निन्यानबे बाणोंसे विद्ध किया और फिर एकसौ बाण मारे ॥ २४ ॥

ततः प्रवीराः पाण्डूनां सर्वे कर्णमपीडयन् ।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २५ ॥

तब पाण्डुपुत्रोंकी सेनाके सब श्रेष्ठ वीर कर्णको पीडा देने लगे। युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदीके पांचों पुत्र, प्रभद्रक, ॥ २५ ॥

उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च ।
चेदिकारूषमत्स्यानां केकयानां च यद्बलम् ।
चेकितानश्च बलवान्धर्मराजश्च सुव्रतः ॥ २६ ॥

उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न आये। इनके संग चेदि, कारूष, मत्स्य और केकयदेशोंकी सब सेनाएं आईं। सङ्गही बलवान् चेकितान तथा महाराज अच्छे व्रतवाले धर्मराज युधिष्ठिर भी आये ॥ २६ ॥

एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः ।
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ।
आषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे वृताः ॥ २७ ॥
ये सब भयंकर पराक्रमी वीर रथी, घुडसवार, हाथीसवार और पैदलोंसे युद्धमें कर्णको घेर कर, उनके वधकी इच्छासे कठोर वचन बोलते हुए, नाना प्रकारके शस्त्रोंको कर्णकी ओर चलाने लगे ॥ २७ ॥

तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा छित्त्वा कर्णः शितैः शरैः ।
अपोवाह स्म तान्सर्वान्द्रुमान्भङ्क्त्वेव मारुतः ॥ २८ ॥
कर्णने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनकी शस्त्रवर्षाको बहुधा नाश करके, उन सबको इस प्रकार दूर हटा दिया, जैसे वायु वृक्षोंको उखाडकर फेंक देती है ॥ २८ ॥

रथिनः समहामात्रान्गजानश्वान्ससादिनः ।
शरव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन्कर्णो व्यदृश्यत ॥ २९ ॥
तब क्रुद्ध कर्ण अपने बाणोंसे सारथियोंके सहित रथी, महावतोंके सहित हाथी, सवारोंके सहित अनेक घोडों और अनेक बाणोंके समूहोंको नष्ट करता दिखायी देता था ॥ २९ ॥

तद्वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा ।
विशस्त्रक्षतदेहं च प्राय आसीत्पराङ्मुखम् ॥ ३० ॥
तब हमने देखा, कि कर्णके अस्त्रोंके तेजसे मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेना शस्त्र, वाहन और देहोंसे रहित होकर प्रायः पराङ्मुख हो गई ॥ ३० ॥

अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्वयम् ।
दिशः खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
तब स्वयं अर्जुनने अपने अस्त्रसे कर्णके अस्त्रको काट दिया; और अपनी बाणोंकी वर्षासे सब दिशा, आकाश और भूमिको आच्छादित कर दिया ॥ ३१ ॥

मुसलानीव निष्पेतुः परिघा इव चेषवः ।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे ॥ ३२ ॥
कोई बाण मुसलोंके समान, कोई परिघोंके समान तथा कोई शतघ्नियोंके समान और कोई दूसरे तेज वज्रके समान शत्रुओंपर पडते थे ॥ ३२ ॥

तैर्वध्यमानं तत्सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम् ।
निमीलिताक्षमत्यर्थमुदभ्राम्यत्समन्ततः ॥ ३३ ॥
अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होती हुई पैदल, घोडे, रथ और हाथियोंसे युक्त कौरवोंकी सेना आंख बन्दकर चारों ओर भ्रमित होकर घूमने लगी ॥ ३३ ॥

निष्कवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः ।
वध्यमानाः शरैरन्ये तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥

तब यह युद्ध अनेक हाथी, घोडे, मनुष्योंके लिये घोररूपसे हुआ। वे बाणोंसे मरने लगे और दूसरे भयसे भागने लगे ॥ ३४ ॥

एवं तेषां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम् ।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वे योद्धा लोग विजयकी इच्छासे युद्ध कर रहे थे, उसी समय भगवान् सूर्य अस्ताचलपर पहुंच गये ॥ ३५ ॥

तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः ।
न किञ्चित्प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ३६ ॥

हे महाराज ! उस समय अन्धकार और विशेष करके धूलसे हम कुछ शुभ और अशुभ न देख सके ॥ ३६ ॥

ते त्रसन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत ।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्ववाजिभिः ॥ ३७ ॥

भारत ! तब उस सब महाधनुर्धर वीरोंने रात्रि युद्धसे डरकर सब सैनिकोंके साथ सेनाको पीछे हटाया ॥ ३७ ॥

कौरवेषु च यातेषु तदा राजन्दिनक्षये ।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः ॥ ३८ ॥

राजन् ! उस दिनके अन्तके समय कौरवोंके हट जानेके पश्चात्, जययुक्त पाण्डवोंने प्रसन्न मनसे अपने अपने शिबिरमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥

वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैश्च नर्तितैः ।
परानवहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥ ३९ ॥

जानेके समय सब वीरोंने नाना प्रकारके बाजे बजाकर, सिंहनाद करके और नाचते हुए शत्रुओंकी निंदा की, और उच्च स्वरसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा की ॥ ३९ ॥

कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते ।
आशिषः पाण्डवेयेषु प्रायुज्यन्त नरेश्वराः ॥ ४० ॥

उन वीरोंसे युद्धविश्राम कर दिये जानेपर सब सैनिक और राजा लोगोंने पाण्डवोंको आशीर्वाद प्रदान किया ॥ ४० ॥

ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः ।
निशायां शिबिरं गत्वा न्यविशन्त नरेश्वराः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार सेनाको लौटाकर प्रसन्न होकर कौरव और पाण्डवोंके नरेश रातको अपने अपने डेरोंमें जाकर सो गये ॥ ४१ ॥

यक्षरक्षःपिशाचाश्च श्वापदानि च संघशः ।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्यानर्तनोपमम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ११३२ ॥

अनन्तर रुद्रकी क्रीडाभूमिके समान उस घोर युद्धभूमिमें यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच और झुंडसे अनेक मांस भक्षक जन्तु आगये ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ११३२ ॥

: २२ :

धृतराष्ट्र उवाच

स्वेन च्छन्देन नः सर्वानवधीद्व्यक्तमर्जुनः ।
न ह्यस्य समरे मुच्येतान्तकोऽप्याततायिनः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! अर्जुनने अपनी इच्छासे हमारे सब वीरोंका वध किया है; शस्त्र धारण करनेवाले उस वीरसे युद्ध करके साक्षात् यमराज भी नहीं मुक्त हो सकता ॥ १ ॥

पार्थो ह्येकोऽहरद्भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत् ।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे बलिभृतो नृपान् ॥ २ ॥

अकेले अर्जुनने सुभद्राका हरण किया, अकेलेने ही खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया । अकेले अर्जुनने ही इस पृथ्वीको जीतकर सब राजाओंको कर देनेवाले बनाया ॥ २ ॥

एको निवातकवचानवधीद्दिव्यकार्मुकः ।
एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत् ॥ ३ ॥

अकेलेने दिव्य धनुष्य धारण करके निवातकवचोंको मारा और अकेलेही अर्जुनने किरात-रूपी शिवसे युद्ध किया ॥ ३ ॥

एकोऽभ्यरक्षद्भरतानेको भवमतोषयत् ।
तेनैकेन जिताः सर्वे मदीया उग्रतेजसाः
ते न निन्द्याः प्रशस्याश्च यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत् ॥ ४ ॥

उस अकेलेहीने घोषयात्राके समय दुर्योधन आदि सब भरतवंशियोंकी रक्षा की, और अकेलेहीने शिवको सन्तुष्ट किया तथा उग्र तेजस्वी वीरने अकेलेही विराट् नगरमें कौरवोंके सब राजा-ओंको जीता । हम हमारे पक्षके सैनिक वा राजाओंकी निन्दा नहीं करते, वे प्रशंसाके योग्य ही हैं, उन्होंने जो कुछ किया हो, सो हमसे कहो ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच

हतप्रहतविध्वस्ता विवर्मायुधवाहनाः ।
दीनस्वरा दूयमाना मानिनः शत्रुभिर्जिताः ॥ ५ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जिस समय बाणोंसे घायल, विद्ध और भग्न अवयव युक्त, कवच, आयुध और वाहन रहित तुम्हारी सेनाके वीर शत्रुओंके हाथसे पराजित होकर युद्धसे हटे, तब दीन वाणीसे परस्पर बात करते हुए वे स्वाभिमानी मनमें दुःखित होकर डेरोंको चले ॥ ५ ॥

शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः ।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पदाक्रान्ता इवोरगाः ॥ ६ ॥

सब सेनाको डेरोंमें सुलाकर, प्रधान कौरव लोग एक डेरेमें इकट्ठे होकर गुप्त मंत्रणा करने लगे। विषके दांत तोड दिये जानेके कारण विषरहित हुए तथा लात मारे हुए सांपोंके समान उस समय उनकी दशा हुई थी ॥ ६ ॥

तानब्रवीत्ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
करं करेणाभिपीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम् ॥ ७ ॥

उन सबके बीचमें क्रोधी सांपके समान सांस लेते हुए, हाथसे हाथ मीजते और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी ओर देखते हुए कर्ण उनको बोले ॥ ७ ॥

यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनः सदा ।
स बोधयति चाप्येनं प्राप्तकालमधोक्षजः ॥ ८ ॥

अर्जुन स्वभावहीसे सदैव प्रयत्नशील, दृढ, दक्ष और धैर्यशील हैं। और साथ ही श्रीकृष्ण उनको समय समय पर कर्तव्यका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥

सहसास्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः ।
श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते ॥ ९ ॥

इसीलिये उन्होंने आज सहसा अस्त्रोंका प्रयोग करके हमें ठगाया है; परन्तु राजन् ! कल मैं उनके सब संकल्पोंको नष्ट करूंगा ॥ ९ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान् ।
सुखोषितास्ते रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ १० ॥

कर्णके ऐसे वचन कहनेपर दुर्योधनने कहा कि बहुत अच्छा। इसके पश्चात् सब श्रेष्ठ राजाओंको आरामके लिये जानेकी आज्ञा दी। सुखसे रात्रिको बिताकर, फिर प्रसन्न मनसे युद्धके लिये चले ॥ १० ॥

×

तेऽपश्यन्विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम् ।
प्रयत्नात्कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनोमतात् ॥ ११ ॥

कौरवोंके योद्धाओंने देखा कि कुरुकुल श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पति और शुक्राचार्यके मतके अनुसार प्रयत्नपूर्वक अपनी सेनाका कठिन व्यूह बना रक्खा है ॥ ११ ॥

अथ प्रतीपकर्तारं सततं विजितात्मनाम् ।
सस्मार वृषभस्कन्धं कर्णं दुर्योधनस्तदा ॥ १२ ॥

अनन्तर विरुद्ध व्यूहरचनामें समर्थ, सदैव संयमी और बैलोंके समान पुष्ट कंधोंवाले कर्णको दुर्योधनने याद की ॥ १२ ॥

पुरंदरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले ।
कार्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राजोऽगमन्मनः ।
सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ १३ ॥

युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी और मरुतोंके समान बलवान् तथा कार्त्तवीर्य अर्जुनके समान वीर्यवान् कर्ण था, राजा दुर्योधनका मन उसकी ओर गया । जैसे कोई संकटके समयमें अपने बंधुजनोंका ही स्मरण करता है, वैसेही महाधनुर्धारी सूतपुत्र कर्णकी ही उसको याद आयी ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यद्वोऽगमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
अप्यद्राक्षत तं यूयं शीतार्ता इव भास्करम् ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र बोले— तुम लोगोंका मन कर्णकी ओर गया और जैसे शीतसे व्याकुल मनुष्य सूर्यकी ओर देखते हैं वैसे ही जब तुम लोगोंने वैकर्तन कर्णकी ओर देखा, उसके पश्चात् क्या हुआ ? सो कहो ॥ १४ ॥

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः ।
कथं वैकर्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत सञ्जय ।
कथं च पाण्डवाः सर्वे युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥ १५ ॥

जब सेनाको लौटानेके बाद रात बीत गई और दूसरे दिन प्रातःकाल पुनः युद्ध शुरू हुआ, तब वैकर्त्तन कर्णने पाण्डवोंके साथ कैसे युद्ध किया ? और सब पाण्डव कैसे सूतपुत्र कर्णसे लडे ? ॥ १५ ॥

कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात्पार्थान्ससोमकान् ।
कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं मतम् ।
तथास्त्राणि सुघोराणि विक्रमश्च महात्मनः ॥ १६ ॥

हमको निश्चय है, कि अकेला महाबाहु कर्ण सोमकोंके सहित सब कुन्तीपुत्र पाण्डवोंका नाश कर सकता है । क्योंकि कर्णका बाहुवीर्य इन्द्र और विष्णुके समान है । उसके अस्त्र अत्यंत घोर हैं तथा महात्मा कर्णका पराक्रम विलक्षण है ॥ १६ ॥

दुर्योधनं तदा दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम् ।
पराक्रान्तान्पाण्डुसुतान्दृष्ट्वा चापि महाहवे ॥ १७ ॥

उस समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर अत्यंत पीडित होते हुए दुर्योधनको देखकर और पाण्डुपुत्रोंको पराक्रम करते हुए देखकर महारथी कर्णने क्या किया ? सो कहो ॥ १७ ॥

कर्णमाश्रित्य संग्रामे दर्पो दुर्योधने पुनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सपुत्रान्सहकेशवान् ॥ १८ ॥

हमें यही आश्चर्य होता है कि घमंडी दुर्योधन युद्धमें कर्णका आश्रय लेकर फिर पुत्र, बान्धव और श्रीकृष्णके सहित कुन्तीपुत्र पाण्डवोंको जीतना चाहता है ॥ १८ ॥

अहो बत महद्दुःखं यत्र पाण्डुसुताञ्रणे ।
नातरद्रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम् ।
अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा संप्रति वर्तते ॥ १९ ॥

हमें यह स्मरण करके बहुत दुःख होता है, कि तेजस्वी कर्ण भी युद्धमें पाण्डवोंसे पार न हो सका । इसमें प्रारब्ध ही प्रधान है । हाय ! यह उसी जुएका घोर फल है । जो इस समय प्रकट हुआ है ॥ १९ ॥

अहो दुःखानि तीव्राणि दुर्योधनकृतान्यहम् ।
सहिष्यामि सुघोराणि शल्यभूतानि सञ्जय ॥ २० ॥

हे संजय ! मैं दुर्योधनके दिये हुए अनेक तीव्र और अत्यंत घोर दुःख सह रहा हूं, वे दुःख मेरे हृदयमें कांटेके समान लगे हुए हैं ॥ २० ॥

सौबलं च तथा तात नीतिमानिति मन्यते ॥ २१ ॥

तात ! मूर्ख दुर्योधनने उस समय शकुनिको नीति जाननेवाला समझा था ॥ २१ ॥

युद्धेषु नाम दिव्येषु वर्तमानेषु सञ्जय ।
अश्रौषं निहतान्पुत्रान्नित्यमेव च निर्जितान् ॥ २२ ॥

हे सञ्जय ! वर्तमान दिव्य महायुद्धमें हम रोज सुनते हैं कि आज हमारे इतने पुत्र मारे गये और इतने हारे ॥ २२ ॥

न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः ।
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ति दैवं हि बलवत्तरम् ॥ २३ ॥

इससे हमको जान पडता है कि समरमें पाण्डवोंको रोक सके ऐसा कोई भी वीर नहीं है । पाण्डव लोग हमारी सेनामें निर्भयतासे घुस जाते हैं, जैसे कोई स्त्रियोंको बीचमें । इसमें प्रारब्ध ही प्रबल है ॥ २३ ॥

संजय उवाच

अतिक्रान्तं हि यत्कार्यं पश्चाच्चिन्तयतीति च ।
तच्चास्य न भवेत्कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥ २४ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! जो मनुष्य बीती हुई बातपर फिर उस कार्यकी चिन्ता करता है, उसका वह कार्य नहीं पूर्ण होता और चिन्ता करनेसे वह नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता ।
न कृतं यत्त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणे ॥ २५ ॥

तुमने जो पहले जानते हुए भी हानि और लाभ विचार कर काम नहीं किया, उसीका यह फल है । परन्तु अब चिन्ता करनेसे कुछ नहीं होगा, इसमें सफलता मिलनी दूरकी बात थी ॥ २५ ॥

उक्तोऽसि बहुधा राजन्मा युध्यस्वेति पाण्डवैः ।
गृह्णीषे न च तन्मोहात्पाण्डवेषु विशां पते ॥ २६ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पाण्डवोंने बहुत बार आपसे कहा था, कि युद्ध न कीजिये; परन्तु आपने पुत्रोंके मोहमें पडकर पाण्डवोंकी बातको नहीं माना ॥ २६ ॥

त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पाण्डुषु ।
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥ २७ ॥

तुमने पाण्डवोंके साथ अनेक घोर अन्याय किये हैं, उसीसे आपके लिये ही यह राजाओंका और वीरोंका भयंकर नाश हो रहा है ॥ २७ ॥

तत्त्विदानीमतिक्रम्य मा शुचो भरतर्षभ ।
शृणु सर्वं यथावृत्तं घोरं वैशसमच्युत ॥ २८ ॥

भरतर्षभ ! बीती हुई बातको भुला दीजिये और उसके लिये आप कुछ शोक न कीजिये । अब उस घोर युद्धका वर्णन यथातथ्य कहता हूं, सुनिये ॥ २८ ॥

प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात् ।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमभाषत ॥ २९ ॥

रात बीत गई और प्रातःकाल होते ही महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधनके पास गया और उससे मिलकर कहने लगा ॥ २९ ॥

अद्य राजन्समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना।
हनिष्यामि च तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ ३० ॥

हे राजन् ! आज हम यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ युद्ध करेंगे। हम उस वीरको आज युद्धमें मारेंगे या वही हमको मारेगा ॥ ३० ॥

बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य पार्थिव।
नाभूत्समागमो राजन्मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! हमारे और अर्जुनके सामने बहुत कार्मोंका भार था, इसीसे हमारा और उसका कलह युद्ध नहीं हुआ था ॥ ३१ ॥

इदं तु मे यथाप्रज्ञं शृणु वाक्यं विशां पते।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ३२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आज हम अपनी बुद्धिके अनुसार प्रतिज्ञा करके जो वचन कह रहे हैं, वह सुनो। हम युद्धमें विना अर्जुनके मारे नहीं लौटेंगे ॥ ३२ ॥

हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन्मयि चैव स्थिते युधि।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्त्या विनाकृतम् ॥ ३३ ॥

हमारी सेनाके श्रेष्ठ वीर मारे गये हैं, इसलिये युद्धमें जब मैं सेनामें खडा रहूंगा, तब मुझे इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे रहित जानकर अर्जुन युद्ध करनेको आवेंगे ॥ ३३ ॥

ततः श्रेयस्करं यत्ते तन्निबोध जनेश्वर।
आयुधानां च यद्वीर्यं द्रव्याणामर्जुनस्य च ॥ ३४ ॥

हे जनेश्वर ! अब जो श्रेयस्कर बात है, वह सुनिये। मेरे और अर्जुनके पास दिव्य योग्य अस्त्रोंका बल है ॥ ३४ ॥

कायस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने।
सौष्ठवे चास्त्रयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ३५ ॥

उस समय आपको निश्चय होगा कि विशाल शरीरका भेदन करना, बाणोंको शीघ्र चलाना, दूरका लक्ष्य वेधना, सुन्दरतासे युद्ध करना और अस्त्रोंके चलानेमें सव्यसाची अर्जुन हमारे समान नहीं हैं ॥ ३५ ॥

सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः।
इन्द्रार्थमभिकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ३६ ॥

जो विश्वकर्माने इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये बनाया था, जो सब आयुधोंमें श्रेष्ठ है, उस मेरे धनुषका नाम विजय है ॥ ३६ ॥

येन दैत्यगणान्राजञ्जितवान्वै शतक्रतुः ।
यस्य घोषेण दैत्यानां विमुह्यन्ति दिशो दश ।
तद्भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसंमतम् ॥ ३७ ॥

राजन् ! जिसको धारण करके इन्द्रने दानवोंको जीता था, जिसकी टंकार शब्दसे राक्षस दसों दिशाओंमें मोहित होते थे, वही अपने प्रिय विजय नामक धनुषको इन्द्रने प्रसन्न होकर परशुरामको दिया था ॥ ३७ ॥

तद्दिव्यं भार्गवो मह्यमददाद्धनुरुत्तमम् ।
येन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम् ।
यथेन्द्रः समरे सर्वान्दैतेयान्वै समागतान् ॥ ३८ ॥

परशुरामने वही उत्तम दिव्य धनुष मुझे दिया है। आज हम वही धनुष धारण करके विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनसे युद्ध करेंगे, जैसे समरमें आये सब राक्षसोंसे इन्द्रने किया था ॥ ३८ ॥

धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात्तद्विशिष्यते ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा तेन निर्जिता ॥ ३९ ॥

यह परशुरामने मुझे दिया हुआ घोर धनुष गाण्डीवसे भी उत्तम है। इस धनुषसे ही परशुरामने इक्कीस वार पृथ्वीको जीत लिया था ॥ ३९ ॥

धनुषो यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः ।
तद्रामो ह्यददान्मह्यं येन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥ ४० ॥

इस धनुषके अनेक दिव्य कर्म मुझसे भृगुपुत्र भगवान् परशुरामने कहे थे, और मुझे यह धनुष दिया था। आज इसी धनुषसे अर्जुनके साथ युद्ध करूंगा ॥ ४० ॥

अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम् ।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम् ॥ ४१ ॥

हे दुर्योधन ! आज हम विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर अर्जुनको मारकर ही भाइयोंके समेत आपको आनन्दित करेंगे ॥ ४१ ॥

सपर्वतवनद्वीपा हतद्विड्भूः ससागरा ।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! आज अर्जुनके मारे जानेसे पर्वत, वन, द्वीप और समुद्रके सहित पृथ्वीमें आपका राज्य होगा, और पुत्र-पौत्रोंकी बहुत पीढीतक राज स्थिर रहेगा ॥ ४२ ॥

नासाध्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः ।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा ॥ ४३ ॥

जैसे चित्तको स्वाधीन रखनेवाले धर्मप्रेमी पुरुषको कोई सिद्धि दुर्लभ नहीं होती, ऐसे ही आज ऐसा कोई असाध्य काम मेरे लिये नहीं है, कि जो विशेष करके हम आपकी प्रीतिके लिये नहीं कर सकते ॥ ४३ ॥

न हि मां समरे सोढुं स शक्तोऽग्निं तरुर्यथा ।
अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फल्गुनात् ॥ ४४ ॥

जैसे वृक्ष अग्निको नहीं सह सकता, ऐसे ही मुझे युद्धमें अर्जुन नहीं सह सकता, परन्तु जिससे मैं अर्जुनसे कम हूं, वह भी मुझे अवश्य कहना चाहिये ॥ ४४ ॥

ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्यौ महेषुधी ।
तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजरं युधि ॥ ४५ ॥

अर्जुनके धनुषकी डोरी दिव्य है और उनके दो बडे अक्षय तूणीर हैं, अर्जुनका दिव्य श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष युद्धमें अजर है ॥ ॥ ४५ ॥

विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम् ।
तत्राहमधिकः पार्थाद्धनुषा तेन पार्थिव ॥ ४६ ॥

मेरा भी विजय धनुष दिव्य, बडा और उत्तम है । राजन् ! मैं इस धनुषके कारण अर्जुनसे श्रेष्ठ हूं ॥ ४६ ॥

मया चाभ्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे ।
रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ४७ ॥

परन्तु वीर पाण्डुपुत्र अर्जुन जिस कारण मुझसे श्रेष्ठ है, वह भी सुनो । अर्जुनके सारथि सर्वलोकपूजित श्रीकृष्ण हैं ॥ ४७ ॥

अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः ।
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः ।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान्वानरो विस्मयंकरः ॥ ४८ ॥

हे वीर ! उनके पास अग्निका दिया हुआ सुवर्ण भूषित दिव्य रथ है और वह सब ओरसे अच्छेद्य है, तथा अर्जुनके घोडे मनके समान शीघ्र चलते हैं और उनके तेजस्वी दिव्य ध्वजपर आश्चर्यमें डालनेवाला वानर बैठा रहता है ॥ ४८ ॥

कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति ।
एभिर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम् ॥ ४९ ॥

जगत्कर्त्ता श्रीकृष्ण उनके रथकी रक्षा करते हैं, हम इन सब सामग्रियोंसे हीन हैं, तो भी पाण्डुपुत्र अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा रखते हैं ॥ ४९ ॥

अयं तु सदृशो वीरः शल्यः समितिशोभनः ।
सारथ्यं यदि मे कुर्याद्ध्रुवस्ते विजयो भवेत् ॥ ५० ॥

ये युद्धमें शोभा पानेवाले वीर राजा शल्य श्रीकृष्णके समान हैं, यदि ये मेरे सारथिका काम करें तो निश्चयही आपकी विजय होगी ॥ ५० ॥

तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः ।
नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे ॥ ५१ ॥

आज शत्रुओंसे सुगमतासे जीते न जानेवाले राजा शल्य हमारे सारथि बनें और गिद्धपङ्ख लगे नाराच बाणोंसे भरे छकडे हमारे पास रहे ॥ ५१ ॥

रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः ।
आयान्तु पश्चात्सततं मामेव भरतर्षभ ॥ ५२ ॥

हे राजेन्द्र ! भरतकुलसिंह ! अच्छे घोडोंसे जूते हुए उत्तम रथ सदा हमारे पीछे चलते रहें ॥ ५२ ॥

एवमभ्यधिकः पार्थाद्भविष्यामि गुणैरहम् ।
शल्यो ह्यभ्यधिकः कृष्णादर्जुनादधिको ह्यहम् ॥ ५३ ॥

ऐसा होनेसे हम अर्जुनसे गुणोंमें अधिक बलवान् हो जायंगे, क्योंकि शल्य भी श्रीकृष्णसे और हम अर्जुनसे अधिक श्रेष्ठ हैं ॥ ५३ ॥

यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा ।
तथा शल्योऽपि जानीते हयानां वै महारथः ॥ ५४ ॥

जैसे शत्रुवीरनाशन दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण घोडोंकी विद्याके रहस्यको जानते हैं, वैसे ही महारथी शल्य भी अश्वविद्या जानते हैं ॥ ५४ ॥

बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन ।
तथास्त्रैर्मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः ॥ ५५ ॥

जगत्में बाहुबलमें मद्रराज शल्यके समान दूसरा कोई नहीं है; ऐसे ही मेरे समान अस्त्रविद्यामें कोई भी धनुर्धर नहीं है ॥ ५५ ॥

तथा शल्यसमो नास्ति हययाने ह कश्चन ।
सोऽयमभ्यधिकः पार्थाद्भविष्यति रथो मम ॥ ५६ ॥

शल्यके समान कोई घोडोंकी विद्या नहीं जानता, इसलिये शल्यके मेरे सारथि होनेपर मेरा यह रथ अर्जुनके रथसे अधिक श्रेष्ठ होगा ॥ ५६ ॥

एतत्कृतं महाराज त्वयेच्छामि परंतप ।
एवं कृते कृतं मह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ५७ ॥

हे शत्रुतापन राजन् ! मैं इच्छिता हूं कि आप इस कामको सिद्ध कीजिये, ऐसा होनेसे मेरी सब इच्छाएं सफलतापूर्वक पूर्ण हो जायेंगी ॥ ५७ ॥

ततो द्रष्टासि समरे यत्करिष्यामि भारत ।
सर्वथा पाण्डवान्सर्वाञ्जेष्याम्यद्य समागतान् ॥ ५८ ॥

भारत ! तब मैं युद्धमें जो कुछ पराक्रम करूंगा, उसे आप स्वयं देखिये । आज मैं निश्चय ही युद्धमें प्राप्त हुए सब वीर पाण्डवोंको सब प्रकारसे जीत लूंगा ॥ ५८ ॥

दुर्योधन उवाच

सर्वमेतत्करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे ।
सोपासङ्गा रथाः साश्वा अनुयास्यन्ति सूतज ॥ ५९ ॥

दुर्योधन बोले— हे सूतपुत्र कर्ण ! तुम जो योग्य मानते हो, हम वैसा ही यह सब करेंगे, अनेक तरकसोंसे भरे हुए रथ घोडों सहित तुम्हारे पीछे जायेंगे ॥ ५९ ॥

नाराचान्गार्ध्रपक्षांश्च शकटानि वहन्तु ते ।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥ ६० ॥

हे कर्ण ! छकडोंमें भरे हुए नाराच तथा गृध्रपंखवाले और भी अनेक बाण तुम्हारे सङ्ग रहेंगे और हम सब और राजा लोग तुम्हारे पीछे रहेंगे ॥ ६० ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान् ।
अभिगम्याब्रवीद्राजा मद्रराजमिदं वचः ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ११९३ ॥

संजय बोले— हे राजन् ! कर्णसे ऐसे कहकर तुम्हारे प्रतापी पुत्र दुर्योधन मद्रराज शल्यके पास जाकर ऐसा वचन बोले ॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ११९३ ॥

*

: २३ :

संजय उवाच

पुत्रस्तव महाराज मद्रराजमिदं वचः ।
विनयेनोपसंगम्य प्रणयाद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन महारथी शल्यके पास विनयपूर्वक जाकर उन्हें प्रसन्न करके ऐसा वचन बोले ॥ १ ॥

सत्यव्रत महाभाग द्विषतामघवर्धन ।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयङ्कर ॥ २ ॥

हे सत्यव्रत ! हे महाभाग ! हे शत्रुओंको ताप देनेवाले मद्रराज ! आप युद्धमें शूर और शत्रुओंकी सेनाको भय देनेवाले हैं ॥ २ ॥

श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर ।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरयत्ययम् ॥ ३ ॥

हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! आपने कर्णके वचन सुने ! अब इन सब राजासिंहोंके बीच आपको यह स्वयं अनुरोध करता है ॥ ३ ॥

तस्मात्पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि ।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ सुमनाः कर्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे रथियोंमे श्रेष्ठ उत्तम मनवाले ! इसलिये आप अर्जुनके नाश और हमारे कल्याणके लिये प्रेमसे कर्णके सारथी बन जाइये ॥ ४ ॥

अस्याभीशुग्रहो लोके नान्योऽस्ति भवता समः ।
स पातु सर्वतः कर्णं भवान्ब्रह्मेव शंकरम् ॥ ५ ॥

तुम्हारे सिवाय कर्णके रथकी बागडोर पकडने योग्य और कोई दूसरा इस जगतमें नहीं है । जैसे ब्रह्मा शिवकी रक्षा करते हैं, वैसे तुम कर्णकी सब तरहसे रक्षा करना ॥ ५ ॥

पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीशुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय ॥ ६ ॥

जैसे अर्जुनके रथकी बागडोर संभालकर सारथियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण उसकी आपत्तियोंमें रक्षा करते हैं, ऐसे ही आपभी राधापुत्रकी सर्वथा रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान्भोजश्च वीर्यवान् ।
शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ।
एषामेव कृतो भागो नवधा पृतनापते ॥ ७ ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, आप, पराक्रमी कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और हम अपनी सेनाके प्रधान हैं । हे सेनानाथ ! हमने इस सेनाके प्रधान नौ भाग किये थे ॥ ७ ॥

नैव भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः।
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शात्रवः ॥ ८ ॥
उसमें यहां भीष्म और महात्मा द्रोणका भाग नष्ट हो गया। उन दोनोंने अपने भागोंसे बढकर मेरे शत्रुओंको नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥

वृद्धौ हि तौ नरव्याघ्रौ छलेन निहतौ च तौ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ ॥ ९ ॥
परन्तु पाण्डवोंने उन दोनों नरसिंह बूढोंको छलसे मार डाला। अनघ! वे दोनों दुष्कर कर्म करके यहांसे स्वर्गलोकमें गये ॥ ९ ॥

तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि।
अस्मदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे।
त्यक्त्वा प्राणान्यथाशक्ति चेष्टाः कृत्वा च पुष्कलाः ॥ १० ॥
तथा और भी हमारे अनेक पुरुषसिंह वीर युद्धमें शत्रुओंसे मारे गये हैं। हमारे पक्षके वे अनेक वीर अपनी शक्तिके अनुसार बहुत पराक्रम करके युद्धमें प्राणत्यागकर स्वर्गको चले गये ॥ १० ॥

कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः।
भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः।
तस्मिञ्जयाशा विपुला मम मद्रजनाधिप ॥ ११ ॥
हे नरव्याघ्र! महाबाहु कर्ण ही एक दूसरे सब लोकोंमें विख्यात ऐसे महारथी तुम भी हैं। सदा हमारा प्रिय और कल्याण चाहते हैं। हे मद्रराज! हमारे मनमें इस कारण जयकी बडी आशा है ॥ ११ ॥

पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीशुवरग्रहः।
तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव ते ॥ १२ ॥
समरमें अर्जुनके रथकी बागडोर संभालनेवाले श्रीकृष्ण श्रेष्ठ सारथि हैं। नृपते! श्रीकृष्णकी सहायता और सुरक्षिततासे अर्जुन युद्धमें जो जो कार्य करते हैं, सो सब प्रत्यक्ष ही हैं ॥ १२ ॥

पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून्।
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन्दृश्यते युधि ॥ १३ ॥
अर्जुन इस समय शत्रुओंको मार रहे हैं, वैसे पहले युद्धमें कभी नहीं मारते थे। मद्रेश! श्रीकृष्णके सहित अर्जुन हररोज युद्धमें हमारी सेना मारते और भगाते दीखते हैं ॥ १३ ॥

भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते ।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाहवे ॥ १४ ॥

हे महातेजस्वी ! अब आपका और कर्णका भाग शेष रहा है, सो अब आप कर्णके सहित युद्धमें शत्रुसेनाके अपने भागको नाश कीजिये ॥ १४ ॥

सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपाञ्चालाःससृञ्जयाः ॥ १५ ॥

मारिष ! जैसे अरुण और सूर्यको देख अन्धकारका नाश होता है, वैसे ही आपको और कर्णको देख, पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयवंशियोंके सहित नष्ट हो जायेंगे ॥ १५ ॥

रथानां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् ।
संनिपातः समो लोके भवतोर्नास्ति कश्चन ॥ १६ ॥

कर्ण रथी योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं, आप सारथियोंमें उत्तम हैं । जगत्में आप दोनों जैसा संयोग दूसरा कोई भी नहीं है ॥ १६ ॥

यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा भवान्परित्रातु कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ १७ ॥

जैसे श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र अर्जुनको सब आपत्तियोंसे बचाते हैं, वैसे ही युद्धमें आप वैकर्तन कर्णकी रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति ।
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते ।
किं पुनः पाण्डवेयानां मातिशङ्कीर्वचो मम ॥ १८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आपके सारथि होनेसे यह कर्ण युद्धमें इन्द्रके देवताओंके सहित लिये भी अजिक्य हो सकते हैं, फिर पाण्डवोंकी तो कथा ही क्या है ? आप हमारे वचनमें कुछ सन्देह न कीजिये ॥ १८ ॥

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा धुन्वन्हस्तौ पुनः पुनः ॥ १९ ॥

दुर्योधनके ऐसे वचन सुन शल्य क्रोधसे भर गये, वे अपनी भौंहें तीन जगह टेढी कर हाथोंको बार बार वेगसे घुमाने लगे ॥ १९ ॥

क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवर्त्य महाभुजः ।
कुलैश्वर्यश्रुतिबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥ २० ॥

कुल, ऐश्वर्य, श्रुत और बल इनके अभिमानसे भरे हुए महाबाहु शल्यके विशाल नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे नेत्रोंको घुमाकर दुर्योधनको ऐसा बोले ॥ २० ॥

अवमन्यसेमां गान्धारे ध्रुवं मां परिशङ्कसे ।
यन्मां ब्रवीषि विस्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ २१ ॥

हे गान्धारी पुत्र ! तुम मेरा निरादर करते हो, निश्चय ही तुम्हारा हमारे ऊपर कुछ विश्वास नहीं है, इसलिये तुम निर्भयतासे कहते हो कि आप कर्णके सारथि बनो ॥ २१ ॥

अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि ।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मना ॥ २२ ॥

तू हमसे कर्णको अधिक मानकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं, परन्तु मैं राधापुत्रको युद्धमें अपने समान योद्धा नहीं समझता ॥ २२ ॥

आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे हित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥ २३ ॥

पृथ्वीपते ! तुम मेरे भागमें शत्रुसेनाके अधिकतर अंशको दे दो, उसीको हम जीतकर जैसे आये हैं वैसे अपने देशको लौट जायंगे ॥ २३ ॥

अथ वाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन ।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥ २४ ॥

अथवा कुरुनन्दन ! हम अकेलेही युद्ध करेंगे । फिर हमारे पराक्रमको देखो, किस प्रकार युद्धमें हम तुम्हारे शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ २४ ॥

न चाभिकामान्कौरव्य विधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्तेत मा मा त्वमतिशङ्किथाः ॥ २५ ॥

हमारे जैसे लोग मनमें कुछ इच्छा रखकर युद्ध करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होते, तुम हमसे किसी प्रकार भी शङ्का मत करो ॥ २५ ॥

युधि चाप्यवमानो मे न कर्तव्यः कथंचन ।
पश्य हीमौ मम भुजौ वज्रसंहननोपमौ ॥ २६ ॥

तुम युद्धमें हमारा किसी प्रकार भी अपमान मत करो, हमारे वज्रके समान सुदृढ इन हाथोंको देखो ॥ २६ ॥

धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान् ।
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ।
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम् ॥ २७ ॥

तुम हमारे विचित्र धनुषको, विषधर सर्पके समान विषयुक्त बाणोंको और वायुके समान तेज चलनेवाले उत्तम घोडेयुक्त सजाये रथको देखो । हे गान्धारीपुत्र ! हमारी इस सोनेसे भूषित गदाको भी देखो ॥ २७ ॥

दारयेयं महीं क्रुद्धो विकिरेयं च पर्वतान् ।
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ॥ २८ ॥

राजन् ! मैं क्रुद्ध होकर सब पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूं और पर्वतोंको तोड सकता हूं, मै अपने तेजसे समुद्रको भी सुखा सकता हूं ॥ २८ ॥

तन्मामेवंविधं जानन्समर्थमरिनिग्रहे ।
कस्माद्युनक्षि सारथ्ये न्यूनस्याधिरथेर्नृप ॥ २९ ॥

हे नृप ! ऐसे शत्रुओंके निग्रहमें मैं समर्थ हूं यह जानकर भी तुम मुझे क्य राधापुत्रके सारथ्यके कर्मपर कैसे नियुक्त करते हो ? ॥ २९ ॥

न मामं धुरि राजेन्द्र प्रयोक्तुं त्वमिहार्हसि ।
न हि पापीयसः श्रेयान्भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे ॥ ३० ॥

राजेन्द्र ! मुझ सरीखेको ऐसे नीचकर्ममें यहां नियुक्त करना आपको योग्य नहीं है । मैं श्रेष्ठ महात्मा होकर पापीका दास्यत्व नहीं कर सकता ॥ ३० ॥

यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम् ।
वशे पापीयसो धत्ते तत्पापमधरोत्तरम् ॥ ३१ ॥

जो किसी प्रीतिसे आये हुए और आज्ञामें रहनेवाले महात्माको पापीके वशमें डाल देता है, उसका उच्चको नीचकी सेवामें नियुक्त कराना यह पाप कर्म होता है ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणा ब्रह्मणा सृष्टा मुखात्क्षत्रमथोरसः ।
ऊरुभ्यामसृजद्वैश्याञ्शूद्रान्पद्भ्यामिति श्रुतिः ।
तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणोंको मुखसे, क्षत्रियोंको हृदयसे, वैश्योंको जांघोंसे और शूद्र लोगोंको पैरोंसे ब्रह्माने उत्पन्न किया है, ऐसा श्रुतिका मत है । इन्हीं चार वर्णोंसे अनुलोम प्रतिलोम भावसे भिन्न वर्ण उत्पन्न हुए हैं ॥ ३२ ॥

अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत ।
गोप्तारः संग्रहीतारो दातारः क्षत्रियाः स्मृताः ॥ ३३ ॥

हे भारत ! चारों वर्णोंके परस्पर संयोगसे जातियां निर्माण हुई हैं । ये चारों वर्ण तथा और जातियोंकी भी रक्षा करनेवाले, कर लेनेवाले और दान देनेवाले क्षत्रिय लोग होते हैं ॥ ३३ ॥

याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः ।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्रह्मणा भुवि ॥ ३४ ॥

यज्ञ करना, कराना, पढना, पढाना और शुद्ध दान लेना, ये लोकानुग्रह कारक कर्म करनेके लिये पृथ्वीपर ब्रह्माने ब्राह्मणोंको स्थापित किया ॥ ३४ ॥

कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च सर्वशः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥ ३५ ॥

खेती करना, पशुओंका पालना और सब तरहसे दान देना ये वैश्योंके कर्म हैं, और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंकी सेवा करना शूद्रका काम है ॥ ३५ ॥

ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः ।
न विट्शूद्रस्य तत्रैव शृणु वाक्यं ममानघ ॥ ३६ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी सूत जाति सेवक है । क्षत्रिय कभी सूतकी आज्ञाको नहीं सुन सकता । हे अनघ ! इसलिये आप मेरा कहना सुनिये ॥ ३६ ॥

सोऽहं मूर्धावसिक्तः सन्राजर्षिकुलसंभवः ।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तव्यश्च बन्दिनाम् ॥ ३७ ॥

मैं राजऋषियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ, मूर्धाभिषिक्त राजा, प्रसिद्ध महारथी, सेव्य और वन्दिजनोंसे स्तुतिके योग्य हूं ॥ ३७ ॥

सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिकुलमर्दन ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ३८ ॥

शत्रुसेनाका नाश करनेमें समर्थ राजन् ! मैं इस प्रकारके गुणोंसे युक्त होकर यहां युद्धमें एक सूतपुत्रका सारथ्य नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥

अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथंचन ।
आपृच्छ्य त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि यथागतम् ॥ ३९ ॥

मैं अपने अपमानको सहकर फिर किसी प्रकार युद्ध नहीं करूंगा । हे गान्धारीपुत्र ! अब हम तुमसे पूछकर जैसे आये थे, वैसे ही हम अपने घरको जायेंगे ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा नरव्याघ्रः शल्यः समितिशोभनः ।
उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ४० ॥

ऐसा कह कर, युद्धमें शोभित होनेवाले नरव्याघ्र शल्य क्रोधसे भर कर राजाओंके बीचमेंसे उठकर शीघ्रही चले गये ॥ ४० ॥

प्रणयाद्बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥ ४१ ॥

फिर तुम्हारे पुत्रने शल्यको बहुत प्रेम और विनयादरपूर्वक उन्हें रोका और शान्ति सहित अपना प्रयोजन सिद्ध करनेको ऐसे मधुर वचन बोले ॥ ४१ ॥

यथा शल्य त्वमात्थेदमेवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥ ४२ ॥

हे जनेश्वर शल्य ! आप जो अपने विषयमें कहते हैं, वह सब सत्य है, इसमें बिलकुल संशय नहीं है, परन्तु मेरा जो और अभिप्राय है, सो सुनिये ॥ ४२ ॥

न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तः शङ्के नैव कथंचन ।
न हि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद्यदनृतं भवेत् ॥ ४३ ॥

कर्ण आपसे अधिक श्रेष्ठ नहीं है, और न मैं आपसे किसी प्रकारकी शङ्का करता हूं, क्योंकि मुझे निश्चय है कि जो आप मद्रदेशके राजा कोई ऐसा कार्य नहीं करते, जो मिथ्या होगा ॥ ४३ ॥

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ४४ ॥

आपके सब पूर्वज श्रेष्ठ पुरुष लोग सदैव सत्य बोलते थे, इसीलिये आपके गोत्रका नाम आर्तायनि है, ऐसी मेरी धारणा है ॥ ४४ ॥

शल्यभूतश्च शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्येति ते नाम कथ्यते पृथिवीपते ॥ ४५ ॥

हे मानद पृथ्वीपते ! आप शत्रुओंके हृदयमें कांटेके समान सलते रहते हैं, इसीलिये इस भूमिपर आपका नाम शल्य है ॥ ४५ ॥

यदेव व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थं यद्यदुच्यसे ॥ ४६ ॥

हे यज्ञमें बहुत दक्षिणा देनेवाले धर्मज्ञ ! आपने जो पहले वरदान दिया था, कि हम तुम्हारा कल्याण करेंगे, और अभी जो कुछ कहते हैं उन अपने वचनोंको आज मेरे लिये सत्य कीजिये ॥ ४६ ॥

न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् ।
वृणीमस्त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिति संयुगे ॥ ४७ ॥

राधापुत्र कर्ण और हम आपसे अधिक बलवान् नहीं हैं, परन्तु आप युद्धमें उत्तम घोडोंके श्रेष्ठ नियंता हैं, इसीलिये हम आपको प्रार्थना करके कहते हैं ॥ ४७ ॥

यथा ह्यभ्यधिकं कर्णं गुणैस्तात धनञ्जयात् ।
वासुदेवादपि त्वां च लोकोऽयमिति मन्यते ॥ ४८ ॥

तात ! मैं और यह सब जगत् कर्णको अर्जुनसे अधिक गुणवान् और आपको वसुदेवनंदन श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ मानते हैं ॥ ४८ ॥

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानप्यधिकः कृष्णादश्वयाने बले तथा ॥ ४९ ॥

हे पुरुषसिंह ! कर्ण अर्जुनसे केवल अस्त्रविद्यामें श्रेष्ठ है और आप श्रीकृष्णसे अश्वविद्या और बलमें अधिक हैं ॥ ४९ ॥

यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्थ मद्रराज न संशयः ॥ ५० ॥

हे मद्रराज ! महात्मा श्रीकृष्ण जैसे अश्वविद्या रहस्यको जानते हैं, वैसे ही, आप श्रीकृष्णसे दूनी अश्व विद्या जानते हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५० ॥

शल्य उवाच

यन्मा ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात्प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ५१ ॥

शल्य बोले– हे गान्धारीपुत्र ! कौरव ! तुमने जो सब सेनाके बीचमें हमें देवकी पुत्र श्रीकृष्णसे भी अधिक कहा, इसलिये हम तुमसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५१ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ ५२ ॥

हे वीर ! हम अब जैसा तुम चाहते हो वैसे पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनके साथ युद्ध करनेवाले यशस्वी कर्णके सारथि बनते हैं ॥ ५२ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ५३ ॥

परन्तु हे वीर ! कर्णके सङ्ग मैं एक प्रतिज्ञा कर लेता हूं; इसके पास मेरी जो इच्छा होगी, सो कर्णको कहूंगा ॥ ५३ ॥

सञ्जय उवाच

तथेति राजन्पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत ।
अब्रवीन्मद्रराजस्य सुतं भरतसत्तम ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ १२४७ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रने कर्णके सहित शल्यकी बातको अच्छा कहके स्वीकार कर लिया ॥ ५४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तेइसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ १२४७ ॥

: २४ :

दुर्योधन उवाच

भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरा वृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले– हे मद्रराज ! प्रभो ! फिर आपसे जो कुछ कहता हूं, वह सुनिये । पहले देवासुर संग्राममें जो बात हुई थी, सो आपसे हम कहते हैं, सुनो ॥ १ ॥

यदुक्तवान्पितुर्मह्यं मार्कण्डेयो महानृषिः ।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ।
त्वं निबोध न चाप्यत्र कर्तव्या ते विचारणा ॥ २ ॥

राजर्षिश्रेष्ठ ! महर्षि मार्कण्डेय मुनिने मेरे पिताजीको यह कहा था, वह सब मैं कहता हूं, आप सावधानतासे सुनिये, आप हमारी बातमें कुछ सन्देह न कीजिये ॥ २ ॥

देवानामसुराणां च महानासीत्समागमः ।
बभूव प्रथमो राजन्संग्रामस्तारकामयः ।
निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥

देवता और राक्षसोंका प्रथम तारकामय बडा भारी युद्ध हुआ था, तब देवताओंने दानवोंको जीत लिया था, ऐसा हमने सुना है ॥ ३ ॥

निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः ।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥ ४ ॥

दैत्योंके पराजित हो जानेपर तारकासुरके तीन बेटे ताराक्ष, कमलाक्ष, विद्युन्माली ये शेष रहें ॥ ४ ॥

तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।
तपसा कर्शयामासुर्देहान्स्वाञ्शत्रुतापन ॥ ५ ॥

हे शत्रुनाशन ! इन्होंने उग्र तप करके उत्तम नियमोंका पालन किया । वे तीनों घोर तप करके अपने शरीरोंको सुखाने लगे ॥ ५ ॥

दमेन तपसा चैव नियमेन च पार्थिव ।
तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरान् ॥ ६ ॥

राजन् ! उनके संयम तप और नियमसे प्रसन्न होकर वरदान देनेवाले ब्रह्मा वर देनेको आये ॥ ६ ॥

अवध्यत्वं च ते राजन्सर्वभूतेषु सर्वदा ।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥ ७ ॥

राजन् ! उन तीनोंने एक साथ सब लोकोंके पितामह ब्रह्मासे मांगा कि हम सदा सब भूतोंसे अवध्य हों ॥ ७ ॥

तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमितोऽसुराः
वरमन्यं वृणीध्वं वै यादृशं संप्ररोचते । ॥ ८ ॥

उनके वचन सुन सब जगत्के कर्त्ता ब्रह्माने उनसे कहा, कि जगत्में कोई अमर नहीं हो सकता, तुम तपस्यासे निवृत्त हो जाओ । इसलिये तुम दूसरा कोई वर जो तुम्हें अच्छा लगे मांगो ॥ ८ ॥

ततस्ते सहिता राजन्संप्रधार्यासकृद्बहु ।
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्यैनमथाब्रुवन् ॥ ९ ॥

राजन् ! तब उन दैत्योंने परस्पर एक साथ सम्मति करके सर्वलोकेश्वर ब्रह्माको प्रणाम करके इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥

अस्माकं त्वं वरं देव प्रयच्छेमं पितामह
वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेऽस्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः ॥ १० ॥

हे पितामह ! देव ! आप हम लोगोंको वरदान दीजिये, हम आपके कृत प्रसादसे इस जगत्में अपने तीन नगर बनाकर रहेंगे और विचरेंगे ॥ १० ॥

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥ ११ ॥

हे पापरहित ! अनन्तर एक हजार वर्ष पूर्ण हो जानेपर हम परस्पर मिलेंगे । भगवन् ! ये तीनों नगर जब एकत्र मिल जायेंगे, ॥ ११ ॥

समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा ।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ।
एवमस्त्विति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ॥ १२ ॥

तब जो हमारे तीनों नगरोंको एकही बाणसे नाश कर सके, उस देवश्रेष्ठके हाथसे हमारी मृत्यु हो । ब्रह्मा ऐसा ही होगा, कहकर स्वर्गको चले गये ॥ १२ ॥

ते तु लब्धवराः प्रीताः संप्रधार्य परस्परम् ।
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम् ।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १३ ॥

तब वरदान पाकर वे तीनों दैत्य भी प्रसन्न होकर परस्पर विचार करने लगे; फिर उन्होंने दैत्य और दानवपूजित अजर विश्वकर्मा महान् मय नामक दैत्यको तीन नगर बनानेको नियुक्त किया ॥ १३ ॥

ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान्पुराणि ह ।
त्रीणि काञ्चनमेकं तु रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥ १४ ॥

तब बुद्धिवान् मयने अपनी विद्यावलके तपसे एक सोनेका, दूसरा चांदीका और तीसरा लोहेका ऐसे तीन नगर बनाए ॥ १४ ॥

काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भूमौ चक्रस्थं पृथिवीपते ॥ १५ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! सोनेका नगर स्वर्गमें, चांदीका आकाशमें और लोहेका नगर पृथ्वीमें बनाया । एक एक नगर इच्छाके अनुसार गमन करनेवाला था ॥ १५ ॥

एकैकं योजनशतं विस्तारायामसंमितम् ।
गृहाट्टाट्टालकयुतं बृहत्प्राकारतोरणम् ॥ १६ ॥

और प्रत्येक नगर सौ सौ योजन लम्बा तथा सौ सौ योजन चौडा था, उनके भीतर अनेक महल और अट्टालिकाएं, तथा प्राकार और तोरण बनी थीं ॥ १६ ॥

गुणप्रसवसंबाधमसंबाधमनामयम् ।
प्रासादैर्विविधैश्चैव द्वारैश्चाप्युपशोभितम् ॥ १७ ॥

अनेक सुन्दर स्थान और अनेक बडे बडे मार्ग तथा अनेक प्रकारके प्रासाद और द्वार उनमें बने थे और शोभा बढाते थे ॥ १७ ॥

पुरेषु चाभवन्राजन्राजानो वै पृथक्पृथक् ।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ।
राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ॥ १८ ॥

राजन् ! उन नगरोंके राजा अलग अलग थे । सोनेका विचित्र नगर महात्मा तारकाक्षके अधिकारमें था, चांदीके नगरमें कमलाक्ष और लोहेके नगरमें विद्युन्माली राजा हुआ ॥१८॥

त्रयस्ते दैत्यराजनस्त्रींल्लोकानाशु तेजसा ।
आक्रम्य तस्थुर्वर्षाणां पूगान्नाम प्रजापतिः ॥ १९ ॥

वे तीनों दैत्यराजा अपने प्रखर तेजसे तीनों लोकोंको दबाकर वर्षोंतक राज्य करने लगे और कहने लगे, कि सुपारियोंका नाम प्रजापति है ॥ १९ ॥

तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च।
कोटयश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः।
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः ॥ २० ॥

इन दानव श्रेष्ठोंके सङ्ग लक्षों, करोडों और अर्बों अप्रतिम वीर दानवभी सब ओरसे आ गये। ये सब दानव बडे ऐश्वर्यकी इच्छासे त्रिपुरदुर्गमें निवासके लिये आये थे ॥ २० ॥

सर्वेषां च पुनस्तेषां सर्वयोगवहो मयः।
तमाश्रित्य हि ते सर्वे अवर्तन्ताकुतोभयाः ॥ २१ ॥

इन सबको मय राक्षस इच्छानुसार अप्राप्त वस्तुओंके भोग देता था। उसका आश्रय करके वे सब निर्भयतासे रहते थे ॥ २१ ॥

यो हि यं मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः।
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा ॥ २२ ॥

और उस त्रिपुरवासियोंके चित्तमें जो जो अभिलाषा उत्पन्न होती थी, उसको मय राक्षस अपनी मायासे पूर्ण करता था ॥ २२ ॥

तारकाक्षसुतश्चासीद्धरिर्नाम महाबलः।
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत्पितामहः ॥ २३ ॥

तारकाक्षका हरि नामका एक महाबलवान् पुत्र था, उसने ऐसा घोर तप किया, जिससे ब्रह्मा प्रसन्न होगये ॥ २३ ॥

स तुष्टमवृणोद्देवं वापी भवतु नः पुरे।
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः ॥ २४ ॥

तब उसने संतुष्ट हुए ब्रह्मासे यह वरदान मांगा, कि हमारे नगरमें एक बावडी बन जाये, उस बावडीके जलमें यह प्रताप रहे, कि जो शस्त्रसे मरा वीर उसमें डाल दिया जाय, सो जी जाय और अधिक बलवान् हो जावे ॥ २४ ॥

स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः।
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीवनीं प्रभो ॥ २५ ॥

हे राजन्! वरदान प्राप्त करके तारकाक्षके वीरपुत्र हरिने अपने नगरमें आकर बावडी बनाई; यह मृतकोंको जीवन देनेवाली थी ॥ २५ ॥

येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह।
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ॥ २६ ॥

उसका यह प्रताप हो गया कि जो दैत्य जिस रूपसे और जिस वेषसे मरे, उसको उसमें डालनेसे उसी रूप और वेषसे फिर जी जाता था ॥ २६ ॥

तां प्राप्य त्रैपुरस्थास्तु सर्वाल्लँोकान्बबाधिरे ।
महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः ।
न तेषामभवद्राजन्क्षयो युद्धे कथंचन ॥ २७ ॥

उस वावडीमें प्राप्त होकर नया जीवन धारण कर उन तीन नगरोंके दैत्योंने फिर सब लोकोंको पीडा देना सुरू किया । महान् तपसे सिद्ध हुए दैत्योंसे देवताओंको वडा भय उत्पन्न होने लगा । युद्धमें किसी प्रकार भी उनका नाश नहीं होता था ॥ २७ ॥

ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः ।
निर्ह्रीकाः संस्थितिं सर्वे स्थापितां समलूलुपन् ॥ २८ ॥

तब राक्षसोंको लोभ और मोह उत्पन्न हुआ, वे विवेकहीन और निर्लज्ज होकर, नगरोंमें वसाये गये लोगोंकी लूट करके उपद्रव देने लगे ॥ २८ ॥

विद्राव्य सगणान्देवांस्तत्र तत्र तदा तदा ।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ॥ २९ ॥

वरदानके अभिमानसे अनेक स्थानोंमें सब देवताओंको और उनके गणोंको भगाकर उनके स्थानोंमें अपनी इच्छाके अनुसार विहार करने लगे ॥ २९ ॥

देवारण्यानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकसाम् ।
ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्यूपाञ्जनपदांस्तथा ।
व्यनाशयन्त मर्यादा दानवा दुष्टचारिणः ॥ ३० ॥

तब दुष्ट दुराचारी दानवलोग मर्यादा छोडकर, देवताओंके प्यारे वन, ऋषियोंके पवित्र आश्रम, जयस्तम्भ और रमणीय जनदेशोंको नष्ट करने लगे ॥ ३० ॥

ते देवाः सहिताः सर्वे पितामहमरिंदम ।
अभिजग्मुस्तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥ ३१ ॥

हे शत्रुनाशन ! वे सब देव एक साथ मिलकर सब दैत्योंका अत्याचार कहनेको पितामह ब्रह्माके निकट गये ॥ ३१ ॥

ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरसाभिप्रणम्य च ।
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥ ३२ ॥

उन्होंने जाकर भगवान् ब्रह्माको सिरसे प्रणाम किया और सब बातें ठीक कहकर उनसे दैत्योंके वधका उपाय पूछा ॥ ३२ ॥

श्रुत्वा तद्भगवान्देवो देवानिदमुवाच ह ।
असुराश्च दुरात्मानस्ते चापि विबुधद्विषः ।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान्पीडयन्त्युत ॥ ३३ ॥

देवताओंके वचन सुन ब्रह्माने देवताओंसे इस प्रकार कहा– ये देवद्वेषी दुष्ट दानव सदा तुम्हें पीडा देते रहे हैं, इसलिये ये हमारे भी महान् अपराधी हैं ॥ ३३ ॥

अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः ।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इत्यहं प्रब्रवीमि वः ॥ ३४ ॥

इसमें संशय नहीं, कि मैं सब प्राणियोंको समान समझता हूं । परन्तु अधर्मीको मारना ही चाहिये, यह मैं आपसे कहता हूं ॥ ३४ ॥

ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः स तान्हन्ता सुरेतरान् ॥ ३५ ॥

हे अदिति पुत्रो ! तुम लोग जगत् स्वामी, विजयी और सहज ही महान् कर्म करनेवाले शिवजीका योद्धाके रूपमें स्वीकार करो, वे सब दानवोंका नाश करेंगे ॥ ३५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ३६ ॥

ब्रह्माके ऐसे वचन सुन ब्रह्माको आगे करके वे इन्द्र आदि सब देवता शिवकी शरणमें गये ॥ ३६ ॥

तपः परं समातस्थुर्गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम् ।
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥ ३७ ॥

महान् तप करके शाश्वत ब्रह्म शिवकी धर्मज्ञ देवता, ऋषि और मुनियोंके साहित अपने मनको स्थिर कर संपूर्ण भावसे स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥

तुष्टुवुर्वाग्भिरर्थ्याभिर्भयेष्वभयकृत्तमम् ।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥ ३८ ॥

जिनकी आत्मशक्तिसे सब जगत् व्याप्त है, जो भय निर्माण होनेपर अभय देते हैं, उन सर्वात्मा, महात्मा शिवकी अभीष्ट वाणीसे वे देवता स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥

तपोविशेषैर्बहुभिर्योगं यो वेद चात्मनः ।
यः सांख्यमात्मनो वेद यस्य चात्मा वशे सदा ॥ ३९ ॥

जो अनेक विशेष तपोंके योगसे आत्माको जानते हैं, जो सांख्य योगसे स्वयंको जानते हैं, आत्मा सदा जिनके वशमें रहता है ॥ ३९ ॥

ते तं ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् ।
अनन्यसदृशं लोके व्रतवन्तमकल्मषम् ॥ ४० ॥

जगत्‌में जो अद्वितीय हैं, उन व्रती, निष्पाप, तेजोराशि, श्रेष्ठ देव उमापति जगत्‌कर्ता शिवको देवताओंने देखा ॥ ४० ॥

एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ।
परस्परस्य चापश्यन्सर्वे परमविस्मिताः ॥ ४१ ॥

वे एक ही भगवान् शिवकी अपनी इच्छानुसार अनेक रूपोंमें कल्पना करने लगे । परमात्मामें अपने और दूसरोंके रूप देखने लगे । ऐसा देखकर परस्पर देखते हुए उन सब देवताओंको बहुत आश्चर्य हुआ ॥ ४१ ॥

सर्वभूतमयं चेशं तमजं जगतः पतिम् ।
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ॥ ४२ ॥

और सर्व भूतमय अजन्मा जगत् पतिको देखकर सब देवताओं और ब्रह्मर्षियोंने शिवको शिरसे प्रणाम किया ॥ ४२ ॥

तान्स्वस्तिवाक्येनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शंकरः ।
ब्रूत ब्रूतेति भगवान्स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥

तब शिवशंकरने कल्याणप्रद वचन कहकर, उनको आदरपूर्वक उठाकर कुशल पूछा, फिर शिवजीने हंसकर कहा, तुम लोग अपने आनेका प्रयोजन कहो ॥ ४३ ॥

त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्तेऽस्वस्थचेतसः ।
नमो नमस्तेऽस्तु विभो तत इत्यब्रुवन्भवम् ॥ ४४ ॥

तब देवताओंने भगवान् त्र्यम्बककी आज्ञा सुनकर, अस्वस्थ चित्तसे उनसे कहा, कि हे प्रभो आपको प्रणाम है, प्रणाम है ॥ ४४ ॥

नमो देवातिदेवाय धन्विने चातिमन्यवे ।
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यसे ॥ ४५ ॥

आप देवताओंके श्रेष्ठ देवता, माननीय और धनुषधारी हैं । आपको प्रणाम है । आप दक्ष प्रजापतिके यज्ञका नाश करनेवाले और प्रजापतिओंके द्वारा स्तुति करने योग्य हैं ॥ ४५ ॥

नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय मृत्यवे ।
विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ॥ ४६ ॥

आप सबके द्वारा स्तुति किये हुए, स्तुति करने योग्य और स्तुति किये जानेवाले हैं । आप मृत्युञ्जयको प्रणाम है । आप लाल वर्णवाले, रुद्र, नीलकण्ठ, शूलधारी ॥ ४६ ॥

अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ।
दुर्वारणाय शुक्राय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥ ४७ ॥

अमोघ, मृगनेत्रवाले और उत्तम शस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले हैं । हम आपको प्रणाम करते हैं । आपका निवारण करना अशक्य है, आप शुक्र, ब्रह्म, ब्रह्मचारी हैं ॥ ४७ ॥

ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे ।
तपोनित्याय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥ ४८ ॥

जगत्स्वामी, अप्रमेय, जगत्को नियमसे चलानेवाले, चर्मधारी, सदा तप करनेवाले पिंगल-वर्णी व्रतधारी और कृत्तिवासी हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४८ ॥

कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्सङ्घघातिने ॥ ४९ ॥

स्वामी कार्त्तिकेयके पिता, त्रिनेत्र, उत्तम शस्त्रधारी, शरणागत दुःखियोंका दुःख नाश करनेवाले और ब्रह्मद्रोहियोंके समूहोंका नाश करनेवाले शिवको प्रणाम करते हैं ॥ ४९ ॥

वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ५० ॥

वनस्पति, मनुष्य, गौ और सदा यज्ञोंके स्वामी शिवको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायोग्रतेजसे ।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान्भजस्व नः ॥ ५१ ॥

गणोंके सहित उग्र तेजस्वी त्र्यम्बकको नमस्कार है। हे देव! हम लोग मन, वचन और कर्मसे आपकी शरणमें आये हैं, आप हमारा स्वीकार कीजिये ॥ ५१ ॥

ततः प्रसन्नो भगवान्स्वागतेनाभिनन्द्य तान् ।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः ॥ ५२ ॥

इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और उन देवताओंको स्वागतसे संतुष्ट करके कहने लगे, कि आपका भय नष्ट होना चाहिये; कहो, हम तुम्हारा कौनसा काम करें ? ॥ ५२ ॥

पितृदेवर्षिसङ्घेभ्यो वरे दत्ते महात्मना ।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥ ५३ ॥

जब शिव देवता, ऋषि और पितरोंके समुदायको अभय वरदान दे चुके, तब ब्रह्माने शिव शंकरका सत्कार करके लोकहितकर वचन कहा ॥ ५३ ॥

×

तवातिसर्गाद्देवेश प्राजापत्यमिदं पदम् ।
मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान्वरः ॥ ५४ ॥

हे देवेश ! हम आपकी आज्ञासे इस प्रजापति पदका भोग करते हैं । इसीसे हमने दानवोंको एक महा वरदान दिया है ॥ ५४ ॥

तानतिक्रान्तमर्यादान्नान्यः संहर्तुमर्हति ।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ॥ ५५ ॥

हे जगन्नाथ ! अब उन दानवोंने उस वरके कारण सब मर्यादाओंका उल्लंघन कर दिया है । हे भूत भव्येश ! अब आपके सिवाय दूसरा उन्हें कोई नहीं मार सकता । इसलिये अब आप ही उनके वधके लिये विरुद्ध शत्रु हो जांय ॥ ५५ ॥

स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम् ।
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शूलभृत् ॥ ५६ ॥

हे शूलधारी ! हे देवनाथ ! हम सब देवता आपकी शरण आये हैं और याचना करते हैं । आप प्रसन्न होकर कृपा कीजिये और इन दैत्योंको मारिये ॥ ५६ ॥

श्रीभगवानुवाच

हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः ।
न त्वेकोऽहं वधे तेषां समर्थो वै सुरद्विषाम् ॥ ५७ ॥

भगवान् शिवजी बोले– तुम्हारे सब शत्रुओंका नाश किया जाय, ऐसी मेरी धारणा है, परंतु हम अकेले ही उन सुरविद्वेषी दैत्योंको समर्थ होनेपर भी नहीं मार सकते ॥ ५७ ॥

ते यूयं सहिताः सर्वे मदीयेनास्त्रतेजसा ।
जयध्वं युधि ताञ्शत्रून्संघातो हि महाबलः ॥ ५८ ॥

तुम सब लोग इकट्ठे होकर हमारे अस्त्र तेजसे युक्त होकर उन सब दानवोंको युद्धमें जीत लो, क्योंकि एकतासे युक्त होनेवाले ही महाबली होते हैं ॥ ५८ ॥

देवा ऊचुः

अस्मत्तेजोबलं यावत्तावद्द्विगुणमेव च ।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥ ५९ ॥

देवता बोले– हमारा जितना तेज और बल है उससे उन दैत्योंका दूना है ऐसा हम मानते हैं । हम लोगोंने उनके तेज और बलको देखा है ॥ ५९ ॥

भगवानुवाच

वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः ।
मम तेजोबलार्धेन सर्वांस्तान्घ्नत शात्रवान् ॥ ६० ॥

भगवान् शिव बोले– जिन पापियोंने आपका अपराध किया है, वे सब तरहसे मरनेके योग्य हैं। इसलिये हमारे बल और तेजके आधे भागसे युक्त होकर सब शत्रुओंको मार डालिये ॥ ६० ॥

देवा ऊचुः

बिभर्तुं तेजसोऽर्धं ते न शक्ष्यामो महेश्वर ।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥ ६१ ॥

देवता बोले– महेश्वर ! हम लोग आपके आधे तेजको सम्हाल नहीं सकते, इसलिये आप ही हम लोगोंके आधे बलसे युक्त हो शत्रुओंका नाश कीजिये ॥ ६१ ॥

दुर्योधन उवाच

ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम ।
अर्धमादाय सर्वेभ्यस्तेजसाभ्यधिकोऽभवत् ॥ ६२ ॥

दुर्योधन बोले– हे राजश्रेष्ठ ! तब देवताओंने देवेश्वर शिवके वचनोंको तथास्तु कहकर स्वीकार किया और उनके तेजका आधा भाग लेकर शिवजी बहुत तेजस्वी हो गये ॥ ६२ ॥

स तु देवो बलेनासीत्सर्वेभ्यो बलवत्तरः ।
महादेव इति ख्यातस्तदाप्रभृति शंकरः ॥ ६३ ॥

देवताओंका बल आनेसे शिव सबसे अधिक बलवान् हो गये। उसी समयसे उन भगवान् शंकरका महादेव नाम प्रख्यात हो गया ॥ ६३ ॥

ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरस्त्वहम् ।
हनिष्यामि रथेनाजौ तान्रिपून्वै दिवौकसः ॥ ६४ ॥

अनन्तर शिव बोले– हम धनुष बाण धारण करके रथमें बैठकर युद्धमें तुम्हारे सब शत्रुओंका नाश करेंगे ॥ ६४ ॥

ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च ।
पश्यध्वं यावदद्यैतान्पातयामि महीतले ॥ ६५ ॥

तुम लोग हमारे लिये रथ, धनुष और बाणोंको देखो, जिनसे हम इन राक्षसोंको पृथ्वीपर मार गिराएंगे ॥ ६५ ॥

देवा ऊचुः

मूर्तिसर्वस्वमादाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः ।
रथं ते कल्पयिष्याम देवेश्वर महौजसम् ॥ ६६ ॥

देवता बोले– हे देवेश्वर ! हम लोग तीनों लोकोंके सब मूर्तियोंके तेजको एकत्रित करके आपका महान् तेजस्वी रथ बनायेंगे ॥ ६६ ॥

तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम् ।
ततो विबुधशार्दूलास्तं रथं समकल्पयन् ॥ ६७ ॥

विश्वकर्माका बुद्धिपूर्वक बनाया हुआ वह रथ उत्तम होगा । अनन्तर सब श्रेष्ठ देवताओंने शिवका रथ बनाया ॥ ६७ ॥

बन्धुरं पृथिवीं देवीं विशालपुरमालिनीम् ।
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा । ॥ ६८ ॥

विशाल नगरोंसे शोभित, अनेक पर्वत, वन और द्वीपोंसे युक्त सब प्राणिमात्रोंकी आधार पृथ्वीदेवीको शिवका रथ बनाया ॥ ६८ ॥

मन्दरं पर्वतं चाक्षं जङ्घास्तस्य महानदीः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारं रथस्य हि ॥ ६९ ॥

मन्दराचल धुरा और महानदी गङ्गा उस रथकी पहियोंकी नाभि बनीं । दिशा और प्रदिशा रथका परिवार थीं ॥ ६९ ॥

अनुकर्षान्ग्रहान्दीप्तान्वरूथं चापि तारकाः ।
धर्मार्थकामसंयुक्तं त्रिवेणुं चापि बन्धुरम् ।
ओषधीर्विविधास्तत्र नानापुष्पफलोद्गमाः ॥ ७० ॥

चमकते हुए ग्रह अनुकर्ष बने और तारे रथकी रक्षाके लिये वरूथ अर्थात् जाल बने; त्रिवेणु समान धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंको संयुक्त करके रथकी बैठक बनाया । फूल और फलों सहित औषधियों और लताओंको घण्टा बनाया ॥ ७० ॥

सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे ।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते रात्र्यहनी शुभे ॥ ७१ ॥

अनेक प्रकारके उस उत्तम श्रेष्ठ रथके सूर्य और चन्द्रमाको दोनों पहिये, और शुभ रात और दिनको दोनों अङ्ग अर्थात् पूर्व और अपर पक्ष बनायें ॥ ७१ ॥

दश नागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखान्दृढाम् ।
द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान् ॥ ७२ ॥

धृतराष्ट्र आदि दस नागराजोंको दृढ ईषादण्डमें स्थान दिया । द्युलोकको जुआ और संवर्त्तक मेघोंको युगचर्म बनाया ॥ ७२ ॥

शम्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं संनतिमेव च ।
ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥ ७३ ॥

शमी, धृति, मेधा, स्थिति, सन्नति और ग्रह नक्षत्र तारे सहित विचित्र शोभित आकाशको छतरी बनाया ॥ ७३ ॥

सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतींल्लोकेश्वरान्हयान् ।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम् ।
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांश्चापि कण्ठकम् ॥ ७४ ॥

इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर इन चार लोकपालोंको रथके घोडे; सिनीवाली, अनुमति, कुहू और सुव्रती राकाको घोडोंकी जोत और इनके अधिकारी देवताओंको लगामके कांटे बनाये ॥ ७४ ॥

कर्म सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ।
अधिष्ठानं मनस्त्वासीत्परिरथ्यं सरस्वती ॥ ७५ ॥

कर्म, सत्य, तप और अर्थ ये वहां लगाम बनाये । मन बिछौना और सरस्वती इस रथकी लीक बनी ॥ ७५ ॥

नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ।
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयत् ॥ ७६ ॥

अनेक वर्णोंकी विचित्र पताकाएं पवन उडाने लगा । बिजली और इन्द्रधनुषके सहित वह दिव्य रथ प्रकाशित होने लगा ॥ ७६ ॥

एवं तस्मिन्महाराज कल्पिते रथसत्तमे ।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विषतामभिमर्दने ॥ ७७ ॥

हे पुरुषसिंह ! महाराज ! इस प्रकार शत्रुओंका नाश करनेवाला वह श्रेष्ठ रथ देवताओंने बनाया ॥ ७७ ॥

स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छंकरो रथे ।
रथयष्टिं वियत्कृष्टां स्थापयामास गोवृषम् ॥ ७८ ॥

उस रथपर भगवान् शंकरने अपने प्रमुख दिव्य आयुधोंको रखा और रथदण्डको आकाश व्यापी करके उसपर नन्दी बैलको बिठा दिया ॥ ७८ ॥

ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः ।
परिस्कन्दा रथस्यास्य सर्वतोदिशमुद्यताः ॥ ७९ ॥

ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर उस रथके चारों ओरसे सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए रथकी रक्षा करनेके लिये तैयार हो गये ॥ ७९ ॥

अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥ ८० ॥
अथर्वा और अङ्गिरा मुनि उस रथके पहियोंके रक्षक बने। ऋग्वेद, सामवेद और पुराण आगे चलने लगे ॥ ८० ॥

इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः ।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः कृताः ॥ ८१ ॥
इतिहास और यजुर्वेद पीछेसे रथकी रक्षा करने लगे, दिव्य वाणी और सब विद्या पार्श्वचर हो गयीं ॥ ८१ ॥

तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च ।
ओँकारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ॥ ८२ ॥
हे राजेन्द्र ! अंकुश, कवच आदि वषट्कार और ओंकार शिवके मुखमें स्थित होकर शोभित हो गये ॥ ८२ ॥

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः ।
तस्मान्नृणां कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥ ८३ ॥
शिवने छओं ऋतुओंके सहित संवत्सरको विचित्र धनुष बनाया। मनुष्योंकी कालरात्रि उनकी रोदा है, इसीलिये उसीको उन्होंने धनुषकी अविनाशी प्रत्यञ्चा बनायी ॥ ८३ ॥

इषुश्चाप्यभवद्विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च ।
अग्नीषोमौ जगत्कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ८४ ॥
विष्णु, अग्नि और चन्द्रमा ये तीनों बाण बने। अग्नि और चन्द्रमा सब जगत्के तेज हैं और सब विश्व विष्णुमय ही कहते है ॥ ८४ ॥

विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ८५ ॥
और वे ही विष्णु अनन्त तेजस्वी शिवकी आत्मा हैं; इसीलिये कालरात्रिरूप शिवकी धनुष-की रोदेका और बाणका स्पर्श असुरोंसे नहीं सहा गया ॥ ८५ ॥

तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युर्मुमोचाविषहं प्रभुः ।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ८६ ॥
तब शीघ्रकोपी शिवने उस बाणोंमें अपने असह्य क्रोधको और भृगु और अङ्गिराके रोषसे उत्पन्न हुई घोर क्रोधाग्निको रखा ॥ ८६ ॥

स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासा भयङ्करः ।
आदित्यायुतसंकाशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ८७ ॥
धूम्रवर्णवाले, चर्मधारी, भयंकर, सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी नीललोहित शंकर तेजोमयी ज्वालासे आवृत होकर प्रकाशने लगे ॥ ८७ ॥

दुश्च्यावश्च्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः ।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रिताञ्जनान् ॥ ८८ ॥
जिसको मार गिराना कठिन है उसको भी गिरानेमें समर्थ, विजयी, ब्रह्मद्वेषियोंके नाश करनेवाले, नित्य धर्मयुक्तोंके रक्षक और अधर्मियोंके विनाशक शिव हैं ॥ ८८ ॥

प्रमाथिभिर्घोररूपैर्भीमोदग्रैर्गणैर्वृतः ।
विभाति भगवान्स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥ ८९ ॥
शत्रुओंको नष्ट करनेमें समर्थ, घोर रूपधारी, बलवान्, भयप्रद गणोंसे घिरे हुए भगवान् शंकर, उनसे और स्वयंके गुणोंसे युक्त होकर आप ही बहुत शोभित हो रहे थे ॥ ८९ ॥

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् ।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ९० ॥
उसी शिवके अंगोंका आश्रय लेकर यह सब जगत् स्थित है । हे राजन् ! अद्भुत दिखाई देनेवाला यह सब चर और अचर जगत् उसीसे शोभित होता है ॥ ९० ॥

दृष्ट्वा तु तं रथं दिव्यं कवची स शरासनी ।
बाणमादत्त तं दिव्यं सोमविष्णवग्निसम्भवम् ॥ ९१ ॥
उस दिव्य रथको देखकर शिवने कवच पहना और धनुष लेकर उसपर चन्द्रमा, विष्णु और अग्निसे प्रकट हुआ वही दिव्य बाण चढाया ॥ ९१ ॥

तस्य वाजांस्ततो देवाः कल्पयांचक्रिरे विभोः ।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं राजसत्तम ॥ ९२ ॥
हे राजश्रेष्ठ ! फिर देवताओंने पवित्र सुगन्ध वहन करनेवाले वायुको उस परमात्मा शिवके रथके घोडे बनाया ॥ ९२ ॥

तमास्थाय महादेवस्त्रासयन्दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव रोदसी ॥ ९३ ॥
अनन्तर शिव महादेव देवताओंको भी डराते और द्यावा पृथ्वीको कंपाते हुए दानवोंके वधके लिये प्रयत्न शील हो उस रथपर बैठे ॥ ९३ ॥

स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद्देवो सारथिः को भविष्यति ॥ ९४ ॥

प्रसन्न, वरदान देनेवाले खड्ग, धनुष और कवचधारी शिवजीने हंसकर देवताओंसे कहा कि सारथि कौन बनेगा ? ॥ ९४ ॥

तमब्रुवन्देवगणा यं भवान्संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ९५ ॥

देवता उनसे बोले– हे देवेश ! आप जिसको अपना सारथि बनाना चाहें, वही आपका सारथि होगा, इसमें संशय नहीं ॥ ९५ ॥

तानब्रवीत्पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं संचिन्त्य माचिरम् ॥ ९६ ॥

तब शिवने फिर कहा, तुम लोग आप ही विचार कर हमसे जो श्रेष्ठ देव होगा, उसे मेरा सारथि बनाओ, देरी न करो ॥ ९६ ॥

एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवं प्रसाद्यैवं वचोऽब्रुवन् ॥ ९७ ॥

महात्मा शिवके कहे हुए इस वचनको सुन, सब देवता ब्रह्माके पास गये, और उन्हें प्रसन्न कर ऐसे बोले ॥ ९७ ॥

देव त्वयेदं कथितं त्रिदशारिनिबर्हणम् ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो वृषभध्वजः ॥ ९८ ॥

हे देव ! देव शत्रुओंके वधके लिये आपने यह कहा था, हम लोगोंने वैसा ही किया है; इसलिये शिव हमसे प्रसन्न हैं ॥ ९८ ॥

रथश्च विहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं तु न जानीमः कः स्यात्तस्मिन्रथोत्तमे ॥ ९९ ॥

हम लोगोंने अनेक विचित्र आयुधोंके सहित एक रथ बना लिया है, परन्तु उस उत्तम रथपर कौन सारथि होगा ? सो हम नहीं जानते ॥ ९९ ॥

तस्माद्विधीयतां कश्चित्सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्तुमर्हसि नो विभो ॥ १०० ॥

हे देवश्रेष्ठ प्रभो ! अब आप किसीको सारथि बनाइये और अपने वचनको सत्य कीजिये ॥ १०० ॥

एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितं कर्तास्मि भवतामिति तत्कर्तुमर्हसि ॥ १०१ ॥

भगवन् ! आपने पहले हम लोगोंसे कहा था, कि हम तुम लोगोंका कल्याण करेंगे, अब उस वचनको सत्य कीजिये ॥ १०१ ॥

स देव युक्तो रथसत्तमो नो दुरावरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा विभीषयन्दानवानुद्यतोऽसौ ॥ १०२ ॥

हे देव ! वह शत्रुओंको भगानेवाला दुर्धर्ष उत्तम रथ हम लोगोंने बना लिया है । पिनाकपाणि शिवको उसपर योद्धा बनाकर बिठाया है और वे दानवोंको डराते हुए युद्ध करनेके लिये तयार हैं ॥ १०२ ॥

तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या धरा सशैला च रथो महात्मन् ।
नक्षत्रवंशोऽनुगतो वरूथे यस्मिन्योद्धा सारथिनाभिरक्ष्यः ॥ १०३ ॥

हे महात्मन् ! इसी प्रकार चारों वेद उत्तम घोडे बने हैं । वन और पर्वतोंके सहित पृथ्वी रथ और नक्षत्र समुदाय कवच आदि सब रथ सामग्री बनाए हैं । अब केवल सारथि हीका विलम्ब है ॥ १०३ ॥

तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ।
कवचानि च शस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ॥ १०४ ॥

हे देव ! जो हम सबसे श्रेष्ठ हो उसे सारथि बनाइये । कारण रथ, घोडे और योद्धा ये सब सारथिपर ही अवलंबित रहते हैं । पितामह कवच, शस्त्र और धनुषकी सफलता सारथिपर ही होती हैं ॥ १०४ ॥

त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ।
त्वं हि सर्वैर्गुणैर्युक्तो देवताभ्योऽधिकः प्रभो ।
सारथ्ये तूर्णमारोह संयच्छ परमान्हयान् ॥ १०५ ॥

अब हम आपके सिवाय दूसरे किसीको वहां सारथि होने योग्य नहीं देखते हैं । प्रभो ! आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ और सर्व गुणसंपन्न हैं । जगत्के स्वामी हैं, इसलिये आपही शीघ्रही शिवके सारथ्य स्वीकार कर इन उत्तम घोडोंको हांकिये ! ॥ १०५ ॥

इति ते शिरसा नत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् ।
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम् ॥ १०६ ॥

देवताओंने तीन लोकोंके स्वामी पितामह ब्रह्माके सामने नतमस्तक होकर उनको सारथि बननेको प्रसन्न किया ऐसा हमने सुना है ॥ १०६ ॥

×

ब्रह्मोवाच

नात्र किंचिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं वो दिवौकसः।
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः ॥ १०७ ॥

ब्रह्मा बोले– हे देवताओ ! जो कुछ तुमने कहा है, उसमें कुछ भी असत्य नहीं हैं। अब हम युद्ध करते हुए भगवान् शिवके घोडोंको हांकेंगे ॥ १०७ ॥

ततः स भगवान्देवो लोकस्रष्टा पितामहः।
सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः ॥ १०८ ॥

तब सब जगत्के कर्त्ता, भगवान् ब्रह्मा, पितामहको देवताओंने भगवान् शिवके सारथि बनाया ॥ १०८ ॥

तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दनं लोकपूजिते।
शिरोभिरगमंस्तूर्णं ते हया वातरंहसः ॥ १०९ ॥

जब लोकपूजित ब्रह्मा उस रथपर चढने लगे, तब वायुके समान वेगवान् घोडे शीघ्र ही भूमिपर माथा टेककर नत हुए ॥ १०९ ॥

महेश्वरे त्वारुहति जानुभ्यामगमन्महीम् ॥ ११० ॥

जब महेश्वर शिव रथपर चढने लगे तब घोडे घुटने टेककर भूमिपर नत हुए ॥ ११० ॥

अभीशून्हि त्रिलोकेशः संगृह्य प्रपितामहः।
तानश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ॥ १११ ॥

तीनों लोकोंके स्वामी प्रपितामह ब्रह्माने घोडोंकी वागडोर हाथमें ले ली और उन मन और वायुके समान वेगवाले घोडोंको चलाया ॥ १११ ॥

ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान्प्रति।
साधु साध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ११२ ॥

जब रथपर आरूढ होकर वरदान देनेवाले भगवान् शिव दानवोंको मारने चले, तब वे विश्वेश साधु साधु कहकर हंसकर बोलने लगे ॥ ११२ ॥

याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान्रणे ॥ ११३ ॥

हे देव ! जहां दैत्य हैं वहां तुम सावधान होकर चलिये और घोडोंको हांको। आज युद्धमें शत्रुओंको मारते हुए हमारे बाहुबलको देखो ॥ ११३ ॥

ततस्तांश्चोदयामास वायुवेगसमाञ्जवे।
येन तत्त्रिपुरं राजन्दैत्यदानवरक्षितम् ॥ ११४ ॥

तब ब्रह्माने वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोडे आकाशको उडते हुएके समान शीघ्र चलाए और राजन् ! दैत्य और दानवोंसे रक्षित तीनों नगरको चले ॥ ११४ ॥

अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम् ।
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ॥ ११५ ॥

तब रुद्र शिवने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाकर उस बाणको रखा और उसे पाशुपत शस्त्रसे युक्त करके तीनों पुरोंके एकत्र होनेका चिन्तन किया ॥ ११५ ॥

तस्मिन्स्थिते तदा राजन्क्रुद्धे विधृतकार्मुके ।
पुराणि तानि कालेन जग्मुरेकत्वतां तदा ॥ ११६ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार जब क्रुद्ध शिवने धनुष चढाया और खडे हो गये, तब वे तीनों नगर कालकी प्रेरणासे इकठ्ठे हो गये ॥ ११६ ॥

एकीभावं गते चैव त्रिपुरे समुपागते ।
बभूव तुमुलो हर्षो दैवतानां महात्मनाम् ॥ ११७ ॥

जब तीनों नगर पास आकर एक ही हो गये तब सब महात्मा देवताओंको बहुत आनन्द हुआ ॥ ११७ ॥

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ।
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो मुदान्विताः ॥ ११८ ॥

उस समय सब देवता, सिद्ध और महाऋषि बहुत प्रसन्न हुए और आन्दित होकर स्तुति करते हुए जय जय कहने लगे ॥ ११८ ॥

ततोऽग्रतः प्रादुरभूत्त्रिपुरं जघ्नुषोऽसुरान् ।
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ॥ ११९ ॥

तब असुरोंके मारनेवाले, अवर्णनीय घोर रूपधारी, असह्य तेजवाले शिवजीके सामने वे त्रिपुर आये ॥ ११९ ॥

स तद्विकृष्य भगवान्दिव्यं लोकेश्वरो धनुः ।
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।
तत्सासुरगणं दग्ध्वा प्राक्षिपत्पश्चिमार्णवे ॥ १२० ॥

अनन्तर लोकेश्वर भगवान् शिवने अपने उस दिव्य धनुषको खींचा और शिवने त्रिपुरकी ओर धनुषपर रक्खा हुआ वह तीनों लोकोंके सारभूत श्रेष्ठ बाण चलाया। भगवान् शिवने उस तीनों नगरोंके दैत्योंको भस्म करके पश्चिमके समुद्रमें डाल दिया ॥ १२० ॥

एवं तत्त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥ १२१ ॥

इस प्रकार तीन लोकके कल्याण इच्छिनेवाले शिवने क्रुद्ध होकर तीनों नगरों और उसके निवासी सब दानवोंको दग्ध कर दिया ॥ १२१ ॥

स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ॥ १२२ ॥

फिर अपने क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निको भगवान् त्रिनेत्रने हा हा कहके रोका और उससे कहा तुम तीनों लोकोंको भस्म मत करो ॥ १२२ ॥

ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्तथर्षयः ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरर्थ्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥ १२३ ॥

अनन्तर सब देवता, ऋषि और तीनों लोकोंके प्राणी सावधान होकर महातेजस्वी शिवकी उत्तम वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ १२३ ॥

तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रसन्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः ॥ १२४ ॥

अनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञा लेकर कृतकार्य प्रजापति ब्रह्मादिक देवता जैसे आये थे वैसे अपने अपने घर चले गये ॥ १२४ ॥

यथैव भगवान्ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
संयच्छ त्वं हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥ १२५ ॥

जिस प्रकार तीनों लोकोंको धारण करनेवाले पितामह भगवान् ब्रह्माने शिवका सारथ्य किया था, इसी प्रकार आप भी इस महात्मा राधापुत्र कर्णके घोडे हांकिये ॥ १२५ ॥

त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फल्गुनाच्च विशेषतः ।
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा ॥ १२६ ॥

हे राजश्रेष्ठ शल्य ! इसमें संशय नहीं है, कि तुम श्रीकृष्ण, कर्ण और अर्जुनसे भी अधिक श्रेष्ठ हैं ॥ १२६ ॥

युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमोऽनघ ।
तस्माच्छक्तौ युवां जेतुं मच्छत्रूंस्ताविवासुरान् ॥ १२७ ॥

अनघ ! यह कर्ण युद्धमें रुद्रके समान पराक्रमी है, और तुम ब्रह्माके समान हैं, इसलिये तुम दोनों असुरोंके समान मेरे शत्रुको जीतनेमें समर्थ हैं ॥ १२७ ॥

यथा शल्याद्य कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्
प्रमथ्य हन्यात्कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम् ।
त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः ॥ १२८ ॥

हे शल्य ! अब तुम शीघ्र ऐसा विधान करो, कि जिससे यह कर्ण श्रीकृष्ण सारथिके सहित श्वेत अश्ववाहन अर्जुनको मथकर मार सकेंगे । तुम्हारे ऊपर ही कर्ण, हमारा राज्य और हम स्थिर है ॥ १२८ ॥

इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे ।
पितुर्मम सकाशे यं ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥ १२९ ॥

अब हम आपसे एक दूसरा इतिहास कहते हैं, उसे सुनिये; यह हमारे पितासे एक धर्मज्ञ ब्राह्मणने कहा था ॥ १२९ ॥

श्रुत्वा चैतद्वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम् ।
कुरु शल्य विनिश्चित्य मा भूदत्र विचारणा ॥ १३० ॥

शल्य ! इस प्रयोजन भरे विचित्र इतिहासको सुनकर आप अच्छी तरहसे विचार करके मेरा कार्य करें, आप अभी दूसरा कोई विचार नहीं करना चाहिये ॥ १३० ॥

भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महातपाः ।
तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥ १३१ ॥

भार्गवके कुलमें महा तपस्वी जमदग्नि नामक एक मुनि हुए, उनके तेजस्वी और गुणवान् परशुराम नामक पुत्र जगत्प्रसिद्ध हैं ॥ १३१ ॥

स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान्भवम् ।
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥ १३२ ॥

परशुरामने अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके अस्त्रोंके प्राप्तिके लिये प्रसन्न चित्तसे उग्र तपसे भगवान् शिवको प्रसन्न किया ॥ १३२ ॥

तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च ।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥ १३३ ॥

उनकी भक्ति और नियमसे प्रसन्न होकर तथा अतःकरणका अभिप्राय जानकर शिव शंकर प्रगट हुए ॥ १३३ ॥

ईश्वर उवाच

राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम् ।
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ॥ १३४ ॥

शिवजी बोले– हे परशुराम ! हम तुमपर संतुष्ट हैं, तुम्हारा कल्याण हो ! हम तुम्हारा अभिप्राय जानकर प्रगट हुए, अब तुम अपनी आत्माको पवित्र करो, तुम्हारा प्रयोजन भी सिद्ध होगा ॥ १३४ ॥

दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि ।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥ १३५ ॥

हे भार्गव ! जब तुम पवित्र हो जाओगे, तब हम तुम्हें अस्त्र देंगे, क्योंकि अयोग्य और सामर्थ्यहीन मनुष्योंको अस्त्र भस्म कर देते हैं ॥ १३५ ॥

इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥ १३६ ॥

शूलधारी देवताओंके देवता महात्मा शिवके ऐसे वचन सुन, जमदग्निपुत्र परशुराम परमात्मा भगवान् शिवको शिर झुकाकर प्रणाम करके बोले ॥ १३६ ॥

यदा जानासि देवेश पात्रं मामस्त्रधारणे।
तदा शुश्रूषतेऽस्त्राणि भवान्मे दातुमर्हति ॥ १३७ ॥

हे देवेश ! जब आप मुझे अस्त्रग्रहण करनेके लिये योग्य समझें तब मुझ सेवकको अस्त्र दीजिये ॥ १३७ ॥

दुर्योधन उवाच

ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥ १३८ ॥

दुर्योधन बोले– तब परशुराम तप, दम, नियम, पूजा, उपहार, होम, मन्त्र और बलिदान आदि साधनोंसे ॥ १३८ ॥

आराधयितवाञ्छर्वं बहून्वर्षगणांस्तदा।
प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥ १३९ ॥

बहुत वर्षोंतक भगवान् शिवकी आराधना करने लगे। इस तपस्या करनेसे महादेव शिव महात्मा परशुरामपर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १३९ ॥

अब्रवीत्तस्य बहुशो गुणान्देव्याः समीपतः।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥ १४० ॥

तब शिवने पार्वती देवीसे इनके गुणोंकी बहुत प्रशंसा करके कहा कि, परशुराम दृढव्रती हैं और मेरे प्रति पूरा भक्तिभाव रखते हैं ॥ १४० ॥

एवं तस्य गुणान्प्रीतो बहुशोऽकथयत्प्रभुः।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदनः ॥ १४१ ॥

इसी प्रकार देवता और पितरोंके आगे भी शत्रुनाशन भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उनके गुण वर्णन किये ॥ १४१ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या आसन्महाबलाः।
तैस्तदा दर्पमोहान्धैरबाध्यन्त दिवौकसः ॥ १४२ ॥

उसी समय दानवोंका बहुत बल बढ गया था, उन्होंने अपने दर्प और मोह आदिसे सब देवताओंको सताया था ॥ १४२ ॥

ततः सम्भूय विबुधास्तान्हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव ते ॥ १४३ ॥

तब सब देवताओंने मिलकर उन्हें मारनेका निश्चय करके शत्रुओंके वधके लिये यत्न किये, परन्तु वे उन्हें जीत नहीं सके ॥ १४३ ॥

अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमथाब्रुवन् ।
प्रसाद्यन्तस्तं भक्त्या जहि शत्रुगणानिति ॥ १४४ ॥

तब सब देवता महेश्वर शिवके पास गये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रसन्न करके कहने लगे, कि हे देव ! आप हमारे शत्रुओंका नाश कीजिये ॥ १४४ ॥

प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शंकरः ॥ १४५ ॥

तब शिवशंकरने प्रतिज्ञा की, कि हम तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे । अनन्तर भृगुपुत्र परशुरामको बुलाकर कहा ॥ १४५ ॥

रिपून्भार्गव देवानां जहि सर्वान्समागतान् ।
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ॥ १४६ ॥

हे भार्गव ! तुम तीनों लोकोंके कल्याणकी इच्छासे और मेरी प्रसन्नताके लिये देवताओंके सब समस्त शत्रुओंको मारो ॥ १४६ ॥

राम उवाच

अकृतास्त्रस्य देवेश का शक्तिर्मे महेश्वर ।
निहन्तुं दानवान्सर्वान्कृतास्त्रान्युद्धदुर्मदान् ॥ १४७ ॥

परशुराम बोले– हे देवराज ! महेश्वर ! विना अस्त्रविद्या जाने हमारी क्या शक्ति है, जो हम अस्त्रविद्याके ज्ञाता और युद्धदुर्मद सब दानवोंका वध कर सकेंगे ? ॥ १४७ ॥

ईश्वर उवाच

गच्छ त्वं मदनुध्यानान्निहनिष्यसि दानवान् ।
विजित्य च रिपून्सर्वान्गुणान्प्राप्स्यसि पुष्कलान् ॥ १४८ ॥

शिवजी बोले– हे परशुराम ! तुम हमारा ध्यान करके युद्ध करने जाओ, तुम सब दानवोंका नाश कर सकेंगे; सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके तुम्हें बहुत गुण प्राप्त होंगे ॥ १४८ ॥

दुर्योधन उवाच

एतच्छ्रुत्वा च वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ।
रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान्प्रति ॥ १४९ ॥

दुर्योधन बोला– शिवके ऐसे वचन सुन परशुरामने उनको सब प्रकारसे स्वीकार किया । अनन्तर स्वस्तिवाचन आदि कर्म करके परशुराम दानवोंसे युद्ध करनेको चले ॥ १४९ ॥

अवधीद्देवशत्रूंस्तान्मददर्पबलान्वितान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः । ॥ १५० ॥

और मद, अभिमान और बलसम्पन्न उन देवशत्रुओंका वज्र और विद्युत्के समान स्पर्शवाले प्रहारोंसे भार्गववंशी रामने वध किया ॥ १५० ॥

स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ।
संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ॥ १५१ ॥

उन दानवोंने द्विजश्रेष्ठ जमदग्निपुत्र परशुरामके शरीरको भी बहुत घायल कर दिया । परंतु शिवके स्पर्शमात्रसे ही उनके सब घाव अच्छे हो गये ॥ १५१ ॥

प्रीतश्च भगवान्देवः कर्मणा तेन तस्य वै ।
वरान्प्रादाद्ब्रह्मविदे भार्गवाय महात्मने ॥ १५२ ॥

भृगुकुलोत्पन्न परशुरामके उस कर्मसे भगवान् शिव प्रसन्न हुए और ब्रह्मविद् महात्माको अनेक प्रकारके वरदान दिये ॥ १५२ ॥

उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ।
निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याभवद्रुजा ॥ १५३ ॥

फिर देवेश शूलधारी शिवने प्रसन्न होकर कहा, कि दानवोंके शस्त्र लगनेसे जो तुम्हारे शरीरमें घाव हुए थे, ॥ १५३ ॥

तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ।
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशाद्यथेप्सितम् ॥ १५४ ॥

हे भृगुनन्दन ! उनको देखनेसे निश्चय हुआ कि तुमने अमानुष कर्म किया है । अब तुम अपनी इच्छानुसार हमसे दिव्य अस्त्र ग्रहण करो ॥ १५४ ॥

ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ।
लब्ध्वा बहुविधान्रामः प्रणम्य शिरसा शिवम् ॥ १५५ ॥

तब भगवान् शिवसे परशुरामने सब अस्त्र और इच्छानुसार अनेक प्रकारके वर प्राप्त कर लिये । फिर शिवको शिरसे प्रणाम किया ॥ १५५ ॥

अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः ।
एवमेतत्पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः ॥ १५६ ॥

और महातपस्वी परशुराम देवेश शिवकी आज्ञा ले, अपने घरको चले गये । इस प्रकार इस पुरातन दिव्य कथाको उस समय एक मुनिने हमारे पितासे कहा था ॥ १५६ ॥

भार्गवोऽप्यददात्सर्वं धनुर्वेदं महात्मने।
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ १५७ ॥

हे पुरुषसिंह ! भृगुनन्दन परशुरामने भी वही सब दिव्य धनुर्वेद प्रसन्न हृदयसे महात्मा कर्णको दिया है ॥ १५७ ॥

वृजिनं हि भवेत्किंचिद्यदि कर्णस्य पार्थिव।
नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद्भृगुनन्दनः ॥ १५८ ॥

नृप ! यदि कर्णमें कोई पाप अथवा दोष होता तो भृगुनन्दन परशुराम इसे दिव्य अस्त्र नहीं देते ॥ १५८ ॥

नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथञ्चन।
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम् ॥ १५९ ॥

इससे किसी तरह भी हम कर्ण सूतकुलमें उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं मानते। हम इसे क्षत्रियकुलमें जन्म लिये देवपुत्र मानते हैं ॥ ५९ ॥

सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम्।
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ॥ १६० ॥

महाबाहु, महारथी और सूर्यके समान तेजस्वी, कवच और कुण्डलभूषित कर्णको सूत जातिकी स्त्री कैसे उत्पन्न कर सकती है? कोई हरिणी बाघको जन्म दे सकेगी? ॥ १६० ॥

पश्य ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ।
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ १६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ १४०८ ॥

मतवाले हाथीके सूंडके समान कर्णके हाथ पुष्ट हैं, और देखो, सब शत्रुओंका नाश करनेवाले कर्णकी छाती कितनी विशाल है ॥ १६१ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ ॥ १४०८ ॥

ः २५ ः

दुर्योधन उवाच

एवं स भगवान्देवः सर्वलोकपितामहः।
सारथ्यमकरोत्तत्र यत्र रुद्रोऽभवद्रथी ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले– इस प्रकार भगवान् सर्वलोक पितामह ब्रह्माने वहां शिवके सारथ्यका कार्य किया और भगवान् रुद्र रथी हुए ॥ १ ॥

रथिनाभ्यधिको वीरः कर्तव्यो रथसारथिः ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान्युधि ॥ २ ॥

वीर ! रथीने अपनेसे भी बढकर वीरको रथका सारथि बनाना चाहिये, और शिवने अधिक गुणवाले ब्रह्माको अपना सारथि बनाया था । हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप युद्धमें इसलिये कर्णके घोडोंको चलाइये ॥ २ ॥

संजय उवाच

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत् ।
दुर्योधनममित्रघ्नः प्रीतो मद्राधिपस्तदा ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– तब शत्रुनाशन मद्रराज शल्य बहुत प्रसन्न होकर और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको आलिंगन देकर बोले ॥ ३ ॥

एवं चेन्मन्यसे राजन्गान्धारे प्रियदर्शन ।
तस्मात्ते यत्प्रियं किञ्चित्तत्सर्वं करवाण्यहम् ॥ ४ ॥

राजन् ! हे गान्धारी पुत्र ! प्रिय दर्शन ! यदि ऐसा मानते हो, तो आपका जो कुछ इष्ट कार्य है, वह हम सब कुछ करेंगे ॥ ४ ॥

यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्माणि कर्हिचित् ।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यधुरं तव ॥ ५ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! हम जहां जिस कामको योग्यतासे कर सकते हैं, वहां तुमसे नियुक्त कर दिये जानेपर प्रसन्न चित्तसे हम उस कार्यको पूर्णतासे करेंगे ॥ ५ ॥

यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रियम् ।
मम तत्क्षमतां सर्वं भवान्कर्णश्च सर्वशः ॥ ६ ॥

परंतु युद्धमें जो हम कर्णके हितकी इच्छासे कठोर या कोमल वचन कहें, वह सब तुम और कर्ण सर्वथा क्षमा करना ॥ ६ ॥

कर्ण उवाच

ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः ।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भजस्व नः ॥ ७ ॥

कर्ण बोले– हे मद्रराज ! जैसे शिवके ब्रह्मा और कुन्तीपुत्र अर्जुनके श्रीकृष्ण सदा हितमें तत्पर रहते हैं, वैसे ही तुम नित्य हमारे हितकर्ता बनो ॥ ७ ॥

शल्य उवाच

आत्मनिन्दात्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ८ ॥

शल्य बोले– अपनी निन्दा, अपनी प्रशंसा, दूसरोंकी निन्दा अथवा दूसरोंकी स्तुति ये चार प्रकारके व्यवहार आर्योंने किये नहीं ॥ ८ ॥

यत्तु विद्वन्प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव।
आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥ ९ ॥

तथापि हे विद्वन्! तुम्हारे विश्वासके लिये हम जो कुछ कहते हैं, यद्यपि उसमें हमारी प्रशंसा है, तो भी तुम यथावत् सुनो ॥ ९ ॥

अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत्प्रभो।
अप्रमादप्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सितैः ॥ १० ॥

प्रभो! मैं इन्द्रके सारथि मातलिके समान घोडोंका सावधानता पूर्वक चलाना, संचालन करना, ज्ञान, बिद्या और उस रोगोंकी चिकित्सा आदिको जानता हूं ॥ १० ॥

ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ।
वाहयिष्यामि तुरगान्विज्वरो भव सूतज ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ १४१९ ॥

हे पापरहित सूतपुत्र! जब समरमें तुम अर्जुनसे युद्ध करोगे, तब मैं तुम्हारे घोडोंको हाकूंगा, तुम निश्चिन्त रहो ॥ ११ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ १४१९ ॥

: २६ :

दुर्योधन उवाच

अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेन्द्रस्येव मातलिः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले– हे कर्ण! देवराज इन्द्रके सारथि मातलिके समान हैं, ये मद्रराज शल्य तुम्हारा सारथ्य करेंगे; ये श्रीकृष्णसे बहुत अधिक गुणवान् हैं ॥ १ ॥

यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः।
शल्यस्तव तथाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम् ॥ २ ॥

जैसे मातलि इन्द्रके घोडोंसे युक्त रथकी बागडोर संभालते हैं वैसे ही ये शल्य भी तुम्हारे रथके घोडोंका नियंत्रण करेंगे ॥ २ ॥

योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थो नाभिभविष्यति ॥ ३ ॥

तुम जब योद्धा बनकर रथपर स्थित होंगे और मद्रराज शल्य सारथि होंगे, तब वह श्रेष्ठ रथ युद्धमें अर्जुनको पराजित करेगा ॥ ३ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं नरर्षभम् ।
उवाच राजन्संग्रामे संयच्छन्तं हयोत्तमान् ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने वेगशाली मद्रराज शल्यको कहा– युद्धमें इन उत्तम घोडोंको आप वशमें रखिये ॥ ४ ॥

त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनञ्जयम् ।
इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत ॥ ५ ॥

आपसे रक्षित होकर राधापुत्र कर्ण युद्धमें अर्जुनको जीतेंगे। भारत ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर शल्यने रथका स्पर्श करके तथास्तु कहा ॥ ५ ॥

शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनोऽब्रवीत् ।
स्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत्त्वरन् ॥ ६ ॥

जब शल्यने सारथ्य संभालना स्वीकार कर लिया तब कर्णने प्रसन्न होकर बार बार शीघ्रतासे अपने सारथि शल्यसे कहा । हे सारथे ! तुम हमारे रथको शीघ्र ठीक करो ॥ ६ ॥

ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम् ।
विधिवत्कल्पितं भर्त्रे जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत् ॥ ७ ॥

तब शल्यने गन्धर्व नगरके समान विशाल विजयी श्रेष्ठ रथको विधिपूर्वक ठीक करके, स्वामी कर्णसे कहा– आपकी जय हो, रथ तैयार है ॥ ७ ॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्चर्य यथाविधि ।
संपादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा ॥ ८ ॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ महारथि कर्णने ब्रह्मज्ञानी पुरोहितसे पहिलेसे ही यथाविधि मंगल कार्य करके जिसे पूर्ण किया था, उस रथकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ८ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम् ।
समीपस्थं मद्रराजं समारोपयदग्रतः ॥ ९ ॥

और प्रदक्षिणा की । फिर सूर्यको प्रणाम करके, पास खडे हुए मद्रराज शल्यको रथके अग्रभागमें किया ॥ ९ ॥

ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् ।
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम् ॥ १० ॥

महातेजस्वी शल्य इस प्रकार कर्णके दुर्धर्ष, महान् और श्रेष्ठ रथपर चढे, जैसे सिंह पर्वतके शिखरपर चढता है ॥ १० ॥

ततः शल्यास्थितं राजन्कर्णः स्वरथमुत्तमम् ।
अध्यतिष्ठद्यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः ॥ ११ ॥

राजन् ! कर्ण शल्यको अपने उत्तम रथपर बैठा देख, स्वयं भी उस रथपर आरूढ हुआ, मानो बिजलीके सहित मेघके ऊपर स्थित सूर्य ॥ ११ ॥

तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ ।
व्यभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि ॥ १२ ॥

एक ही रथपर बैठे हुए अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी कर्ण और शल्य शोभित हुए, जैसे एकसाथ मेघपर बैठे हुए आकाशमें सूर्य और अग्नि प्रकाशित हो रहे हैं ॥ १२ ॥

संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तरौ ।
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी हूयमानाविवाध्वरे ॥ १३ ॥

तब उन दोनों अत्यंत तेजस्वी वीरोंकी स्तुति होने लगी, जैसे यज्ञमें ऋषियों और सदस्योंसे इन्द्र और अग्निका स्तवन किया जाता है ॥ १३ ॥

स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितोऽभवत् ।
धनुर्विस्फारयन्घोरं परिवेषीव भास्करः ॥ १४ ॥

शल्यने कर्णके घोडोंकी रास पकडी । कर्ण उस रथपर बैठ गया । उस समय अपने घोर धनुषको फैलाये हुए कर्ण परिवेषसे युक्त सूर्यके समान शोभित हुए ॥ १४ ॥

आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान् ।
प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ इवांशुमान् ॥ १५ ॥

पुरुषव्याघ्र कर्ण अपनी बाणमयी किरणोंसे युक्त हो श्रेष्ठ रथमें बैठकर मन्दराचलपर उदय होते हुए सूर्यके समान शोभित होने लगे ॥ १५ ॥

तं रथस्थं महावीरं यान्तं चामिततेजसम् ।
दुर्योधनः स्म राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥

रथपर बैठकर जाते हुए अमित तेजस्वी महावीर राधापुत्र कर्णसे दुर्योधन इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥

अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे ।
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ १७ ॥

हे वीर कर्ण ! युद्धमें जो भीष्म और द्रोणाचार्यने भी नहीं किया, सो दुष्कर कर्म तुम धनुषधारियोंके सन्मुख आज करो ॥ १७ ॥

मनोगतं मम ह्यासीद्भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम् ॥ १८ ॥

हम जानते थे, कि भीष्म और द्रोणाचार्य महारथी हैं, यह भी मुझको विश्वास था कि, ये दोनों अर्जुन और भीमसेनको निश्चयसे मारेंगे ॥ १८ ॥

ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ।
तत्कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ॥ १९ ॥

हे वीर ! उन दोनोंने जो कर्म नहीं किया, तुम इस घोर युद्धमें उस वीरोचित कर्मको करो। हे राधापुत्र ! तुम वज्रधारी दूसरे इन्द्रके समान उसको पूर्ण करो ॥ १९ ॥

गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनञ्जयम् ।
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ॥ २० ॥

हे राधेय ! तुम धर्मराज युधिष्ठिरको पकड लो, अथवा अर्जुन, भीमसेन और माद्रीपुत्र नकुल, सहदेवको मार डालो ॥ २० ॥

जयश्च तेऽस्तु भद्रं च प्रयाहि पुरुषर्षभ ।
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् ॥ २१ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारी जय हो ! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे । जाओ और तुम युद्ध करो । पाण्डुपुत्रकी सब सेनाओंको भस्म करो ॥ २१ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
वाद्यमानान्यरोचन्त मेघशब्दो यथा दिवि ॥ २२ ॥

उसी समय जैसे आकाशमें मेघ गरजते हैं, वैसे ही सेनामें सहस्रों तूर्य और कई सहस्र भेरियां बजने लगीं ॥ २२ ॥

प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ।
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ॥ २३ ॥

रथपर बैठे रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी राधापुत्र कर्णने दुर्योधनके उस वचनको स्वीकार किया। फिर युद्ध विशारद शल्यसे बोले ॥ २३ ॥

चोदयाश्वान्महाबाहो यावद्धन्मि धनञ्जयम् ।
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

हे महाबाहो ! आप हमारे घोडोंको शीघ्र हांको, जिससे हम अर्जुन और भीम, दोनों भाई नकुल–सहदेव और राजा युधिष्ठिरको मारेंगे ॥ २४ ॥

अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनञ्जयः ।
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥

हे शल्य ! आज सैकडों और सहस्रों कंकपत्रयुक्त बाण छोडते मेरे बाहुबलको अर्जुन देखें ॥ २५ ॥

अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान्परमतेजनान् ।
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ॥ २६ ॥

हे शल्य ! आज हम पाण्डवोंका नाश और दुर्योधनकी विजयके लिए अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चलावेंगे ॥ २६ ॥

शल्य उवाच

सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ।
सर्वास्त्रज्ञान्महेष्वासान्सर्वानेव महारथान् ॥ २७ ॥

शल्य बोले– हे सूतपुत्र ! तुम पाण्डवोंका अनादर क्यों करते हो ? सब पाण्डव सब अस्त्रोंको जाननेवाले, महाधनुर्धारी, महारथी हैं ॥ २७ ॥

अनिवर्तिनो महाभागानजेयान्सत्यविक्रमान् ।
अपि संजनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः ॥ २८ ॥

सब पाण्डव कभी युद्धमें पीछे नहीं हटते, उन्हें कोई नहीं जीत सकता, वे सत्य पराक्रमी हैं; वे महाभाग साक्षात् इन्द्रके भी मनमें भय उत्पन्न करते हैं ॥ २८ ॥

यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि ॥ २९ ॥

हे राधापुत्र ! जब तू मेघ और बिजलीके गडगडाहटके समान अर्जुनके गाण्डीव धनुषका घना शब्द सुनेगा तब ऐसा नहीं कहेगा ॥ २९ ॥

संजय उवाच

अनादृत्य तु तद्वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
द्रक्ष्यस्यद्येत्यवोचद्वै शल्यं कर्णो नरेश्वर ॥ ३० ॥

सञ्जय बोले— हे नरेश्वर ! मद्रराज शल्यके वचनोंका निरादर करके कर्णने शल्यसे आज तुम देखोगे, ऐसे कहा ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम् ।
चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः परंतप ॥ ३१ ॥

हे शत्रुतापन धृतराष्ट्र ! महाधनुषधारी कर्णको युद्धकी इच्छासे खडे हुए देख, कौरवोंकी सब सेना प्रसन्न हो गर्जने लगी ॥ ३१ ॥

ततो दुन्दुभिघोषेण भेरीणां निनदेन च ।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम् ।
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३२ ॥

तब दुन्दुभि और भेरियोंकी आवाज, बाणोंका शब्द और वेगवान् वीरोंकी विविध गर्जनाओंके सहित तुम्हारे सब योद्धा युद्धके लिये निकले । अब मृत्युही हमें निवृत्त करेगी, यह उनका दृढनिश्चय था ॥ ३२ ॥

प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च ।
चचाल पृथिवी राजन्ररास च सुविस्वरम् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! जिस समय कर्ण और कौरव योद्धा आनन्दित होकर युद्ध करनेको चले, तब पृथ्वी हिलने लगी और बडे जोरसे शब्द करने लगी ॥ ३३ ॥

निश्चरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात्सप्त महाग्रहाः ।
उल्कापातश्च सञ्जज्ञे दिशां दाहस्तथैव च ।
तथाशन्यश्च संपेतुर्ववुर्वाताश्च दारुणाः ॥ ३४ ॥

कर्णके चलते ही सूर्यसे सात महाग्रह निकलते हुए दीखने लगे, उल्कापात होने लगे; दिशा जलने लगीं, बिजलियां गिरने लगीं, दारुण आंधी चलने लगी ॥ ३४ ॥

मृगपक्षिगणाश्चैव बहुशः पृतनां तव ।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाद्भयम् ॥ ३५ ॥

अनेक हरिण और पक्षी महान् भयकी सूचना देते हुए अनेक बार तुम्हारी सेनाके दाहिनी ओरसे चले गये ॥ ३५ ॥

प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि ।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद्भयानकम् ॥ ३६ ॥

कर्णके गमन करते ही उसके घोडे पृथ्वीपर गिर पडे और आकाशसे हड्डियोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३६ ॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे ।
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशां पते ॥ ३७ ॥

पृथ्वीनाथ ! शस्त्र आपसे आप जलने लगे, ध्वज कांपने लगे, हाथी-घोडे आंखोंसे आंसू बहाने लगे ॥ ३७ ॥

एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र मारिष ।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः ॥ ३८ ॥

मारिष ! इसी प्रकार और भी अनेक भयंकर उत्पात वहां हुए, जिनसे जाना गया कि कौरवोंका नाश होगा ॥ ३८ ॥

न च तानगणयामासुः सर्वे ते दैवमोहिताः ।
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नरा भुवि ।
निर्जितान्पाण्डवांश्चैव मेनिरे तव कौरवाः ॥ ३९ ॥

परन्तु प्रारब्धवश मोहित होनेसे उन सबने उन भयङ्कर उत्पातोंको न गिना और जाते हुए सूतपुत्र कर्णकी वहां सबलोग जय जय कहने लगे और तुम्हारे सब कौरव सैनिक मानने लगे कि अब पाण्डव पराजित हो जायेंगे ॥ ३९ ॥

ततो रथस्थः परवीरहन्ता भीष्मद्रोणावस्तवीर्यौ निरीक्ष्य ।
समज्वलद्भारता पावकाभो वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो वृषः ॥ ४० ॥
हे भारत ! अनन्तर जलते हुए अग्निके समान तेजस्वी शत्रुवीरोंको मारनेवाला, रथियोंमें श्रेष्ठ, बलवान् कर्ण अपने रथपर बैठकर, भीष्म और द्रोणाचार्यका निरादर करते हुए ॥ ४० ॥

स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं पार्थस्य कर्माप्रतिमं च दृष्ट्वा ।
मानेन दर्पेण च दह्यमानः क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वासित्वा ॥ ४१ ॥
दर्प और अभिमानमें भरकर, तथा अर्जुनके अप्रतिम पराक्रमको देखकर, क्रोधसे जलता हुआ लंबी सांस लेकर शल्यसे बोले ॥ ४१ ॥

नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः क्रुद्धाद्बिभेम्यात्तधनू रथस्थः ।
दृष्ट्वा तु भीष्मप्रमुखाञ्शयानान्न त्वेव मां स्थिरता संजहाति ॥ ४२ ॥
मैं धनुषके समेत जब रथमें बैठता हूं, तब साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी क्रोधित होकर आवें तो उनसे भी नहीं डरता, अब भीष्म आदि प्रमुख वीरोंको युद्धमें सोये हुए देख भी मुझे अस्वस्थता नहीं लगती ॥ ४२ ॥

महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दितौ रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परैस्ततो ममाद्यापि रणेऽस्ति साध्वसम् ॥४३॥
देवराज इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी, अनिन्दित, रथ, घोडे और मत्त हाथियोंको मथनेवाले और शत्रुओंसे अवध्य जैसे भीष्म और द्रोणाचार्य भी शत्रुओंसे मारे गये, तो भी मैं आज युद्धसे कुछ नहीं डरता ॥ ४३ ॥

समीक्ष्य सङ्ख्येऽतिबलान्नराधिपैर्नराश्वमातङ्गरथाञ्शरैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान्रणेऽवधीन्महास्त्रविद्ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः ॥ ४४ ॥
मुझे आश्चर्य होता है कि सब महान् अस्त्रविद्याको जाननेवाले, ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने, अपनी ओरके मनुष्य, घोडे, हाथी और रथोंके समेत अनेक महाबलवान् राजाओंके बाणोंसे युद्धमें नष्ट होते हुए देखकर भी, शत्रुओंको क्यों नहीं मारा ? ॥ ४४ ॥

स संस्मरन्द्रोणहवं महाहवे ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद्रणेऽर्जुनं क्रमागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ ४५ ॥
हे कौरवो ! हम महायुद्धमें मारे गये द्रोणाचार्यके आत्मार्पणका स्मरण करके सत्य कहते हैं, ध्यान देकर सुनो । हमारे सिवा दूसरा कोई युद्धमें बलपूर्वक सामने आये हुए मृत्युके समान घोररूपी अर्जुनका वेग नहीं सहन कर सकता ॥ ४५ ॥

×

शिक्षा प्रसादश्च बलं धृतिश्च द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ ४६ ॥

महात्मा द्रोणाचार्य शिक्षा, प्रसन्नता, बल, बुद्धि, महा अस्त्र और नम्रतासे भरे थे, जब वही मारे गये, तब और सबको आज मैं मरणाधीन ही मानता हूं ॥ ४६ ॥

नेह ध्रुवं किञ्चिदपि प्रचिन्त्यं विदुर्लोके कर्मणोऽनित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो गर्वं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥ ४७ ॥

मैं बहुत विचार करनेपर भी कर्मकी अनित्यताके कारण इस जगत्में किसी भी पदार्थको शाश्वत नहीं मानता । गुरु द्रोणाचार्यके मारे जानेके पश्चात् कौन निःसन्देह भावी सूर्योदयतक जीवित रहनेका गर्व करेगा ? ॥ ४७ ॥

न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः क्रिया सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ ४८ ॥

अस्त्र, बल, पराक्रम, सिद्धि, उत्तम नीति और श्रेष्ठ आयुध ये सब मनुष्यको सुख देनेमें पूर्ण समर्थ नहीं हैं । इन सब गुणोंसे भरे हुए साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य ही शत्रुओंके हाथसे युद्धमें मारे गये ! ॥ ४८ ॥

हुताशनादित्यसमानतेजसं पराक्रमे विष्णुपुरंदरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनःसमं सदा न चैनमस्त्रं तदुपात्सुदुःसहम् ॥ ४९ ॥

वह तेजमें अग्नि और सूर्यके समान, पराक्रममें विष्णु और इन्द्रके समान, नीतिमें बृहस्पति और शुक्रके समान सदा थे । तो भी इनके अत्यंत दुःसह अस्त्र उनकी रक्षा नहीं कर सके ॥४९॥

संप्रक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य प्रयाहि तस्माद्द्विषतामनीकम् ॥ ५० ॥

शल्य ! इस समय दुर्योधनकी सेनाके वीरोंकी स्त्रियां और लडके आक्रोश करके रो रहे हैं, और दुर्योधनका पुरुषार्थ नष्ट हो गया है । मुझे दुर्योधनकी सहायता करनी चाहिये, इस कर्तव्यको मैं जानता हूं । इसलिये शत्रुओंकी सेनाकी ओर चलो ॥ ५० ॥

यत्र राजा पाण्डवः सत्यसंधो व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सृञ्जयाः सात्यकिश्च यमौ च कस्तौ विषहेन्मदन्यः ॥ ५१ ॥

जहां सत्यप्रिय राजा युधिष्ठिर खडे हैं और भीमसेन, अर्जुन, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृञ्जय वीर और नकुल, सहदेव खडे हैं, वहां हमारे सिवाय और दूसरा कौन उन वीरोंका आघात सहन कर सकता है ? ॥ ५१ ॥

तस्मात्क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि रणे पाञ्चालान्पाण्डवान्सृञ्जयांश्च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य सङ्ख्ये यास्यामि वा द्रोणमुखाय मन्ये ॥ ५२ ॥
इसलिये हे मद्रराज शल्य ! तुम हमारे रथको समरमें शीघ्र सृञ्जय, पाञ्चाल और पाण्डवोंकी ओर हांको । मेरा निश्चय है कि, या तो मैं इन सबको उनके साथ भिडकर मारूंगा, या द्रोणाचार्यके समान मैं भी मर जाऊंगा ॥ ५२ ॥

न त्वेवाहं न गमिष्यामि मध्यं तेषां शूराणामिति मा शल्य विद्धि ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम् ॥ ५३ ॥
शल्य ! मैं उन शूर योद्धाओंके बीचमें नहीं जाऊंगा, ऐसा नहीं समझना । युद्धसे पीछे हटना मित्रद्रोह होगा, यह मुझे असह्य है । इसलिये मैं प्राणोंका त्याग करके द्रोणाचार्यके ही मार्गका अनुकरण करूंगा ॥ ५३ ॥

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते प्राणप्रमोक्षोऽन्तकवत्करस्य ।
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थं दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥ ५४ ॥
हे विद्वान् ! पण्डित और मूर्ख दोनों ही जीवनकी समाप्ति होनेपर यमराजके मुखमें जाकर नष्ट होते हैं; इसलिये आज पाण्डवोंसे युद्ध करनेको जाते हैं । दैवको कोई पलट नहीं सकता ॥ ५४ ॥

कल्याणवृत्तः सततं हि राजन्वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत् ।
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि प्रियान्भोगान्दुस्त्यजं जीवितं च ॥ ५५ ॥
राजन् ! विचित्रवीर्यपुत्र धृतराष्ट्रके पुत्र राजा दुर्योधन सदा हमारा कल्याण करते रहे हैं, सो आज हम भी उनके मनोकामनाकी सिद्धिके लिये अपने प्यारे सुख, भोग और त्यागनेमें कठिन प्राणोंको भी त्याग देंगे ॥ ५५ ॥

वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं हैमत्रिकोशं रजतत्रिवेणुम् ।
रथप्रबर्हं तुरगप्रबर्हैर्युक्तं प्रादान्मह्यमिदं हि रामः ॥ ५६ ॥
परशुरामने मुझे यह बाघके चमडेसे मढा, धूरोंसे कोई आवाज नहीं होनेवाला, तीन सोनेके कोष और चांदीके त्रिवेणु सहित और उत्तम घोडोंसे युक्त श्रेष्ठ रथ दिया है ॥ ५६ ॥

धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य ध्वजं गदां सायकांश्चोग्ररूपान् ।
असिं च दीप्तं परमायुधं च शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ ५७ ॥
हे शल्य ! अनन्तर इसका निरीक्षण करके अनेक विचित्र धनुष, घोर बाण, उत्तम ध्वज, गदा, खड्ग, उत्तम आयुध, प्रकाशमान् और गंभीर शब्दवाले उग्र श्वेत शङ्ख भी दिये ॥ ५७ ॥

पताकिनं वज्रनिपातनिस्वनं सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् ।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ ५८ ॥
यह सब रथोंमें श्रेष्ठ रथ, पताकावाले, सफेद घोडोंसे युक्त, उत्तम तूणीरोंसे शोभित और चलते समय वज्रपातके समान शब्द करनेवाले, इस रथपर बैठकर मैं युद्धमें अर्जुनको पराक्रमसे मारूंगा ॥ ५८ ॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षते सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् ।
तं वा हनिष्यामि समेत्य युद्धे यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥ ५९ ॥
यदि सर्वनाशक मृत्यु भी सदा दक्ष रहकर समरमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करें, तो युद्धमें मैं उससे भी भिडकर उसे ही मारूंगा, अथवा स्वयं भीष्मके सामने यमलोकको जाऊंगा ॥ ५९ ॥

यमवरुणकुबेरवासवा वा यदि युगपत्सगणा महाहवे ।
जुगुपिषव इहैत्य पाण्डवं किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥ ६० ॥
हम बहुत कहांतक कहें ? यदि आज इस महायुद्धमें साक्षात् यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी एक साथ अपनी सेनाके सहित आकर यहां अर्जुनकी रक्षा करना चाहें, तो मैं उनके समेत ही अर्जुनको जीत लूंगा ॥ ६० ॥

इति रणरभसस्य कत्थतस्तदुपनिशम्य वचः स मद्रराट् ।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥ ६१ ॥
पराक्रमी मद्रराज शल्य युद्धके उत्साहमें भरकर बोलनेवाले कर्णके उस वचनको सुन, उसका निरादर करके उपहासपूर्वक, ऐसी बातें करनेसे कर्णको रोककर, हंसकर, इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ६१ ॥

विरम विरम कर्ण कत्थनादतिरभसोऽस्यति चाप्ययुक्तवाक् ।
क्व च हि नरवरो धनञ्जयः क्व पुनरिह त्वमुपारमाबुध ॥ ६२ ॥
रे कर्ण ! चुप रहो ! तुमने बहुत बक बक की है। तुमने अधिक आवेशमें आकर अपनी शक्तिसे बहुत बढकर अयोग्य बातें बोली हैं। भला, कहां पुरुषसिंह अर्जुन और कहां मूर्ख तुम। फिर यह बकवास बंद करो ॥ ६२ ॥

यदुसदनमुपेन्द्रपालितं त्रिदिवमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमिह विलोक्य को हरेत्पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥ ६३ ॥
अर्जुनके सिवाय दूसरा ऐसा कौन वीर है, जो देवताओंके सहित देवराज इन्द्रसे रक्षित स्वर्गके समान, साक्षात् विष्णुसे सुरक्षित यादवोंकी नगरीको देखकर भी बलपूर्वक पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राका हरण कर सकता है ? ॥ ६३ ॥

त्रिभुवनसृजमीश्वरेश्वरं क इह पुमान्भवमाह्वयेद्युधि ।
मृगवधकलहे कृतेऽर्जुनात्सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥ ६४ ॥

अर्जुनने देवता, असुर, बड़े मृग, गरुड, पिशाच, यक्षराक्षसों और मनुष्यको देवराज इन्द्रके समान बलवान् और पराक्रमी अर्जुनके सिवाय इस जगत्में कौन ऐसा दूसरा वीर है, जो एक हरिनको मारनेके लिये हुए कलहपर त्रिभुवनकर्ता ईश्वरेश्वर भगवान् शिवको युद्धके लिये पुकार सके ? ॥ ६४ ॥

असुरसुरमहोरगान्नरान्गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥ ६५ ॥

बाणोंसे पराजित करके अग्निदेवको आदरयुक्त प्रसन्न करके, उनका इच्छित अर्पण किया । क्या तुम्हें यह स्मरण नहीं है ? ॥ ६५ ॥

स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः स च धृतराष्ट्रसुतो विमोक्षितः ।
दिनकरज नरोत्तमैर्यदा मरुषु बहून्विनिहत्य तानरीन् ॥ ६६ ॥

जब मरुप्रदेशमें घोषयात्राके समय गन्धर्वोंने शत्रु बनकर दुर्योधनका हरण कर लिया था, तब अर्जुनने सूर्यसे निर्मित श्रेष्ठ वीरों द्वारा उन अनेक शत्रुओंको मारकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको छुडाया था, क्या तुम्हें इस घटनाका स्मरण है ? ॥ ६६ ॥

प्रथममपि पलायिते त्वयि प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ६७ ॥

क्या तुम्हें याद है, जब उस युद्धमें तुम सबसे पहले भाग गये, तब पाण्डवोंने गंधर्वोंको पराजित करके कलहप्रिय धृतराष्ट्र पुत्रोंको छुडाया था ६७ ॥

समुदितबलवाहनाः पुनः पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ॥ ६८ ॥

क्या तुम्हें स्मरण नहीं है, कि जब तुम लोगोंने सेना और वाहनोंसे युक्त होकर गोहरणके समय विराट नगरपर आक्रमण किया था, तब अकेले पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्मके सहित तुम्हें जीत लिया था; तुमने तभी अर्जुनको क्यों नहीं जीत लिया ? ॥ ६८ ॥

इदमपरमुपस्थितं पुनस्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात्पलायसे समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥ ६९ ॥

हे सूतपुत्र ! अब आज तुम्हारे वधके लिये फिर दूसरा उत्तम युद्ध आ गया है, यदि आज तुम शत्रुसे डरकर नहीं भागोगे, तो यहीं समरमें जाकर मारे जाओगे ॥ ६९ ॥

सञ्जय उवाच

इति बहुपरुषं प्रभाषति प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।
भृशमतिरुषितः परं वृषः कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ७० ॥

सञ्जय बोले– महाप्रतापी मद्रराज शल्य ऐसे शत्रुकी प्रशंसा करनेवाले अत्यंत कठोर वचन कहने लगे, तब शत्रुनाशन कुरुसेनापति कर्ण अत्यंत क्रोधित होकर शल्यसे बोले ॥ ७० ॥

भवतु भवतु किं विकत्थसे ननु मम तस्य च युद्धमुद्यतम् ।
यदि स जयति मां महाहवे तत इदमस्तु सुकत्थितं तव ॥ ७१ ॥

बस, बस ! क्यों बकवास करते हो ? आज हमारा और अर्जुनका युद्ध हो ही रहा है ! यदि हमको वह इस महायुद्धमें पराजित कर डालेगा, तो तुम्हारे ये आलाप–वचन सत्य होंगे ॥ ७१ ॥

एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान् ।
याहि मद्रेश चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥ ७२ ॥

फिर मद्रराज शल्य तुम जैसा कहते हो वैसा ही होगा, कहकर फिर वे कुछ नहीं बोले । अनंतर कर्णने युद्धकी इच्छासे उनसे कहा–मद्रराज ! रथ हांको ॥ ७२ ॥

स रथः प्रययौ शत्रूञ्श्वेताश्वः शल्यसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्समरे तमो घ्नन्सविता यथा ॥ ७३ ॥

फिर श्वेत घोडे जुते हुए और स्वयं शल्य सारथि बने हुए वह रथ अंधेरा नष्ट करनेवाले सूर्यके समान शत्रुओंका नाश करते हुए आगे चला ॥ ७३ ॥

ततः प्रायात्प्रीतिमान्वै रथेन वैयाघ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः ।
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां धनञ्जयं त्वरया पर्यपृच्छत् ॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ १४९२ ॥

अनन्तर उस व्याघ्रके चमडेसे मढे हुए श्वेत अश्वोंसे युक्त रथपर चढकर कर्णने आनन्दित होकर प्रस्थान किया और पाण्डवोंकी सेना देखकर कर्ण उतावलीसे अर्जुनके विषयमें पूछने लगे ॥ ७४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ १४९२ ॥

: २७ :

संजय उवाच

प्रयानेव तदा कर्णो हर्षयन्वाहिनीं तव ।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवं पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् धृतराष्ट्र ! कर्णने चलते समय तुम्हारी सब सेनाका उत्साह और आनन्द बढाया और समरमें एकेकको देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुनका पता पूछने लगा ॥ १ ॥

यो ममाद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम् ।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं वरं यं मनसेच्छति ॥ २ ॥

आज हमें जो कोई महात्मा श्वेतवाहन अर्जुनको दिखलावेगा, उसे मैं इच्छानुसार अभीष्ट वर दूंगा ॥ २ ॥

स चेत्तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः ।
शकटं रत्नसंपूर्णं यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ ३ ॥

यदि उस वरसे प्रसन्न न होगा, तो मैं उसे फिर दूसरा दूंगा । जो मुझे धनंजयका पता बता देगा, उसे मैं रत्नोंसे भरा हुआ छकडा दूंगा ॥ ३ ॥

स चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ॥ ४ ॥

यदि उन अर्जुनको दिखलानेवाला मनुष्य इसपर भी न प्रसन्न हो, तो उसे मैं दूसरा हाथीके समान छः बैलवाला सोनेका रथ दूंगा ॥ ४ ॥

तथा तस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ।
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम् ॥ ५ ॥

और उसे वस्त्र-आभूषण अलंकृत सौ स्त्रियां दूंगा, जो गाने-बजानेकी कलामें निपुण, कण्ठमें सोनेका आभूषण धारण किये, श्यामवर्णकी सोलह वर्षकी आयुवाली होंगी ॥ ५ ॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां श्वेतान्पञ्चशतान्हयान् ॥ ६ ॥

यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष इसपर भी पूर्ण मानकर प्रसन्न न हो, तो उसे और भी दूसरा उत्तम वर और सफेद रंगके घोडे दूंगा ॥ ६ ॥

हेमभाण्डपरिच्छन्नान्सुमृष्टमणिकुण्डलान् ।
सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टशतान्परान् ॥ ७ ॥

जो सोनेके साज बाजसे युक्त और मणि-कुण्डलोंसे विभूषित होंगे और भी दूसरे सुंदर दांतवाले शिक्षित आठसौ घोडे दूंगा ॥ ७ ॥

रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ।
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ ८ ॥

जो मुझे धनंजयका पता देगा उसे मैं एक सुन्दर और अलंकारोंसे सजाया हुआ सुवर्णका रथ दूंगा। उसमें काम्बोजदेशके श्रेष्ठ घोडे जुते रहेंगे ॥ ८ ॥

अन्यं तस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट्।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान्हेममालिनः।
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान्हस्तिशिक्षकैः ॥ ९ ॥

यदि इसपर भी वह प्रसन्न न हो, तो सुवर्णकी मालाओं, अनेक प्रकारके सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत, अम्बारी और झूल आदि सहित पश्चिमी देशोंमें उत्पन्न हुए, छः सौ हाथी दूंगा, वे हाथियोंके शिक्षकोंने सुशिक्षित किये होंगे ॥ ९ ॥

स चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान्।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत्स्वयम् ॥ १० ॥

यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष इसे भी पर्याप्त समझकर प्रसन्न न हो, तो मैं उसे दूसरा वर दूंगा। जिसको वह स्वयं इच्छानुरूप मांगे ॥ १० ॥

पुत्रदारान्विहारांश्च यदन्यद्वित्तमस्ति मे।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद्यत्स मनसेच्छति ॥ ११ ॥

मैं स्त्री, पुत्र, सुखोपभोगके लिये विहारस्थान और दूसरा जो कुछ दूसरा धन मेरे पास है, उसमेंसे जो वह अपने मनसे चाहेगा, वह मैं फिर उसे दूंगा ॥ ११ ॥

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात्केशवार्जुनौ ॥ १२ ॥

जो मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतावेगा, मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको मारकर उन दोनोंका सब धन उसीको दे दूंगा ॥ १२ ॥

एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन्युधि ।
दध्मौ सागरसंभूतं सुस्वनं शङ्खमुत्तमम् ॥ १३ ॥

ऐसे अनेक वचन कहकर कर्णने युद्धमें समुद्रसे उत्पन्न हुआ उत्तम शब्दवाला उत्तम शङ्ख बजाया ॥ १३ ॥

ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु।
दुर्योधनो महाराज प्रहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥ १४ ॥

हे महाराज ! सूतपुत्र कर्णके उस समयोचित सब वचन सुन, दुर्योधन अपने अनुचरोंके साथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निस्वनः ॥ १५ ॥

तब सब ओर नगाडे, मृदङ्ग और अनेक भेर बजने लगे; वाद्योंकी ध्वनिके साथ वीरोंका सिंहनाद और हाथियोंके चिंघाडनेका शब्द हुआ ॥ १५ ॥

प्रादुरासीत्तदा राजंस्त्वत्सैन्ये भरतर्षभ।
योधानां संप्रहृष्टानां तथा समभवत्स्वनः ॥ १६ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! तब तुम्हारी सेनामें प्रसन्न हुए वीरोंका गंभीर शब्द होने लगा ॥ १६ ॥

तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम्।
विकत्थमानं समरे राधेयमरिकर्शनम्।
मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ १७ ॥

इस प्रकार प्रसन्न हुई सेनामें जाते हुए और युद्धमें, बढकर बातें करते हुए शत्रुनाशन महारथी राधापुत्र कर्णसे मद्रराज शल्य हंसकर इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥

मा सूतपुत्र मानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम्।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनंजयम् ॥ १८ ॥

हे सूतपुत्र! तुम किसी भी पुरुषको हाथीके समान बैलोंसे जुता हुआ सुवर्णमय रथ न दो। अर्जुनको तुम आज ही देखोगे ॥ १८ ॥

बाल्यादि त्वं त्यजासि वसु वैश्रवणो यथा।
अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनंजयम् ॥ १९ ॥

हे राधापुत्र! तुम तो मूढतासे कुबेरके समान संपत्तिका त्याग कर रहे हो, परन्तु आज तुम विना प्रयत्नके ही अर्जुनको देख लोगे ॥ १९ ॥

परासृजसि मिथ्या किं किं च त्वं बहु मूढवत्।
अपात्रदाने ये दोषास्तान्मोहान्नावबुध्यसे ॥ २० ॥

तुम जो मूर्खके समान अपना बहुत धन दूसरोंको विना कारण दे रहे हो, इससे लगता है कि अपात्र दानसे जो दोष निर्माण होते हैं, उन्हें तुम मोहवश होनेके कारण नहीं समझते हैं ॥ २० ॥

यत्प्रवेदयसे वित्तं बहुत्वेन खलु त्वया।
शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥ २१ ॥

हे सूत! तुम जो बहुत धन देना चाहते हो और वैसी घोषणा करते हो, निश्चय ही उससे तुम अनेक यज्ञ कर सकते हो, इसलिये तुम उनसे यज्ञ करो ॥ २१ ॥

×

यत्र प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहान्मृषैव तत् ।
न हि शुश्रुम संमर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥ २२ ॥

तुम जो श्रीकृष्ण और अर्जुनको मोहके कारण मारना चाहते हो, सो तुम्हारी बात व्यर्थ है; क्योंकि हमने इस बातको नहीं सुना है कि, युद्धमें स्यारने सिंहोंको मारा ॥ २२ ॥

अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो न हि सन्ति ते ।
ये त्वां न वारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥ २३ ॥

तुम न प्राप्त होनेकी वस्तुको मांगते हैं। क्या तुम्हारे कोई भी मित्र नहीं हैं, जो तुम्हें शीघ्रही आकर जलती हुई आगमें गिरनेसे रोक सकेंगे ॥ २३ ॥

कालकार्यं न जानीषे कालपक्वोऽस्यसंशयम् ।
बह्वबद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ २४ ॥

तुम करने और न करने योग्य कामको नहीं जानते । इसका कारण यही है कि, निःसंशय तुम्हारा अब काल आ गया है । ऐसा कौन जीनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य है, जो कहने और सुननेके अयोग्य बात कहे ? ॥ २४ ॥

समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलाम् ।
गिर्यग्राद्वा निपतनं तादृक्तव चिकीर्षितम् ॥ २५ ॥

जैसे मनुष्य गलेमें शिला बांधकर दोनों हाथोंसे समुद्र तैरनेकी इच्छा करे, अथवा जैसे कोई पर्वतके शिखरसे गिरकर बचनेकी इच्छा करे, वैसे ही तुम्हारी इच्छा है ॥ २५ ॥

सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः ।
धनञ्जयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि ॥ २६ ॥

यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो व्यूहरचनापूर्वक अनेक योद्धाओंको अपने सङ्ग लेकर सुरक्षित होकर अर्जुनसे युद्ध करो ॥ २६ ॥

हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वा न हिंसया ।
श्रद्धत्स्वैतन्मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा ॥ २७ ॥

हम ये वचन तुम्हारे विरोधसे नहीं कहते हैं; वरन दुर्योधनके हितके लिये कहते हैं। यदि तुम जीनेकी इच्छा करते हो, तो मेरे इस कहनेपर विश्वास रखो ॥ २७ ॥

कर्ण उवाच

स्ववीर्येऽहं पराश्वस्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे ।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥ २८ ॥

कर्ण बोले— हम अपने भुजाओंके बलपर पूर्ण विश्वास करके अर्जुनको मिलना चाहते हैं। तुम भीतरसे शत्रु और मुंहसे मित्र होकर हमें डराना चाहते हो ॥ २८ ॥

न मामस्मादभिप्रायात्कश्चिदद्य निवर्तयेत् ।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किं नु मर्त्यः करिष्यति ॥ २९ ॥

ऐसी ऐसी बातें मुझे कहकर आज कोई मुझे पीछे नहीं लौटा सकता। साक्षात् वज्र उठाये इन्द्र भी मुझे मेरे निश्चयसे विचलित नहीं कर सकते। फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥२९॥

संजय उवाच

इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः ।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ ३० ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! कर्णके वचन समाप्त होते ही मद्रराज शल्य कर्णको बहुत कोपयुक्त करनेकी इच्छासे फिर बोले ॥ ३० ॥

यदा वै त्वां फल्गुनवेगनुन्ना ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः ।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः शिताग्रास्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्याभियोगात् ॥ ३१ ॥

हे कर्ण ! जिस समय महाबाहु अर्जुनके वेगयुक्त प्रत्यञ्चासे प्रेरित और हस्त कौशल्ययुक्त तीक्ष्ण धारवाले कंक पत्र युक्त बाण तुम्हारी ओर चलेंगे, तब तुम अर्जुनके मिलापसे पश्चाताप करने लगोगे ॥ ३१ ॥

यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः प्रभासयन्पृतनां सव्यसाची ।
त्वामर्दयेत निशितैः पृषत्कैस्तदा पश्चात्तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ ३२ ॥

हे सूतपुत्र ! जिस समय दिव्य धनुष धारण करके सव्यसाची कुन्तीपुत्र अर्जुन शत्रुसेनाको तपाते हुए तेज बाणोंसे पीडित करने लगेंगे, तब तुम पछताओगे ॥ ३२ ॥

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो यथा कश्चित्प्रार्थयतेऽपहर्तुम् ।
तद्वन्मोहाद्यतमानो रथस्थस्त्वं प्रार्थयस्यर्जुनमद्य जेतुम् ॥ ३३ ॥

जैसे कोई माताकी गोदमें सोया बालक चन्द्रमाके प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वैसे ही तुम रथमें बैठनेवाले, तेजस्वी अर्जुनको आज मोहवश होकर जीतनेकी इच्छा करते हो ॥ ३३ ॥

त्रिशूलमाश्लिष्य सुतीक्ष्णधारं सर्वाणि गात्राणि निघर्षसि त्वम् ।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ ३४ ॥

हे कर्ण ! तुम जो तीक्ष्ण धारवाले त्रिशूलके समान पराक्रमी अर्जुनसे आज युद्धकी इच्छा करते हो, वह तेरा कर्म तीक्ष्ण धारवाले त्रिशूलसे अपने देहका घर्षण करनेके समान भयंकर है ॥ ३४ ॥

सिद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी ।
समाह्वयेत्तद्वदेतत्तवाद्य समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ ३५ ॥

हे सूतपुत्र कर्ण ! बालक, मूर्ख और वेगसे दौडनेवाला क्षुद्र हरिन जैसे केसरयुक्त महापराक्रमी सिद्ध सिंहको युद्ध करनेके लिये बुलावे, वैसे ही तू भी बलवान् अर्जुनको युद्ध करनेको आव्हान कर रहा है ॥ ३५ ॥

मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं महावीर्यं केसरिणं यथैव ।
वने सृगालः पिशितस्य तृप्तो मा पार्थमासाद्य विनङ्क्ष्यसि त्वम् ॥ ३६ ॥

हे सूतपुत्र ! तू महापराक्रमी राजपुत्र अर्जुनको आह्वान न करो, क्योंकि जैसे वनमें मांस खाकर तृप्त हुआ सियार महाबलवान् सिंहके पास जाकर नष्ट होता है, वैसा ही तुम अर्जुनसे लडकर विनष्ट न होवो ॥ ३६ ॥

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम् ।
शशकाह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ ३७ ॥

हे शशक कर्ण ! जैसे ईषादण्डके समान बडे दांतवाले मतवाले हाथीको कोई खरगोश युद्ध करनेको बुलावे, वैसे ही तू कुन्तीपुत्र अर्जुनको युद्धमें आह्वान करके बुलाता है ॥ ३७ ॥

बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात्काष्ठेन विध्यसि ।
महाविषं पूर्णकोशं यत्पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥ ३८ ॥

तू क्रोधी भयंकर विषसे भरे बिलमें बैठे काले सांपको मूर्खतासे छडीसे मारता है, जो अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ३८ ॥

सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसि ।
सृगाल इव मूढत्वान्नृसिंहं कर्ण पार्थं पाण्डवम् ॥ ३९ ॥

हे कर्ण ! तू मूर्खतासे इस प्रकार पुरुषसिंह क्रुद्ध पाण्डुपुत्र अर्जुनका नाम लेकर मर्यादाका अतिक्रमण करके गर्ज रहा है, जैसे मूर्ख स्यार क्रुद्ध महासिंहका अनादर करके गर्जता है ॥ ३९ ॥

सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम् ।
लट्वेवाह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४० ॥

हे कर्ण ! जैसे कोई छोटा सांप महातेजस्वी पक्षिश्रेष्ठ विनतापुत्र गरुडको अपने विनाशके लिये बुलाता है, वैसे ही तू भी पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र अर्जुनको अपने विनाशके लिये युद्ध करनेको आव्हान देता है ॥ ४० ॥

सर्वाम्भोनिलयं भीममूर्मिमन्तं झषायुतम् ।
चन्द्रोदये विवर्तन्तमप्लवः संतितीर्षसि ॥ ४१ ॥

अनेक मछलीसे भरे भयानक चन्द्रोदयके समय चढे जलसे पूर्ण समुद्रको तुम विना नावके केवल दोनों हाथोंके सहारे पार करना चाहते हो ॥ ४१ ॥

ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृङ्गं प्रहारिणम् ।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥

हे वत्स कर्ण ! जैसे मतवाले, नगाडेके समान ग्रीवावाले, तीक्ष्ण शृङ्गवाले प्रहार कुशल बैलको कोई छोटासा बछडा युद्ध करनेको बुलाता है, वैसे ही तुम महायोद्धा अर्जुनको युद्ध करनेको बुलाते हो ॥ ४२ ॥

महाघोषं महामेघं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
कामतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ ४३ ॥

हे कर्ण ! महान् गर्जना करनेवाले, प्रजाको जल देनेवाले महामेघके सामने मेढक टर्र करता हो, वैसे तू इस जगतमें बाणरूपी जलधारा वर्षानेवाले मनुष्यरूपी मेघ अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे गर्जता है ॥ ४३ ॥

यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥ ४४ ॥

कर्ण ! जैसे घरमें बैठा कुत्ता वनमें रहनेवाले शेरकी ओर भोंकता है, वैसे ही तू पुरुषसिंह अर्जुनको युद्ध करनेको व्यर्थ पुकारता है ॥ ४४ ॥

शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत्सिंहं न पश्यति ॥ ४५ ॥

कर्ण ! जैसे सिंहको विना देखे, वनमें खरगोशोंके साथ रहनेवाला स्यार अपनेको सिंह मानता है, वैसे ही तुम कौरवोंके बीचमें गर्ज रहे हो ॥ ४५ ॥

तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥ ४६ ॥

हे राधापुत्र ! इसी प्रकारसे तुम भी शत्रुदमन पुरुषसिंह अर्जुनको विना देखे, अपनेको सिंह मानना चाहते हो ॥ ४६ ॥

व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत्कृष्णौ न पश्यसि ।
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ४७ ॥

एक रथपर बैठे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान श्रीकृष्ण और अर्जुनको जबतक तुम नहीं देखते हो, तब तक अपनेको व्याघ्र मानते रहे हो ॥ ४७ ॥

यावद्गाण्डीवनिर्घोषं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥ ४८ ॥

कर्ण ! जबतक तुम महायुद्धमें गाण्डिवका शब्द नहीं सुनते, तबतक जो इच्छा हो, सो बक सकते हैं ॥ ४८ ॥

रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥ ४९ ॥

धनुष और रथके शब्दसे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए पुरुषसिंह अर्जुनको गर्जते देखते ही स्यार हो जाओंगे ॥ ४९ ॥

नित्यमेव सृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनञ्जयः ।
वीरप्रद्वेषणान्मूढ नित्यं क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥ ५० ॥

हे मूर्ख ! तू सदाका ही स्यार और अर्जुन सदा ही सिंह हैं । वीरोंका नित्य द्वेष करनेके कारण सदा तू मुझे स्यार समान दीख पडता है ॥ ५० ॥

यथाखुः स्याद्बिडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा सृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥ ५१ ॥

जैसे मूंसा और बिलार, कुत्ता और शेर, स्यार और सिंह, खरगोश और मतवाला हाथी अपनी निर्बलता और बलके लिये प्रसिद्ध हैं, वैसे ही तुम और अर्जुन ॥ ५१ ॥

यथानृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ ५२ ॥

जैसे झूट और सत्य, विष और अमृत हैं; ऐसे ही तुम और अर्जुन भी जगत्में अपने कर्मोंके लिये प्रसिद्ध हो ॥ ५२ ॥

सञ्जय उवाच

अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा ।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥ ५३ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! महातेजस्वी शल्यके इस प्रकार आक्षेप युक्त वचन सुन, राधापुत्र कर्णको बडा क्रोध हुआ और वचनरूपी शर छोडनेके कारण शल्य नाम धारण किया है, ऐसा मानकर शल्यसे बोला ॥ ५३ ॥

गुणान्गुणवतः शल्य गुणवान्वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु नित्यं गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यस्यगुणो गुणान् ॥ ५४ ॥

हे शल्य ! गुणवानोंके गुणोंको गुणी ही जानता है, गुणहीन नहीं । तुम तो सदा गुणहीन हो, तो गुणीको क्या पहचानोगे ? ॥ ५४ ॥

अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि न त्वं जानासि तत्तथा ॥ ५५ ॥

हे शल्य ! महात्मा अर्जुनके महान् अस्त्र, क्रोध, वीर्य, धनुष और बाणोंको हम उत्तम प्रकारसे जानते हैं, जो तुम नहीं जानते हैं ॥ ५५ ॥

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे ।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य नाग्निं पतंगवत् ॥ ५६ ॥

हे शल्य ! मैं गाण्डीवधारी अर्जुनके पराक्रमको तथा मेरे पराक्रमको अच्छी प्रकार जानता हूं और यह सब जानकर ही युद्धके लिये अर्जुनको बुलाता हूं । पतिंगाके समान अग्निमें जलनेके लिये नहीं ॥ ५६ ॥

अस्ति चायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः ।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ५७ ॥

शल्य ! मेरा एक यह बाण सदा रुधिर पीता है, देखो, इसके कैसे सुन्दर पङ्ख हैं ! यह सदा अकेले ही एक तूणीरमें रखते हैं, सदा स्वच्छ और अलंकृत है ॥ ५७ ॥

शेते चन्दनपूर्णेन पूजितो बहुलाः समाः ।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसंघहा ॥ ५८ ॥

यह सर्पमय विषयुक्त बाण अनेक वर्षोंतक चन्दनके चूर्णमें रखा हुआ पूजा जाता है और हाथी, घोडे और मनुष्योंके समुदायको नष्ट कर सकता है ॥ ५८ ॥

एकवीरो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः ।
निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥ ५९ ॥

यह एक ही बलवान् घोररूपी और महाभयानक बाण है । इससे बडे बडे वीरोंके कवच और हड्डियां भी कट जाती हैं । इसीसे क्रोध करके मैं महान् पर्वत मेरुको भी तोड सकता हूं ॥ ५९ ॥

तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन्फल्गुनादृते ।
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्सत्यं चात्र शृणुष्व मे ॥ ६० ॥

इस बाणको हम देवकीपुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिवाय दूसरे किसी पर नहीं छोडेंगे । हमारी सत्य बातको तुम सुनो ॥ ६० ॥

तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनंजयौ ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत्कर्म सदृशं मम ॥ ६१ ॥

शल्य ! आज हम अत्यंत क्रोध करके अर्जुन और श्रीकृष्णके सङ्ग इस बाणसे युद्ध करेंगे और यह मेरे योग्य कार्य होगा ॥ ६१ ॥

सर्वेषां वासुदेवानां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ।
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ।
उभयं तत्समासाद्य कोऽतिवर्तितुमर्हति । ॥ ६२ ॥

सब यदुवंशिय वीरोंकी सम्पत्ति श्रीकृष्णपर प्रतिष्ठित है, इसी प्रकार सब पाण्डुपुत्रोंकी विजय अर्जुनमें ही प्रतिष्ठित है । इन दोनों वीरोंके आगे जाकर कौन युद्धसे पीछे हटेगा ? ॥६२॥

तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ ।
मामेकमभिसंयातौ सुजातं शल्य पश्य मे ॥ ६३ ॥

शल्य ! ये दोनों पुरुषसिंह एक साथ रथपर बैठकर अकेले मुझपर धावा करेंगे । तुम आज मेरे जन्मकी सफलता देखो ॥ ६३ ॥

पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ।
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया ॥ ६४ ॥

सूत्र प्रोत दो मणियोंके समान प्रेमसे बंधे दोनों फुफेरे और ममेरे अपराजित भाइयोंको तुम मुझसे मारे गये देखोगे ॥ ६४ ॥

अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपिध्वजौ ।
भीरूणां त्रासजननौ शल्य हर्षकरौ मम ॥ ६५ ॥

क्योंकि अर्जुन कपि ध्वजावाले गाण्डीव धनुषधारी है और श्रीकृष्ण सुदर्शन गरुडध्वज है, चक्रधारी श्रीकृष्णार्जुनके शस्त्रास्त्र डरपोकोंकी भीतिको बढाते हैं, परन्तु उनसे मुझे हर्ष ही होता है ॥ ६५ ॥

त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ।
भयावतीर्णः संत्रासादबद्धं बहु भाषसे ॥ ६६ ॥

हे शल्य ! तुम दुष्ट स्वभाववाले मूर्ख हो और महायुद्धोंकी विद्या नहीं जानते हो, इसी लिये भयभीत होकर बहुत डरावने वचन कहते हो ॥ ६६ ॥

संस्तौषि त्वं तु केनापि हेतुना तौ कुदेशज ।
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम् ॥ ६७ ॥

हे दुष्ट देशमें उत्पन्न हुए शल्य ! तुम किस कारणसे उन दोनोंकी स्तुति करते हो ? आज मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनको युद्धमें मारकर तुम्हें भी बन्धु-बान्धवोंके सहित मारूंगा ॥ ६७ ॥

पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ।
सुहृद्भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यां भीषयन्नसि ॥ ६८ ॥

रे पापबुद्धे ! दुष्ट देशीय क्षत्रियाधम ! तुम मेरे शत्रु हैं, और मित्र बनकर श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मुझे क्यों डराते हो ? ॥ ६८ ॥

तौ वा ममाद्य हन्तारौ हन्तास्मि समरे स्थितौ ।
नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम् ॥ ६९ ॥

समरमें आज श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारूंगा अथवा वे ही दोनों मुझे मारेंगे । मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनसे भय नहीं करता, क्योंकि मैं अपने बलको जानता हूं ॥ ६९ ॥

वासुदेवसहस्रं वा फल्गुनानां शतानि च ।
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्स्व कुदेशज ॥ ७० ॥

हे कुदेशीय ! तुम चुप रहो, मैं अकेला ही सहस्रों श्रीकृष्ण और सैकड़ों अर्जुनोंको मारूंगा ॥ ७० ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः ।
या गाथाः संप्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥ ७१ ॥

शल्य ! प्रायः स्त्रियां, बालक, बूढे और खेलने–नाचनेवाले और अध्ययन करनेवाले मनुष्य, दुष्ट मद्रदेशियोंके बारेमें जो कहते हैं, सो हमसे सुनो ॥ ७१ ॥

ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद्राजसंनिधौ ।
श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि वोत्तरम् ॥ ७२ ॥

हे मूर्ख ! पहले राजाओंके पास आके ब्राह्मण लोग जैसा तुम लोगोंका यथावत् वर्णन करते हैं, उन कथाओंको एकाग्र चित्त होकर सुनकर, चुप रहो, या उत्तर दो ॥ ७२ ॥

मित्रध्रुङ्मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः ।
मद्रके संगतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥ ७३ ॥

मद्रदेशके अधम मनुष्य सदा मित्रद्रोही और हमारे द्वेष करनेवाले हैं । इन क्षुद्रतायुक्त वाक्य कहनेवाले नराधमोंमें किसीके प्रति मित्रत्वकी भावना नहीं होती ॥ ७३ ॥

दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यं चानृतिकोऽनृजुः ।
यावदन्तं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम् ॥ ७४ ॥

हमने सुना है, कि मद्रदेशके मनुष्य सदा दुरात्मा, असत्यवादी और कुटिल होते हैं । मद्र-देशियोंमें अन्ततक दुष्टता पूर्ण भरी रहती है ॥ ७४ ॥

पिता माता च पुत्रश्च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता नप्ता ते ते च बान्धवाः ॥ ७५ ॥

पिता, माता, पुत्र, सास, श्वसुर, मामा, जमाई, बेटी, भाई, नाती, पोते और बान्धव ॥ ७५ ॥

×

वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च संगतम् ।
पुंभिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥ ७६ ॥

मित्र दूसरे अभ्यागत दास–दासी ये सब इच्छानुसार एक–दूसरेसे मिलते हैं। स्त्रियां अपनी इच्छानुसार जाने और बिन जाने मनुष्योंके साथ संपर्क रखा करती हैं ॥ ७६ ॥

येषां गृहेषु शिष्टानां सक्तुमन्थाशिनां सदा ।
पीत्वा सीधुं सगोमांसं नर्दन्ति च हसन्ति च ॥ ७७ ॥

और सक्तु मिश्रित मत्स्य और अवशिष्ट अन्न खानेवाले उन पुरुषोंके घरोंमें गोमांसको खाकर मद्य पीती हैं, आक्रन्दन करती हैं, हंसती हैं और खेलती हैं ॥ ७७ ॥

यानि चैवाप्यबद्धानि प्रवर्तन्ते च कामतः ।
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥ ७८ ॥

तथा असंबद्ध गाती हैं और इच्छानुसार काम क्रीडा करती हैं। अनेक स्त्री–पुरुष एक दूसरेसे कामके वशमें होकर अनेक प्रकारके काम प्रलाप करते हैं, ऐसे दुष्टोंमें धर्म कहांसे आया ? ॥ ७८ ॥

मद्रकेषु विलुप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु ।
नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेषु समाचरेत् ॥ ७९ ॥

मदमत्त और जिनकी पापकर्मोंमें ख्याति हैं, ऐसे मद्रदेशवालोंसे मित्रता और वैर दोनों ही न करना चाहिये ॥ ७९ ॥

मद्रके संगतं नास्ति मद्रको हि सचापलः ।
मद्रकेषु च दुःस्पर्शं शौचं गान्धारकेषु च ॥ ८० ॥

कारण मद्रदेशियोंमें सौहार्द्र नहीं है और वे सदा चञ्चल मनके रहते हैं। ये लोग बडे मैले रहते हैं, और गान्धार देशियोंके समान ये भी अपवित्र रहते हैं। इसलिये इनका संग कभी नहीं करना चाहिये ॥ ८० ॥

राजयाजकयाज्येन नष्टं दत्तं हविर्भवेत् ॥ ८१ ॥

जिस यज्ञका याजक क्षत्रिय है ऐसे यज्ञमें दिया हुआ हविर्द्रव्य नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ।
तथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ॥ ८२ ॥

जैसे शूद्रका संस्कार करनेवाला ब्राह्मण पराभूत हो जाता है; वैसे ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला इस जगत्में नित्य पराजित हो जाता है ॥ ८२ ॥

मद्रके संगतं नास्ति हतं वृश्चिकतो विषम्।
आथर्वणेन मन्त्रेण सर्वा शान्तिः कृता भवेत् ॥ ८३ ॥
हे वृश्चिक! जैसे मद्रदेशियोंमें सौहार्दकी भावना नहीं होती, वैसे ही तेरा यह विष पूर्ण नष्ट हो गया है। अथर्ववेदके मन्त्रसे सब शान्त करना योग्य है ॥ ८३ ॥

इति वृश्चिकदष्टस्य नानाविषहतस्य च।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते।
एवं विद्वञ्जोषमास्स्व शृणु चात्रोत्तरं वचः ॥ ८४ ॥
हे शल्य! बींछूसे काटे जानेपर उसके विषसे पीडित पुरुषको विष बाधासे मुक्त करनेके लिये ज्ञानी लोग कोई औषध करते हैं, उनका वह कथन सत्य दिखाई देता है। हे शल्य! हे विद्वन्! यह समझकर आप चुप रहिये और जो मैं कहता हूं, वह सुन लो ॥ ८४ ॥

वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः।
मिथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामचराश्च ताः।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥ ८५ ॥
मद्रकी स्त्रियां मद्य पीकर मोहित होकर कपडे उतारकर, नङ्गी होकर नाचने लगती हैं, और मैथुनके लिये संयम छोडकर प्रवृत्त होकर, अनेक प्रकार अपनी इच्छानुसार किसी भी पुरुषकी इच्छा करती हैं, उनका पुत्र मद्रदेशी किस प्रकार दूसरोंको धर्म कह सकता है? ॥ ८५ ॥

यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रीदशेरके।
तासां विभ्रष्टलज्जानां निर्लज्जानां ततस्ततः।
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि ॥ ८६ ॥
जिस देशकी निर्लज्ज और अधर्मिनी लज्जाहीन स्त्रियां गधीके समान या ऊंटनीके समान खडी होकर मूतती हैं, तुम उन्हीं निर्लज्ज मद्रनिवासी स्त्रियोंके पुत्र होकर मुझे यहां धर्म कहनेकी इच्छा करते हो ॥ ८६ ॥

सुवीरकं याच्यमाना मद्रका कर्षति स्फिजौ।
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम् ॥ ८७ ॥
जिस मद्रदेशकी स्त्रीके पास कोई कांजी मांगनेके लिये जाय तो वह उसकी कमर पकड-कर खींचती है, कांजी देनेकी इच्छा न होनेसे यह कठोर कहती है ॥ ८७ ॥

मा मा सुवीरकं कश्चिद्याचतां दयितो मम।
पुत्रं दद्यां प्रतिपदं न तु दद्यां सुवीरकम् ॥ ८८ ॥
हमसे कोई हमारी प्यारी कांजीको कभी मत मांगो, मैं पुत्रको दूंगी, सब दूंगी, परन्तु प्यारी कांजी न दूंगी ॥ ८८ ॥

नार्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रकाः कम्बलावृताः ।
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम ॥ ८९ ॥

हमने सुना है कि मद्रदेशकी स्त्रियां गौरवर्णवाली, बडे शरीरवाली, निर्लज्ज, कम्बलधारिणी और बहुत खानेवाली तथा बहुत मलीन होती हैं ॥ ८९ ॥

एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद्बहु ।
आ केशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुवर्त्मसु ॥ ९० ॥

उनके विषयमें हम और दूसरे भी बहुत कह सकते हैं । मद्रदेशके मनुष्योंका शरीर सिरके केशोंसे लेकर पावोंके नाखूनके अग्रभागतक बुरे कुकर्मोंसे भरा है । वे लोग धर्मको क्या जानें ? ॥ ९० ॥

मद्रकाः सिन्धुसौवीरा धर्मं विद्युः कथं त्विह ।
पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः ॥ ९१ ॥

मद्र और सिंधु सौवीर देशके लोग पापदेशमें उत्पन्न हुए और म्लेच्छ हैं, उन्हें धर्म कर्मका ज्ञान नहीं है । वे इस लोकमें धर्मको क्या जानें ? ॥ ९१ ॥

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ।
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः ॥ ९२ ॥

शस्त्रोंकी युद्धमें हत और सत्पुरुषोंसे पूजित होकर रणभूमिमें दीर्घ निद्रामें सो जाना यही क्षत्रियोंका परम धर्म है, ऐसा हमने सुना है ॥ ९२ ॥

आयुधानां संपराये यन्मुच्येयमहं ततः ।
न मे स प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः ॥ ९३ ॥

अस्त्र-शस्त्रोंसे किये जानेवाले युद्धमें प्राणोंका परित्याग करना, यही मेरा प्रथम संकल्प नहीं है, क्योंकि मरकर मैं स्वर्गकी इच्छा रखता हूं ॥ ९३ ॥

सोऽहं प्रियः सखा चास्मि धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ।
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु ॥ ९४ ॥

मैं बुद्धिवान् धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनका प्यारा मित्र हूं, इसलिये मेरे पास जो धन है वह और मेरे प्राण भी उसीके लिये हैं ॥ ९४ ॥

व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ।
यथा ह्यमित्रवत्सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्तसे ॥ ९५ ॥

हे पापदेशोत्पन्न शल्य ! तुम्हें पाण्डवोंने हमारा भेद लेनेके लिये रखा है, ऐसा दीखता है; कारण कि तुम शत्रुके समान हमारे साथ सब वर्तन कर रहे हैं ॥ ९५ ॥

कार्यं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ।
संग्रामाद्विमुखः कर्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः ॥ ९६ ॥

जैसे धर्मज्ञको नास्तिक धर्मसे विमुख नहीं कर सकते हैं, वैसेही तुम्हारे जैसे सैकडोंके कहनेपर भी मैं युद्धसे विमुख नहीं हो सकता हूं, यह सत्य है ॥ ९६ ॥

सारङ्ग इव घर्मार्तः कामं विलप शुष्य च ।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

तुम धूपसे पीडित हरिनके समान कण्ठ शुष्क होने तक विलाप करते रहो, परन्तु क्षत्रधर्ममें स्थित होनेके कारण मुझे तुम नहीं डरा सकते ॥ ९७ ॥

तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
या गतिर्गुरुणा प्राङ्मे प्रोक्ता रामेण तां स्मरे ॥ ९८ ॥

युद्धसे न हटनेवाले और युद्धमें शत्रुओंका सामना करते प्राण छोडनेवाले पुरुषसिंह क्षत्रियोंके लिये पहले गुरुश्रेष्ठ परशुरामने जो गति बतायी है, उसका स्मरण करो ॥ ९८ ॥

स्वेषां त्राणार्थमुद्युक्तं वधाय द्विषतामपि ।
विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम् ॥ ९९ ॥

शत्रुओंका नाश और अपने मित्रोंकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ राजा पुरूरवाके चरित्रका अनुसरण करके मैं युद्धमें स्थित हुआ हूं, यह तुम समझो ॥ ९९ ॥

न तद्भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रक ।
यो मामस्मादभिप्रायाद्वारयेदिति मे मतिः ॥ १०० ॥

हे मद्रक ! मैं तीनों लोकोंमें कोई प्राणीको नहीं देखता, जो मुझको युद्धके इस संकल्पसे लौटा सके, यह मेरा मानना है ॥ १०० ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व त्रासात्किं बहु भाषसे ।
मा त्वा हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम ॥ १०१ ॥

विद्वन् ! यह विचार कर तुम चुप हो जाओ; भयके कारण बहुत बकनेसे क्या होगा ? हे मद्रकाधम ! तुम चुप न हो जाओगे तो तुम्हें मारकर मांसभक्षी प्राणियोंको दे दूंगा ॥ १०१ ॥

मित्रप्रतीक्षया शल्य धार्तराष्ट्रस्य चोभयोः ।
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि ॥ १०२ ॥

हे शल्य ! मित्र दुर्योधन और राजा धृतराष्ट्र दोनोंके हितके लिये, मेरा दुर्नाम होगा इसलिये और तुम्हें क्षमा करनेका वचन दिया है– इन तीन कारणोंसे तुम जीवित रहे हैं ॥ १०२ ॥

पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ।
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ॥ १०३ ॥

मद्रराज ! यदि फिर ऐसे वचन तुम कहोगे, तो मैं अपनी वज्रके समान गदासे तुम्हारा शिर तोड डालूंगा ॥ १०३ ॥

श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ।
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वापि जघान तौ ॥ १०४ ॥

हे नीच देशमें उत्पन्न शल्य ! आज यहां सब सुननेवाले और देखनेवाले देखेंगे कि श्रीकृष्ण और अर्जुनने कर्णको मारा अथवा कर्णने उन दोनोंको मारा ॥ १०४ ॥

एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशां पते ।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहि याहीत्यसंभ्रमम् ॥ १०५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ १५९८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! ऐसा कहकर राधापुत्र कर्णने फिर निर्भयतासे मद्रराज शल्यसे कहा, चलो चलो ॥ १०५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ॥ १५९८ ॥

: २८ :

सञ्जय उवाच

मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वचो युद्धाभिनन्दिनः ।
शल्योऽब्रवीत्पुनः कर्णं निदर्शनमुदाहरन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे मारिष धृतराष्ट्र ! अधिरथपुत्र कर्णके युद्धकी प्रशंसा करनेवाले वचन सुन कर फिर शल्य उससे उदाहरण देकर बोले ॥ १ ॥

यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा न च वा तथा ।
तथाहं त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सामि सुहृत्तया ॥ २ ॥

तू मद्य पीकर मत्त हुएके समान हो गया है, सो हम मित्र होनेके कारण उन्मत्त हुए तुम्हारी चिकित्सा करते हैं ॥ २ ॥

इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे ।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं विहीन कुलपांसन ॥ ३ ॥

रे नीच ! कुलांगार कर्ण ! हम एक कौएका इतिहास तुमसे कहते हैं, इसको सुनकर, जो इच्छा हो सो करना ॥ ३ ॥

नाहमात्मनि किञ्चिद्वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे ।
येन त्वं मां महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ४ ॥

हे महाबाहु कर्ण ! मैं अपनेमें ऐसा कोई भी दोष नहीं देखता हूं, कि जिससे तुम मुझ निरपराधीको मारनेके लिये उद्यत हुए हो ॥ ४ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं बुध्यतां यदि ते हितम् ।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ५ ॥

राजा दुर्योधनके हितैषी और तुम्हारे रथके बने हुए मुझ सारथिको उचित है कि तुम्हारे हितकी बात जानते हुए मुझे अवश्य ही तुम्हें सब बताना चाहिये ॥ ५ ॥

समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम् ।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥ ६ ॥

सारथिको सम और विषम समय, रथीका बल और दुर्बलता, रथीके सहित ही घोडोंके श्रम और कष्ट ॥ ६ ॥

आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम् ।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया ॥ ७ ॥

अस्त्र-शस्त्रोंकी जानकारी और पशु तथा पक्षियोंका शकुन, भार, अतिभार और शल्य प्रतिक्रिया आदि सारथिको रथीसे कहनी चाहिये ॥ ७ ॥

अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च ।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ।
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः ॥ ८ ॥

मैं इस रथका सारथि बनकर एक कुटुम्बी हुआ हूं, इस लिये शकुन, युद्ध और अस्त्रोंके प्रयोग– इन सब बातोंका ज्ञान मुझे रखना आवश्यक है । हे कर्ण ! इसीलिये हम तुमसे फिर यह इतिहास कहते हैं ॥ ८ ॥

वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ।
यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः ॥ ९ ॥

समुद्रके तटपर एक महाधनधान्यवान् बनिया रहता था । वह अपने धर्मके अनुसार अनेक यज्ञ और दान किया करता था, तथा क्षमावान्, अपने कर्ममें रत और पवित्र था ॥ ९ ॥

बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ।
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः ॥ १० ॥

उसके अनेक प्यारे बेटी बेटा थे और सब प्राणियोंपर दया करता था । धर्मात्मा राजा उस राष्ट्रपर राज्य करते थे, इसलिए वह निर्भय होकर निवास करता था ॥ १० ॥

पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ।
काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः ॥ ११ ॥

उसके सब यशस्वी बालक पुत्रोंका जूठन खानेवाला एक कौआ वहां रहता था ॥ ११ ॥

तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ।
मांसोदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी ॥ १२ ॥

वे वैश्यके पुत्र उस कौएको प्रतिदिन जूठा देने लगे । मांस, भात, दही, दूध, खीर, घी और शहद देते थे ॥ १२ ॥

स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः ।
सदृशान्पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चावमन्यते ॥ १३ ॥

वैश्यके बालकोंका जूठन खाकर वह कौआ बहुत मोटा हुआ और घमंडमें भरकर अपने समान तथा श्रेष्ठ पक्षियोंका निरादर करने लगा ॥ १३ ॥

अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदभिपातिनः ।
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः ॥ १४ ॥

एक दिन समुद्रके तटपर मानसरोवरसे गरुडके समान उडते हुए अति शीघ्र गतिवाले हंस आगए, उनके अंगोंपर चक्रचिन्ह थे और वे प्रसन्न चित्त थे ॥ १४ ॥

कुमारकास्ततो हंसान्दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ।
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहंगम ॥ १५ ॥

तब हंसोंको देखकर बनियेके बेटे कौएसे इस प्रकार बोले, हे कौआ ! तुम सब पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ १५ ॥

प्रतार्यमाणस्तु स तैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ।
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद्दर्पाच्च मन्यते ॥ १६ ॥

उन अल्प बुद्धिवाले बालकोंसे ठगाया गया वह कौआ मूर्खता और गर्वसे भरे होनेके कारण उनके वचनको सत्य मानने लगा ॥ १६ ॥

तान्सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ।
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम् ॥ १७ ॥

वह उच्छिष्टसे पुष्ट और गर्वसे भरा हुआ कौआ, उन सब दूरगामी हंसोंमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, यह जाननेकी इच्छासे उनके पास गया ॥ १७ ॥

तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ।
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताम इति पक्षिणम् ॥ १८ ॥

उन दूरगामी हंसोंके बीचसे उसको जो श्रेष्ठ जान पडा, उस हंसको उस दुर्बुद्धिने आव्हान करके बुलाया और कहा कि, चलो हम दोनों उड्डान करें ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राहसन्हंसा ये तत्रासन्समागताः ।
भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः ।
इदमूचुश्च चक्राङ्गा वचः काकं विहंगमाः ॥ १९ ॥

तब बहुत बोलनेवाले उस कौएके वचन सुनकर, वहां आये हुए, पक्षियोंमें श्रेष्ठ, चक्राङ्ग वे बहुत बलवाले हंस कौएके पास आये और हंसकर ऐसे बोले ॥ १९ ॥

वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः ।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥ २० ॥

हम मानससरोवरके रहनेवाले हंस हैं, इस पृथ्वीपर घूमते रहते हैं, और दूरतक उडनेके कारण हम सदा सब पक्षियोंमें सम्मानित होते हैं ॥ २० ॥

कथं नु हंसं बलिनं वज्राङ्गं दूरपातिनम् ।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ।
कथं त्वं पतनं काक सहास्माभिर्ब्रवीषि तत् ॥ २१ ॥

अरे दुर्बुद्धे ! तू कौआ होकर दूरतक उडान करनेवाले, वज्र जैसे कठिन शरीरवाले, बलवान् हंसको अपने साथ उडनेके लिये कैसे आव्हान दे रहा है ! ॥ २१ ॥

अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः ।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात् ॥ २२ ॥

रे कौए ! तू हमारे साथ कैसे उडान करनेकी बात करता है ? हंसके वचन सुन, बढकर बातें करनेवाला मूर्ख कौआ अपनी जातिकी नीचताके अनुसार उसकी बार बार निन्दा करके उत्तरमें कहने लगा ॥ २२ ॥

शतमेकं च पातानां पतितास्मि न संशयः ।
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा ॥ २३ ॥

मैं एक सौ एक प्रकारसे उडना जानता हूं, इसमें संशय नहीं है । प्रत्येक उडान सौ योजनकी होती है, वे सब अनेक प्रकारकी, बहुत विचित्र और अद्भुत हैं ॥ २३ ॥

उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च ।
निडीनमथ संडीनं तिर्यक्चातिगतानि च ॥ २४ ॥

उनमेंसे कुछ उडानोंके नाम सुनो । उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन, निडीन, सण्डीन, तिर्यग्डीन, आदि अनेक गतियां ॥ २४ ॥

विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम् ।
अतिडीनं महाडीनं निडीनं परिडीनकम् ॥ २५ ॥

विडीन, परिडीन, पराडीन, सुडीन, अतिडीन, महाडीन, निडीन, परिडीन ॥ २५ ॥

×

गतागतप्रतिगता बह्वीश्च निकुडीनिकाः ।
कर्तास्मि मिषतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलम् ॥ २६ ॥

गतागत, प्रतिगत, अनेक निकुडीन, इत्यादि और भी अनेक गति हम जानते हैं। अब आज तुम लोगोंके देखते इतनी उडाने करूंगा, तब तुम लोग हमारा बल देखोगे ॥ २६ ॥

एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहंगमः ।
उवाच हंसस्तं काकं वचनं तन्निबोध मे ॥ २७ ॥

कौएके ऐसा वचन कहनेपर एक हंस हंसकर उस कौएके जो बोला, वह मुझसे सुनो ॥२७॥

शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ।
एकमेव तु ये पातं विदुः सर्वे विहंगमाः ॥ २८ ॥

हे कौए ! तू अवश्य एक सौ एक चालके उडनोंसे उडना जानता है, परन्तु और सब पक्षी एक ही प्रकारके उडानसे उडना जानते हैं ॥ २८ ॥

तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कंचन ।
पत त्वमपि रक्ताक्ष येन वा तेन मन्यसे ॥ २९ ॥

मैं उसी एक चालसे उडूंगा, क्योंकि मैं दूसरी चालको नहीं जानता। हे रक्तनेत्रवाले कौए! तेरी इच्छा हो तो उस ही चालसे वा जिस उडानसे उचित समझे, उसीसे हमारे सङ्ग उड ॥ २९ ॥

अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन्समागताः ।
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् ॥ ३० ॥

तब वहां आये हुए सब कौवें हंसके वचन सुन हंसकर कहने लगे, इस कौएकी एक सौ एक उडानकी गतियोंको एक गतिसे यह हंस कैसे जीतेगा ? ॥ ३० ॥

एकेनैव शतस्यैकं पातेनाभिभविष्यति ।
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः ॥ ३१ ॥

यह कौआ बडा बलवान् और शीघ्रतापूर्वक उडनेवाला है; इसलिये सौमेंसे एक ही उडानसे हंसकी उडानको पराजित करेगा ॥ ३१ ॥

प्रपेततुः स्पर्धयाथ ततस्तौ हंसवायसौ ।
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च ॥ ३२ ॥

तब वे दोनों कौआ और हंस स्पर्धा लगाकर उडे । चक्रांग हंस एक चालसे उडनेवाला था और कौआ सौ चालसे उडनेवाला ॥ ३२ ॥

पेतिवानथ चक्राङ्गः पेतिवानथ वायसः ।
विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाम् ॥ ३३ ॥

फिर एक ओरसे चक्रांग उडा, दूसरी ओरसे कौआ। सब पक्षियोंको आश्चर्य चकित करनेकी इच्छासे अनेक उडानोंसे उडनेवाला कौआ अपने उडानोंकी स्तुति करता जाता था॥ ३३ ॥

अथ काकस्य चित्राणि पतितानीतराणि च ।
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरथ तैः स्वरैः ॥ ३४ ॥

थोडे समयमें कौएकी विचित्र अनेक गतियोंको देखकर सब कौवें बहुत प्रसन्न हुए और ऊंचे स्वरसे कांव कांव करने लगे ॥ ३४ ॥

हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ।
उत्पत्योत्पत्य च प्राहुर्मुहूर्तमिति चेति च ॥ ३५ ॥

वे क्षणभरमें उडउडकर कहने लगे, यह है कौएकी उडान, वह है दूसरी उडान। ऐसा कहकर वे हंसोंकी हंसी तथा निन्दा करने लगे ॥ ३५ ॥

वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ।
कुर्वाणा विविधान्रावानाशंसन्तस्तदा जयम् ॥ ३६ ॥

वे सब उडने लगे और कभी भूमिपरसे वृक्षके ऊपर तथा वृक्षोंपरसे भूमिपर नीचे–ऊपर उडते थे। कौएकी विजयके लिये शुभेच्छा प्रकट करके अनेक प्रकारके शब्द करने लगे ॥३६॥

हंसस्तु मृदुकेनैव विक्रान्तुमुपचक्रमे ।
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष ॥ ३७ ॥

मारिष ! हंस अपनी एकही कोमल गतिसे उडकर जाने लगा, तो मुहूर्तभर कौएके पीछे रह गया और कौएसे पराजित होते हुए दीखने लगा ॥ ३७ ॥

अवमन्य रयं हंसानिदं वचनमब्रवीत् ।
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेव प्रहीयते ॥ ३८ ॥

यह देख सब कौवें उस हंसकी गतिका अपमान करके हंसोंको ऐसा बोले, वह हंस जो उडा था, वही तो कौएके पीछे रह गया ॥ ३८ ॥

अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापतत्पश्चिमां दिशम् ।
उपर्युपरि वेगेन सागरं वरुणालयम् । ॥ ३९ ॥

हंसने कौएका उस वचन सुन पश्चिमकी ओर उडना आरंभ किया और वरुणालय समुद्रके ऊपर ऊपर बहुत वेगसे उडने लगा ॥ ३९ ॥

ततो भीः प्राविशत्काकं तदा तत्र विचेतसम् ।
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपतन्तं श्रमान्वितम्
निपतेयं क्व नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे । ॥ ४० ॥

जब थके हुए कौएने विश्रांतिके लिये द्वीप और तीरके वृक्षोंको नहीं देखा, तब उसके मनमें डर उत्पन्न हो गया और वह घबराकर मूर्च्छितसा हो गया ॥ ४० ॥

अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः ।
महाभूतशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते ॥ ४१ ॥

कौआ विचारने लगा, कि थक जानेपर इस जलोंसे भरे समुद्रमें मैं कहां उतरूंगा ? सहस्रों जन्तुओंका निवासस्थान यह समुद्र मेरे लिये असह्य है और असंख्य महान् प्राणियोंसे प्रकाशित यह समुद्र आकाशसे भी बडा है ॥ ४१ ॥

गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषः कुलाधम ।
दिगम्बराम्भसां कर्ण समुद्रस्था हि दुर्जयाः ।
विदूरपातात्तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः ॥ ४२ ॥

हे कुलाधम कर्ण ! समुद्रमें घूमनेवाले मनुष्योंको भी उसकी गंभीरताके कारण और सब दिशाओंसे आवृत्त उसके जलको पार करना दुर्लंघ्य है, फिर कौएको थोडे ही दूरतक उडनेसे उस समुद्रका अन्त कैसे लगेगा ? ॥ ४२ ॥

अथ हंसोऽभ्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ।
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशक्नोद्व्यपसर्पितुम् ।
अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥ ४३ ॥

हंस भी थोडी देर तक उड कर इधर इधर कौएको देखने लगा और उसकी प्रतीक्षामें आगे जा न सका । चक्रांग हंस उस कौएको पार कर आगे बढकर प्रतीक्षा करता था ॥ ४३ ॥

तं तथा हीयमानं च हंसो दृष्ट्वाब्रवीदिदम् ।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन्सत्पुरुषव्रतम् ॥ ४४ ॥

शोचनीय स्थितीमें पडे हुए लज्जित और डूबते हुए कौएको देख, हंसने महात्माओंके व्रतका स्मरण करके उस कौएके उद्धारकी इच्छासे ऐसे कहा ॥ ४४ ॥

बहूनि पतनानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः ।
पतस्यव्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ॥ ४५ ॥

तूने बारबार हमसे अपने उडानोंकी अनेक चाल बताकर प्रशंसा की थी, परंतु उनका वर्णन करते समय इस गुप्त उडानकी बात तूने नहीं की थी ॥ ४५ ॥

किं नाम पतनं काक यत्त्वं पतसि सांप्रतम् ।
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

काक ! तुम अभी जिस उडानसे उड रहा है, इस चालका क्या नाम है ? इसमें तो तुम अपनी चोंच और पङ्खोंसे जलको बारबार स्पर्श कर रहे हो ॥ ४६ ॥

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन जलमर्णवे ।
काको दृढं परिश्रान्तः सहसा निपपात ह ॥ ४७ ॥

वह कौआ अत्यंत श्रान्त होकर अपने पंख और चोंचसे जलको स्पर्श करता हुआ महासमुद्रके जलमें सहसा गिर पडा ॥ ४७ ॥

हंस उवाच

शतमेकं च पातानां यत्प्रभाषसि वायस ।
नानाविधानीह पुरा तच्चानृतमिहाद्य ते ॥ ४८ ॥

हंसने कहा, हे कौए ! तुझे तो एकसौ एक प्रकारसे उडना आता है, ऐसा तूने कहा था और पहेले जो उडनेके अनेक प्रकार तूने बताये थे वे सब आज मिथ्या साबित हो चुके हैं ॥ ४८ ॥

काक उवाच

उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽऽत्मानं सुपर्णवत् ।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः ।
प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम् ॥ ४९ ॥

कौआ बोला– हे हंस ! मैं जूंठन खाकर बहुत अभिमानी हो गया था, इसीसे मैंने अपनेको गरुडके समान माना था और कौएं तथा दूसरे पक्षियोंका अनादर करने लगा । हे हंस ! अब मैं अपने प्राणोंसे तुम्हारी शरणमें आया हूं । तुम मुझे द्वीपके पास पहुंचा दो ॥ ४९ ॥

यद्यहं स्वस्तिमान्हंस स्वदेशं प्राप्नुयां पुनः ।
न कंचिदवमन्येयमापदो मां समुद्धर ॥ ५० ॥

जो मैं कुशलपूर्वक अपने घर पहुंच जाऊंगा तो फिर कभी किसी पक्षीका निरादर नहीं करूंगा । तुम इस आपत्तिसे मेरा उद्धार करो ॥ ५० ॥

तमेवंवादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम् ।
काक काकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे ॥ ५१ ॥

वह कौआ ऐसे बोलकर अचेतसा होकर दीनतासे विलाप करके और कांव कांव करते हुए, महासमुद्रमें डूबने लगा ॥ ५१ ॥

तथेत्य वायसं हंसो जलक्लिन्नं सुदुर्दशम् ।
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेपन्तं पृष्ठमारोपयच्छनैः ॥ ५२ ॥

हंसने उस दुर्दशामें पडे हुए और जलमें भींगे होनेके कारण कांपते हुए कौएको कृपा करके पावोंसे उठाकर ऊपरको उछाला और फिर धीरेसे अपनी पीठपर रख लिया ॥ ५२ ॥

आरोप्य पृष्ठं काकं तं हंसः कर्ण विचेतसम् ।
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः ॥ ५३ ॥

फिर अचेत हुए कौएको पीठपर बिठाकर हंस जहांसे स्पर्धा लगाकर दोनों उडे थे, उसी द्वीपमें आ गया ॥ ५३ ॥

संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम् ।
गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः ॥ ५४ ॥

हंसने उस कौएको उसके जगहपर रख दिया, और समझाकर मनके समान शीघ्रवेगी हंस फिर अपने देशको चला गया ॥ ५४ ॥

उच्छिष्टभोजनात्काको यथा वैश्यकुले तु सः ।
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्तराष्ट्रैर्न संशयः
सदृशाञ्श्रेयसश्चापि सर्वान्कर्णातिमन्यसे ॥ ५५ ॥

जैसे वैश्यकुलमें सबकी जूंठन खाकर वह कौआ वर्धित हुआ था, इसी प्रकार तुझे भी धृतराष्ट्रके पुत्रोंने जूंठन खिलाकर पाला, इसमें संशय नहीं है । कर्ण, इसीसे तू अपने समान और अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका निरादर करता है ॥ ५५ ॥

द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥ ५६ ॥

विराटनगरमें द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म और अन्य कौरववीरोंसे रक्षित होकर, तूने उस समय अकेले अर्जुनको क्यों नहीं मारा था ? ॥ ५६ ॥

यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
सृगाला इव सिंहेन क ते वीर्यमभूत्तदा ॥ ५७ ॥

उस समय अलग अलग और सब लोगोंसे एक साथ लडकर किरीटधारी अर्जुनने पराजित किया था, जैसे सिंह अनेक सियारोंको भगाता है । तब तेरा पराक्रम कहां गया था ? ॥५७॥

भ्रातरं च हतं दृष्ट्वा निर्जितः सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायथाः ॥ ५८ ॥

जब सब कौरव वीरोंके समक्ष सव्यसाची अर्जुनने तुम्हारे भाईको मार डाला था, तब तुम पराजित होकर सबसे पहले ही युद्ध छोडकर भाग गये थे ॥ ५८ ॥

तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून्समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायथाः ॥ ५९ ॥

हे कर्ण! जिस समय द्वैत वनमें गन्धर्वोंके सङ्ग युद्ध हुआ था, तब सब कौरवोंको छोडकर पहले तू ही युद्धसे भागा था ॥ ५९ ॥

हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान्रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोचयत् ॥ ६० ॥

कर्ण! उस समय कुन्तीकुमार अर्जुनने युद्धमें चित्रसेन आदि गन्धर्वोंको मारकर उनपर विजय पायी थी और स्त्रियोंके सहित दुर्योधनको उनसे छुडाया था ॥ ६० ॥

पुनः प्रभावः पार्थस्य पुराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥ ६१ ॥

हे कर्ण! फिर परशुरामने भी राजसभामें अर्जुन और श्रीकृष्णके पुरातन पराक्रमका वर्णन किया था ॥ ६१ ॥

सततं च तदश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
अवध्यौ वदतोः कृष्णौ संनिधौ वै महीक्षिताम् ॥ ६२ ॥

जिस समय भीष्म और द्रोणाचार्यने सब राजाओंके पास यह कहा था कि श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों अवध्य हैं, तब तूने सदा उनके ये वचन सुने हैं ॥ ६२ ॥

कियन्तं तत्र वक्ष्यामि येन येन धनञ्जयः ।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा ॥ ६३ ॥

जैसे सब मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, वैसे ही किन किन गुणोंसे अर्जुन तुमसे श्रेष्ठ हैं, यह मैं कितने गुणोंसे बताऊं? ॥ ६३ ॥

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधने स्यन्दने स्थितौ ।
पुत्रं च वसुदेवस्य पाण्डवं च धनंजयम् ॥ ६४ ॥

तुम इसी समय श्रेष्ठ रथमें बैठे हुए वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनको देखोगे ॥६४॥

देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरर्षभौ ।
प्रकाशेनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु ॥ ६५ ॥

नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों देवता, असुर और मनुष्योंमें प्रसिद्ध हैं। वे दोनों अपने तेजसे प्रख्यात हैं, तुम तो मनुष्योंमें जुगनूके समान हो ॥ ६५ ॥

एवं विद्वान्मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ ।
नृसिंहौ तौ नरश्वा त्वं जोषमास्स्व विकत्थन ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ १६६४ ॥

हे सूतपुत्र ! श्रीकृष्ण और अर्जुन मनुष्योंमें सिंहके समान हैं। तुम मानव हो। यह जानकर तुम उनकी निन्दा मत करो और बढकर बातें करना बंद करो और चुप रहो ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें अठ्ठाइसवां अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ १६६४ ॥

: २९ :

संजय उवाच

मद्राधिपस्याधिरथिस्तदैवं वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः ।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! महात्मा अधिरथपुत्र कर्णने मद्रराजके अप्रिय कठोर वचन सुन अप्रसन्न होकर उनसे इस प्रकार उत्तर दिया, श्रीकृष्ण और अर्जुन कैसे हैं, उसको हम अच्छे प्रकारसे जानते हैं ॥ १ ॥

शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य ।
अहं विजानामि यथावदद्य परोक्षभूतं तव तत्तु शल्य ॥ २ ॥

हे शल्य ! अर्जुनका रथ हांकनेवाले श्रीकृष्णके बल और पाण्डुपुत्र अर्जुनके महान् अस्त्रोंको आज मैं अच्छी तरहसे जानता हूं, तुम उनको नहीं जानते ॥ २ ॥

तौ चाप्रधृष्यौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ ।
संतापयत्यभ्यधिकं तु रामाच्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥ ३ ॥

मैं आज बेडर होकर उन दोनों अवध्य, शस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करूंगा । केवल परशुरामसे और एक ब्राह्मण श्रेष्ठसे मुझे शाप मिला है, वह आज मुझे त्रस्त कर रहा है ॥ ३ ॥

अवात्सं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः ।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो हितार्थिना फल्गुनस्यैव शल्य ॥ ४ ॥

हे शल्य ! पहले मैं दिव्य अस्त्र प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्राह्मण बनकर परशुरामके पास गया था । वहां भी अर्जुनके ही हित चाहनेवाले देवराज इन्द्रने मेरे सीखनेमें विघ्न निर्माण किया ॥ ४ ॥

कृतोऽवभेदेन ममोरुमेत्य प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम् ।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलिवानहं तच्चावबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ५ ॥

एक दिन परशुराम मेरी जांघपर शिर रक्खे सोये थे, उसी समय इन्द्रने एक कीडेके कुरूप शरीरमें प्रवेश करके मेरी जांघके पास आकर उसे काट लिया। परन्तु गुरुके जागनेके डरसे मैं बिलकुल विचलित नहीं हुआ, तब रामने उठकर यह सब देखा ॥ ५ ॥

पृष्टश्चाहं तमवोचं महर्षिं सूतोऽहमस्मीति स मां शशाप ।
सूतोपधावाप्तमिदं त्वयास्त्रं न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ६ ॥

और पूछा जानेपर जब मैंने महर्षिको सत्य बात कही कि मैं सूत हूं; तभी उन्होंने मुझे शाप दिया– सूत ! तूने कपट करके मुझसे यह दिव्य अस्त्र सीखा है, सो कार्यके समयपर तुझे यह अस्त्र याद नहीं आयेगा ॥ ६ ॥

अन्यत्र यस्मात्तव मृत्युकालादब्राह्मणे ब्रह्म न हि ध्रुवं स्यात् ।
तदद्य पर्याप्तमतीव शस्त्रमस्मिन्संग्रामे तुमुले तात भीमे ॥ ७ ॥

तेरे मृत्यु कालको छोडकर दूसरे कामोंमें ही यह अस्त्र तेरे उपयोगमें आयेगा; क्योंकि किसी प्रकार भी यह ब्रह्मास्त्र ब्राह्मणके शिवाय अन्य पुरुषमें स्थिर नहीं रह सकता। तात ! वह शस्त्र आज इस भयंकर तुमुल युद्धमें पूर्ण रीतिसे काम देगा ॥ ७ ॥

अपां पतिर्वेगवानप्रमेयो निमज्जयिष्यन्निवहान्प्रजानाम् ।
महानगं यः कुरुते समुद्रं वेलैव तं वारयत्यप्रमेयम् ॥ ८ ॥

जैसे जलका स्वामी, वेगवान् और अप्रमेय समुद्र प्रजाओंको निमग्न और धारण करनेके लिये बहुत बढता है, परंतु उस अपार महान् समुद्रको भी तटकी भूमि रोक देती है ॥ ८ ॥

प्रमुञ्चन्तं बाणसङ्घानमोघान्मर्मच्छिदो वीरहणः सपत्रान् ।
कुन्तीपुत्रं प्रतियोत्स्यामि युद्धे ज्याकर्षिणामुत्तममद्य लोके ॥ ९ ॥

वैसे ही आज मैं अमोघ, मर्मभेदी, वीरनाशक, सुंदर पंखोंसे युक्त बाणोंको चलानेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ समरमें युद्ध करूंगा। जो इस लोकमें धनुष खींचनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥

एवं बलेनातिबलं महास्त्रं समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ।
शरौघिणं पार्थिवान्मज्जयन्तं वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये ॥ १० ॥

अत्यं बलवान्, महा–अस्त्रधारी, समुद्रके समान दुर्लंघ्य, उग्र, बाणोंकी वर्षा करनेवाले और राजाओंको नष्ट करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन हैं, परंतु समुद्रको रोकनेवाली तट भूमिके समान मैं बाणोंसे रोककर, उनका वेग सहन करूंगा ॥ १० ॥

×

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ।
सुरासुरान्वै युधि यो जयेत तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम् ॥ ११ ॥
आज हम इस युद्धमें उनके समान धनुपधारी दूसरे किसी मनुष्यको नहीं मानते; जो अर्जुन देवता और राक्षसोंको युद्धमें जीतनेमें समर्थ हैं, आज मैं उन्हींसे अत्यंत घोर युद्ध करूंगा, उसे तुम देखो ॥ ११ ॥

अतिमानी पाण्डवो युद्धकामो अमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ।
तस्यास्त्रमस्त्रैरभिहत्य संख्ये शरोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम् ॥ १२ ॥
अत्यंत अभिमानी अर्जुन अमानुप महान् अस्त्रोंसे मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आयेंगे, तब मैं अपने अस्त्रोंसे उनके अस्त्रोंका नाश करके, युद्धमें उत्तम बाणोंसे कुन्तीकुमार अर्जुनको मारूंगा ॥ १२ ॥

दिवाकरेणापि समं तपन्तं समाप्तरश्मिं यशसा ज्वलन्तम् ।
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रो धनञ्जयं छादयिष्यामि बाणैः ॥ १३ ॥
सूर्यके समान ताप देनेवाले, यशसे प्रकाशित होनेवाले अर्जुनको मैं अपने बाणोंसे आच्छादित करूंगा, जैसे मेघ अंधकार नष्ट करनेवाले सूर्यको छिपा देता है ॥ १३ ॥

वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं तेजस्विनं लोकमिमं दहन्तम् ।
मेघो भूत्वा शरवर्षैर्यथाग्निं तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ॥ १४ ॥
इस जगत्को दग्ध करनेवाले, तेजस्वी, ज्वाला और धूएंके शिखावाले अग्निको जैसे मेघ बुझाता है, वैसे मैं मेघ बनकर बाणोंकी वर्षासे युद्धमें अग्निरूपी अर्जुनको शान्त कर दूंगा ॥ १४ ॥

प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ।
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो धनञ्जयं क्रुद्धममृष्यमाणम् ॥ १५ ॥
प्रमथनशील, बलवान्, आघात करनेमें कुशल, तोड–फोड करनेवाले, उग्र वायुके समान पराक्रमी और महाक्रोधी अर्जुनका वेग आज मैं हिमाचल पर्वतके समान स्थिर रहकर सहूंगा ॥ १५ ॥

विशारदं रथमार्गेष्वसक्तं धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ।
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां धनञ्जयं संयुगे संसहिष्ये ॥ १६ ॥
रथके मार्गोंमें कुशल, अनासक्त, समरमें नित्य भार वहन करनेवाले, जगत्के सब धनुपधारियोंमें उत्तम श्रेष्ठ वीर अर्जुनसे मैं युद्ध करूंगा ॥ १६ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मध्येमनुष्य धनुराददानम् ।
सर्वामिमां यः पृथिवीं सहेत तथा विद्वान्योत्स्यमानोऽस्मि तेन ॥ १७ ॥
आज जगत्में उनके समान धनुपधारी मनुष्यमें दूसरा कोई नहीं है, जो इस समस्त पृथ्वीको सहन कर सकते हैं और जो विद्वान् योद्धा हैं, उनसे मैं आज युद्ध करूंगा ॥ १७ ॥

यः सर्वभूतानि सदेवकानि प्रस्थेऽजयत्खाण्डवे सव्यसाची।
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन युयुत्सते मामृते मानुषोऽन्यः ॥ १८ ॥
जिन सव्यसाची अर्जुनने खाण्डववनमें देवताओं सहित सब प्राणियोंको जीत लिया था, उनके साथ मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य जो अपने जीवितकी रक्षा करना चाहता है, युद्ध करनेकी इच्छा करेगा ? ॥ १८ ॥

अहं तस्य पौरुषं पाण्डवस्य ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम्।
किं त्वं मूर्खः प्रभषन्मूढचेता मामवोचः पौरुषमर्जुनस्य ॥ १९ ॥
मैं उन पाण्डुपुत्र अर्जुनके पराक्रमको सब क्षत्रियोंके समाजमें बडी प्रसन्नतासे वर्णन कर सकता हूं। तुम मूर्ख और पागल हो। फिर तुम हमसे अर्जुनके पराक्रमका क्यों बढकर वर्णन करते हो ? ॥ १९ ॥

अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान्।
हन्यामहं तादृशानां शतानि क्षमामि त्वां क्षमया कालयोगात् ॥ २० ॥
तुम मेरे अप्रिय करनेवाले, निष्ठुर और नीच हैं। मैं क्षमावान् हूं, तुम क्षमावान् न होनेपर भी मेरी सदा निन्दा करते हो। मैं तेरे ऐसे सौ मनुष्योंको मार सकता हूं, परन्तु देशकाल परिस्थितिके विचारसे क्षमाके वशमें होकर यह सब कुछ सह लेता हूं ॥ २० ॥

अवोचस्त्वं पाण्डवार्थेऽप्रियाणि प्रधर्षयन्मां मूढवत्पापकर्मन्।
मय्यार्जवे जिह्मगतिर्हतस्त्वं मित्रद्रोही सप्तपदं हि मित्रम् ॥ २१ ॥
हे पापी ! मूर्खके समान तुमने अर्जुनके लिये मेरी निंदा करके मुझे अप्रिय वचन कहे हैं। मेरे साथ तुम्हें सरलतासे व्यवहार करना चाहिये था, परंतु तुम कपट बुद्धिवाले हो, और मित्रद्रोही होनेके कारण स्वयं ही अपने पापसे मारे गये। ऐसा कहा है, कि सप्तपद साथ चलनेसे मैत्री होती है ॥ २१ ॥

कालस्त्वयं मृत्युमयोऽतिदारुणो दुर्योधनो युद्धमुपागमद्यत्।
तस्यार्थसिद्धिमभिकाङ्क्षमाणस्तमभ्येष्ये यत्र नैकान्त्यमस्ति ॥ २२ ॥
यह समय मृत्युमय और बडा कठोर है, आज राजा दुर्योधन युद्ध करनेको आये हैं। मैं उनकी इच्छाकी सिद्धि चाहता हूं; तुम दूसरा ही चाहते हैं, जिससे उनका कार्य सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥ २२ ॥

मित्रं मिदेर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा संत्रायतेर्मानद मोदतेर्वा।
ब्रवीति तच्चामुत विप्रपूर्वास्तच्चापि सर्वं मम दुर्योधनेऽस्ति ॥ २३ ॥
हे मानद ! जो स्नेह, आनन्द, प्रिय करना, रक्षण करना, आमोद देना— ये सब कार्य करता है, उसे ही मित्र कहते हैं, ऐसे पहलेसे ही ब्राह्मणश्रेष्ठोंने कहा है। राजा दुर्योधनके प्रति ये सब गुण मुझमें हैं ॥ २३ ॥

शत्रुः शदेः शासतेः शायतेर्वा शृणातेर्वा श्वयतेर्वापि सर्गे ।
उपसर्गाद्बहुधा सूदतेश्च प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् ॥ २४ ॥
जो काटना, शासन करना, क्षीण करना, हिंसा करना, शिथिल करना और त्याग देना– ये करता है– वह शत्रु होता है और उपसर्ग लगानेसे उसहीका अर्थ नाश करनेवालेका हो जाता है; सो ये सब गुण हमारी दृष्टिसे तुममें भरे हैं ॥ २४ ॥

दुर्योधनार्थं तव चाप्रियार्थं यशोर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ।
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ योत्स्ये यत्नात्कर्म तत्पश्य मेऽद्य ॥ २५ ॥
दुर्योधनका कल्याण, तुम्हारा अप्रिय, अपने यश तथा सुख और ईश्वरका प्रेम मिलनेके लिये आज मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनसे प्रयत्नपूर्वक युद्ध करूंगा, आज तुम उस कार्यको देखो ॥२५॥

अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि ।
आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं द्विपोत्तमं मत्तमिवाभिमत्तः ॥ २६ ॥
आज तुम हमारे उत्तम ब्रह्म, दिव्य और मानुष अस्त्रोंको देखो । जैसे महामतवाला श्रेष्ठ हाथी दूसरे मतवाले हाथीके साथ लडता है, वैसे ही आज मैं महापराक्रमी अर्जुनके साथ इन अस्त्रोंसे युद्ध करूंगा ॥ २६ ॥

अस्त्रं ब्राह्मं मनसा तद्‌ध्यजय्यं क्षेप्स्ये पार्थायाप्रतिमं जयाय ।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे न चेत्पतेद्विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥ २७ ॥
आज मैं अपने मनसे निश्चय करके अर्जुनकी ओर अजेय और अप्रतिम ब्रह्मास्त्र अपनी विजयके लिये चलाऊंगा, यदि मेरे रथका चक्र किसी कठिन स्थानमें फंस नहीं जाय तो उस अस्त्रसे युद्धमें अर्जुन जीवित नहीं रहेंगे ॥ २७ ॥

वैवस्वताद्दण्डहस्ताद्वरुणाद्वापि पाशिनः ।
सगदाद्वा धनपतेः सवज्राद्वापि वासवात् ॥ २८ ॥
दण्डधारी यम, फांसीधारी वरुण, गदाधारी कुबेर और वज्रधारी इन्द्र ॥ २८ ॥

नान्यस्मादपि कस्माच्चिद्बिभिमो ह्याततायिनः ।
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यभीः ॥ २९ ॥
अथवा अन्य किसी आततायी शत्रुसे भी मैं कुछ नहीं डरता । शल्य ! मैं किसीसे भी कुछ नहीं डरता, इसको तुम समझो ॥ २९ ॥

तस्माद्भयं न मे पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ।
अद्य युद्धं हि ताभ्यां मे संपराये भविष्यति ॥ ३० ॥
तब श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मुझे कोई भय नहीं है । आज उन्हीं श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ हमारा युद्ध होगा ॥ ३० ॥

श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मे ब्राह्मणोऽवदत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायने भयम् ॥ ३१ ॥

उस ब्राह्मणने मुझसे कहा— तुम समरमें युद्ध करते समय एक महान् भयमें आ जाओगे, तब ही पृथ्वीमें तुम्हारे रथका पहिया अटक जायगा ॥ ३१ ॥

तस्माद्बिभेमि बलवद्ब्राह्मणव्याहृतादहम् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ३२ ॥

सो ब्राह्मणके उस ही शापसे आज मैं बहुत डर रहा हूं। ब्राह्मणोंका राजा सोम है और ब्राह्मण सबको सुख दुःख दे सकते हैं ॥ ३२ ॥

होमधेन्वा वत्समस्य प्रमत्त इषुणाहनम् ।
चरन्तमजने शल्य ब्राह्मणात्तपसो निधेः ॥ ३३ ॥

असावधनताके कारण मैंने उस ब्राह्मणकी होमधेनुके बछडेको बाणसे मारा । शल्य ! उस समय उस तपोनिधि ब्राह्मणने घूमते हुए मुझे यह शाप दिया ॥ ३३ ॥

ईषादन्तान्सप्तशतान्दासीदासशतानि च ।
ददतो द्विजमुख्याय प्रसादं न चकार मे ॥ ३४ ॥

हलदण्डके समान दांतवाले सात सौ हाथी और सैकडों दास, दासियाँ देनेपर भी वह ब्राह्मण श्रेष्ठ महामुनि मुझपर प्रसन्न न हुआ और कृपा नहीं की ॥ ३४ ॥

कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
आहरन्न लभे तस्मात्प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥ ३५ ॥

फिर मैंने चौदह सहस्र सफेद बछडेवाली काली गौएं उसे देनेके लिये लायीं, तो भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने प्रसन्न होकर इस शापका उद्धार न किया ॥ ३५ ॥

ऋद्धं गेहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किंचन ।
तत्सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥ ३६ ॥

मैंने सब सुखोंसे भरा अपना घर और जो कुछ मेरा धन था, वह सब भी उसको सत्कार-पूर्वक देना चाहा, परन्तु उसने कुछ भी लेना नहीं चाहा ॥ ३६ ॥

ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराद्धं प्रयत्नतः ।
व्याहृतं यन्मया सूत तत्तथा न तदन्यथा ॥ ३७ ॥

जब मैंने बहुत ही प्रयत्न करके अपने अपराधके लिये क्षमा प्रार्थना की, तो उस ब्राह्मणने कहा कि, हे सूत ! हमने जो कहा है, सो वैसा ही होगा, हमारी वाणी मिथ्या नहीं होती ॥ ३७ ॥

अनृतोक्तं प्रजा हन्यात्ततः पापमवाप्नुयात् ।
तस्माद्धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥ ३८ ॥

हम यदि झूठ बोलें तो प्रजाका नाश हो जाय और उससे हमें पापका भागी होना पडेगा। इसलिये हम मूल धर्मकी रक्षाके लिये असत्य भाषण करना नहीं चाहते ॥ ३८ ॥

मा त्वं ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया ।
मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित्कुर्यात्समाप्नुहि ॥ ३९ ॥

तुम ब्राह्मणोंकी उत्तम गतिका विनाश न करो, तुमने प्रायश्चित्त कर लिया है। जगत्में कोई मेरे वचनको असत्य नहीं कर सकता, तुमको मेरा शाप प्राप्त होगा ॥ ३९ ॥

इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया ।
जानामि त्वाधिक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ १७०४ ॥

तुमको अपना शत्रु और बक बक करनेवाला जानकर भी हमने मित्रतासे यह कथा सुनायी; अब हमारे वचन सुनो और चुप रहो ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ १७०४ ॥

: 30 :

संजय उवाच

ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिंदमम् ।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! उसके पश्चात् राधापुत्र कर्णने शत्रुनाशन मद्रराजको चुप करके फिर बोला ॥ १ ॥

यत्त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि ।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा विभीषयितुमाहवे ॥ २ ॥

हे शल्य ! तुमने जो हमको उदाहरण देकर जो बक बक की, उन बातोंसे तुम युद्धमें हमें नहीं डरा सकते ॥ २ ॥

यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः ।
तथापि मे भयं न स्यात्किमु पार्थात्सकेशवात् ॥ ३ ॥

यदि साक्षात् इन्द्रके सहित सब देवता भी मुझसे लडनेको आवे तो भी उनसे मैं नहीं डरूंगा और श्रीकृष्ण सहित अर्जुनकी तो कथा ही क्या है ? ॥ ३ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथञ्चन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे ॥ ४ ॥

मुझे केवल वचनोंसे किसी प्रकार भी डराया नहीं जा सकता, जिसको तुम समरमें डरा सके, ऐसे दूसरे किसीका पता करो ॥ ४ ॥

नीचस्य बलमेतावत्पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तोऽस्मद्गुणान्प्राप्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥ ५ ॥

हे दुर्मते ! तुमने मुझसे जो कठोर बातें कही हैं, इतना ही मूर्खोंका बल है । हमारे गुणोंको प्राप्त करनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है, इसलिये तुम बहुत वल्गनापूर्वक बाते करते हैं ॥ ५ ॥

न हि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मारिष ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथैव च ॥ ६ ॥

हे मारिष ! कर्ण इस जगत्में भयके लिये नहीं उत्पन्न हुआ है; मैं तो पराक्रम और यशके लिये जन्मा हुआ हूं ॥ ६ ॥

इदं तु मे त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
संनिधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ७ ॥

हे मद्रदेशीय महाराज ! मैंने जो राजा धृतराष्ट्रके समीप कहा गया वचन सुना है, वह तुमसे कहता हूं, उसे तुम एकाग्र चित्तसे सुनो ॥ ७ ॥

देशांश्च विविधांश्चित्रान्पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान् ।
ब्राह्मणाः कथयन्तः स्म धृतराष्ट्रमुपासते ॥ ८ ॥

एकदा अनेक ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके पास आकर चित्र विचित्र अनेक देश और भूतकालीन राजाओंकी कथाएं कहते थे ॥ ८ ॥

तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः काश्चिद्द्विजोत्तमः ।
बाह्लीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

एक दिन एक बूढा ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके पास आकर बाह्लीह देश और मद्रदेशी मनुष्योंकी निन्दा करता हुआ, वहांकी पहलेकी कथा कहने लगा ॥ ९ ॥

बहिष्कृता हिमवता गङ्गया च तिरस्कृताः ।
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥ १० ॥

गङ्गा, सरस्वती, यमुना, कुरुक्षेत्र और हिमाचलसे जो देश दूर तिरस्कृत हैं ॥ १० ॥

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान्धर्मबाह्यानशुचीन्बाह्लीकान्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

तथा रावी, चिनाव, झेलम, सतलज, व्यास—इन पांचों और छठी सिन्धु नदीके बीचमें जो देश हैं, वे बाह्लीक हैं। वे धर्मबाह्य, अपवित्र और त्याज्य हैं ॥ ११ ॥

गोवर्धनो नाम वटः सुभाण्डं नाम चत्वरम् ।
एतद्राजकुलद्वारमाकुमारः स्मराम्यहम् ॥ १२ ॥

गोवर्धन नामका वटवृक्ष और सुभाण्ड नामका चबूतरा—ये दोनों राजभवनके द्वारपर हैं, इनको मैं बालक अवस्थासे स्मरण करता हूं ॥ १२ ॥

कार्येणात्यर्थगाढेन बाह्लीकेषूषितं मया ।
तत एषां समाचारः संवासाद्विदितो मम ॥ १३ ॥

मैं एक अत्यन्त गुप्त कार्यसे बाह्लीक देशमें रहा था, तब ही मैंने वहांके लोगोंके सहवासमें आकर उनका आचार जाना ॥ १३ ॥

शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा ।
जर्तिका नाम बाह्लीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम् ॥ १४ ॥

आपगा नामक नदीके तटपर शाकल नामक नगर है, उसमें जर्तिक नामक बाह्लीक जातिके नीच मनुष्य बसते हैं, उनका चरित्र बहुत निन्दनीय है ॥ १४ ॥

धानागौडासवे पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह ।
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥ १५ ॥

वे सब धान और गुडका मद्य बनाकर पीते हैं। और लहसुनके साथ गोमांसको खाते हैं, और नित्य ही मांस, भुने हुए जौ, पुवा और बाटी खाते हैं, उनका शील बुरा है ॥ १५ ॥

हसन्ति गान्ति नृत्यन्ति स्त्रीभिर्मत्ता विवाससः ।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १६ ॥

वहांकी स्त्रियां बाहर दिखाई देनेवाली मालाएं और चन्दनादि सुगन्ध लगाकर, मद्य पीके मस्त होकर और नङ्गी होकर, घर द्वार और नगरके बाहर हंसती नाचती और गाती हैं ॥ १६ ॥

मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः ।
आहुरन्योन्यमुक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः ॥ १७ ॥

उन स्त्रियोंका स्वर ऊंट और गधोंके समान होता है, वे उन्मत्त होकर अनेक प्रकारके गीत गाती हैं, वहांकी स्त्रियां मदसे उन्मत्त होकर परस्पर विनोद करती हुई कहती हैं ॥ १७ ॥

हा हते हा हतेत्येव स्वामिभर्तृहतेति च ।
आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति मन्दाः पर्वस्वसंयताः ॥ १८ ॥

ओ घायल की हुई, ओ किसीकी मारी हुई, ओ तुम पतिसे ताडित है । वे संस्कार हीन स्त्रियां पर्वके समय असंयमी बनकर नाचती, गाती और गालियां भी देती हैं ॥ १८ ॥

तेषां किलावलिप्तानां निवसन्कुरुजाङ्गले ।
कश्चिद्बाह्लीकमुख्यानां नातिहृष्टमना जगौ ॥ १९ ॥

किसी समय उन बाह्लिक देशी मुख्य और मदमत्त स्त्रियोंका कोई संबंधी कुरुजांगल देशमें रहता था, एकदिन वह पुरुष उदास चित्तसे उन बाह्लीक स्त्रियोंके सम्बन्धमें इस प्रकार गीत गाने लगा ॥ १९ ॥

सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी ।
मामनुस्मरती शेते बाह्लीकं कुरुवासिनम् ॥ २० ॥

अरे ! वह सूक्ष्म कम्बलकी साडी पहननेवाली मेरी स्थूल गोरी स्त्री शय्यापर सोती हुई कुरुदेशवासी मुझ बाह्लिकका अवश्य स्मरण करती होगी ॥ २० ॥

शतद्रुकनदीं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम् ।
गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशङ्खाः शुभाः स्त्रियः ॥ २१ ॥

इसलिये शतद्रुकको और रम्य इरावती नदीको उतार कर तथा अपने देशमें जाकर बडी चूडियोंको धारण करनेवाली उन सुन्दर स्त्रियोंको देखूंगा ॥ २१ ॥

मनःशिलोज्ज्वलापाङ्गा गौर्यस्त्रिककुदाञ्जनाः ।
केवलाजिनसंवीताः कूर्दन्त्यः प्रियदर्शनाः ॥ २२ ॥

अहा ! उनके आंख कैसे मनःशीलके आलपसे उज्ज्वल हैं, वे गौरवर्णवाली स्त्रियां आखोंमें और ललाटपर अच्छा अञ्जन लगाती हैं, वे केवल मृगचर्म पहनती हैं, ऐसी सुन्दर स्त्रियोंको मैं कब नृत्य करती हुई देखूंगा ॥ २२ ॥

मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निस्वनैः ।
खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् ॥ २३ ॥

निश्चयसे उस समय वे स्त्रियां मृदङ्ग, आनक, शङ्ख तथा मर्दल आदि बाजे बजाकर उनके तालमें गीत गाती होंगी । उन मदमत्त स्त्रियोंके पास गर्दभ खच्चर और ऊंटोंके ऊपर बैठकर सुखसे जाएंगे ॥ २३ ॥

शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ।
अपूपान्सक्तुपिण्डीश्च खादन्तो मथितान्विताः ॥ २४ ॥

सुखद मार्गोंवाले पीलु, शमी और करीरोंके वनमें कब जाऊंगा । हम लोग मार्गमें अपुप, सत्तू अन्न और मठा खाते खाते जाते हुए ॥ २४ ॥

×

पथिषु प्रबला भूत्वा कदासम्भृदितेऽध्वनि ।
खलोपहारं कुर्वाणास्ताडयिष्यन्ति भूयसः ॥ २५ ॥

रास्तेमें प्रबल होकर चलते हुए कब पथिकोंके वस्त्र छीनेंगे और उन्हें बहुत पीटेंगे ॥ २५ ॥

एवं हीनेषु व्रात्येषु बाह्लीकेषु दुरात्मसु ।
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्तमपि मानवः ॥ २६ ॥

इस प्रकार हीन, धर्मबाह्य वर्तनेवाले और दुरात्मा वाह्लिक देशके मनुष्योंके सङ्ग क्षणभर भी कौन मनुष्य रहेगा ? ॥ २६ ॥

ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता बाह्लीका मोघचारिणः ।
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणने निरर्थक आचारवाले वाल्हिकोंका वर्णन किया है, उन वाह्लीक देशोंके लोगोंसे तुम षष्ठांश लेते हो, इसलिये तुम इनके पुण्य और पापका भी भागी है ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ।
बाह्लीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोधत ॥ २८ ॥

इस प्रकार उस ब्राह्मणने वाह्लीक देशके दुष्ट मनुष्योंका वर्णन किया । तब फिर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण अविनयी, अहंकारी वाह्लीक लोगोंके विषयमें बोला, उसका कहना बताता हूं, वह हमसे सुनो ॥ २८ ॥

तत्र स्म राक्षसी गाति सदा कृष्णचतुर्दशीम् ।
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम् ॥ २९ ॥

वहीं सदा कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको वैभवशाली शाकल नगरमें रातको नगाडा बजाकर राक्षसी गीत गाती है ॥ २९ ॥

कदा वा घोषिका गाथाः पुनर्गास्यन्ति शाकले ।
गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं महासवम् ॥ ३० ॥

इस शाकल नगरमें अब गोमांस खाकर और गुडका मद्य पीकर तृप्त हो गई हुई ये स्त्रियां इस तरह वाह्लिकोंका वर्णन करनेवाली गीतोंको फिर कब गायेंगी ? ॥ ३० ॥

गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृताः ।
पलाण्डुगण्डूषयुतान्खादन्ते चैडकान्बहून् ॥ ३१ ॥

और सोलह वर्षकी गोरे रंगकी पुष्ट और आभूषणोंसे अलंकृत स्त्रियोंके सङ्ग नाचकर भी तृप्त हो गयी, अब अञ्जलिभर प्याजके साथ बहुत भेडोंको भी खाया ॥ ३१ ॥

वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रकम् ।
ऐडं च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ३२ ॥

जो सूअर, मुर्गा, गाय, गदहा, ऊंट और भेडके मांस नहीं खाते उनका जन्म निरर्थक है ॥ ३२ ॥

इति गायन्ति ये मत्ताः शीधुना शाकलावतः ।
सबालवृद्धाः कूर्दन्तस्तेषु वृत्तं कथं भवेत् ॥ ३३ ॥

जिस शाकल देशके बूढे और बालक इसी प्रकार मद्यसे मत्त होकर नाचते हैं और ऐसी गाथाएं गाते हैं, उनमें सदाचार कैसे होगा ? ॥ ३३ ॥

इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान्ब्राह्मणः कुरुसंसदि ॥ ३४ ॥

हे शल्य ! यह सब पूर्णतया समझ लो ? हम तुमसे कुछ और कहते हैं । इसी प्रकार एक दूसरे ब्राह्मणने कौरवोंकी सभामें हम लोगोंसे कहा था ॥ ३४ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्यपि ।
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा ।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गताः ॥ ३५ ॥

जहां पीलू और दाखका बहुत वन है; उसी देशमें सतलज, व्यासा, तीसरी इरावती, चिनाब, झेलम ये पांच नदियां और छठी सिन्धुनदी हिमालयकी सीमासे बाहर बहती हैं ॥ ३५ ॥

आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मान्न तान्व्रजेत् ।
व्रात्यानां दासमीयानां विदेहानामयज्वनाम् ॥ ३६ ॥

उन देशोंका नाम आरट्ट है । वहांके मनुष्य अधर्मी होते हैं, इसलिये उन देशोंमें नहीं जाना चाहिये। उपनयनादि संस्कार हीन, जारज और यज्ञ कर्मसे रहित विदेह के लोग होते हैं ॥ ३६ ॥

न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा ।
तेषां प्रनष्टधर्माणां बाह्लीकानामिति श्रुतिः ॥ ३७ ॥

अधर्मी बाह्लीकोंके द्रव्य और पिण्डादिकोंको देवता, पितर और ब्राह्मण नहीं ग्रहण करते हैं, यह बात सुननेमें आयी है ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि ।
काष्ठकुण्डेषु वाह्लीका मृण्मयेषु च भुञ्जते ।
सक्तुवाट्यावलिप्तेषु श्वादिलीढेषु निर्घृणाः ॥ ३८ ॥

उस विद्वान् ब्राह्मणने साधु पुरुषोंकी सभामें यह भी कहा कि अधर्मी वाह्लीक मिट्टि और काठके वर्तनोंमें खाते हैं, उन्हीं सत्तू, वाटा और मद्य लगे वर्त्तनोंको कुत्ते चाटते हैं, फिर उसीमें वे लोग घृणाशून्य होकर भोजन करते हैं ॥ ३८ ॥

आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ।
तद्विकारांश्च वाह्लीकाः खादन्ति च पिबन्ति च ॥ ३९ ॥

वाह्लीक देशके लोग वकरी, गधी और ऊंटनीका दूध पीते हैं तथा उनके दूधसे बने हुए दही घृतादि पदार्थ सेवन करते हैं ॥ ३९ ॥

पुत्रसंकरिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ।
आरट्टा नाम वाह्लीका वर्जनीया विपश्चिता ॥ ४० ॥

वे नीच आरट्ट नामक वाह्लिक सबका अन्न खाते और सभी पशुओंका दूध पीते हैं; उनकी संतति व्यभिचारसे उत्पन्न होती हैं, इसलिये विद्वान् पुरुषको उनको त्यागना चाहिये ॥४०॥

उत शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदन्योऽप्युक्तवान्सभ्यो ब्राह्मणः कुरुसंसदि ॥ ४१ ॥

हे शल्य ! इस बातको जान लो; हम तुमसे और वर्णन करते हैं, सुनो । किसी समय दूसरे एक सभ्य ब्राह्मणने महाराज धृतराष्ट्रकी सभामें यह कहा था ॥ ४१ ॥

युगंधरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ।
तद्वद्भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ॥ ४२ ॥

युगन्धर नगरमें दूध पीना, अच्युत स्थलमें रहना और भूतिलयमें स्नान करना इन तीनोंके करनेसे स्वर्ग कैसे प्राप्त हो सकता है ? ॥ ४२ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ।
आरट्टा नाम वाह्लीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ॥ ४३ ॥

जिस स्थानमें पर्वतसे निकल कर पांच नदियां बह रही हैं, उसको आरट्ट नामक वाह्लीक कहते हैं, उस स्थलमें दो दिन भी आर्यको वसना उचित नहीं ॥ ४३ ॥

वहिश्च नाम ह्लीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ।
तयोरपत्यं वाह्लीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ॥ ४४ ॥

विपाशा नदीके तटपर वहि और ह्लीक नामके दो पिशाच रहते हैं । सब वाह्लीक लोग उन दोनों पिशाचोंकी संतति है, प्रजापतिने इनकी सृष्टि नहीं की है ॥ ४४ ॥

कारस्करान्माहिषकान्कालिङ्गान्कीकटाटवीन् ।
कर्कोटकान्वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

कारस्कर, माहिषक, कालिङ्ग, कीकटाटवी, कर्कोटक और वीरक देशके मनुष्य दुर्धर्मी हैं, इसलिये इनका त्याग करना चाहिये ॥ ४५ ॥

इति तीर्थानुसर्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रा शमीगेहे महोलूखलमेखला ॥ ४६ ॥

इस प्रकार तीर्थोंमें घूमते हुए एक ब्राह्मणसे एक मोटी ओखलियोंकी मेखला धारण करनेवाली किसी राक्षसीने उसके शांत घरमें एक रात रहकर कहा था, ॥ ४६ ॥

आरट्टा नाम ते देशा बाह्लीका नाम ते जनाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायो विकुत्सिताः ॥ ४७ ॥

उन देशोंका नाम आरट्ट और वहींके लोगोंका नाम बाह्लीक है। वसाति, सिन्धु और सौवीर ये देश प्रायः अति नीच हैं ॥ ४७ ॥

उत शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक्तदेकाग्रमनाः शृणु ॥ ४८ ॥

हे शल्य ! हमने जो कहा, सो तुमने सुना ? अब हम और फिर कहते हैं, मेरी कही हुई इस बातको तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणः शिल्पिनो गेहमभ्यगच्छत्पुरातिथिः ।
आचारं तत्र संप्रेक्ष्य प्रीतः शिल्पिमब्रवीत् ॥ ४९ ॥

पूर्वकालमें एक अतिथि ब्राह्मण शिल्पिकारके घर आया था, वह शिल्पिकारके आचारको देख बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा ॥ ४९ ॥

मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमाकुलाः ॥ ५० ॥

मैंने निवास किया है और अकेले ही बहुत कालतक हिमाचलके शिखरपर अनेक प्रकारके धर्मोंके देश देखे हैं ॥ ५० ॥

न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वे हि तेऽब्रुवन्धर्मं यथोक्तं वेदपारगैः ॥ ५१ ॥

वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंने जैसा धर्म कहा है, उसी प्रकार वे सब कहते हैं। इन देशोंकी सब प्रजा किसी प्रकार भी धर्मसे विरुद्ध नहीं रहती ॥ ५१ ॥

अटता तु सदा देशान्नानाधर्मसमाकुलान् ।
आगच्छता महाराज वाह्लीकेषु निशामितम् ॥ ५२ ॥

हे महाराज ! हम अनेक धर्मोंसे युक्त अनेक देशोंमें सदा घूमते हुए वाह्लीकदेशमें पहुंचनेपर वहीं इस प्रकार सुननेमें आया ॥ ५२ ॥

तत्रैव ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः ।
वैश्यः शूद्रश्च वाह्लीकस्ततो भवति नापितः ॥ ५३ ॥

उस देशमें ही जो वाह्लीक जन्म लेता है, सो पहले ब्राह्मण होकर फिर क्षत्रिय होता है, फिर वैश्य और शूद्र बनता है; फिर नाई होता है ॥ ५३ ॥

नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽपि जायते ॥ ५४ ॥

नाई होकर फिर ब्राह्मण होता है और ब्राह्मण होनेके बाद फिर वहीं दास ही हो जाता है ॥ ५४ ॥

भवत्येकः कुले विप्रः शिष्टान्ये कामचारिणः ।
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाह्लीकाः केऽप्यचेतसः ॥ ५५ ॥

एक ही कुलमें एक ब्राह्मण होता है, और शेष लोग स्वेच्छाचारी वर्णसंकर करनेवाले होते हैं । गान्धार, वाह्लीक और मद्रदेशके कोई मनुष्य मूर्ख होते हैं ॥ ५५ ॥

एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकम् ।
कृत्स्नमाटित्वा पृथिवीं वाह्लीकेषु विपर्ययः ॥ ५६ ॥

ये धर्मसंकरकारक बातें मैंने वहीं सुनी थीं । समस्त पृथ्वीमें घूमकर केवल वाह्लीक देशमें ही अधर्मी आचार दिखायी दिया ॥ ५६ ॥

उत शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदप्यन्योऽब्रवीद्वाक्यं वाह्लीकानां विकुत्सितम् ॥ ५७ ॥

हे शल्य ! हमने कहा सो तुमने सुना ! अब और कहते हैं, सुनो। एक दूसरे ब्राह्मणने भी वाह्लीकोंके सबंधमें जो निन्दित बातें कही थीं, सुनो ॥ ५७ ॥

सती पुरा हृता काचिदारट्टा किल दस्युभिः ।
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत्ततः ॥ ५८ ॥

पहले आरट्ट देशमें किसी एक सती स्त्रीका चोरोंने अपहरण किया और उससे अधर्मका बर्ताव किया, तब उस सतीने उनको शाप दिया ॥ ५८ ॥

बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलेषु वः ।
न चैवास्मात्प्रमोक्ष्यध्वं घोरात्पापान्नराधमाः ॥ ५९ ॥

मैं बालिका हूं और मेरे बन्धु भी हैं, फिर भी तुम लोगोंने मेरे साथ अधर्मका आचरण किया है; इसलिये तुम्हारे कुलकी सब स्त्रियां कुलटा और वेश्या होजायंगी । हे नराधम लोगो ! तुम इस घोर पापसे कभी निवृत्त न हो जायंगे ॥ ५९ ॥

कुरवः सहपाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः ।
कोसलाः काशयोऽङ्गाश्च कलिङ्गा मगधास्तथा ॥ ६० ॥

कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कौशल, काशी, अंग, कलिङ्ग, मगध ॥ ६० ॥

चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् ।
नानादेशेषु सन्तश्च प्रायो बाह्या लयाहते ॥ ६१ ॥

और चेदिदेशोंके उत्पन्न हुए महात्मा मनुष्य ही शाश्वत धर्मको जानते हैं। अनेक देशोंमें प्रायः साधु रहते हैं, परन्तु वाह्लीक केवल दुष्ट ही हैं ॥ ६१ ॥

आ मत्स्येभ्यः कुरुपाञ्चालदेश्या आ नैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः ।
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो मद्रानृते पञ्चनदांश्च जिह्मान् ॥ ६२ ॥

मत्स्यदेशसे लेकर कुरु और पाञ्चाल देशतकके और नैमिषारण्यसे लेकर चेदिदेशतकके सब मनुष्य महात्मा और साधु लोग हैं और सनातन धर्मसे अपनी वृत्ति चलाते हैं । मद्र और पंचनद देशोंमें ऐसा नहीं है । वहांके लोग दुष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥

एवं विद्वन्धर्मकथांश्च राजंस्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयाः ।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा षड्भागहर्ता शुभदुष्कृतस्य ॥ ६३ ॥

हे राजेन्द्र शल्य ! आप पण्डित हो, तो यह जानकर, जड पुरुषोंके समान धर्म कथा करनेका बंद करके चूप बैठो । तुम वाह्लीक देशके प्रजाके स्वामी और रक्षक हो; इसलिये उनके सब पाप और पुण्यके छठे भागके भागी हो ॥ ६३ ॥

अथ वा दुष्कृतस्य त्वं हर्ता तेषामरक्षिता ।
रक्षिता पुण्यभाग्राजा प्रजानां त्वं त्वपुण्यभाक् ॥ ६४ ॥

अथवा उनकी रक्षा न करनेके कारण तुम केवल प्रजाके अधर्महीके भागी हो, प्रजाकी रक्षा करनेवाला राजाही उसके पुण्यका भागी होता है, तुम तो पापके ही भागी हो ॥ ६४ ॥

पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते ।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः ॥ ६५ ॥

पूर्वकालमें सब देशोंमें सनातन धर्मके अनुसार उसको पूज्य मानकर आचरण किया जाता था, तब पितामह ब्रह्माने पञ्जाबमें रहनेवाले लोगोंके नीच धर्मको देख, उस देशको बहुत धिक्कार दिया ॥ ६५ ॥

व्रात्यानां दाशमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम् ।
इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः ।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु सोऽप्येतं नाभिपूजयेत् ॥ ६६ ॥

तुम्हारा देश संस्कार हीन, जारज और महापापी लोगोंसे भरा हुआ है । इस प्रकार पञ्चनद वासियोंके आचार धर्मका पितामह ब्रह्माने अपमान किया है, उस देशके धर्माचरण करनेवाले मनुष्य भी उन्होंने उत्तम नहीं माने ॥ ६६ ॥

उत शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
कल्माषपादः सरसि निमज्जन्राक्षसोऽब्रवीत् ॥ ६७ ॥

हे शल्य ! हमने जो कहा, सो आपने समझा, और भी कहते हैं, उसे सुनो । कल्माषपाद नामक राक्षसने तलावमें डूबते हुए यह कहा था ॥ ६७ ॥

क्षत्रियस्य मलं भैक्षं ब्राह्मणस्यानृतं मलम् ।
मलं पृथिव्या बाह्लीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् । ॥ ६८ ॥

जैसे क्षत्रियका कलंक है भीख मांगना, ब्राह्मणका कलंक है वेदशास्त्र विपरीत आचरण और स्त्रियोंका कलंक है मद्र देशकी स्त्रियां, वैसे ही पृथ्वीका कलंक है बाह्लीक देश ॥ ६८ ॥

निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद्राजा निशाचरम् ।
अपृच्छत्तेन चाख्यातं प्रोक्तवान्यन्निबोध तत् ॥ ६९ ॥

किसी राजाने उस डूबते हुए राक्षसको जलसे निकाला और पूछा, उसने जो कुछ उत्तर दिया सो हम तुमसे कहते हैं, उसे सुनो ॥ ६९ ॥

मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानां मौष्टिका मलम् ।
मौष्टिकानां मलं शण्डः शण्डानां राजयाजकाः ॥ ७० ॥

मनुष्योंके मल हैं म्लेच्छ, म्लेच्छोंके मल हैं चोर, चोरोंके मल हैं शण्ड और शण्डोंके राज-पुरोहित मल हैं ॥ ७० ॥

राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम् ।
तद्भवेद्वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ ७१ ॥

राजपुरोहितोंके पुरोहितों और मद्र देशके मनुष्योंका जो मल है, सो सब तुम्हें इस सरोवरसे हमें न छुडानेसे प्राप्त होगा ॥ ७१ ॥

इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च ।
राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धं वचनोत्तरम् ॥ ७२ ॥

यह राक्षसोंका बल नाश करनेवाला वा विषकी पीडा हटानेवाला मन्त्र अथवा औषधि है, यह सिद्ध वचन है ॥ ७२ ॥

ब्राह्मं पाञ्चालाः कौरवेयाः स्वधर्मः सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञः ।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः स्तेना बाह्लीकाः सङ्करा वै सुराष्ट्राः ॥ ७३ ॥

पाञ्चालदेशीय वेदोंके भक्त, कुरुदेशीय स्वधर्मयुक्त कर्म करनेवाले, मत्स्यदेशीय सत्यका आचरण करनेवाले और शूरसेनदेशीय यज्ञ करनेवाले हैं; पूर्वके दास, दक्षिण देशके वृषल, बाह्लीक देशके चोर और सौराष्ट्र देशके मनुष्य वर्णसङ्कर हैं ॥ ७३ ॥

कृतघ्नता परवित्तापहारः सुरापानं गुरुदारावमर्शः ।
येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्म आरट्टकान्पाञ्चनदान्धिगस्तु ॥ ७४ ॥

कृतघ्नता, परद्रव्यापहार, मद्य पीना, गुरुकी स्त्रीसे अधर्म करना, येही जिनके धर्म हैं, उन आरट्ट और पञ्चनद देशके मनुष्योंके लिये कुछ भी अधर्म नहीं है, उन्हें धिक्कार है ॥ ७४ ॥

आ पाञ्चलेभ्यः कुरवो नैमिषाश्च मत्स्याश्चैवाप्यथ जानन्ति धर्मम् ।
कलिङ्गकाश्चाङ्गका मागधाश्च शिष्टान्धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥ ७५ ॥

पाञ्चाल, कुरु, नैमिष और मत्स्य देशके मनुष्य भी धर्मको जानते हैं । इसी प्रकार कलिङ्ग, अङ्ग और मगध देशके उत्तम वृद्ध मनुष्य धर्म पालन करके जीवन निर्वाह करते हैं ॥ ७५ ॥

प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः ।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥ ७६ ॥

पूर्व दिशाके आश्रयमें अग्नि आदि देवता रहते हैं और शुभकर्मा यमराजसे रक्षित दक्षिण दिशामें पितर निवास करते हैं ॥ ७६ ॥

प्रतीचीं वरुणः पाति पालयन्नसुरान्बली ।
उदीचीं भगवान्सोमो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणैः सह ॥ ७७ ॥

बलवान् वरुण असुरोंकी रक्षा करते हुए पश्चिम दिशाकी रक्षामें दक्ष हैं । उत्तर दिशाकी भगवान् चन्द्रमा ब्राह्मणोंके सहित ब्रह्मकर्मको भी रक्षा करते हैं ॥ ७७ ॥

रक्षःपिशाचान्हिमवान्गुह्यकान्गन्धमादनः ।
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुर्लोकाञ्जनार्दनः ॥ ७८ ॥

राक्षस, पिशाच, पर्वत श्रेष्ठ हिमाचलपर रहनेवाले तथा गुह्यकोंकी रक्षा गन्ध मादन करता है, अव्ययी भगवान् विष्णु जनार्दन सब प्राणियोंकी और लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ७८ ॥

इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ।
अर्धोक्ताः कुरुपाञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः ।
पार्वतीयाश्च विषमा यथैव गिरयस्तथा ॥ ७९ ॥

मगध देशके मनुष्य इशारेसे सब पहचानते हैं; कोशल देशीय आंखोंकी भावनाओंसे; कुरु और पाञ्चाल देशके मनुष्य आधी बात सुनकर; शाल्वदेशके मनुष्य सब बात सुनकर सब जान लेते हैं। पर्वत निवासी लोग पर्वतीय प्रान्तोंके निवासीयोंके समान विलक्षण होते हैं ॥ ७९ ॥

सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः ।
म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्त इतरो जनः ॥ ८० ॥

हे राजन् ! यवन जातीय म्लेच्छ सर्वज्ञ और विशेष करके बडे शूरवीर होते हैं; वे अपनी संज्ञाओंपर विश्वास रखते हैं। अन्य देशोंके लोग विना कहे कुछ नहीं समझते ॥ ८० ॥

प्रतिरब्धास्तु बाह्लीका न च केचन मद्रकाः ।
स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥ ८१ ॥

हे शल्य ! बाह्लीक देशके लोग सब काम उलटे ही करते हैं और मद्र देशके कुछ मनुष्य कुछ भी नहीं समझ सकते, तुम ऐसे ही हो। अब तुम हमारे इस वचनके उत्तर नहीं देंगे ॥ ८१ ॥

एतज्ज्ञात्वा जोषमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः ।
स त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥ ८२ ॥

यह समझकर तुम चुप हो जाओ और कोई प्रतिकुल बात न करो; नहीं तो पहले तुम्हें मारकर फिर श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारेंगे ॥ ८२ ॥

शल्य उवाच

आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः ।
अङ्गेषु वर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ८३ ॥

शल्य बोले– हे कर्ण ! रोगसे पीडितोंको छोडना, अपनी स्त्री और पुत्रोंको बेचना, ये सब अङ्गदेशके मनुष्योंके धर्म हैं और तुम उसी देशके राजा हो ॥ ८३ ॥

रथातिरथसंख्यायां यत्त्वा भीष्मस्तदाब्रवीत् ।
तान्विदित्वात्मनो दोषान्निर्मन्युर्भव मा क्रुधः ॥ ८४ ॥

रथी और अतिरथियोंकी गणना करते समय जो कुछ भीष्मने तुममें दोष बताये थे, अपने उन सब दोषोंको विचार कर क्रोध मत करो, चुप हो जाओ ॥ ८४ ॥

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः ।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः ॥ ८५ ॥

कर्ण ! सब देशोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं, और उत्तम चरित्रवाली पतिव्रता स्त्रियां होती हैं ॥ ८५ ॥

रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह ।
अन्योन्यमवतक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ८६ ॥

सब देशोंके मनुष्य परस्पर बात करते समय उपहाससे एक दूसरेको दुःखित करते हैं और सब देशोंमें स्त्रियोंके साथ रमण करते हैं ॥ ८६ ॥

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा ।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि विमुह्यति ॥ ८७ ॥

दूसरोंके दोष कहनेमें सब सदा निपुण होते हैं, परन्तु अपने दोषोंको कोई नहीं जानते हैं, और कोई जानकर भी अनजान बनते हैं ॥ ८७ ॥

संजय उवाच

कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान् ।
पुनः प्रहस्य राधेय पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥ ८८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिंशतिमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ १७९२ ॥

संजय बोले– कर्णने कोई उत्तर नहीं दिया, चुप रह गये और शल्यने शत्रुओंकी सेनाकी ओर अपना मुख किया । तब फिर राधापुत्र कर्णने हंसकर शल्यसे कहा कि रथ हांको ॥ ८८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ ॥ १७९२ ॥

ः ३१ ः

सञ्जय उवाच

ततः परानीकभिदं व्यूहमप्रतिमं परैः ।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! तब कर्णने सेनासे बाहर निकलकर, शत्रु पाण्डवोंकी सेनाका अनुपम और शत्रुओंके आक्रमणको तोडनेमें समर्थ ऐसा व्यूह बनाया गया देखा, और देखा कि, धृष्टद्युम्न उसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ १ ॥

प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च ।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २ ॥

कर्ण सिंहकी गर्जनाके समान आवाजसे, अनेक प्रकारसे बाजे और रथके शब्दसे पृथ्वीको कंपाता हुआ उस सेनाकी ओर चला ॥ २ ॥

वेपमान इव क्रोधाद्युद्धशौण्डः परन्तपः ।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद्भरतर्षभ ॥ ३ ॥

हे भरतकुलसिंह ! युद्धकुशल, शत्रुतापन, महायशस्वी, कर्ण उस समय क्रोधसे कांप रहे थे, तब उन्होंने अपनी सेनाका यथोचित् व्यूह बनाया ॥ ३ ॥

व्यधमत्पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।
युधिष्ठिरं चाभिभवन्नपसव्यं चकार ह ॥ ४ ॥

इसके पश्चात् जैसे इन्द्र राक्षसोंकी सेनाका नाश करते हैं, वैसे ही कर्ण पाण्डवोंकी सेनाको मारने लगे, और युधिष्ठिरके रथको दाहिने करके उनको घायल किया ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं सञ्जय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान् ।
धृष्टद्युम्नमुखान्वीरान्भीमसेनाभिरक्षितान् ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! अकेले राधापुत्र कर्णने भीमसेनसे रक्षित धृष्टद्युम्न आदि सब पाण्डव-वीरोंसे युद्ध करनेके लिये कैसे व्यूह बनाया ? ॥ ५ ॥

के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य सञ्जय ।
प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः ॥ ६ ॥

संजय ! हमारी सेनाके पक्ष और प्रपक्ष कौन हुए ? तथा व्यूहमें कौन कौन वीर विभाग करके कहां खडे हुए ? ॥ ६ ॥

कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान् ।
कथं चैतन्महायुद्धं प्रावर्तत सुदारुणम् ॥ ७ ॥

पाण्डवोंने हमारे पुत्रोंसे युद्ध करनेको कैसा व्यूह बनाया ? यह घोर महायुद्ध किस प्रकार शुरू हुआ ? ॥ ७ ॥

क्व च बीभत्सुरभवद्यत्कर्णोऽयाद्युधिष्ठिरम् ।
को ह्यर्जुनस्य सांनिध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥

और जिस समय युधिष्ठिरकी ओर आक्रमणके लिये कर्ण चला था, तब अर्जुन कहां था ? क्योंकि अर्जुनके पास रहनेसे युधिष्ठिरके पास जानेकी किसकी शक्ति है ? ॥ ८ ॥

सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान्पुरा ।
कस्तमन्यत्र राधेयात्प्रतियुध्येज्जिजीविषुः ॥ ९ ॥

पहले अकेले ही अर्जुनने खाण्डववनमें सब प्राणियोंको जीता था । राधापुत्र कर्णके सिवाय और दूसरा ऐसा कौन वीर है, जो जीनेकी इच्छा करके अर्जुनसे युद्ध करे ? ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच

शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथा गतः ।
परिदाय नृपं तेभ्यः संग्रामश्चाभवद्यथा ॥ १० ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! आप व्यूहोंकी रचना और अर्जुन कहां गये थे और अपने अपने राजाको सब ओरसे घेरकर कैसे युद्ध हुआ, सुनिये ॥ १० ॥

कृपः शारद्वतो राजन्मागधश्च तरस्विनः ।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ११ ॥

राजन् ! आपके व्यूहके दहने पक्षमें शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य, वेगशाली मागध और युद्धकुलश्रेष्ठ कृतवर्मा खडे हुए ॥ ११ ॥

तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः ।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् ॥ १२ ॥

उस पक्षके पास महारथी शकुनि और उलूक तेज प्रास धारण करनेवाले घुडचढे वीरोंके सहित स्थित होकर तुम्हारी सेनाकी रक्षा करने लगे ॥ १२ ॥

गान्धारिभिरसंभ्रान्तैः पार्वतीयैश्च दुर्जयैः ।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः ॥ १३ ॥

उनके साथ निर्भय और स्थिर चित्तवाली गान्धार देशकी सेना और दुर्जय पर्वतवासी वीर थे । भयानक रूपवाले पिशाचोंके समान दीखनेवाले वे टिड्डीदलोंके समान समूह बनाकर चलते थे ॥ १३ ॥

चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम् ।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १४ ॥

युद्धसे न भागनेवाले, महापराक्रमी युद्धकुल चौंतीस सहस्र संशप्तक रथी वीर वाम पार्श्वकी रक्षा करते थे ॥ १४ ॥

समुचितास्त सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः ।
तेषां प्रपक्षः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह ॥ १५ ॥

वे तुम्हारे पुत्रोंके साथ रहकर अर्जुन और श्रीकृष्णके मारनेकी इच्छा करते थे । उनके प्रपक्ष स्थानमें काम्बोज, शक और यवन सेना खडी हुई ॥ १५ ॥

निदेशात्सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः कृष्णं च महाबलम् ॥ १६ ॥

सूतपुत्र कर्णकी आज्ञासे रथ, घोडोंपर चढे और पैदल सब वीर महापराक्रमी अर्जुन और श्रीकृष्णको पुकारने लगे ॥ १६ ॥

मध्ये सेनामुखं कर्णो व्यवातिष्ठत दंशितः।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन्ध्वजिनीमुखम् ॥ १७ ॥

सेनाके मुखमें माला, विचित्र कवच और बाजू पहनकर और सब शस्त्र लेकर सेनाके मुख-भागकी रक्षा करनेके लिये कर्ण खडा हुआ ॥ १७ ॥

रक्ष्यमाणः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः।
वाहिनीप्रमुखं वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत ॥ १८ ॥

सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण, संतप्त हुए और अपने सेनापतिकी रक्षामें तत्पर पुत्रोंके साथ सेनाके मुखभागमें खडा होकर, अपनी श्रेष्ठतासे शोभित हो रहा था ॥ १८ ॥

अयोरत्निर्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरद्युतिः।
महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गलः प्रियदर्शनः।
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः ॥ १९ ॥

सेनाके व्यूहके पिछले भागमें मतवाले बडे हाथिके पीठपर चढकर सुभूषित, महाबाहु पिङ्गाक्ष और प्रियदर्शन तथा सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी दुःशासन सेनाओंसे घिरकर खडा था ॥ १९ ॥

तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः।
चित्राश्वैश्चित्रसंनाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ॥ २० ॥

महाराज ! विचित्र घोडोंके साथ और विचित्र कवच धारण किये हुए भाईयोंसे रक्षित साक्षात् राजा दुर्योधन दुःशासनके पीछे जा रहा था ॥ २० ॥

रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः।
अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ॥ २१ ॥

मद्र और कैकयदेशके महापराक्रमी वीर इनकी रक्षा करने लगे। हे राजन् ! उस समय राजा दुर्योधनकी ऐसी शोभा बढी जैसे देवताओंके सहित इन्द्रकी ॥ २१ ॥

अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः।
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैरधिष्ठिताः।
अन्वयुस्तद्रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २२ ॥

अश्वत्थामा, कौरवोंके मुख्य महारथी वीर, शूर म्लेच्छ सैनिकोंके साथ, वर्षा करनेवाले मेघोंके समान नित्य मदकी धारा बहाते हुए, मतवाले हाथी उस रथसेनाके पीछे चले ॥ २२ ॥

ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।
सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २३ ॥

ध्वज, वैजयन्ती माला, चमकते हुए अस्त्र-शस्त्र और महावतके सहित वे हाथी वृक्षवाले पर्वतोंके समान शोभित होने लगे ॥ २३ ॥

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः ॥ २४ ॥

उन पैदलों और हाथियोंके पैरोंकी रक्षाके लिये युद्धसे न लौटनेवाले, पट्टिश, खड्ग आदि शस्त्र धारण करके सहस्रों वीर चले ॥ २४ ॥

सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलंकृतैः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥ २५ ॥

अत्यंत सजे हुए हाथी, रथ और घुडसवारोंसे भरा हुआ उस सेनाका वह व्यूहराज देवताओं और असुरोंकी संग्रामकी सेनाके समान शोभित हुआ ॥ २५ ॥

बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषामादधद्भयम् ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् सेनापति कर्णने यह जो शत्रुओंको भय देनेवाला महान् व्यूह बनाया था, वह बृहस्पतिके मतके अनुसार था । वह नृत्य करते हुएके समान दीखता था ॥ २६ ॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
पत्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २७ ॥

उसके पक्ष और प्रपक्षोंसे युद्धकी इच्छा करनेवाले पैदल, घुडसवार, रथी और गजारोही वीर वर्षाकालके मेघके समान प्रकट होकर निकल पडे ॥ २७ ॥

ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २८ ॥

अनन्तर कर्णको सेनाके मुखमें खडा देख महाराज युधिष्ठिरने शत्रुनाशन अद्वितीय महावीर अर्जुनसे कहा ॥ २८ ॥

पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च सेनानीकं प्रकाशते ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! यह देखो, समरमें कर्णने पक्ष और प्रतिपक्षोंके सहित कैसा उत्तम व्यूह बनाया है। यह व्यूहबद्ध शत्रुकी सेना कैसी प्रकाशित हो रही है ? ॥ २९ ॥

तदेतद्वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद्बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३० ॥

इसलिये इस प्रचंड शत्रुसेनाको देखकर, तुम यह सेना जिस प्रकार हमारी सेनाको परास्त न कर सके, ऐसा उपाय करो ॥ ३० ॥

एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।
यथा भवानाह तथा तत्सर्वं न तदन्यथा ॥ ३१ ॥

महाराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन, अर्जुन हाथ जोडकर उनसे बोले, हे महाराज ! आप जैसा कहते हैं वैसा ही सब है, उसमें अन्तर नहीं है ॥ ३१ ॥

यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत ।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥ ३२ ॥

हे भारत ! इस व्यूहको तोडनेका उपाय जो बताया गया है, वही करूंगा; सेनाके प्रधान वीर सेनापति कर्णको मारनेसे ही इस व्यूहका नाश होगा, सो हम करते हैं ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्मात्त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् ।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ॥ ३३ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले, आज तुम ही राधापुत्र कर्णसे, भीमसेन दुर्योधनसे, वृषसेनसे नकुल, शकुनिसे सहदेव ॥ ३३ ॥

दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुंगवः ।
धृष्टद्युम्नस्तथा द्रौणिं स्वयं यास्याम्यहं कृपम् ॥ ३४ ॥

दुःशासनसे शतानीक, कृतवर्मासे सात्यकि और धृष्टद्युम्न अश्वत्थामासे युद्ध करें; और कृपाचार्यसे हम स्वयं लडेंगे ॥ ३४ ॥

द्रौपदेया धार्तराष्ट्राञ्शिष्टान्सह शिखण्डिना ।
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥ ३५ ॥

द्रौपदीके पुत्र शिखण्डीके सहित धृतराष्ट्रके शेष पुत्रोंसे युद्ध करें । ये सब वीर हमारे उन सब शत्रुओंका नाश करें ॥ ३५ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनंजयः ।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम् ॥ ३६ ॥

सञ्जय बोले, धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन अर्जुनने कहा, ऐसाही होगा । इसके पश्चात् सब सेनाओंको महाराजकी आज्ञा सुनाकर युद्धके लिये आदेश दिया और स्वयं वे व्यूहके मुखकी ओर गये ॥ ३६ ॥

अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वात्यद्भुतदर्शनम् ।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥ ३७ ॥

उस अत्यंत अद्भुत दिखनेवाले रथको आते देख अधिरथपुत्र युद्धदुर्मद कर्णसे शल्य फिर बोले ॥ ३७ ॥

अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्कौन्तेयो यं यं त्वं परिपृच्छसि ॥ ३८ ॥

देखो, तुम जिन्हें बार बार पूछ रहे थे, उन सफेद घोडे और श्रीकृष्ण सारथिके सहित शत्रुओंका नाश करते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुनका रथ चला आता है ॥ ३८ ॥

श्रूयते तुमुलः शब्दो रथनेमिस्वनो महान् ।
एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ३९ ॥

यह उनके रथके पहियोंका महान् शब्द सुनायी दे रहा है। वह देखो महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनके रथकी धूल ऊपर उडकर आकाशको आच्छादित करके ठहरी जाती है ॥ ३९ ॥

चक्रनेमिप्रणुन्ना च कम्पते कर्ण मेदिनी ।
प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ।
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः कुर्वन्ति भैरवम् ॥ ४० ॥

हे कर्ण ! यह देखो उनके रथके पहियोंसे चलित होकर पृथ्वी कांपने लगी है। तुम्हारी सेनाके चारों ओर घोर वायु चलने लगी है। मांस खानेवाले जन्तु बोलने लगे हैं और मृग भयंकर आवाज कर रहे हैं ॥ ४० ॥

पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ।
कबन्धं मेघसंकाशं भानुमावृत्य संस्थितम् ॥ ४१ ॥

कर्ण ! देखो, रोमहर्षण, भय निर्माण करनेवाला, मेघके समान महाघोर कबन्ध सूर्यको घेरकर खडा है ॥ ४१ ॥

पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ।
बलिभिर्दृप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ॥ ४२ ॥

देखो, चारों ओर अनेक प्रकारके पशुओंके झुण्ड और बलवान् तथा मत्त शार्दूल सूर्यकी ओर देख रहे हैं ॥ ४२ ॥

पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान्सहस्रशः ।
स्थितानभिमुखान्घोरानन्योन्यमभिभाषतः ॥ ४३ ॥

ये देखो, सहस्रों घोर गिद्ध और कंकपक्षी यहां सामने इकट्ठे हुए हैं और परस्पर बोल भी रहे हैं ॥ ४३ ॥

×

सिताश्वाश्वाः समायुक्तास्तव कर्ण महारथे ।
प्रदराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ॥ ४४ ॥

कर्ण ! ये देखो, तुम्हारे महारथमें सफेद घोडे बंधे हुए हैं, उनसे और बाणोंसे सहसा अग्नि निकलने लगी है और ध्वजा हिलने लगी है ॥ ४४ ॥

उदीर्यतो हयान्पश्य महाकायान्महाजवान् ।
प्लवमानान्दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ॥ ४५ ॥

ये देखो, तुम्हारे शीघ्र चलनेवाले और बडे शरीरवाले, आकाशमें गरुडके समान शीघ्र उडनेवाले सुन्दर घोडे कूद रहे हैं ॥ ४५ ॥

ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमावृत्य पार्थिवाः ।
स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४६ ॥

कर्ण ! इन अपशकुनोंसे हमें निश्चय होता है, कि आज पृथ्वीमें सैकडों और सहस्रों राजा मारे जाकर सोएंगे ॥ ४६ ॥

शङ्खानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ।
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः ॥ ४७ ॥

राधेय ! सब ओर अनेक शङ्खों, ढोलों और मृदङ्गोंका रोमांचकारी घोर शब्द सुनाई दे रहा है ॥ ४७ ॥

बाणशब्दान्बहुविधान्नराश्वरथनिस्वनान् ।
ज्यातलत्रेषुशब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार बाणोंके अनेक प्रकारके शब्द; मनुष्य, घोडे और रथोंके ध्वनि, महात्माओंके धनुष और तालोंका कैसा शब्द होता है, सुनो ॥ ४८ ॥

हेमरूप्यप्रमृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः ।
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः ॥ ४९ ॥

सोने और चांदिके तारोंसे गुहे हुए वस्त्रोंकी शिल्पियोंसे निर्मित अनेक रंगोंकी पताकाएं पवनसे हिलकर, शोभित हो रही हैं ॥ ४९ ॥

सहेमचन्द्रताराकाः पताकाः किङ्किणीयुताः ।
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामिन्य इवाम्बुदे ॥ ५० ॥

कर्ण ! ये देखो, सुवर्णमय चन्द्रमा, सूर्य और तारे आदिके चिन्होंसे युक्त छोटी घण्टियां लगीं ये अर्जुनके रथकी पताकाएं फहरा रही हैं। ये पताकाएं मेघमें विजलीके समान प्रकाशित हो रही हैं ॥ ५० ॥

ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ।
सपताका रथाश्चापि पाञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ५१ ॥

ये अनेक ध्वज पवनसे हिलकर कन कन शब्द कर रहे हैं। इधर देखो महात्मा पाञ्चालोंके रथों पर पताकाएं शोभित हो रही हैं ॥ ५१ ॥

नागाश्वरथपत्त्यौघांस्तावकान्समभिघ्नतः ।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते ॥ ५२ ॥

ये देखो, सब पाण्डव तुम्हारी सेनाके हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंके झुण्डोंको नाश कर रहे हैं। अर्जुनकी ध्वजाका अग्रभाग और उनके धनुषकी प्रत्यञ्चका शब्द सुनाई देता है ॥ ५२ ॥

अद्य द्रष्टासि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
निघ्नन्तं शात्रवान्संख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ ५३ ॥

हे कर्ण! जिसको तुम पहले पूछते थे, अब उसी सफेद घोडे और श्रीकृष्णसारथि युक्त अर्जुनको युद्धमें अपनी सेनाका नाश करते हुए देखोगे ॥ ५३ ॥

अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परन्तपौ ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथस्थितौ ॥ ५४ ॥

कर्ण! आज तुम अभी एक रथपर बैठे लाल नेत्रवाले, शत्रुतापन श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखोगे ॥ ५४ ॥

सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् ।
तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि ॥ ५५ ॥

राधेय! जिसके श्रीकृष्ण सारथि हैं और गाण्डीव धनुष है, यदि उस अर्जुनको आज तुम मारोगे तो तुम ही हमारे राजा हो जाओगे ॥ ५५ ॥

एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः ।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली ।
इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युमान् ॥ ५६ ॥

देखो, अर्जुनको संशप्तक सेनाने पुकारा और ये महाबलवान् अर्जुन उनसे युद्ध करनेको जाते हैं। संग्राममें अर्जुनने शत्रु संशप्तकोंको मार भी डाला। मद्रराज शल्यके ऐसे वचन सुन कर्णने महाक्रोध करके उनसे कहा ॥ ५६ ॥

पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः ।
एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नः शोकसागरे ॥ ५७ ॥

ये देखो, संशप्तकोंने क्रोध करके अर्जुनको चारों ओरसे आक्रमण कर दिया । अब अर्जुन मेघमें छिपे सूर्यके समान नहीं दिखाई देते । हे शल्य ! अर्जुनका यहीं अन्त हुआ है । ये देखो इस शोकसमुद्रमें अर्जुन डूब गये ॥ ५७ ॥

शल्य उवाच

वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम् ।
को वानिलं निगृह्णीयात्पिबेद्वा को महार्णवम् ॥ ५८ ॥

शल्य बोले, जलसे वरुणको और इन्धनसे अग्निको कौन मार सकता है ? वायुको कौन रोक सकता है ? भला समुद्रको कौन पीसकता है ? ॥ ५८ ॥

ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि निग्रहम् ।
न हि शक्योऽर्जुनो जेतुं सेन्द्रैः सर्वैः सुरासुरैः ॥ ५९ ॥

और मैं इन्हीं सबके समान रूपमें अर्जुनको युद्धमें भी अपराजित मानता हूं । अर्जुन सब राक्षस और देवताओंके सहित इन्द्रसे भी नहीं जीते जा सकते ॥ ५९ ॥

अथैवं परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव ।
न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम् ॥ ६० ॥

यदि इस प्रकार तुम वचनोंहीसे जीत समझकर प्रसन्न होते हो तो अपने मनमें कहकर प्रसन्न हुआ करो। अर्जुनको युद्धमें कोई भी जीत नहीं सकता, इसलिये कोई दूसरा मनोरथ करो ॥ ६० ॥

बाहुभ्यामुद्धरेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ६१ ॥

जो अर्जुनको युद्धमें जीत सके, वह अपने हाथोंपर पृथ्वीको उठा सकता है, क्रोध करके इस सारी प्रजाको भस्म कर सकता है और देवताओंको स्वर्गसे गिरा सकता है ॥ ६१ ॥

पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् ।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवाचलम् ॥ ६२ ॥

ये देखो, अनायास महान् कर्म करनेवाले प्रचंड वीर महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन दूसरे मेरु पर्वतके समान अचल खडे हुए प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६२ ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन् ।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ६३ ॥

सदाके क्रोधी, बहुत दिनतक वैरका स्मरण करनेवाले, अमर्षशील पराक्रमी भीमसेन विजयकी इच्छा करके आज युद्ध करनेको खडे हैं ॥ ६३ ॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
तिष्ठत्यसुकरः संख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥ ६४ ॥

ये देखो, सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ, शत्रुओंके नगरोंपर विजय पानेवाले, शत्रुओंके लिये इनको पराजित करना सहज साध्य नहीं है ऐसे साक्षात् धर्मराज युधिष्ठिर युद्धमें खडे हैं ॥ ६४ ॥

एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ६५ ॥

ये देखो, अश्विनीकुमारोंके समान सुन्दर, दुर्जय, दोनों भाई पुरुषसिंह नकुल और सहदेव युद्धमें खडे हैं ॥ ६५ ॥

दृश्यन्त एते कार्ष्णेयाः पञ्च पञ्चाचला इव ।
व्यवस्थिता योत्स्यमानाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि ॥ ६६ ॥

ये देखो, अर्जुनके समान पराक्रमी योद्धा द्रौपदीके पांचों पुत्र युद्धकी इच्छासे पर्वतोंके समान अविचल समरमें खडे हैं ॥ ६६ ॥

एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
हीनाः सत्यजिता वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ६७ ॥

ये देखो, महातेजस्वी द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न अपने परित्यक्त, सत्यविजयी वीर भाइयोंके सहित युद्धके लिये खडे हैं ॥ ६७ ॥

इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः ।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद्भृशम् ॥ ६८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ १८६० ॥

उन दोनों पुरुषसिंह शल्य और कर्णकी ये बातें होते ही होते, दोनों सेनाएं गङ्गा और यमुनाके समान वेगसे आ मिलीं ॥ ६८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ १८६० ॥

: ३२ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च सञ्जय ।
संशप्तकान्कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! इस प्रकार सब सेनाओंकी व्यूह रचना होगई और दोनों ओरकी सेनाएं परस्पर युद्ध करने लगीं, उसके पश्चात् अर्जुनने संशप्तकोंकी और कर्णने पाण्डवोंकी सेनाके सङ्ग कैसे युद्ध किया ? ॥ १ ॥

एतद्विस्तरतो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि ।
न हि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान्रणे ॥ २ ॥

तुम इस विषयमें कुशल हो, इसलिये हमसे युद्धके विषयमें विस्तारपूर्वक कहो; समरमें हम वीरोंका पराक्रम सुनकर तृप्त नहीं होते ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

तत्स्थाने समवस्थाप्य प्रत्यमित्रं महाबलम् ।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– तुम्हारे पुत्रकी दुर्नीतिके कारण शत्रुओंकी बडी भारी बलवान् सेनाको युद्धमें उपस्थित देखकर, अर्जुनने भी अपनी सेनाका व्यूह बनाया ॥ ३ ॥

तत्सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखैर्व्यूढमशोभत महद्बलम् ॥ ४ ॥

उस हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे भरे हुए पाण्डवोंकी सेनाके व्यूहके मुखमें सेनापति धृष्टद्युम्न खडे हुए, इससे वह विशाल सेना शोभित होने लगी ॥ ४ ॥

पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।
पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥ ५ ॥

उस समय कबूतर रङ्गके समान घोडोंके रथ पर चढे हुए, धनुषधारी वीर धृष्टद्युम्नका तेज सूर्य और चन्द्रमाके समान बना । उस समय धृष्टद्युम्नको सब देहधारी कालके समान देखने लगे ॥ ५ ॥

पार्षतं त्वभि संतस्थुर्द्रौपदेया युयुत्सवः ।
सानुगा भीमवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव ॥ ६ ॥

उस समय शस्त्रधारी द्रौपदीके सब पुत्र युद्धके लिये उत्सुक होकर भयंकर शरीरवाले अपने सेवकों सहित धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके लिये उनके पास खडे हुए । तब धृष्टद्युम्न तारोंके बीच चन्द्रमाके समान शोभित हुए ॥ ६ ॥

अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तकान्रणे ।
क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ॥ ७ ॥

इस प्रकार सेनाओंकी व्यूह रचना होनेपर समरमें संशप्तकोंकी ओर देखकर अर्जुनने भी क्रोध करके अपने गाण्डीव धनुषकी टंकार करके संशप्तकोंपर धावा किया ॥ ७ ॥

अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन्वधैषिणः ।
विजये कृतसंकल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥

इसी प्रकार संशप्तक भी विजयके लिये दृढ संकल्प करके, मरनेपरही युद्धसे निवृत्त होनेका निश्चय समझकर अर्जुनको मारनेकी इच्छा करके उनकी ओर आक्रमण करनेको आये ॥८॥

तदश्वसंघबहुलं मत्तनागरथाकुलम् ।
पत्तिमच्छूरवीरौघैर्द्रुतमर्जुनमाद्रवत् ॥ ९ ॥

उनकी सेनामें घुडसवारोंके संघ बहुत थे । मतवाले हाथी और रथ भरे हुए थे । पदातियोंसे भरी हुई उस सेनाके शूरवीरोंके समुदायने शीघ्र अर्जुन पर धावा किया ॥ ९ ॥

स संप्रहारस्तुमुलस्तेषामासीत्किरीटिना ।
तस्यैव नः श्रुतो यादृङ्निवातकवचैः सह ॥ १० ॥

जैसे हमने सुना था, कि निवातकवचोंके सङ्ग अर्जुनने युद्ध किया, वैसे ही किरीटधारी अर्जुनके साथ संशप्तकोंका वह तुमुल युद्ध हुआ ॥ १० ॥

रथानश्वान्ध्वजान्नागान्पत्तीन्रथपतीनपि ।
इषून्धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् ॥ ११ ॥

अर्जुनने अपने बाणोंसे रथ, घोडे, ध्वजा, हाथी, लडते हुए पदाति और रथीवीर बाण, धनुष, खड्ग, चक्र, परश्वध ॥ ११ ॥

सायुधानुद्यतान्बाहूनुद्यतान्यायुधानि च ।
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः ॥ १२ ॥

शस्त्रोंके सहित उठे हुए हाथ, अनेक प्रकारके शस्त्र और शत्रुओंके सहस्रों शिर काट दिये ॥ १२ ॥

तस्मिन्सैन्ये महावर्ते पातालावर्तसंनिभे ।
निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तका मुदा ॥ १३ ॥

उस समुद्ररूपी विशाल सेनाके चक्रमें जो पातालके भंवरके समान था, अर्जुनके उस रथको डूबता हुआ देख, संशप्तक प्रसन्न होकर गर्जने लगे ॥ १३ ॥

स पुरस्तादरीन्हत्वा पश्चार्धेनोत्तरेण च ।
दक्षिणेन च बीभत्सुः क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ १४ ॥

जैसे प्रलयकालमें शिव क्रोध करके प्रजाका नाश करते हैं, वैसे ही अर्जुन पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशाओंमें घूमकर शत्रुओंको मारने लगे ॥ १४ ॥

अथ पाञ्चालचेदीनां सृञ्जयानां च मारिष ।
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत्परमदारुणः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! उधर तुम्हारी सेनाके सङ्ग सृञ्जय, पाञ्चाल और चेदि देशके क्षत्रिय वीर अत्यंत घोर युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः ।
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकैः प्रहारिणः । ॥ १६ ॥

तुम्हारी ओरसे रथियोंकी सेनामें प्रहार करनेमें कुशल कृपाचार्य, कृतवर्मा और सुबलपुत्र शकुनि ये क्रुद्ध होकर, प्रसन्न हुई सेनाके साथ ॥ १६ ॥

कोसलैः काशिमत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि ।
शूरसेनैः शूरवीरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः ॥ १७ ॥

कोसल, काशि, मत्स्य, कारुष, कैकय और शूरसेन देशके अत्यन्त शूर क्षत्रियोंसे—ये युद्धदुर्मद वीर युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥

तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मप्रणाशनम् ।
शूद्रविट्क्षत्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम् ॥ १८ ॥

यह धर्मके अनुसार होनेवाला घोर युद्ध शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय वीरोंको स्वर्ग पहुंचानेवाला, यश देनेवाला और पाप, प्राण तथा देहका नाश करनेवाला हुआ ॥ १८ ॥

दुर्योधनोऽपि सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ ।
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः ॥ १९ ॥

हे भरतकुल सिंह ! अनन्तर राजा दुर्योधन भी अपने भाइयोंके समेत, कुरुवीरोंसे और मद्रदेशके महारथी वीरोंसे सुरक्षित होकर ॥ १९ ॥

पाण्डवैः सहपाञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च ।
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरोऽभ्यपालयत् ॥ २० ॥

समरमें पाण्डवों, पाञ्चालों, चेदिदेशके वीरों और सात्यकिके साथ युद्ध करते हुए, कर्णकी रक्षा करने लगे ॥ २० ॥

कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम् ।
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २१ ॥

कर्ण भी अपने तेज बाणोंसे पाण्डवोंकी महान् सेनाको मार कर, श्रेष्ठ रथियोंको व्यथित करके, युधिष्ठिरको पीडा देने लगा ॥ २१ ॥

विपत्रायुध देहासून्कृत्वा शत्रून्सहस्रशः ।
युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत् ॥ २२ ॥

वह शत्रुओंके सहस्रों वीरोंको वाहन, शस्त्र, शरीर और प्राणोंसे रहित करके, उनको स्वर्ग और यश युक्त करके, अपनी सेनाको प्रसन्न करने लगा ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यत्तत्प्रविश्य पार्थानां सेनां कुर्वञ्जनक्षयम् ।
कर्णो राजानमभ्यगच्छत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके और अनेक वीरोंका नाश करके कर्ण राजा युधिष्ठिरके पास किस प्रकार गया ? सो हमसे कहो ॥ २३ ॥

के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन् ।
कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २४ ॥

उस समय पाण्डवोंके कौन कौनसे प्रमुख वीरोंने युद्धमें कर्णको रोका ? और किनको कुचल कर सूतपुत्र कर्णने युधिष्ठिरको पीडित किया ? ॥ २४ ॥

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नमुखान्पार्थान्दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान् ।
समभ्यधावत्त्वरितः पाञ्चालाञ्शत्रुकर्शनः ॥ २५ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जब शत्रुनाशन कर्णने धृष्टद्युम्न आदि पांचाल वीरोंको युद्धमें खडा देखा तब शीघ्रतासे उनकी ओर दौडे ॥ २५ ॥

तं तूर्णमभिधावन्तं पाञ्चाला जितकाशिनः ।
प्रत्युद्ययुर्महाराज हंसा इव महार्णवम् ॥ २६ ॥

महाराज ! कर्णको शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करते देख विजयसे प्रकाशित होनेवाले पाञ्चाल वीर उनकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे हंस महा सरोवरकी ओर दौडते हैं ॥ २६ ॥

ततः शङ्खसहस्राणां निस्वनो हृदयंगमः ।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥ २७ ॥

उसी समय दोनों ओरसे सहस्रों शंखोंका मधुर शब्द होने लगा । साथ ही भयंकर भेरीनाद होने लगा ॥ २७ ॥

×

नानावादित्रनादश्च द्विपाश्वरथनिस्वनः ।
सिंहनादश्च वीराणामभवद्दारुणस्तदा ॥ २८ ॥

दोनों ओरसे नाना प्रकारके बाजाओंकी आवाज, हाथियोंके चिंघाडने, घोडोंके हींसने और रथोंके पहियोंका शब्द होने लगा; वीरोंके सिंहनादका दारुण शब्द होने लगा ॥ २८ ॥

साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम् ।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं व्यघूर्णत ॥ २९ ॥

उस शब्दसे पर्वत, वृक्ष और समुद्रोंके सहित पृथ्वी, वायु और मेघों सहित आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंके सहित स्वर्ग घूमतेसे दीखने लगे ॥ २९ ॥

अति भूतानि तं शब्दं मेनिरेऽति च विव्यथुः ।
यानि चाप्लवसत्त्वानि प्रायस्तानि मृतानि च ॥ ३० ॥

जिन बलवान् प्राणियोंने उस शब्दको सुना, वे सब अति विव्हल होने लगे, और उनमें जो दुर्बल प्राणी थे, वे प्रायः मर गये ॥ ३० ॥

अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् ।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥ ३१ ॥

तब कर्णने अत्यंत क्रोध करके शीघ्रतासे अपने तेज अस्त्रसे पाण्डवोंकी सेनाको इस प्रकार मारना आरम्भ किया, जैसे इन्द्र राक्षसोंकी सेनाका नाश करते हैं ॥ ३१ ॥

स पाण्डवरथांस्तूर्णं प्रविश्य विसृजञ्शरान् ।
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत्सप्तसप्ततिम् ॥ ३२ ॥

कर्णने पाण्डवोंकी रथ सेनामें प्रवेश करके अपने तेज बाणोंकी वर्षा करके सतहत्तर प्रभद्रक वंशी प्रधान वीरोंको मारा ॥ ३२ ॥

ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः ।
अवधीत्पञ्चविंशत्या पाञ्चालान्पञ्चविंशतिम् ॥ ३३ ॥

उसी समय रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी कर्णने अपने सुंदर पंखवाले तेज पच्चीस बाणोंसे पाञ्चाल देशके पच्चीस क्षत्रियोंको मारा ॥ ३३ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः ।
चेदिकानवधीद्वीरः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३४ ॥

शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण करनेवाले सुवर्णमय उत्तम पङ्ख युक्त तेज नाराच बाणोंसे चेदि देशके सैकडों और सहस्रों क्षत्रियोंको वीर कर्णने मारा ॥ ३४ ॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ३५ ॥

महाराज ! कर्णको इस प्रकार समरमें अतिमानुष कर्म करते देख, पाञ्चाल देशके रथियोंने सब ओरसे घेर लिया ॥ ३५ ॥

ततः संधाय विशिखान्पञ्च भारत दुःसहान् ।
पाञ्चालानवधीत्पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ ३६ ॥

हे भारत ! तब बलवान् वैकर्तन कर्णने अपने धनुष पर पांच दुःसह बाण चढाये और उनसे पांच पाञ्चाल क्षत्रियोंको मारा ॥ ३६ ॥

भानुदेवं चित्रसेनं सेनाबिन्दुं च भारत ।
तपनं शूरसेनं च पाञ्चालानवधीद्रणे ॥ ३७ ॥

उन पांचोंके नाम ये थे– भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिंदु, तपन और शूरसेन । इन प्रधान पांच वीरोंको युद्धमें कर्णने मारा ॥ ३७ ॥

पाञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः ।
हाहाकारो महानासीत्पाञ्चालानां महाहवे ॥ ३८ ॥

उस महायुद्धमें बाणोंसे उन शूरवीर पाञ्चालोंके मारे जानेसे पांचाल सेनामें महान् हाहाकार होने लगा ॥ ३८ ॥

तेषां संकीर्यमाणानां हाहाकारकृता दिशः ।
पुनरेव च तान्कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥ ३९ ॥

उन इधर उधर बिखरे हुए सैनिकोंके हाहाकारसे सब दिशाएं पूरित हो गयीं । फिर कर्णने उनको भी बाणोंसे तुरंतही मार डाला ॥ ३९ ॥

चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥ ४० ॥

हे मारिष ! कर्णके दो दुर्जय पुत्र सुषेण और सत्यसेन, जो उनके रथके पहियोंकी रक्षा कर रहे थे, वे भी अपने प्राणोंकी आशा छोडकर घोर युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

पृष्ठगोपस्तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः ।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ ४१ ॥

कर्णका बडा बेटा वृषसेन कर्णके रथका पृष्ठरक्षक था, वह स्वयं कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहा था ॥ ४१ ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः ।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥ ४२ ॥

तब धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पांचों पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रभद्रक प्रमुख वीर ॥ ४२ ॥

चेदिकेकयपाञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः ।
समभ्यधावन्राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥

चेदि, कैकेय, पाञ्चाल, मत्स्यदेशीय प्रहार करनेवाले वीर तथा नकुल और सहदेव कवच धारण करके, राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उसपर दौडे ॥ ४३ ॥

त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च ।
अभ्यवर्षन्विमृद्नन्तः प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥ ४४ ॥

जैसे वर्षाकालमें पर्वतके ऊपर मेघ जलकी धारा वर्षते हैं, उसी प्रकार वे सब वीर अपनी सेनाको कुचलनेवाले कर्णके ऊपर अनेक प्रकारके शस्त्र और बाण वर्षाने लगे ॥ ४४ ॥

पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः ।
त्वदीयाश्चापरे राजन्वीरा वीरानवारयन् ॥ ४५ ॥

हे राजन् ! अपने पिताकी रक्षा इच्छिनेवाले प्रहार कुशल कर्णके पुत्र और तुम्हारी सेनाके दूसरे अनेक वीर उन वीरोंसे युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥

सुषेणो भीमसेनस्य छित्वा भल्लेन कार्मुकम् ।
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥ ४६ ॥

सुषेणने अपने भल्ल बाणसे भीमसेनका धनुष काट दिया और उनके हृदयमें सात नाराच बाण मारकर भयंकर गर्जने लगा ॥ ४६ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः ।
सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद्धनुः ॥ ४७ ॥

अनन्तर महा पराक्रमी भीमसेनने दुसरा सुदृढ धनुष लेकर उसपर रोदा चढाया, और सुषेणका धनुष काट दिया ॥ ४७ ॥

विव्याध चैनं नवभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः ।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः ॥ ४८ ॥

फिर क्रोध करके नृत्य करते हुएसे भीमने सुषेणको नौ बाणोंसे विद्ध किया और कर्णको शीघ्र ही तिहत्तर तीक्ष्ण बाण मारे ॥ ४८ ॥

सत्यसेनं च दशभिः साश्वसूतध्वजायुधम् ।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ ४९ ॥

अनन्तर कर्णपुत्र सत्यसेनको भीमने मित्रोंके बीचमें उनके देखते ही दस बाण मारकर उसके घोडे, सारथि, ध्वज और आयुधोंसहित काट दिया ॥ ४९ ॥

क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् ।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ ५० ॥

भीमके क्षुरसे कटा हुआ सत्यसेनका चन्द्रमुखवाला शिर इस प्रकार कटकर पृथ्वीमें सुंदर दिखाई दे रहा था, जैसे दण्डीसे टूटकर कमल पुष्प गिरता है ॥ ५० ॥

हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान्पुनरार्दयत् ।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापे तावप्यथार्दयत् ॥ ५१ ॥

कर्णके पुत्रको मारकर भीमसेन फिर तुम्हारे अन्य वीरोंको कुचलने लगे। उन्होंने कृपाचार्य और हार्दिक्यके धनुषोंको काटकर उनको भी घायल किया ॥ ५१ ॥

दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः ।
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ ॥ ५२ ॥

दुःशासनको तीन बाण और शकुनिको छः लोहेके बाण मारकर विद्ध किया। इसके पश्चात् अपने तेज बाणोंसे उलूक और पतत्रि इन दोनोंको रथहीन कर दिया ॥ ५२ ॥

हे सुषेण हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम् ।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥ ५३ ॥

इसके पश्चात् तीक्ष्ण बाण हाथमें लेकर चलाते कहा कि, हे सुषेण ! तुम मारे गये। कर्णने उस बाणको अपने बाणसे काट दिया और भीमसेनको तीन बाणोंसे घायल किया ॥ ५३ ॥

अथान्यमपि जग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम् ।
सुषेणायासृजद्भीमस्तमप्यस्याच्छिनद्वृषः ॥ ५४ ॥

तब भीमसेनने दूसरा उत्तम तेजबाण लेकर सुषेणकी ओर चलाया, कर्णने उसको भी काट गिराया ॥ ५४ ॥

पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनं रथेषुभिः ।
पुत्रं परीप्सन्विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥ ५५ ॥

अनन्तर कर्णने अपने पुत्रकी रक्षाके लिये घोर पराक्रमी भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनपर तिहत्तर बाण मारे ॥ ५५ ॥

सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम् ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ ५६ ॥

सुषेणने भार सहन करनेवाला उत्तम धनुष धारण करके नकुलके हृदय और हाथोंमें पांच बाण मारे ॥ ५६ ॥

नकुलस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा भारसहैर्दृढैः ।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ५७ ॥

नकुलने भी सुषेणको भार सहन करनेमें समर्थ बीस बाणोंसे विद्ध किया और गर्जने लगे। नकुलके गर्जनेसे कर्ण बहुत डर गये ॥ ५७ ॥

तं सुषेणो महाराज विद्ध्वा दशभिराशुगैः ।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥ ५८ ॥

हे महाराज ! अनन्तर महारथी सुषेणने दस बाणोंसे नकुलको विद्ध करके, शीघ्रही अपने तेज क्षुरप्र बाणसे उनका धनुप काट दिया ॥ ५८ ॥

अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्च्छितः ।
सुषेणं बहुभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ५९ ॥

अनन्तर नकुलने अत्यंत क्रोध करके दूसरा धनुप लिया और सुषेणको नौ बाण मारकर उसे युद्धमें रोक दिया ॥ ५९ ॥

स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा ।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः ।
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा ॥ ६० ॥

राजन् ! शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले नकुलने अपने बाणोंसे सब दिशाओंको पूरित कर दिया; फिर तीन बाणोंसे सुषेण और उसके सारथिको भी घायल किया। अनन्तर तीन तेज भल्ल बाणोंसे उनके धनुषके तीन टुकडे कर दिये ॥ ६० ॥

अथान्यद्धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्च्छितः ।
अविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः ॥ ६१ ॥

फिर सुषेणने क्रोध करके दूसरा धनुष लिया और नकुलको साठ और सहदेवको सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ ६१ ॥

तद्युद्धं सुमहद्घोरमासीद्देवासुरोपमम् ।
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति ॥ ६२ ॥

यह युद्ध देवासुरयुद्धके समान भयंकर हुआ। एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक घोर बाण चलाकर परस्पर घायल करने लगे ॥ ६२ ॥

सात्यकिर्वृषसेनस्य हत्वा सूतं त्रिभिः शरैः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः ।
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥ ६३ ॥

सात्यकिने तीन बाणोंसे वृषसेनके सारथिको मार डाला। एक भल्ल बाणसे उसका धनुप काट दिया और सात बाणोंसे उसके घोडोंको मार डाला और एक बाणसे ध्वजा काट दी, फिर तीन बाण उसके हृदयमें मारे ॥ ६३ ॥

अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात्पुनरुत्थितः ।
अथो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मभृदभ्ययात् ॥ ६४ ॥

उन बाणोंके लगनेसे क्षण भरके लिये उसे मूर्च्छा हो गयी और वह अपने रथपर ही बैठा रहा। अनन्तर उठकर सात्यकिको मारनेके लिये ढाल और तलवार लेकर उनकी ओर दौडा ॥ ६४ ॥

तस्य चाप्लवतः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ।
वराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ॥ ६५ ॥

सात्यकिने वृषसेनको शीघ्रतासे आते देख वराहकर्ण नामक दस बाणोंसे उसका खड्ग और ढालको काटके गिरा दिया ॥ ६५ ॥

दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ।
आरोप्य स्वरथे तूर्णमपोवाह रथान्तरम् ॥ ६६ ॥

दुःशासनने वृषसेनको रथ और शस्त्रहीन हुआ देखकर तुरंत ही अपने रथपर चढा लिया और युद्धसे हटा दिया ॥ ६६ ॥

अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ।
कर्णस्य युधि दुर्धर्षः पुनः पृष्ठमपालयत् ॥ ६७ ॥

अनन्तर महारथी वृषसेन दूसरे रथपर चढकर युद्धमें आये। इसके पश्चात् फिर दुर्धर्ष वृषसेन युद्धमें कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगे ॥ ६७ ॥

दुःशासनं तु शैनेयो नवैर्नवभिराशुगैः ।
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् ॥ ६८ ॥

फिर सात्यकिने नौ नये बाणोंसे दुःशासनको रथ, सारथि और घोडोंसे विरहित किया और उनके माथेमें तीन बाण मारे ॥ ६८ ॥

स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन्बलम् ॥ ६९ ॥

तब दुःशासन विधिवत् योग्य बनाये, अनेक शस्त्रोंसे भरे दूसरे रथपर चढे और कर्णका बल बढानेके लिये पाण्डवोंसे युद्ध करने लगे ॥ ६९ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद्दशभिः शरैः ।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः ॥ ७० ॥

तब धृष्टद्युम्नने कर्णको दस बाण मारकर विद्ध किया, द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, सात्यकिने सात, ॥ ७० ॥

भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च पंचभिः।
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकश्च सप्तभिः।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥ ७१ ॥

भीमसेनने चौंसठ, सहदेवने सात, नकुलने तीस, शतानीकने सात, शिखण्डीने दस और वीर धर्मराज युधिष्ठिरने सौ बाण कर्णको मारे ॥ ७१ ॥

एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः।
अभ्यर्दयन्महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥ ७२ ॥

राजेन्द्र! उस घोर युद्धमें इनको आदि लेकर और भी अनेक प्रधान वीर अपनी विजयकी इच्छासे महा धनुर्धर सूतपुत्र कर्णको पीडित करने लगे ॥ ७२ ॥

तान्सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शितैः।
रथे चारु चरन्वीरः प्रत्यविध्यदरिंदमः ॥ ७३ ॥

रथसे उत्तम रीतिसे विचरनेवाले शत्रुदमन वीर सूतपुत्र कर्णने उन सब वीरोंको दस दस बाण मारे ॥ ७३ ॥

तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः।
अपश्याम महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७४ ॥

हे महाभाग! हमने उस समय महात्मा कर्णके अस्त्रबल और शीघ्रताको देखा, उस समय उन्होंने अद्भुतसा कर्म किया ॥ ७४ ॥

न ह्याददानं ददृशुः संदधानं च सायकान्।
विमुञ्चन्तं च संरम्भाद्ददृशुस्ते महारथम् ॥ ७५ ॥

उस समय कर्णको बाण निकालते, धनुषपर चढाते किसीने भी नहीं देखा; केवल उस महारथीको क्रोधपूर्वक बाणोंको छोडते ही देखा ॥ ७५ ॥

द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चाशु प्रणुन्ना निशितैः शरैः।
अरुणाभ्राभृताकारं तस्मिन्देशे बभौ वियत् ॥ ७६ ॥

अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी और सब दिशाएं तीक्ष्ण बाणोंसे पूरित हो गईं, उस प्रदेशमें आकाश लाल रंगके बादलोंसे आच्छादित हुआसा दीखने लगा ॥ ७६ ॥

नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान्।
यैर्विद्धः प्रत्यविध्यत्तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः ॥ ७७ ॥

उस समय महाप्रतापी धनुषधारी राधापुत्र कर्ण नाचते हुए मनुष्यके समान दीखते थे, जिसने कर्णको एक एक बाणसे विद्ध किया था, कर्णने उनमेंसे प्रत्येकको उससे तिगुने बाण मारकर घायल किया ॥ ७७ ॥

दशभिर्दशभिश्चैनान्पुनर्विद्ध्वा ननाद ह।
साश्वसूतध्वजच्छत्रास्ततस्ते विवरं ददुः ॥ ७८ ॥

कर्णने फिर दस दस बाणोंसे घोडे, सारथि, ध्वज और छत्रों सहित इन सबको व्याकुल कर दिया और वह सिंहनाद करने लगा। तब पाण्डवोंके वीरोंने उसे आगे जानेके लिये मार्ग दिया ॥ ७८ ॥

तान्प्रमुद्नन्महेष्वासात्राधेयः शरवृष्टिभिः।
राजानीकमसंबाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः ॥ ७९ ॥

शत्रुकर्शन राधापुत्र कर्णने बाणोंकी वर्षासे उन महा धनुर्धरोंको कुचलकर राजा युधिष्ठिरकी सेनामें अविरोध प्रवेश किया ॥ ७९ ॥

स रथांस्त्रिशतान्हत्वा चेदीनामनिवर्तिनाम्।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्याच्छ्युधिष्ठिरम् ॥ ८० ॥

कर्णने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धसे पीछे न हटनेवाले तीन सौ चेदिदेशीय रथियोंको मारा और फिर युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ८० ॥

ततस्ते पाण्डवा राजञ्शिखण्डी च ससात्यकिः।
राधेयात्परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन् ॥ ८१ ॥

हे राजन् ! भीमसेन, नकुल, सहदेव—पाण्डव , शिखण्डी और सात्यकिने राधापुत्र कर्णसे राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ८१ ॥

तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे।
यत्ताः सेनामहेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः ॥ ८२ ॥

इसी प्रकार तुम्हारी ओरके सब महा धनुर्धर शूरवीर चारों ओरसे अनिवार्य कर्णकी प्रयत्न-पूर्वक रक्षा करने लगे ॥ ८२ ॥

नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्विशां पते।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ८३ ॥

हे पृथ्वीपते ! उस समय दोनों ओरसे अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। इसी प्रकार युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर लोग सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ८३ ॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ८४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ १९४४ ॥

इसके पश्चात् युधिष्ठिरको आगे करके सब कुन्तीपुत्र और कर्णको आगे करके हम कौरव लोग निर्भय होकर युद्ध करने लगे ॥ ८४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ १९४४ ॥

×

: ३३ :

संजय उवाच

विदार्य कर्णस्तां सेनां धर्मराजमुपाद्रवत् ।
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् धृतराष्ट्र ! सहस्रों रथ, हाथी, घोडे और पदातियोंसे घिरे हुए कर्ण उस सेनाको तोडकर युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ १ ॥

नानायुधसहस्राणि प्रेषितान्यरिभिर्नृप ।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसंभ्रमः ॥ २ ॥

शत्रुओंकी ओरसे चलते हुए अनेक प्रकारके सहस्रों शस्त्रोंको काटकर सावधान कर्णने उन सब वीरोंको अपने सैकडों तेज बाणोंसे निर्भयतापूर्वक बींध डाला ॥ २ ॥

निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सर्वशः ।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

उसने सर्वथा शत्रुओंके शिर, हाथ और जांघोंको काट डाला । वे मर कर पृथ्वीमें गिर गये, दूसरे घायल होकर भाग गये ॥ ३ ॥

द्राविडान्ध्रनिषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः ।
अभ्यर्दयञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे ॥ ४ ॥

सात्यकिकी प्रेरणासे फिर कर्णको युद्धमें मार डालनेकी इच्छासे द्रविड, आन्ध्र और निषाद-देशके पैदल सैनिकोंने उसपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥

ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥ ५ ॥

जैसे वायु चलनेसे शालके वृक्ष टूटकर पृथ्वीमें गिर जाते हैं, वैसे ही वे कर्णके बाणोंसे घायल होकर हाथ, शिर और कवच आदिसे रहित होकर एक साथही पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५ ॥

एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसापूरयन्दिशः ॥ ६ ॥

इस प्रकार युद्धमें सैकडों, हजारों और लाखों वीर मरकर शरीरसे पृथ्वीमें गिर पडे, तो भी उन्होंने अपने यशसे सब दिशाओंको पूर्ण किया ॥ ६ ॥

अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपाञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥ ७ ॥

जैसे वैद्य मन्त्र और औषधियोंसे रोगको रोकता है, ऐसे ही समरमें क्रोध भरे, यमराजके समान वैकर्तन कर्णको पाञ्चाल और पाण्डवोंने अपने बाणोंसे रोक दिया ॥ ७ ॥

स तान्प्रमृथ्याभ्यपतत्पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा ॥ ८ ॥

जैसे मन्त्र और औषधियोंको न मानकर प्रबल रोग बढता है, वैसे ही सब वीरोंको रौंदकर कर्ण युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ ८ ॥

स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपाञ्चालकेकयैः ।
नाशकत्तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥ ९ ॥

जैसे ब्रह्मवेताओंको मृत्यु नहीं मार सकती, वैसे ही कर्ण उन सबको लांघकर आगे नहीं जा सका । राजाकी रक्षा चाहनेवाले पाण्डव, पाञ्चाल और केकयोंने फिर कर्णको रोक दिया ॥ ९ ॥

ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १० ॥

अनन्तर कर्णको पास ही रोक दिया गया देख, शत्रुवीरनाशन महाराज युधिष्ठिर क्रोधसे आंखे लाल कर बोले ॥ १० ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फल्गुनेन यशस्विना ।
तथास्मान्बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ॥ ११ ॥

रे सूतपुत्र कर्ण ! हे मिथ्यादर्शी कर्ण ! तू हमारे वचन सुन । तू सदा संग्राममें यशस्वी अर्जुनके सङ्ग स्पर्धा करता है, सदा ही धृतराष्ट्रपुत्रके मतमें रहकर हमारी हानि किया करता है ॥ ११ ॥

यद्बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यश्च पाण्डुषु ।
तत्सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥ १२ ॥

आज तुम्हारे पास जो कुछ बल पराक्रम हों, सो दिखाओ ! तुम्हारे मनमें पाण्डवोंके प्रति जो कुछ वैर या द्वेष हो, सो दिखाओ; आज हम इस घोरयुद्धमें तुम्हारी युद्धकी इच्छा नाश कर देंगे ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शितैः ॥ १३ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने लोहेके बने सुवर्ण पङ्खवाले दस तीक्ष्ण बाण कर्णपर चलाए ॥ १३ ॥

तं सूतपुत्रो नवभिः प्रत्यविध्यदरिन्दमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥

भारत ! शत्रुनाशन बडे धनुषवाले कर्णने भी हंसकर नौ वत्सदन्त बाण युधिष्ठिरकी ओर चलाये ॥ १४ ॥

ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः ।
जघान समरे शूरः शरैः संनतपर्वभिः ॥ १५ ॥

अनन्तर महात्मा युधिष्ठिरके रथके पहियोंकी रक्षा करनेवाले दो पाञ्चाल देशीय वीरोंको तीक्ष्ण क्षुर बाणोंसे समरमें शूर कर्णने मार डाला ॥ १५ ॥

तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः ।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू ॥ १६ ॥

वे दोनों श्रेष्ठ वीर महाराज युधिष्ठिरके रथके पास पिछले भागोंमें चन्द्रमाके पासके दो पुनर्वसु नक्षत्रोंके समान प्रकाशित होते थे ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविध्यत्त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ १७ ॥

युधिष्ठिरने फिर कर्णको तीस बाणोंसे घायल किया तथा सुषेण और सत्यसेनको भी तीन तीन बाण मारकर पीडित किया ॥ १७ ॥

शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम् ।
तांश्चास्य गोप्तॄन्विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ १८ ॥

शल्यको नव्वे और सूतपुत्र कर्णको तिहत्तर बाण मारे । उनके रक्षकोंको सीधे जानेवाले तीन तीन बाण मारे ॥ १८ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम् ।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विद्ध्वा षष्ट्यानदन्मुदा ॥ १९ ॥

तब अधिरथ पुत्र कर्णने हंसकर अपने धनुषको घुमाते हुए एक भल्लसे राजा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया और वह उन्हें साठ बाणोंसे विद्ध करके, प्रसन्न होकर गर्जने लगे ॥१९॥

ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्युधिष्ठिरम् ।
सूतपुत्रात्परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्शरैः ॥ २० ॥

अनन्तर महाराज युधिष्ठिरकी सूतपुत्र कर्णसे रक्षा करनेके लिये पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान वीर दौडे आये और कर्णके ऊपर बाण बर्षाते हुए उसको पीडा देने लगे ॥ २० ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २१ ॥

सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु, पाण्डय, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र और प्रभद्रक, ॥२१॥

यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः ।
कारूषा मत्स्यशेषाश्च केकयाः काशिकोसलाः ।
एते च त्वरिता वीरा वसुषेणमवारयन् ॥ २२ ॥

नकुल, सहदेव, भीमसेन और शिशुपालका पुत्र, कारुष, मत्स्य, कैकेय, काशि और कोसल देशके सब वीर शीघ्रता करके महाराजके पास पहुंचे और वसुषेणको रोकने लगे ॥ २२ ॥

जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध सायकैः ।
वराहकर्णैर्नाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः ।
वत्सदन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥ २३ ॥

उस समय पांचाल वीर जनमेजयने शीघ्र चलनेवाले बाणोंसे कर्णको और वराहकर्ण, नाराच, नालीक, तीक्ष्ण बाण, वत्सदन्त, विपाठ, क्षुरप्र, चटकामुख ॥ २३ ॥

नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथहस्त्यश्वसादिनः ।
सर्वतोऽभ्याद्रवन्कर्णं परिवार्य जिघांसया ॥ २४ ॥

आदि अनेक प्रकारके भयंकर अस्त्र शस्त्रोंसे घायल किया। फिर रथ, हाथी और घुडसवारोंकी सेना लेकर कर्णको मार डालनेकी इच्छासे सब ओरसे घिरकर आक्रमण किया ॥ २४ ॥

स पाण्डवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः ।
उदैरयद्ब्राह्ममस्त्रं शरैः संपूरयन्दिशः ॥ २५ ॥

इस प्रकार पाण्डवोंके प्रधान वीरोंसे सब ओरसे आक्रमण होनेपर कर्णने ब्रह्म अस्त्रको छोडकर बाणोंसे सब दिशाओंको पूरित कर दिया ॥ २५ ॥

ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्णपावकः ।
निर्दहन्पाण्डववनं चारुः पर्यचरद्रणे ॥ २६ ॥

तब बाणरूपी महान् ज्वाला और पराक्रम रूपी उष्णतासे युक्त, वीर कर्णरूपी अग्नि समरमे चारों ओर घूमकर पाण्डव रूपी वनको जलाने लगी ॥ २६ ॥

स संवार्य महास्त्राणि महेष्वासो महात्मनाम् ।
प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरैश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २७ ॥

अनन्तर महाधनुषधारी कर्णने महात्मा पाण्डव वीरोंके अस्त्रोंका निवारण करके, हंसकर बाणोंसे महाराज युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ २७ ॥

ततः संधाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम् ।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः ॥ २८ ॥

अनन्तर क्षणमात्रमें कर्णने नब्बे तेज बाणोंका संधान करके, उनसे युद्धमें महाराज युधिष्ठिरका कवच तोड दिया ॥ २८ ॥

तद्वर्म हेमविकृतं रराज निपतत्तदा ।
सविद्युदभ्रं सवितुः शिष्टं वातहतं यथा ॥ २९ ॥

जैसे सूर्यसे मिला हुआ बिजली सहित मेघ वायुका आघात पाकर नीचे गिरता है, वैसे ही उनका सुवर्णभूषित कवच गिरते समय शोभित हुआ ॥ २९ ॥

तदङ्गं पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टवर्म व्यरोचत ।
रत्नैरलंकृतं दिव्यैर्व्यभ्रं निशि यथा नभः ॥ ३० ॥

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरका कवच रहित दिव्य रत्नोंसे अलंकृत शरीर ऐसे शोभायमान दीखने लगा जैसे रात्रिमें निरभ्र आकाश नक्षत्रोंसे चमकता है ॥ ३० ॥

स विवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः ।
क्रुद्धः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति ॥ ३१ ॥

बाणोंसे कवच रहित हुए वह कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर रुधिरसे भीग गये । उन्होंने क्रुद्ध होकर सर्वशः लोहेकी बनी शक्ति अधिरथपुत्र कर्णपर चलाई ॥ ३१ ॥

तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः ।
सा छिन्ना भूमिमपतन्महेष्वासस्य सायकैः ॥ ३२ ॥

कर्णने सात बाणोंसे उस जलती हुई अग्निके समान आती हुई शक्तिको आकाशमें काट डाला। महाधनुर्धर कर्णके बाणोंसे कटी हुई वह शक्ति पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ३२ ॥

ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः ।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वा मुदानदत् ॥ ३३ ॥

तब युधिष्ठिरने कर्णके हाथ, ललाट और छातीमें चार तोमर मारे और प्रसन्न होकर गर्जने लगे ॥ ३३ ॥

उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ।
इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत् ॥ ३४ ॥

उनके लगनेसे रक्तसे लिपटे हुए, क्रोधित सर्पके समान फुफकारते हुए, कर्णने एक भल्ल बाणसे महाराजकी ध्वजा काटकर, तीन बाणोंसे पाण्डुपुत्रको घायल किया । अनन्तर उनके तूणीरोंको काटकर, रथके भी तिलके समान टुकडे कर दिये ॥ ३४ ॥

एवं पार्थो व्यपायात्स निहतपार्ष्णिसारथिः ।
अशक्नुवन्प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जिनके पहलेही पृष्ठरक्षक मारे गये थे, वे दुःखित मनवाले युधिष्ठिर कर्णके आगे खडे न रह सके और युद्धभूमिसे वे हट गये ॥ ३५ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयः स्कन्धं संस्पृश्य पाणिना।
अब्रवीत्प्रहसन्राजन्कुत्सयन्निव पाण्डवम् ॥ ३६ ॥

राजन्! तब राधापुत्र कर्ण युधिष्ठिरका पीछा करके, हाथसे उनका कन्धा छूकर, हंसकर और पाण्डुपुत्रकी निन्दा करते हुए बोला– ॥ ३६ ॥

कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः।
प्रजह्यात्समरे शत्रून्प्राणान्रक्षन्महाहवे ॥ ३७ ॥

आप क्षत्रियोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, क्षत्रिय धर्ममें स्थित होकर भी, महायुद्धमें प्राणोंकी रक्षाके लिये युद्धमें शत्रुओंको छोडकर कैसे भाग सकते हो? ॥ ३७ ॥

न भवान्क्षत्रधर्मेषु कुशलोऽसीति मे मतिः।
ब्राह्मे बले भवान्युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ॥ ३८ ॥

इससे हमने जान लिया कि आप क्षत्रिय धर्ममें निपुण नहीं हैं। केवल ब्रह्मबल, पढना और यज्ञ करने आदि धर्मको ही जानते हैं ॥ ३८ ॥

मा स्म युध्यस्व कौन्तेय मा च वीरान्समासदः।
मा चैनानप्रियं ब्रूहि मा च व्रज महारणम् ॥ ३९ ॥

हे कुन्तीपुत्र! आप कभी युद्ध मत कीजिये और वीरोंके सामने कभी न जाओ। न इन वीरोंसे अप्रिय वचन कहिये, महायुद्धमें कभी भी मत जाओ ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः।
न्यहनत्पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम्।
ततः प्रायाद्द्रुतं राजन्व्रीडन्निव जनेश्वरः ॥ ४० ॥

ऐसा कहकर महाबलवान् कर्णने युधिष्ठिरको छोड दिया। अनन्तर जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं, वैसे ही कर्ण पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे। राजन्! राजा युधिष्ठिर भी लज्जित होकर तुरंत एक ओरको चले गये ॥ ४० ॥

अथ प्रयान्तं राजानमन्वयुस्ते तदाच्युतम्।
चेदिपाण्डवपाञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः।
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४१ ॥

अनन्तर समरसे हटा जानेके पश्चात् चेदि, पाण्डव और पाञ्चाल वीर, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके पांचों शूर पुत्र और पाण्डुपुत्र माद्रीकुमार नकुल, सहदेव भी अच्युत युधिष्ठिरके पीछे चले गये ॥ ४१ ॥

ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ।
कुरुभिः सहितो वीरैः पृष्ठगैः पृष्ठमन्वयात् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरकी सेनाको युद्धसे विमुख होकर भागते देख, पीछा करनेवाले कौरव वीरोंके सहित कर्ण कुछ दूरतक पीछे दौडे ॥ ४२ ॥

शङ्खभेरीनिनादैश्च कार्मुकाणां च निस्वनैः ।
बभूव धार्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तदा ॥ ४३ ॥

तब तुम्हारी सेनामें अनेक शङ्ख, भेर बजने लगे, और धनुषोंकी ध्वनि होने लगी। तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके सैनिक सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरः ।
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान्कर्णविक्रमम् ॥ ४४ ॥

कुरुकुल श्रेष्ठ महाराज ! युधिष्ठिर भी श्रुतकीर्तिके रथपर शीघ्रतासे चढे, फिर कर्णके पराक्रम-को देखने लगे ॥ ४४ ॥

काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
तान्योधानब्रवीत्क्रुद्धो हतैनं वै सहस्रशः ॥ ४५ ॥

अपनी सेनाको भागते देख धर्मराज युधिष्ठिर क्रोध करके अपने सब वीरोंसे बोले, ये क्या हो रहा है ? मारो, मारो ! उन्हें हजारोंसे मारो ॥ ४५ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः ।
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ॥ ४६ ॥

महाराजकी आज्ञा सुनते ही भीमसेन आदि सब पाण्डव महारथी तुम्हारे पुत्रोंसे युद्ध करनेको दौडे ॥ ४६ ॥

अभवत्तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ।
हस्त्यश्वरथपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ॥ ४७ ॥

हे भारत ! उस समय दोनों ओरसे हाथी, घोडे, रथी वीर और पैदल सैनिकोंका तथा शस्त्रोंका घोर शब्द होने लगा ॥ ४७ ॥

उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ।
इति ब्रुवाणा अन्योन्यं जघ्नुर्योधा रणाजिरे ॥ ४८ ॥

उस घोर युद्धमें एक दूसरेसे कहने लगा— उठो, शस्त्र चलाओ, युद्ध करो; टूट पडो— आदि वाक्य बोलते हुए सब एक दूसरेको मारने लगे ॥ ४८ ॥

अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ।
सम्यावृत्तैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ॥ ४९ ॥

वहां अस्त्रोंसे आवृत हो परस्पर मारनेवाले नरश्रेष्ठ शूरोंके छोडे हुए बाणोंकी वृष्टिसे आकाशमें मेघोंकी छायासी हो गयी ॥ ४९ ॥

विपताकाध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ।
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणा हतेश्वराः ॥ ५० ॥

अनेक घायल राजा पताका, ध्वजा, छत्र, अश्व, सारथि, आयुध, शरीर और अवयवोंसे रहित होकर युद्धभूमिमें मरकर गिर पडे ॥ ५० ॥

प्रवराणीव शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ।
सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ॥ ५१ ॥

जैसे पर्वतके उच्च शिखर टूटकर नीचले भागमें गिरते हैं, जैसे वज्रसे तोडे हुए पर्वत गिरते हैं, ऐसे ही महावतके सहित मारे गये हाथी पृथ्वीपर गिर गये ॥ ५१ ॥

छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालंकारविग्रहैः ।
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ॥ ५२ ॥

जिनके कवच, अलंकार और शरीर टूटकर अस्तव्यस्त होकर पृथ्वीमें गिर गये हैं, ऐसे सहस्रों घोडे वीरोंके सहित मर कर पृथ्वीमें गिरे ॥ ५२ ॥

विप्रविद्धायुधाङ्गाश्च द्विरदाश्वरथैर्हताः ।
प्रतिवीरैश्च संमर्दे पत्तिसंघाः सहस्रशः ॥ ५३ ॥

उस संग्राममें शत्रुओंके वीर, हाथी, घोडे और रथोंसे मारे गये; हजारों पैदल सैनिकोंके समूह युद्धमें मरकर गिर पडे थे । उनके आयुध और शरीरके अवयव टूटकर बिखर गये थे ॥ ५३ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ।
शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संस्तृता मही ॥ ५४ ॥

युद्ध कुशल वीरोंके मोटे, विस्तृत और लाल आंखोंवाले, कमल और चन्द्रमाके समान मुख-वाले शिरोंसे पृथ्वी सब जगह भर गयी थी ॥ ५४ ॥

तथा तु वितते व्योम्नि निस्वनं शुश्रुवुर्जनाः ।
विमानैरप्सरःसंघैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ ५५ ॥

आकाशमें भी लोगोंको आवाज सुनाई देती थी । आकाशमें विमानोंमें बैठी हुई अप्सराएं अनेक प्रकार गीत गाकर बाजे बजाने लगीं ॥ ५५ ॥

हतान्कृत्तानभिमुखान्वीरान्वीरैः सहस्रशः ।
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः ॥ ५६ ॥

वीरोंसे सम्मुख लडकर मारे गये, काटे गये हजारों वीरोंको अपने अपने विमानमें बिठलाकर अप्सराएं स्वर्गको ले जाने लगीं ॥ ५६ ॥

तदृदृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ।
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जग्मुः परस्परम् ॥ ५७ ॥

इस महान् आश्चर्यको प्रत्यक्ष देखकर सब शूर वीर स्वर्ग जानेकी इच्छासे प्रसन्न होकर परस्पर शीघ्रतापूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ५७ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ।
पत्तयः पत्तिभिर्नागा नागैः सह हयैर्हयाः ॥ ५८ ॥

रथी रथियोंसे विचित्र युद्ध करने लगे । पैदल पैदलोंसे, हाथी हाथियोंसे, घोडे घोडोंसे युद्ध करने लगे ॥ ५८ ॥

एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिजनक्षये ।
सैन्ये च रजसा व्याप्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान् ॥ ५९ ॥

जिस समय यह हाथी, घोडे और मनुष्योंका नाश करनेवाले घोर युद्ध होने लगा और दोनों सेनाओंमें धूल उडने लगी, तो सब भूमि उस धूलीसे व्याप्त हो गयी, तब दोनों पक्षके वीर आपस ही में एक दूसरेको मारने लगे ॥ ५९ ॥

कचाकचि बभौ युद्धं दन्तादन्ति नखानखि ।
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मविनाशनम् ॥ ६० ॥

कोई किसीके बाल पकडकर खींचने लगे और कोई किसीको नखूनोंसे नोचने लगे तथा कोई दांतोंसे काटने लगे । वीरोंकी मुक्कामुकी होने लगी । कोई मल्ल युद्ध करने लगे । यह युद्ध सैनिकोंके शरीर और पापोंका नाश करनेवाला हुआ ॥ ६० ॥

तथा वर्तति संग्रामे गजवाजिजनक्षये ।
नराश्वगजदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा ।
नराश्वगजदेहान्सा व्युवाह पतितान्बहून् ॥ ६१ ॥

हाथी, घोडे और मनुष्योंका नाश करनेवाला संग्राम होने लगा । अनन्तर मनुष्य, घोडे और हाथियोंके शरीरोंसे रुधिरकी नदी बह चली, उसमें पडे हुए हाथी, घोडे और मनुष्योंके असंख्य शरीर बहने लगे ॥ ६१ ॥

नराश्वगजसंबाधे नराश्वगजसादिनाम् ।
लोहितोदा महाघोरा नदी लोहितकर्दमा ।
नराश्वगजदेहान्सा वहन्ती भीरुभीषणी ॥ ६२ ॥

मनुष्य, घोडे और हाथियोंसे भरे हुए समरमें मनुष्य, घोडे, हाथी और सवारोंके रक्त ही उस नदीके जल थे । उस महाघोर नदीमें मांस और खून कीचडके समान लगते थे । मनुष्य, घोडे और हाथियोंके शरीरोंको बहाती हुई वह भयंकर नदी डरपोक मनुष्योंको भयभीत करती थी ॥ ६२ ॥

तस्याः परमपारं च व्रजन्ति विजयैषिणः ।
गाधेन च प्लवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्ज्य चापरे ॥ ६३ ॥

उसके दोनों तटपर खडे होकर विजयकी इच्छासे अनेक वीर जहां थोडा जल था वहां तैरकर और जहां गहरा था वहां डूबकर दूसरे पार जाते थे ॥ ६३ ॥

ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ।
सस्नुस्तस्यां पपुश्चासृङ्मम्लुश्च भरतर्षभ ॥ ६४ ॥

उस नदीमें जानेसे उन वीरोंके शरीर, कपडे, कवच और शस्त्र रक्तसे लाल हो गये । भरतश्रेष्ठ ! अनेक वीर उसमें स्नान करने लगे । कोई जलपान करने लगे और कोई उसे देखकर खिन्न हो गये ॥ ६४ ॥

रथानश्वान्नरान्नागानायुधाभरणानि च ।
वसनान्यथ वर्माणि हन्यमानान्हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहितम् ॥ ६५ ॥

उस समय हमने रथ, अश्व, नर, हाथी, आयुध, आभरण, वस्त्र, कवच, मारे जानेवाले और मृत तथा भूमि, आकाश, द्युलोक और दसों दिशा– ये सब प्रायः लाल ही लाल देखीं ॥ ६५ ॥

लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरिक्तेन शब्देन च विसर्पता ।
विषादः सुमहानासीत्प्रायः सैन्यस्य भारत ॥ ६६ ॥

हे भारत ! वहां सब ओर फैले रुधिरके शब्द, गन्ध, स्पर्श, रूप और रससे दोनों सेनाके मनमें महान् विषाद निर्माण हुआ ॥ ६६ ॥

तत्तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखैस्तव ।
भूयः समाद्रवन्वीराः सात्यकिप्रमुखा रथाः ॥ ६७ ॥

उस समय भीमसेन और सात्यकि आदि प्रमुख रथिवीरोंने विनष्ट हुई तुम्हारी सेनापर फिर जोरसे धावा किया ॥ ६७ ॥

तेषामापततां वेगमविषह्य महात्मनाम् ।
पुत्राणां ते महत्सैन्यमासीद्राजन्पराङ्मुखम् ॥ ६८ ॥

हे राजन् ! उन सब महात्माओंके असह्य वेगपूर्वक आक्रमणको देख, तुम्हारे पुत्रोंकी महान् सेना पराङ्मुख होकर भाग चली ॥ ६८ ॥

तत्प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ।
विध्वस्तचर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ॥ ६९ ॥
व्यद्रवत्तावकं सैन्यं लोडयमानं समन्ततः ।
सिंहार्दितं महारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥ ७० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ २०१४ ॥

उस समय तुम्हारी शत्रुओंसे सब ओरसे कुचली जाती हुई मनुष्य और घोडोंसे भरी हुई विशाल सेना इस प्रकार भागी, जैसे बडे जंगलमें सिंहसे पीडित हुए हाथियोंके झुण्ड व्याकूल होकर भागते हैं । उसके रथ, घोडे और हाथी इधर उधर बिखर गये, आवरण और कवच भग्न हो गये, और आयुध और धनुष्य नष्ट हो गये ॥ ६९–७० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ ॥ २०१४ ॥

: ३४ :

सञ्जय उवाच

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन्न्यवर्तत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! पाण्डवोंको तुम्हारी सेनापर आक्रमण करते देख, तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके पुकारनेपर भी भागती हुई तुम्हारी सेना पीछे न लौटी ॥ १ ॥

ततः पक्षात्प्रपक्षाच्च प्रपक्षैश्चापि दक्षिणात् ।
उदस्तशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन्रणे ॥ २ ॥

अनन्तर पक्षसे प्रपक्षकी और दक्षिणसे प्रपक्षकी सेनाके सहित, अनेक शस्त्र धारण करके कौरवोंके वीर समरमें भीमसेनकी ओर दौडे ॥ २ ॥

कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् ।
हंसवर्णान्हयाग्र्यांस्तान्प्रैषीद्यत्र वृकोदरः ॥ ३ ॥

कर्णने आपके सब वीरोंको युद्धसे पराङ्मुख होकर भागते देख, हंसके समान सफेद वर्णवाले उत्तम घोडोंको भीमसेनकी ओर हांका ॥ ३ ॥

ते प्रेषिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ४ ॥

संग्राममें शोभित होनेवाले शल्यके हांकनेसे कर्णके घोडे वेगसे भीमसेनके रथके पास जाकर मिल गये ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं दध्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ५ ॥

हे भरतकुलसिंह ! कर्णको अपनी ओर आते देख भीमसेनने महा क्रोध किया और उसके मारनेका विचार करने लगे ॥ ५ ॥

सोऽब्रवीत्सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
एनं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
संशयान्महतो मुक्तं कथंचित्प्रेक्षतो मम ॥ ६ ॥

अनन्तर उन्होंने महावीर सात्यकि और सेनापति धृष्टद्युम्नसे कहा कि, तुम दोनों धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करो, वे अभी ही मेरे देखते किसी प्रकार महान् प्राणसंकटसे मुक्त हुए हैं ॥ ६ ॥

अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ।
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ॥ ७ ॥

आज हमारे सामनेही दुरात्मा राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये महाराजकी सब युद्ध सामग्रीको नष्ट कर दिया ॥ ७ ॥

अन्तमद्य करिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ।
हन्ता वास्मि रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति ।
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ ८ ॥

हे धृष्टद्युम्न ! मैं आज इस दुःखका अन्त कर डालूंगा । आज इस घोर युद्धमें हम कर्णको मारेंगे, या वही हमको मारेगा; यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूं ॥ ८ ॥

राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददामि वै ।
अस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥ ९ ॥

अब हम महाराजको अनामतके रूपमें तुम्हें सौंप रहे हैं, तुम सब सावधान होकर महाराजकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक करो ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति ।
सिंहनादेन महता सर्वाः संनादयन्दिशः ॥ १० ॥

महाबाहु भीमसेन ऐसा कहकर अपने महान् सिंहनादसे दसों दिशाओंको पूरित करते हुए सूतपुत्र कर्णसे युद्ध करने चले ॥ १० ॥

दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥ ११ ॥

युद्धका स्वागत करनेवाले महापराक्रमी भीमसेनको शीघ्रतासे आते देख मद्रराज शल्यने सूतपुत्र कर्णसे कहा ॥ ११ ॥

पश्य कर्ण महाबाहुं क्रुद्धं पाण्डवनन्दनम् ।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम् ॥ १२ ॥

हे कर्ण ! देखो, यह पाण्डवनन्दन महाबाहु भीमसेन क्रोध किये, तुम्हारी ओरको चले आते हैं । ये बहुत दिनका इकट्ठा किया हुआ क्रोध तुम्हारे ऊपर निश्चित डालेंगे ॥ १२ ॥

ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन ।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे वा घटोत्कचे ॥ १३ ॥

हे कर्ण ! अभिमन्यु अथवा घटोत्कच राक्षसके मारे जानेपर भी मैंने भीमसेनका ऐसा रूप पहले नहीं देखा था, जैसा आज है ॥ १३ ॥

त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे ।
बिभर्ति यादृशं रूपं कालाग्निसदृशं शुभम् ॥ १४ ॥

ये सब तीनों लोकोंको क्रोध करके नाश कर सकते हैं। इनका रूप इस समय प्रलय कालकी अग्निके समान शोभित हो रहा है ॥ १४ ॥

इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप ।
अभ्यवर्तत वै कर्णं क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥ १५ ॥

राजन् ! मद्रराज शल्यके राधापुत्र कर्णसे ऐसे वचन कहते कहते ही क्रोधसे प्रदीप्त हुए भीमसेन कर्णके पास पहुंच गये ॥ १५ ॥

तथागतं तु संप्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
अब्रवीद्वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १६ ॥

महायोद्धा भीमसेनको अपने पास आया देख, राधापुत्र कर्ण हंस कर शल्यसे इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥

यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर ।
भीमसेनं प्रति विभो तत्सत्यं नात्र संशयः ॥ १७ ॥

हे मद्रराज ! आपने जो हमसे भीमसेनके विषयमें कहा, सो सब सत्य है, इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥

एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः ।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥ १८ ॥

ये भीमसेन महापराक्रमी, क्रोधी और महायोद्धा हैं; इन्हें अपने शरीर और प्राणका मोह नहीं है; और बलमें भी ये सबसे अधिक हैं ॥ १८ ॥

अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा ।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ।
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः ॥ १९ ॥

ये जिस समय विराट नगरमें अज्ञातवासमें रहते थे, तब द्रौपदीके प्रिय करनेके लिये अपना रूप छिपा कर केवल अपने बाहुबलसे साथियोंके समेत कीचकको मार डाला था ॥ १९ ॥

सोऽद्य संग्रामशिरसि संनद्धः क्रोधमूर्च्छितः ।
किंकरोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद्रणम् ॥ २० ॥

वेही भीमसेन आज क्रोध करके कवच धारण करके हमसे युद्ध करनेको आये हैं। दण्ड धारण किये साक्षात् यमराजके साथ भी युद्ध करनेके लिये ये समरमें आ सकेंगे ? ॥२०॥

चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः ।
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद्धनञ्जयः ।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद्भीमसमागमात् ॥ २१ ॥

मेरी बहुत दिनसे यह इच्छा ही थी, कि मैं अर्जुनको समरमें मारूं अथवा अर्जुन ही मुझे मारे; कदाचित् भीमके साथ युद्ध करनेसे मेरी वह इच्छा आज पूर्ण हो जायगी ॥ २१ ॥

निहते भीमसेने तु यदि वा विरथीकृते ।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ।
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं संप्रधारय ॥ २२ ॥

भीमसेनके मारे जानेसे अथवा इनको रथहीन करनेसे, अर्जुन निश्चितही मुझपर आक्रमण करनेको आवेंगे, सो मेरे लिये अच्छा ही होगा । इसमें जो आपकी सम्मति हो सो हमसे शीघ्र कहिये, हम वैसा ही करेंगे ॥ २२ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्य महात्मनः ।
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम् ॥ २३ ॥

महात्मा राधापुत्र कर्णके यह वचन सुन शल्य सूतपुत्रसे उस समयके लिये योग्य इस प्रकार बोले ॥ २३ ॥

अभियासि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ।
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फल्गुनम् ॥ २४ ॥

हे महाबाहु कर्ण ! हमारी ये ही सम्मति है, कि तुम महाबलवान् भीमसेनसे युद्ध करो । भीमसेनको मार कर, तुम अर्जुनको अपने सामने प्राप्त करोगे ॥ २४ ॥

यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात्प्रभृति हृद्गतः ।
स वै संपत्स्यते कर्ण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २५ ॥

कर्ण ! तुम्हारे मनमें बहुत दिनसे जो इच्छा थी, वह अवश्य ही फलद्रुप होगी, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ २५ ॥

एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ।
हन्ताहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्ता धनञ्जयः ।
युद्धे मनः समाधाय याहि याहीत्यचोदयत् ॥ २६ ॥

शल्यके ऐसे वचन सुनते ही कर्ण फिर शल्यसे बोले, हम अर्जुनको युद्धमें मारेंगे, या वह हमको मारेंगे; जो हो अब तुम युद्धकी इच्छासे जहां भीमसेन हैं, उधर ही रथ हांको ॥२६॥

ततः प्रायाद्रथेनाशु शल्यस्तत्र विशां पते ।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥ २७ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! कर्णका ऐसा वचन सुन शल्यने शीघ्र ही रथको उधर ही हांका, जहां महाधनुर्धर भीमसेन तुम्हारी सेनाको भगाते थे ॥ २७ ॥

ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः ।
उदतिष्ठत राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! जब कर्ण और भीमसेन सन्मुख हुए, तब दोनों ओरसे तूर्य, मृदङ्ग, भेर बजने लगे ॥ २८ ॥

भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तव सैन्यं दुरासदम् ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद्बली ॥ २९ ॥

इतने ही समयमें महाबलवान् भीमसेनने अत्यंत क्रुद्ध होकर तुम्हारी उस दुर्जय सेनाको अपने विमल तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे पीडित कर सब ओर भगा दिया ॥ २९ ॥

स संनिपातस्तुमुलो भीमरूपो विशां पते ।
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।
ततो मुहूर्ताद्राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत् ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! भीमसेन और कर्णके उस भयंकर युद्धमें घोर और भीषण नाश हुआ । हे पृथ्वीनाथ ! पाण्डुपुत्र भीमसेन दो घडीमें कर्णकी ओर दौडे ॥ ३० ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे ।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३१ ॥

उनको अपनी ओर आते देख महादानी वैकर्तन कर्णने क्रोध कर एक नाराच बाण भीमसेनके छातीमें मारा और फिर अमेयात्मा कर्णने उनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित किया ॥ ३१ ॥

स विद्धः सूतपुत्रेण छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ३२ ॥

तब सूतपुत्रसे घायल हुए भीमसेनने कर्णको अनेक बाणोंसे ढक दिया और नौ तीक्ष्ण बाणोंसे उसको विद्ध किया ॥ ३२ ॥

तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिणा ।
अथ तं छिन्नधन्वानमभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ॥ ३३ ॥

तब कर्णने अनेक बाणोंसे भीमसेनके धनुषके बीचमें ही दो टुकडे कर दिये, फिर धनुष कट जानेपर, सब तरहके आवरणोंको तोडनेवाले अत्यंत तीक्ष्ण नाराच बाणसे उनके छातीमें प्रहार किया ॥ ३३ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ।
राजन्मर्मसु मर्मज्ञो विद्ध्वा सुनिशितैः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी ॥ ३४ ॥

राजन् ! तब मर्मज्ञ भीमसेनने दूसरा धनुष लेकर सूतपुत्र कर्णके मर्म स्थानोंमें अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर उसको विद्ध किया और गर्जने लगे । उनके गर्जनेसे पृथ्वी और आकाश कांपने लगी ॥ ३४ ॥

तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्दयत् ।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ३५ ॥

जैसे वनमें गर्वित मतवाले हाथीको ज्वालाओंसे मारते हैं, वैसे ही कर्णने भीमसेनके शरीरमें पचीस नाराच बाण मारे ॥ ३५ ॥

ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्च्छितः ।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेच्छया ॥ ३६ ॥

उन बाणोंके लगनेसे पाण्डुपुत्र भीमसेनका शरीर घायल हो गया और वे अत्यंत क्रुद्ध हो गये । क्रोध और अमर्षसे उनके नेत्र लाल हो गये और सूतपुत्र कर्णको मारनेकी इच्छासे ॥ ३६ ॥

स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् ।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ॥ ३७ ॥

उन्होंने अत्यंत वेगवान्, सुदृढ, उत्तम और पर्वतोंको भी चीरनेवाला एक महाघोर बाण धनुष पर चढाया ॥ ३७ ॥

विकृष्य बलवच्चापमा कर्णादतिमारुतिः ।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ॥ ३८ ॥

फिर हनुमानसे भी अधिक पराक्रमी, महा धनुषधारी भीमसेनने क्रोध करके धनुषको जोरसे कानतक खींचा और कर्णको मार डालनेकी इच्छासे वह बाण छोडा ॥ ३८ ॥

स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः ।
अदारयद्रणे कर्णं वज्रवेग इवाचलम् ॥ ३९ ॥

वज्र और बिजलीके समान शब्द करनेवाला वह बाण बलवान् भीमसेनके धनुषसे छूट कर युद्धमें कर्णके शरीरमें इस प्रकार घुस गया, जैसे वज्र पर्वतमें घुस जाता है ॥ ३९ ॥

स भीमसेनाभिहतो सूतपुत्रः कुरूद्वह ।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः ॥ ४० ॥

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तब भीमसेनके बाण लगनेसे तुम्हारे सेनापति सूतपुत्र कर्ण मूर्छित होकर रथमें बैठ गये ॥ ४० ॥

ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम् ।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ४१ ॥

अनन्तर युद्धमें शोभायमान होनेवाले सूतपुत्र कर्णको मूर्च्छित देख, मद्रराजशल्यने रथसे उसको युद्धस्थलसे दूर हटा दिया ॥ ४१ ॥

ततः पराजिते कर्णे धार्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
व्यद्रावयद्भीमसेनो यथेन्द्रो दानवीं चमूम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ २०५६ ॥

कर्णके पराजित होनेपर भीमसेनने तुम्हारी महान् सेनाको इस प्रकार भगाया, जैसे इन्द्रने राक्षसोंको भगाया था ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ २०५६ ॥

: ३५ :

धृतराष्ट्र उवाच

सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन संजय ।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! भीमसेनने जो कर्णको मूर्छित करके रथके ऊपर गिराया, यह भीमसेनका कर्म दूसरोंसे होना कठिन है ॥ १ ॥

कर्णो ह्येको रणे हन्ता सृञ्जयान्पाण्डवैः सह ।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥

सूत ! मेरा पुत्र दुर्योधन मुझे बार बार कहता था, कि अकेलाही कर्ण सृञ्जयोंके सहित पाण्डवोंको युद्धमें मार सकता है ॥ २ ॥

पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे ।
ततः परं किमकरोत्पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ३ ॥

परन्तु जब राधापुत्र कर्ण इस प्रकार युद्धमें भीमसेनके द्वारा पराजित हुआ देख, मेरे पुत्र दुर्योधनने क्या किया ? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

विभ्रान्तं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे ।
महत्या सेनया राजन्सोदर्यान्समभाषत ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! राधापुत्र कर्णको बडी सेनासहित युद्धसे विमुख हुआ देख, तुम्हारे पुत्रने अपने भाइयोंसे कहा ॥ ४ ॥

शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत ।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ ५ ॥

तुम लोगोंका कल्याण हो, तुम लोग शीघ्र जाकर राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो। देखो, भीमसेनके भयरूपी संकटके समुद्रमें कर्ण डूबे जाते हैं ॥ ५ ॥

ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनजिघांसवः ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतंगा इव पावकम् ॥ ६ ॥

राजा दुर्योधनकी आज्ञा सुन, वे सब लोग क्रोध कर, भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनपर इस प्रकार दौडे, जैसे दीपकपर पतङ्ग ॥ ६ ॥

श्रुतायुर्दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः ।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ७ ॥

श्रुतायु, दुर्धर, क्राथ, विवित्सु, विकट, सम, निषङ्गी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द ॥ ७ ॥

दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ ।
धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च तथा सत्त्वसमः सहः ॥ ८ ॥

दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, सत्वसम और सह ॥ ८ ॥

एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः ।
भीमसेनं समासाद्य समन्तात्पर्यवारयन् ।
ते व्यसृजञ्शरव्रातान्नानालिङ्गान्समन्ततः ॥ ९ ॥

ये सब शूर महाबलवान् तुम्हारे पुत्र अनेक रथोंसे युक्त होकर भीमसेनके पास आये, और उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और वे चारों ओरसे भीमसेनके ऊपर अनेक प्रकारके बाण समूह चलाने लगे ॥ ९ ॥

स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः ।
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते नराधिप ।
रथैः पञ्चाशता सार्धं पञ्चाशन्न्यहनद्रथान् ॥ १० ॥

नराधिप ! इनके बाणोंसे पीडित होकर महा बलवान् भीमसेनने अपने बाणोंसे तुम्हारे पचास रथोंके साथ आये हुए आपके पुत्रोंके उन पचासों रथियोंको शीघ्रही मार डाला ॥ १० ॥

विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तदा ।
भीमेन च महाराज स पपात हतो भुवि ॥ ११ ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर क्रुद्ध भीमसेनने एक भल्ल बाणसे विवित्सु नामक तुम्हारे पुत्रका सिर काट लिया । हे महाराज ! उसका वह कुण्डल और शिरस्त्राण सहित, पूर्ण चन्द्रमाके समान मस्तक था । भीमसेनने उसको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो ।
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम् ॥ १२ ॥

राजन् ! उस शूरवीरको मारा गया देख, उसके भाईयोंने महा पराक्रमी भीमसेन पर सब ओरसे धावा किया ॥ १२ ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ।
जहार समरे प्राणान्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १३ ॥

तब भयंकर पराक्रमी भीमसेनने दूसरे दो भल्ल बाणोंसे तुम्हारे दो पुत्रोंके प्राण युद्धमें हर लिये ॥ १३ ॥

तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ ।
विकटश्च समश्चोभौ देवगर्भसमौ नृप ॥ १४ ॥

वे दोनों देवपुत्रोंके समान पराक्रमी विकट और सम इस प्रकार पृथ्वी पर गिरे जैसे आंधीसे उखाडे हुए दो वृक्ष गिर जाते हैं ॥ १४ ॥

ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम् ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥ १५ ॥

अनन्तर शीघ्रता करके भीमसेनने क्राथको भी एक तीक्ष्ण नाराचसे मारकर यमलोक भेज दिया । वह प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १५ ॥

हाहाकारस्ततस्तीव्रः संबभूव जनेश्वर ।
वध्यमानेषु ते राजंस्तदा पुत्रेषु धन्विषु ॥ १६ ॥

पृथ्वीनाथ ! जब तेज बाण लगनेसे तुम्हारे धनुर्धर पुत्र इस प्रकार मारे जाकर पृथ्वीमें गिरे, तब तुम्हारी सेनामें महा हाहाकार होने लगा ॥ १६ ॥

तेषां संलुलिते सैन्ये भीमसेनो महाबलः ।
नन्दोपनन्दौ समरे प्रापयद्यमसादनम् ॥ १७ ॥

उनकी सेना प्रक्षुब्ध हो गयी, तब महाबलवान् भीमसेनने युद्धमें नन्द और उपनन्दको यमके यहां पहुंचा दिया ॥ १७ ॥

ततस्ते प्राद्रवन्भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ १८ ॥

फिर तुम्हारे शेष पुत्र समरमें कालान्तक यमके समान भयंकर भीमसेनको देखकर, भयभीत होकर युद्ध छोड भाग गये ॥ १८ ॥

पुत्रांस्ते निहतान्दृष्ट्वा सूतपुत्रो महामनाः ।
हंसवर्णान्हयान्भूयः प्राहिणोद्यत्र पाण्डवः ॥ १९ ॥

तुम्हारे पुत्रोंको मारा गया देख सूतपुत्र उदार कर्ण बहुत दुःखी हुए और उसने हंसके समान श्वेत वर्णवाले घोडोंको पुनः भीमसेनकी ओर हंकवाया ॥ १९ ॥

ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ॥ २० ॥

हे महाराज ! मद्रराजके हांके हुए वे घोडे वेगसे भीमसेनके रथके पास जाकर सन्मुख हो गये ॥ २० ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशां पते ।
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ २१ ॥

पृथ्वीनाथ ! तब समरमें कर्ण और भीमसेन इन दोनोंका घोर, तुमुल युद्ध हुआ ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ।
आसीद्बुद्धिः कथं नूनमेतदद्य भविष्यति ॥ २२ ॥

दोनों महारथी कर्ण और भीमसेनका समागम देखकर, हमें यह विचार हुआ, कि यह युद्ध आज कैसे समाप्त होगा ॥ २२ ॥

ततो मुहूर्ताद्राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ २३ ॥

राजेन्द्र ! फिर विशेष कष्टके सिवाय ही मुहूर्त भरमें ही हंसते हंसते महापराक्रमी भीमसेनको कर्णने रथहीन कर दिया ॥ २३ ॥

विरथो भरतश्रेष्ठः प्रहसन्ननिलोपमः ।
गदाहस्तो महाबाहुरपतत्स्यन्दनोत्तमात् ॥ २४ ॥

अनन्तर रथहीन होनेपर भरतश्रेष्ठ, वायुके समान वेगवान् महाबाहु भीमसेन हंसते हुए गदा हाथमें लेकर बहुत शीघ्रतासे उस उत्तम रथसे कूदे ॥ २४ ॥

नागान्सप्तशतान्राजन्नीषादन्तान्प्रहारिणः ।
व्यधमत्सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परंतपः ॥ २५ ॥

राजन् ! शत्रुतापन भीमने क्रोध करके प्रहारकुशल और बडे दांतवाले सात सौ हाथियोंको मार डाला ॥ २५ ॥

दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु स कटेषु च ।
मर्मस्वपि च मर्मज्ञो निनदन्व्यधमद्भृशम् ॥ २६ ॥

मर्म जाननेवाले उन महाबली भीमसेनने हाथियोंके होंठ, नेत्र, सिर, कपोल और सब मर्म स्थानोंको गरजते हुए बहुत विद्ध किया ॥ २६ ॥

ततस्ते प्राद्रवन्भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ २७ ॥

अनन्तर वे हाथी भयभीत होकर भागने लगे । महावतोंने उन्हें पीछे लौटाया, तब वे भीमसेनको घेरकर खडे हो गये । तब उस हाथियोंकी सेनामें भीमसेनकी ऐसी शोभा बढी जैसे मेघोंसे सूर्यकी ॥ २७ ॥

तान्स सप्तशतान्नागान्सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने शरन्मेघानिवानिलः ॥ २८ ॥

भूमिमें खडे भीमसेनने अपनी गदासे महावत, योद्धा, आयुध और ध्वजाओंके सहित उन सातसौ हाथियोंको इस प्रकार मार कर गिरा दिया, जैसे शरदृतुमें हवा मेघोंको बिखर देती हैं ॥ २८ ॥

ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान्पुनः ।
पोथयामास कौन्तेयो द्वापञ्चाशतमाहवे ॥ २९ ॥

अनन्तर कुन्तीपुत्र शत्रुनाशन भीमसेनने सुबलपुत्र शकुनिके अत्यंत बलवान् बावन हाथियोंको युद्धमें मारा ॥ २९ ॥

तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् ।
न्यहनत्पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥ ३० ॥

इसी प्रकार युद्धमें तुम्हारी सेनाको त्रस्त करते हुए योद्धाओंके सहित सौसे अधिक रथ और अन्य सैकडों पैदलोंका नाश किया ॥ ३० ॥

प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना ।
तव सैन्यं संचुकोच चर्म वह्निगतं यथा ॥ ३१ ॥

तब तुम्हारी सेना बहुत डरने लगी । जैसे अग्निमें पडनेसे चमडा जलता है, वैसेही भीमसेन रूपी सूर्यके तेजसे तुम्हारी सेना जलने लगी और कम होने लगी ॥ ३१ ॥

ते भीमभयसंत्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ ३२ ॥

हे भरतकुलसिंह ! अनन्तर तुम्हारी सेना भीमसेनके भयसे युद्धमें उनके साथ युद्ध करना छोडकर सब ओरको भागने लगी ॥ ३२ ॥

रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्रादिनश्चर्मवर्मिणः ।
भीममभ्यद्रवंस्तूर्णं शरपूगैः समन्ततः ॥ ३३ ॥

अनन्तर पांच सौ चर्म वेष्टित, घोर शब्दवाले रथ और अनेक वीर शीघ्रही चारों ओरसे बाण चलाते हुए भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ३३ ॥

तान्ससूतरथान्सर्वान्सपताकाध्वजायुधान् ।
पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ३४ ॥

जैसे विष्णु दानवोंको मारते हैं, वैसे ही भीमसेनने अपनी गदासे उन पांच सौ रथियोंको पताका, ध्वजा और आयुधोंके सहित मार डाला ॥ ३४ ॥

ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसंमताः ।
त्रिसाहस्रा ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥ ३५ ॥

अनन्तर शकुनिकी आज्ञासे हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास लिये तीन सहस्र घुडचढे वीर भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ३५ ॥

तान्प्रत्युद्गम्य यवनानश्वारोहान्वरारिहा ।
विचरन्विविधान्मार्गान्घातयामास पोथयन् ॥ ३६ ॥

अनन्तर शत्रुनाशन भीमसेनने भी वेगसे आगे जाकर अनेक प्रकारकी गतियोंसे संचार करके अपनी गदासे उन घुडसवारोंको मार गिराया ॥ ३६ ॥

तेषामासीन्महाञ्शब्दस्ताडितानां च सर्वशः ।
असिभिश्छिद्यमानानां नडानामिव भारत ॥ ३७ ॥

हे भारत ! जैसे खड्गसे काटे जानेवाले वृक्षोंका महान् शब्द होता है, वैसे ही गदासे ताडित होनेवाले इन वीरोंके मरने और गिरनेका सब ओर महान शब्द होने लगा ॥३७॥

एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान्हयोत्तमान् ।
हत्वान्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार शकुनिके तीन सहस्र घुडचढोंको मार डाला, इतने समयमें उनका सारथी दूसरा रथ ले आया, अनन्तर उस रथपर चढकर और क्रोध करके राधापुत्र कर्णकी ओर दौडे ॥ ३८ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन्धर्मपुत्रमरिंदमम् ।
शरैः प्रच्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥ ३९ ॥

राजन् ! इस बीचमें कर्णने समरमें अपने बाणोंसे शत्रुदमन धर्मपुत्र युधिष्ठिरको छा लिया और उनके सारथिको मार डाला ॥ ३९ ॥

ततः संप्रद्रुतं संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः ।
अन्वधावत्किरन्बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४० ॥

अनन्तर महारथी कर्ण सारथि विहीन युधिष्ठिरके रथको युद्धमें इधर उधर घूमते देख, कंक-पत्र युक्त सीधे जानेवाले अनेक बाण बर्षाते हुए उनके पीछे दौडे ॥ ४० ॥

राजानमभि धावन्तं शरैरावृत्य रोदसी ।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥ ४१ ॥

कर्णको राजापर आक्रमण करते देख वायुपुत्र भीमसेन क्रुद्ध हो गये और उन्होंनें कर्णको बाणोंसे छा दिया और पृथ्वी आकाशको भी शर जालोंमें पूरित कर दिया ॥ ४१ ॥

संनिवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः ।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४२ ॥

फिर शत्रुनाशन राधापुत्र कर्ण तुरंत ही उनकी ओर लौटे और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सब ओरसे भीमको छा लिया ॥ ४२ ॥

भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः ।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ।
अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम् ॥ ४३ ॥

अनन्तर भीमसेनके रथकी ओर दौडते हुए कर्णके ऊपर अमेयात्मा महापराक्रमी सात्यकि बाण वर्षाकर उसको पीडा देने लगे, कारण वे भीमसेनकी पृष्ठ रक्षा करते थे । सात्यकिके अनेक बाण लगनेसे पीडित होनेपर भी कर्ण भीमसेनके युद्धसे निवृत्त न हुए ॥ ४३ ॥

तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ।
विसृजन्तौ शरांश्चित्रान्विभ्राजेतां मनस्विनौ ॥ ४४ ॥

अनन्तर वे दोनों सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ परस्पर भिडकर युद्ध करने लगे । भीमसेन और कर्ण घोर बाण चलाने लगे । उस समय उन दोनों मनस्वियोंकी शोभा बहुत बढी ॥ ४४ ॥

ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम् ।
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत ॥ ४५ ॥

राजेन्द्र ! इन दोनोंके बाणोंका जाल आकाशमें क्रौंचपक्षीके पीठके समान लालरंगका और भयंकर दीखने लगा ॥ ४५ ॥

नैव सूर्यप्रभां खं वा न दिशः प्रदिशः कुतः ।
प्राज्ञासिष्म वयं ताभ्यां शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ४६ ॥

उनके धनुषसे छूटे हुए सहस्रों बाणोंसे आकाश ऐसा छा गया, कि उससे सूर्यकी प्रभा, आकाश, दिशा और उपदिशा कुछ भी दीख नहीं पडता था । हम हमारे और शत्रुओंके लोगोंको भी नहीं पहचान सकते थे ॥ ४६ ॥

मध्याह्ने तपतो राजन्भास्करस्य महाप्रभाः ।
हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णमाधवयोस्तदा ॥ ४७ ॥

हे राजन् ! कर्ण और भीमसेन ये दोनों वीरोंके असंख्य बाणोंसे दोपहरके तपते हुए सूर्यकी प्रखर किरणें फिकी हो गयी ॥ ४७ ॥

सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम् ।
संसक्तान्पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः ॥ ४८ ॥

उस समय शकुनि, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यको पाण्डवोंके साथ युद्ध करते देख, भागे हुए सब कौरव सैनिक फिर लौटे ॥ ४८ ॥

×

तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद्दिशां पते।
उद्‌धूतानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः ॥ ४९ ॥
हे पृथ्वीनाथ ! उन सबके लौटते हुए घोर शब्द होने लगा, जैसे वृष्टिसे बढकर समुद्र घोर गर्जना करते हैं ॥ ४९ ॥

ते सेने भृशसंविग्ने दृष्ट्वान्योन्यं महारणे।
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् ॥ ५० ॥
ऐसे ही ये दोनों सेना ही एक दूसरीको भिडकर, उस महायुद्धमें परस्पर देखकर, अत्यंत प्रसन्न होकर युद्ध करने लगीं ॥ ५० ॥

ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।
यादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५१ ॥
अनन्तर सूर्यके दोपहरमें आनेपर घोर युद्ध होने लगा। जैसा यह घोर युद्ध हुआ वैसा पहले न कभी देखा, न सुना था ॥ ५१ ॥

बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे।
उपासर्पत वेगेन जलौघ इव सागरम् ॥ ५२ ॥
जैसे शब्द करती नदीका जलप्रवाह वेगसे समुद्रमें जा मिलता है; वैसे ही समरमें तुम्हारी सेना पाण्डवोंकी सेनासे सहसा जा मिली ॥ ५२ ॥

आसीन्निनादः सुमहान्बलौघानां परस्परम्।
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निस्वनो महान् ॥ ५३ ॥
तब परस्पर वेगके साथ भिडनेवाले सेनाओंका घोर शब्द होने लगा, जैसे गर्जना करते हुए सागरोंका महान् शब्द होता है ॥ ५३ ॥

ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम्।
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे ॥ ५४ ॥
जैसे दो नदियां संगम होनेपर एक हो जाती हैं, वैसे ही ये दोनों सेनाएं वेगसे परस्पर मिलकर एकही हो गयीं ॥ ५४ ॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशां पते।
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद्यशः ॥ ५५ ॥
पृथ्वीनाथ ! पाण्डव और कौरवोंकी सेनामें अपने अपने महान् यशके लिये घोर युद्ध शुरू हुआ ॥ ५५ ॥

कुरूणां गर्जतां तत्र अविच्छेदकृता गिरः।
श्रूयन्ते विविधा राजन्नामान्युद्दिश्य भारत ॥ ५६ ॥

हे राजन् ! उस युद्धमें अनेक वीर विविध नाम लेकर कर्म करते थे; चारों ओर गर्जते हुए वीरोंका अविच्छिन्न शब्द सुनाई देता था ॥ ५६ ॥

यस्य यद्धि रणे न्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा।
कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि ॥ ५७ ॥

युद्धमें जिस वीरका पिता-माता, कर्म अथवा शीलके कारण वैशिष्टय था, वह उसको सुनाता था ॥ ५७ ॥

तान्दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जयानान्परस्परम्।
अभवन्मे मती राजन्नैषामस्तीति जीवितम् ॥ ५८ ॥

राजन् ! समरमें उन महातेजस्वी वीरोंको परस्पर डराते हुए देखकर मुझे यह निश्चय हो गया कि अब जगत्में कोई नहीं बचेगा ॥ ५८ ॥

तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम्।
अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद्भविष्यति ॥ ५९ ॥

क्रोधमें भरे उन अमित तेजस्वी वीरोंके शरीर देखकर, मुझे यह बडा भय भी हुआ कि अब यह युद्ध कैसा होगा ? ॥ ५९ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन्कौरवाश्च महारथाः।
ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम् ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ २११६ ॥

अनन्तर पाण्डव और कौरव महारथी अपने तेज बाणोंसे एक दूसरेको प्रहार करते हुए परस्पर मारने लगे ॥ ६० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ २११६ ॥

: ३६ :

सञ्जय उवाच

क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! तब एक दूसरेके वधकी इच्छावाले दोनों ओरके वे क्षत्रिय परस्पर वैर बढाकर अपनी अपनी विजयके लिये समरमें एक दूसरेको मारने लगे ॥ १ ॥

रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः ।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताः स्म परस्परम् ॥ २ ॥

हे राजन् ! रथ, घोडे, हाथी और पदातियोंके झुण्ड सब ओर परस्पर युद्ध करने लगे ॥२॥

गदानां परिघाणां च कणपानां च सर्पताम् ।
प्रासानां भिण्डिपालानां भुशुण्डीनां च सर्वशः ॥ ३ ॥
संपातं चान्वपश्याम संग्रामे भृशदारुणे ।
शलभा इव संपेतुः समन्ताच्छरवृष्टयः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! हमें उस अत्यंत घोर युद्धमें सब ओरसे गदा, परिघ, कणप, प्रास, भिण्डिपाल और भुशुण्डियोंकी धाराही गिरती दीखती थी। चारों ओर बाणोंकी वृष्टि टीड्डीदलोंके समान होती दीखने लगी ॥ ३–४ ॥

नागा नागान्समासाद्य व्यधमन्त परस्परम् ।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा
पत्तयः पत्तिसंघैश्च हयसंघैर्हयास्तथा । ॥ ५ ॥

हाथी हाथियोंसे भिडकर परस्पर पीडा देने लगे। उस युद्धमें घोडे घोडोंसे, रथी रथियोंसे ॥ ५ ॥

पत्तयो रथमातङ्गान्रथा हस्त्यश्वमेव च ।
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप ॥ ६ ॥

और पदाति पदातियोंके समूहोंसे और घोडे घोडोंके झुंडोंसे लडने लगे। हे नृप ! पैदल रथी और हाथियोंसे, रथि हाथी और घोडोंसे और शीघ्र आक्रमण करनेवाले हाथी तीनों अंगोंको उस युद्धमें कुचलने लगे ॥ ६ ॥

पततां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा ॥ ७ ॥

मारे जाते हुए, एक दूसरेको पुकारते और युद्ध करते हुए वीरोंका उस युद्धमें घोर शब्द होने लगा, जैसे वहां पशुओंका वध किया जा रहा है ॥ ७ ॥

रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी ।
शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा ॥ ८ ॥

भारत ! थोडे समयमें वह पृथ्वी मांस और रुधिरसे भर गई और शोभित हुई, जैसे वर्षा ऋतुमें पृथ्वी वीरबहुटियोंसे लाल हो जाती है ॥ ८ ॥

यथा वा वाससी शुक्ले महारजनरञ्जिते।
बिभृयाद्युवतिः श्यामा तद्वदासीद्वसुंधरा।
मांसशोणितचित्रेव शातकौम्भमयीव च ॥ ९ ॥

अथवा जैसे सोलह वर्षकी शामवर्णकी युवती सफेद वस्त्रको लाल रंगके चंदनसे रंगकर पहन-कर शोभित होती है, वैसे ही वह युद्धभूमि लगती थी; मांस और रुधिरसे भरी विचित्र होनेके कारण सुवर्णपत्रके समान उस विस्तीर्ण युद्धमें भूमिकी शोभा बढी ॥ ९ ॥

छिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह।
कुण्डलानां प्रविद्धानां भूषणानां च भारत ॥ १० ॥

हे भारत ! अनेक सुन्दर शिर, बाहु, उरु, अनेक कुण्डल तथा भूषण कटकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १० ॥

निष्काणामधिसूत्राणां शरीराणां च धन्विनाम्।
वर्मणां सपताकानां संघास्तत्रापतन्भुवि ॥ ११ ॥

सोनेके भूषण, धनुर्धर वीरोंके शरीर, धनुष, कवच, ढाल सहित हाथ और पताका कटकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ११ ॥

गजान्गजाः समासाद्य विषाणाग्रैरदारयन्।
विषाणाभिहतास्ते च भ्राजन्ते द्विरदा यथा ॥ १२ ॥

हाथी दूसरे हाथियोंको भिडकर अपने तीक्ष्ण दांतोंसे विदीर्ण करने लगे। दांतोंकी चोटसे घायल हुए उन हाथियोंकी शोभा बढने लगी ॥ १२ ॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव।
यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमण्डिताः ॥ १३ ॥

गेरूके पनारे बहानेवाले धातुमण्डित पर्वतोंके समान वे रुधिरसे भीगे शरीरवाले हाथी शोभित हुए ॥ १३ ॥

तोमरान्गजिभिर्मुक्तान्प्रतीपानास्थितान्बहून्।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभञ्जुश्चापरे तथा ॥ १४ ॥

अनेक हाथी घोडोंपर चढे वीरोंके चलाये हुए तोमरोंको और अन्य शत्रु वीरोंको सूंडमें पकड कर घुमते थे और उनको तोडते थे ॥ १४ ॥

नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ते स्म गजोत्तमाः।
हिमागमे महाराज व्यभ्रा इव महीधराः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! अनेक श्रेष्ठ हाथियोंके कवच नाराच बाणोंसे कट गये, तब वे शीतकालमें मेघ-रहित पर्वतोंके समान दीखने लगे ॥ १५ ॥

शरैः कनकपुङ्खैस्तु चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः ।
उल्काभिः संप्रदीप्ताग्राः पर्वता इव मारिष ॥ १६ ॥

हे मारिष ! जैसे ज्वालाओंसे प्रदीप्त शिखरवाले पर्वत शोभित होते हैं, वैसे ही सोनेके पङ्खवाले बाण लगनेसे विविध हाथियोंकी शोभा बढी ॥ १६ ॥

केचिदभ्याहता नागा नागैर्नगनिभा भुवि ।
निपेतुः समरे तस्मिन्पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १७ ॥

उस संग्राममें पर्वतोंके समान दीखनेवाले कितने ही हाथी हाथियोंसे घायल होकर पङ्खयुक्त पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर गये ॥ १७ ॥

अपरे प्राद्रवन्नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः ।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १८ ॥

दूसरे अनेक हाथी घाव और बाणोंसे व्याकुल होकर भागने लगे, और अनेक उस महायुद्धमें दांत और कुंभस्थलोंको पृथ्वीपर लगाकर मर गये ॥ १८ ॥

निषेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान्रवान् ।
मम्लुश्च बहवो राजंश्चुकूजुश्चापरे तथा ॥ १९ ॥

राजन् ! कोई सिंहके समान भयंकर गर्जते हुए बैठ गये और दूसरे कोई मूर्च्छित हो गये और कोई चिल्लाते थे ॥ १९ ॥

हयाश्च निहता बाणैः स्वर्णभाण्डपरिच्छदाः ।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २० ॥

सोनेके साजोंसे भूषित घोडे बाणोंसे घायल होकर मरने, बैठने, गिरने और दसों दिशाओंमें घूमने लगे ॥ २० ॥

अपरे कृष्यमाणाश्च विवेष्टन्तो महीतले ।
भावान्बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥ २१ ॥

अनेक बाण और तोमरोंसे पीडित होकर पृथ्वीमें गिर गये, और अनेक हाथियोंसे खींचे जानेपर अनेक प्रकारके भाव दिखाने लगे ॥ २१ ॥

नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष ।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥ २२ ॥

वहां घायल होकर, मारिष ! अनेक वीर पृथ्वीमें गिरकर बान्धवोंको देखकर चिल्लाने लगे, कोई अपने बाप, दादाको देख रोने लगे ॥ २२ ॥

धावमानानपरांश्चैव दृष्ट्वान्ये तत्र भारत।
गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥ २३ ॥

भारत! वहां दूसरे अनेक लोग अन्योंको भागते देख एक दूसरेको अपने प्रसिद्ध गोत्र और नामकी प्रशंसा करने लगे ॥ २३ ॥

तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः।
उद्वेष्टन्ते विवेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥ २४ ॥

हे राजन्! उनके सुवर्ण भूषण सहित हाथ कटकर पृथ्वीमें गिर गये थे, वे कभी किसीके शरीरसे चिपक जाते थे, छटपटाते थे, गिरते थे, ऊपरको उठते थे ॥ २४ ॥

निपतन्ति तथा भूमौ स्फुरन्ति च सहस्रशः।
वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः स्फुरन्त इव पन्नगाः ॥ २५ ॥

हजारों हाथ पृथ्वीपर फिर नीचे गिरते थे और तडफते थे। कितने ही वेगसे सांपोंके समान समरमें चलने लगे ॥ २५ ॥

ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशां पते।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥ २६ ॥

हे राजन्! वे सांपके फणोंके समान चंदन लगे हुए रक्तसे भींगे हुए हाथ गिरकर ऐसे शोभित हुए जैसे सोनेके दण्डवाली ध्वजा ॥ २६ ॥

वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम्।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार वह घोर युद्ध सब ओर शुरू होनेपर वे योद्धा परस्पर प्रहार करते हुए किसीको जाने विना ही युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥

भौमेन रजसा कीर्णे शस्त्रसंपातसंकुले।
नैव स्वे न परे राजन्व्यज्ञायन्त तमोवृते ॥ २८ ॥

हे राजन्! भूमिकी धूल उडनेसे और शस्त्रोंकी वृष्टिसे छा जाने पर वहां ऐसा अन्धकार हो गया, कि वहां अपना और शत्रुका कोई किसीको नहीं जान सकता था ॥ २८ ॥

तथा तदभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम्।
शोणितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥ २९ ॥

वह अत्यंत घोर और भयानक युद्ध हुआ और उसमें रुधिरकी बडी नदियां बहने लगीं ॥ २९ ॥

शीर्षपाषाणसंछन्नाः केशशैवलशाद्वलाः ।
अस्थिसंघातसंकीर्णा धनुःशरचरोत्तमाः ॥ ३० ॥

उस नदीके दोनों ओर वीरोंके कटे हुए शिर पत्थरके समान आच्छादित करते पडे थे, उनके बाल सिवार और घासके समान वहने लगे। हड्डियोंके ढेर मछलियोंके समान भर गये; और श्रेष्ठ वीरोंके धनुष और बाणोंसे नदियां पूर्ण हो गयीं ॥ ३० ॥

मांसकर्दमपङ्काश्च शोणितौघाः सुदारुणाः ।
नदीः प्रवर्तयामासुर्यमराष्ट्रविवर्धिनीः ॥ ३१ ॥

मांस कीचडके समान जम गया। इस प्रकार यमका राज्य बढानेवाली रुधिरकी अत्यंत घोर नदियां उस युद्धमें बह निकलीं ॥ ३१ ॥

ता नद्यो घोररूपाश्च नयन्त्यो यमसादनम् ।
अवगाढा मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन्भयम् ॥ ३२ ॥

वे भयानक रूपवाली नदियां यमलोक पहुंचती थीं। हे पुरुषसिंह! उन नदियोंमें प्रवेश करनेवाले डूब जाते थे; और क्षत्रिय लोग उन्हें देखकर मनमें अति डरने लगे ॥ ३२ ॥

क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ।
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम् ॥ ३३ ॥

नरव्याघ्र! वहां मांस खानेवाले जन्तुओंके आवाजसे वह भूमि साक्षात् यमराजकी पुरीसी दीखने लगी ॥ ३३ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
नृत्यन्ति वै भूतगणाः संतृप्ता मांसशोणितैः ॥ ३४ ॥

वहां चारों ओर अनेक कबन्ध खडे होगये, भूत, पिशाच मांस खाकर और प्रसन्न होकर नाचने लगे ॥ ३४ ॥

पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ।
मेदोमज्जावसातृप्तास्तृप्ता मांसस्य चैव हि ।
धावमानाश्च दृश्यन्ते काकगृध्रबलास्तथा ॥ ३५ ॥

हे भारत! रुधिर और चर्बी पीकर अनेक पिशाची गीत गा गा कर नाचने लगीं; कौवे, गिद्ध, बगुले मांस, रुधिर और चर्बी खाकर तृप्त हुए आकाशमें प्रसन्न होकर उडने लगे ॥ ३५ ॥

शूरास्तु समरे राजन्भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ।
योधव्रतसमाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ३६ ॥

हे राजन्! योद्धाओंके व्रतका पालन करनेमें प्रसिद्ध क्षत्रिय वीर त्यागनेमें कठिन ऐसे भयको छोडकर निर्भय होकर उस युद्धमें घोर कर्म करने लगे ॥ ३६ ॥

शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले ।
व्यचरन्त गणैः शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥ ३७ ॥

वीर लोग उस शक्ति और बाणोंसे भरे हुए, गिद्ध, स्यार और कौओंसे शोभित युद्धमें वेडर होकर अपना पराक्रम प्रकाशित करते हुए समूहोंसे विचरने लगे ॥ ३७ ॥

अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत ।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि चाभितः ॥ ३८ ॥

हे भारत ! अनेक वीर परस्पर अपने अपने पिता और गोत्रका नाम सुना कर युद्ध करते थे ॥ ३८ ॥

श्रावयन्तो हि बहवस्तत्र योधा विशां पते ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ३९ ॥

और पृथ्वीनाथ ! नाम और गोत्र सुनाते हुए वे वीर शक्ति, तोमर और पट्टिश चलाकर एक दूसरेको मारते थे ॥ ३९ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे ।
व्यषीदत्कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ २१५६ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार यह घोर और भयानक युद्ध होनेसे तुम्हारी कौरव सेना इस प्रकार छिन्नभिन्न हो गई, जैसे समुद्रमें टूटी हुई नाव ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ २१५६ ॥

: ३७ :

सञ्जय उवाच

वर्तमाने तदा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने ।
गाण्डीवस्य महान्घोषः शुश्रुवे युधि मारिष ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! मारिष ! जब क्षत्रियोंका नाश करनेवाला, यह घोर युद्ध हो रहा था, तब वहां गाण्डीव धनुषका बडे जोरका शब्द सुनायी दिया ॥ १ ॥

संशप्तकानां कदनमकरोद्यत्र पाण्डवः ।
कोसलानां तथा राजन्नारायणबलस्य च ॥ २ ॥

जहां अर्जुन कोसलदेशीय क्षत्रिय, नारायणी सेना और संशप्तक गणोंका नाश कर रहे थे ॥ २ ॥

×

संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टिं समन्ततः ।
अपातयन्पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३ ॥

वहां समरमें अनेक संशप्तक वीर जयकी इच्छासे क्रुद्ध होकर अर्जुनके मस्तकके ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥

तां वृष्टिं सहसा राजंस्तरसा धारयन्प्रभुः ।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन्रथिनां वरः ॥ ४ ॥

राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ वीर अर्जुन इन सबके बाणोंकी वर्षाको सहसा वेगपूर्वक सहते हुए और शत्रुओंको मारते हुए, युद्धमें कौरवोंकी सेनामें घूमने लगे ॥ ४ ॥

निगृह्य तु रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
आससाद रणे पार्थः सुशर्माणं महारथम् ॥ ५ ॥

शिलापर घिसकर तीक्ष्ण किये हुए कंकपत्र बाणोंसे प्रहार करके कुन्तीपुत्र अर्जुन उस रथ-सेनामें प्रवेश करके महारथी सुशर्मासे युद्ध करनेको उसके पास गये ॥ ५ ॥

स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः ।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थस्य समरे स्थिताः ॥ ६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सुशर्माने उनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा की; इसी प्रकार वहां युद्धमें उपस्थित संशप्तक सेना भी अर्जुन पर बाण चलाने लगी ॥ ६ ॥

सुशर्मा तु ततः पार्थं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरभ्यहन्दक्षिणे भुजे ।
ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष ॥ ७ ॥

अनन्तर राजा सुशर्माने अर्जुनको नौ बाणोंसे विद्ध किया और श्रीकृष्णके दाहिने हाथमें तीन बाण मारे, और मारिष ! दूसरा एक भल्ल बाण अर्जुनकी ध्वजामें मारा ॥ ७ ॥

स वानरवरो राजन्विश्वकर्मकृतो महान् ।
ननाद सुमहन्नादं भीषयन्वै ननर्द च ॥ ८ ॥

उस बाणके लगनेसे विश्वकर्माका बनाया हुआ महान् वानर तुम्हारी सेनाको डराता हुआ बडे जोरसे गर्जने लगा और प्रसन्न हुआ ॥ ८ ॥

कपेस्तु निनदं श्रुत्वा संत्रस्ता तव वाहिनी ।
भयं विपुलमादाय निश्चेष्टा समपद्यत ॥ ९ ॥

वानरका शब्द सुनकर तुम्हारी सेना संत्रस्त हो गयी; मनमें अत्यंत भय लेकर अपने सब कामोंको भूल गई और निश्चेष्ट रह गई ॥ ९ ॥

ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ।
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम् ॥ १० ॥

राजन् ! तब निश्चेष्ट खडी हुई उस सेनाकी ऐसी शोभा बढी, जैसे अनेक प्रकारके फुलोंसे भरे हुए चैत्ररथ नामक वनकी होती है ॥ १० ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ।
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव ।
परिवव्रुस्तदाः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥ ११ ॥

हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! फिर वे तुम्हारे सब योद्धा सचेत होकर अर्जुनके रथकी ओर दौडे और जैसे मेघ पर्वत पर जल वर्षाते हैं, ऐसे ही अर्जुनके ऊपर बाण वर्षाने लगे । उस समय उन सब वीरोंने अर्जुनके बडे रथको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥

ते हयान्रथचक्रे च रथेषाश्चापि भारत ।
निगृह्य बलवत्तूर्णं सिंहनादमथानदन् ॥ १२ ॥

भारत ! अर्जुनके रथके घोडे, रथचक्र और रथकी धुरी बलपूर्वक पकडके शीघ्रही सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १२ ॥

अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ।
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा ॥ १३ ॥

और महाराज ! कईयोंने श्रीकृष्णके दोनों विशाल हाथ जाकर पकड लिये । दूसरोंने रथमें बैठे हुए अर्जुनको आनन्दपूर्वक पकड लिया ॥ १३ ॥

केशवस्तु तदा बाहू विधुन्वन्रणमूर्धनि ।
पातयामास तान्सर्वान्दुष्टहस्तीव हस्तिनः ॥ १४ ॥

जैसे मतवाले दुष्ट हाथी महावतोंको नीचे गिरा देता है, इसी प्रकार श्रीकृष्णने अपने हाथोंको झटका देकर उन सबको नीचे गिरा दिया ॥ १४ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ।
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम् ।
रथारूढांश्च सुबहून्पदातींश्चाप्यपातयत् ॥ १५ ॥

तब उन महारथियोंसे घिरनेपर अर्जुनको बडा क्रोध हुआ । अपने रथको पकडा गया और श्रीकृष्णको आक्रमित हुआ देख, उन्होंने अपने रथपर चढे हुए अनेक पैदल वीरोंको भूमिपर गिराया ॥ १५ ॥

आसन्नांश्च ततो योधाञ्शरैरासन्नयोधिभिः ।
च्यावयामास समरं केशवं चेदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

और अपने मर्मभेदी बाणोंसे अनेक पास आये हुए वीरोंको गिरा दिया और समरमें श्रीकृष्णसे यों बोले ॥ १६ ॥

पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान्मया ।
कुर्वाणान्दारुणं कर्म वध्यमानान्सहस्रशः ॥ १७ ॥

हे महाबाहु श्रीकृष्ण ! ये देखो, घोरकर्म करनेवाले अनेक संशप्तक वीर कैसे मुझसे सहस्रोंकी संख्यामें मारे भी जा रहे हैं ॥ १७ ॥

रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुंगव ॥ १८ ॥

हे यदुकुलश्रेष्ठ ! जगत्में मेरे सिवाय और ऐसा कोई वीर नहीं है जो इस भयंकर रथबंधको सह सके ॥ १८ ॥

इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत् ।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी ॥ १९ ॥

ऐसा कह कर अर्जुनने देवदत्त शंख बजाया और श्रीकृष्णने पांचजन्य शङ्ख बजाया, इस शब्द से सब आकाश और पृथ्वी पूरित हो गई ॥ १९ ॥

तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी ।
संचचाल महाराज वित्रस्ता चाभवद्भृशम् ॥ २० ॥

महाराज ! उस शङ्खके शब्दको सुन संशप्तकोंकी सेना कांपने और भयसे बहुत संत्रस्त होने लगी ॥ २० ॥

पदबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा ।
नागमस्त्रं महाराज संप्रोदीर्य मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥

राजन् ! अनन्तर शत्रुवीरनाशन अर्जुनने अनेक वार नागास्त्र चलाकर सब वीरोंके पैर बांध दिये ॥ २१ ॥

यानुद्दिश्य रणे पार्थः पदबन्धं चकार ह ।
ते बद्धाः पदबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टा अभवन्राजन्नश्मसारमया इव ॥ २२ ॥

हे राजन् ! महात्मा अर्जुनके द्वारा पैर बन्धनेसे वह सब सेना कर्मरहित होकर पत्थरके बने हुए पुतलोंके समान निश्चल खडी रह गयी ॥ २२ ॥

निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत्पाण्डुनन्दनः ।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥ २३ ॥
अनन्तर पाण्डुनन्दन अर्जुनने उन सब निश्चेष्ट योद्धाओंको इस प्रकार मारा, जैसे पहले तारकासुरके वधके समय युद्धमें इन्द्रने दानवोंको मारा था ॥ २३ ॥

ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम् ।
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः ॥ २४ ॥
तब बाणोंसे विद्ध होनेवाले उन सब योद्धाओंने अर्जुनके उत्तम रथको छोड दिया, और उनके ऊपर अपने सब शस्त्रोंको फेंकनेका प्रयास किया ॥ २४ ॥

ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहिनीम् ।
सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ २५ ॥
हे राजन् ! महारथी सुशर्माने अपनी सेनाको नागोंसे बंधकर इस आपत्तिमें पडी देख, शीघ्रही गरुडास्त्र चलाया ॥ २५ ॥

ततः सुपर्णाः संपेतुर्भक्षयन्तो भुजंगमान् ।
ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान्खचरान्नृप ॥ २६ ॥
उसके चलाते ही अनेक गरुड उत्पन्न हो गये । और सांपोंको खाने लगे; हे नृप ! गरुडोंको देख सब सांप इधर उधर भाग गये ॥ २६ ॥

बभौ बलं तद्विमुक्तं पदबन्धाद्विशां पते ।
मेघवृन्दाद्यथा मुक्तो भास्करस्तापयन्प्रजाः ॥ २७ ॥
हे पृथ्वीनाथ ! जैसे मेघ मालाओंसे छूटकर सूर्य सब प्रजाको ताप देते हुए चारों ओर प्रकाश करने लगता है, ऐसे ही तुम्हारी सेना पैरोंके बन्धनसे छूटकर शोभित होने लगी ॥ २७ ॥

विप्रमुक्तास्तु ते योधाः फल्गुनस्य रथं प्रति ।
ससृजुर्बाणसंघांश्च शस्त्रसंघांश्च मारिष ॥ २८ ॥
मारिष ! उन बंधनोंसे मुक्त होनेपर ही वे सब योद्धा अर्जुनके रथकी ओर बाण और अनेक प्रकारके शस्त्र चलाने लगे ॥ २८ ॥

तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः ।
व्यवातिष्ठत्ततो योधान्वासविः परवीरहा ॥ २९ ॥
उस आठों दिशामें छाई हुई बडे अस्त्रोंकी वर्षाको शत्रुवीर नाशन इन्द्रपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे काट दिया, और अनेक वीरोंको मार डाला ॥ २९ ॥

सुशर्मा तु ततो राजन्बाणेनानतपर्वणा ।
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३० ॥

राजन् ! तब राजा सुशर्माने एक तेज बाण अर्जुनके हृदयमें मारा और फिर अन्य तीन बाण मारकर उन्हें विद्ध किया। उनके लगनेसे अर्जुन बहुत विह्वल हुए; और व्यथित होकर रथमें बैठ गये ॥ ३० ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः ।
ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष ॥ ३१ ॥

मारिष ! उतने ही समयमें श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन अमेयात्मा श्वेत वाहन अर्जुनकी मूर्च्छा खुल गयी, तब शीघ्रता सहित उन्होंने इन्द्र अस्त्र मारा, उससे सहस्रों बाण उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥

सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त सूदयन्तो नृप द्विपान् ।
हयान्रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥ ३२ ॥

चारों दिशाओंमें शब्दोंसे तुम्हारी सेनाके सैकडों सहस्रों हाथी, घोडे, रथ और पदाति मारे जाते दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥

वध्यमाने ततः सैन्ये विपुला भीः समाविशत् ।
संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत ।
न हि कश्चित्पुमांस्तत्र योऽर्जुनं प्रत्ययुध्यत ॥ ३३ ॥

भारत ! इस प्रकार जब सेनाका संहार होने लगा, तब नारायणी सेनाके गोपाल और संशप्तक सेना बहुत डरने लगी। वहां कोई ऐसा पुरुष उस समय न था, जो अर्जुनसे युद्ध कर सके ॥ ३३ ॥

पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत महद्बलम्
हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टाः स्म पराक्रमे ॥ ३४ ॥

वहां वीरोंके देखते ही तुम्हारी सेना नष्ट होने लगी। वह सेना निश्चेष्ट होकर, पराक्रम करनेमें असमर्थ हुई। मैंने यह सब देखा था ॥ ३४ ॥

अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे ।
व्यभ्राजत रणे राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनने सब सेनाको व्याकुल कर दिया, और युद्धमें दस सहस्र वीरोंको मारा। हे भारत ! उस समय अर्जुनका तेज धुआं रहित अग्निके समान बढ गया ॥ ३५ ॥

चतुर्दश सहस्राणि यानि शिष्टानि भारत ।
रथानामयुतं चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः ॥ ३६ ॥

भारत ! चौदह सहस्र पदाति, दस सहस्र रथ और तीन हजार हाथी इतने संशप्तकोंमें शेष रह गये ॥ ३६ ॥

ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनंजयम् ।
मर्तव्यमिति निश्चित्य जयं वापि निवर्तनम् ॥ ३७ ॥

तब इन सब संशप्तकोंने इकठ्ठा होकर अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया । उन्होंने फिर निश्चय कर लिया, कि हमें एक दिन अवश्य ही मरना है; सो या तो मरेंगे, या विजय करेंगे, परंतु युद्धसे पराङ्गमुख नहीं होंगे ॥ ३७ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत्तावकानां विशां पते ।
शूरेण बलिना सार्धं पाण्डवेन किरीटिना ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ २१९४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! तब किरीटधारी बलवान् शूर अर्जुनके साथ तुम्हारे सैनिकोंका बडा घोर युद्ध होने लगा ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ ॥ २१९४ ॥

: ३८ :

संजय उवाच

कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सूतपुत्र कर्ण, उलूक, शकुनि और अपने भाइयों समेत राजा दुर्योधनने ॥ १ ॥

सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जिहीर्षुर्वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे ॥ २ ॥

अर्जुनके भयसे अपनी सेनाको व्याकुल होकर थकी हुई और समुद्रमें टूटी हुई नावके समान देखकर बडे वेगसे आकर उनका उद्धार करनेकी इच्छासे युद्ध करना आरंभ किया ॥ २ ॥

ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ३ ॥

भारत ! तब दो घडीतक यह घोर युद्ध होने लगा, उनको देखकर कायर डरने और वीर प्रसन्न होने लगे ॥ ३ ॥

कृपेण शरवर्षाणि विप्रमुक्तानि संयुगे।
सृञ्जयाः शातयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥ ४ ॥

कृपाचार्यने युद्धमें अपने बाणोंसे टीड्डीदलोंके समान खडे हुए सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंको शान्त किया ॥ ४ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्तादेव ब्राह्मणे ॥ ५ ॥

तब शिखण्डी क्रोध करके सब ओरसे बाण वर्षाते हुए शीघ्रही ब्राह्मणश्रेष्ठ गौतमवंशी कृपाचार्यकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

कृपस्तु शरवर्षं तद्विनिहत्य महास्त्रवित्।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥ ६ ॥

महान् शस्त्र जाननेवाले कृपाचार्यने शिखण्डीके सब बाण काट दिये और क्रुद्ध होकर उनके शरीरमें दस बाण मारकर विह्वल किया ॥ ६ ॥

ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे।
कृपं विव्याध सुभृशं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७ ॥

तब शिखण्डीने क्रोध करके युद्धमें कृपाचार्यके शरीरमें शीघ्र चलनेवाले सात कंकपत्रवाले तेज बाण मारकर उनको विद्ध किया ॥ ७ ॥

ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः।
व्यश्वसूतरथं चक्रे पार्षतं तु द्विजोत्तमः ॥ ८ ॥

उन तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यंत पीडित हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ महारथी कृपाचार्यने द्रुपदपुत्र शिखण्डीको सारथि, घोडे और रथ विहीन कर दिया ॥ ८ ॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः।
चर्मखड्गे च संगृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥ ९ ॥

महारथी शिखण्डी उस अश्वहीन रथसे कूदकर खड्ग और ढाल लेकर शीघ्रही कृपाचार्यकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

तमापतन्तं सहसा शरैः संनतपर्वभिः।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १० ॥

शिखण्डीको सहसा आते देख कृपाचार्यने झुकी गांठवाले अनेक बाणोंसे उसे समरमें छा दिया। यह अद्भुत जैसी बात हुई ॥ १० ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा ।
निश्चेष्टो यद्रणे राजञ्शिखण्डी समतिष्ठत　　　॥ ११ ॥

हे राजन् ! जैसे नदीमें तैरते हुए पत्थरोंको देखकर सब मनुष्य आश्चर्य करते हैं, ऐसे ही शिखण्डीको युद्धमें निश्चेष्ट होकर खडे हुए देखकर, हम आश्चर्य करने लगे ॥ ११ ॥

कृपेण छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम् ।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः　　　॥ १२ ॥

नृपोत्तम ! उस समय शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंसे आच्छादित हुआ देख, महारथी धृष्टद्युम्न शीघ्रतासे उनपर दौडे ॥ १२ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः　　　॥ १३ ॥

जब कृपाचार्यके रथकी ओर धृष्टद्युम्नको जाते देखा, तो महारथी कृतवर्माने वेगपूर्वक उन्हें रोका ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
सपुत्रं सहसेनं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत्　　　॥ १४ ॥

इसी प्रकार पुत्र और बहुत सेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरको कृपाचार्यसे युद्ध करनेके लिये उनके रथके पास आते देख, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उन्हें भी रोक रक्खा ॥ १४ ॥

नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन्　　　॥ १५ ॥

तब शिखण्डीकी रक्षा करनेके लिये महारथी नकुल और सहदेव त्वरा करके चले, परन्तु उनको तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने बाण–वर्षासे रोका ॥ १५ ॥

भीमसेनं करूषांश्च केकयान्सहसृञ्जयान् ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत　　　॥ १६ ॥

हे भारत ! करूष, सृञ्जय और कैकयदेशकी सेनाके सहित भीमसेनको युद्धमें वैकर्तन कर्णने रोक दिया ॥ १६ ॥

शिखण्डिनस्ततो बाणान्कृपः शारद्वतो युधि ।
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष　　　॥ १७ ॥

मारिष ! तब चारों दिशाओंको भस्म करते हुए अग्निके समान शरद्वानपुत्र कृपाचार्यने शिखण्डीके मारनेके कारण शीघ्रतासे बाण चलाने आरंभ किये ॥ १७ ॥

तान्शरान्प्रेषितांस्तेन समन्ताद्धेमभूषणान् ।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥

चारों ओरसे उनके चलाये हुए उन सोनेके पङ्खवाले बाणोंको शिखण्डीने बार बार अपना खड्ग घुमाकर काट दिया ॥ १८ ॥

शतचन्द्रं ततश्चर्म गौतमः पार्षतस्य ह ।
व्यधमत्सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १९ ॥

तब कृपाचार्यने अपने बाणोंसे सौचन्द्रचिन्ह युक्त शिखण्डीकी प्रकाशमान ढालको शीघ्रही काट दिया, तब सब लोग हाहाकार करने लगे ॥ १९ ॥

स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत् ।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः ॥ २० ॥

महाराज ! तब ढाल कट जानेपर केवल खड्ग ही लेकर और कृपाचार्यके वशमें पडे हुए शिखण्डी कृपाचार्यकी ओर इस प्रकार दौडे, जैसे रोगी मृत्युके मुखकी ओर जाता है ॥२०॥

शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलम् ।
चित्रकेतुसुतो राजन्सुकेतुस्त्वरितो ययौ ॥ २१ ॥

कृपाचार्यके बाणोंका ग्रास बने हुए महाबली शिखण्डीको अत्यन्त व्याकुल देख, राजा चित्र-केतुके पुत्र सुकेतु तुरंत दौडे ॥ २१ ॥

विकिरन्ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः ।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥

अमेयात्मा सुकेतु ब्राह्मण कृपाचार्यके ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण वर्षाते हुए वेगसे उनके रथके पास आये ॥ २२ ॥

दृष्ट्वाविषक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम ॥ २३ ॥

हे राजश्रेष्ठ ! व्रतधारी ब्राह्मण कृपाचार्यको सुकेतुके साथ युद्ध करते देख, शिखण्डी शीघ्रही वहांसे भाग चले ॥ २३ ॥

सुकेतुस्तु ततो राजन्गौतमं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २४ ॥

हे राजन् ! सुकेतुने कृपाचार्यके शरीरमें नौ बाण मारकर, और सत्तर बाण मारे, फिर तीन बाण मारकर विद्ध किया ॥ २४ ॥

अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मण्यताडयत् ॥ २५ ॥

मारिष ! फिर कृपाचार्यका बाणसहित धनुष काट दिया और एक बाण उनके सारथिके मर्म स्थानोंमें मारा ॥ २५ ॥

गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम्।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ २६ ॥

तब कृपाचार्यने अत्यंत क्रोध करके दूसरा नवीन दृढ धनुष धारण किया और सुकेतुके सब मर्मस्थानोंमें तीस बाण मारे ॥ २६ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे।
भूमिचाले यथा वृक्षश्चलत्याकम्पितो भृशम् ॥ २७ ॥

जैसे भूकम्पमें शालका वृक्ष जोरसे हिलने और कांपने लगता है, ऐसे ही इन बाणोंसे सुकेतुका सब शरीर विह्वल होकर उस उत्तम रथमें कांपने लगा ॥ २७ ॥

चलतस्तस्य कायात्तु शिरो ज्वलितकुण्डलम्।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेणान्वपातयत् ॥ २८ ॥

सुकेतुके कांपते हुए शरीरसे कृपाचार्यने एक क्षुरप्रसे चमकते हुए कुण्डल समेत पगडी और शिरस्त्राण सहित सिर काट दिया ॥ २८ ॥

तच्छिरः प्रापतद्भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम्।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात्प्राप तदा च्युतः ॥ २९ ॥

अनन्तर वह शिर इस प्रकार कटकर पृथ्वीपर गिरा, जैसे बाजके लाया हुआ मांसका टुकडा। पीछे उसका शरीर भी गिर गया ॥ २९ ॥

तस्मिन्हते महाराज त्रस्तास्तस्य पदानुगाः।
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ३० ॥

महाराज ! सुकेतुके मरनेसे उनकी सब अनुगामी सेना भयभीत हो युद्धमें कृपाचार्यको छोडकर दसों दिशाओंमें भाग गयी ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महाबलः।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति पार्षतम् ॥ ३१ ॥

हे भारत ! द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको महाबलवान् कृतवर्माने समरमें रोककर प्रसन्नतापूर्वक कहा— खडे रहो ! खडे रहो ! ॥ ३१ ॥

तदभूत्तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोर्गृद्धयोर्नृप ॥ ३२ ॥

जैसे मांसके लिये क्रोध करके श्येन और गृद्ध लडते हैं, वैसे ही समरमें कृतवर्मा और धृष्टद्युम्नका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन्हार्दिकात्मजम् ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नने क्रोध करके हृदिकपुत्र कृतवर्माके हृदयमें नौ बाण मारे, और उसको पीडित किया ॥ ३३ ॥

कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥ ३४ ॥

धृष्टद्युम्नके बाण लगनेसे कृतवर्मा बहुत विह्वल हुआ और उन्होंने अपने बाणोंकी वर्षासे घोडों और रथसहित धृष्टद्युम्नको छा दिया ॥ ३४ ॥

सरथश्छादितो राजन्धृष्टद्युम्नो न दृश्यते।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलदागमे ॥ ३५ ॥

जैसे वर्षते हुए मेघोंमें छिपकर सूर्य नहीं दिखायी देते हैं, वैसे ही उन बाणोंसे रथसहित आच्छादित हुए धृष्टद्युम्न दिखायी नहीं देते थे ॥ ३५ ॥

विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः।
व्यरोचत रणे राजन्धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥ ३६ ॥

राजन्! धृष्टद्युम्नके शरीरमें अनेक घाव हो गये, परन्तु उन्होंने इन सब बाणोंको अपने सुवर्णभूषित बाणोंसे काट दिया और शोभित होने लगे ॥ ३६ ॥

ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम्।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत्पृतनापतिः ॥ ३७ ॥

अनन्तर सेनापति धृष्टद्युम्नने क्रोध करके कृतवर्माके पास जाकर उसकेऊपर शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा की ॥ ३७ ॥

तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं निरन्तराम्।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्यो व्यधमद्युधि ॥ ३८ ॥

उस सतत सहसा आती हुई घोर बाणधाराको युद्धमें कृतवर्माने सहस्रों बाणोंसे काट दिया ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा तु दारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरुत्तराम् ।
कृतवर्माणमभ्येत्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९ ॥

युद्धमें अपनी घोर बाणधाराको कटी देख, धृष्टद्युम्नने कृतवर्मापर आक्रमण करके उसको रोक दिया ॥ ३९ ॥

सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद्यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ४० ॥

फिर एक तेज भल्ल बाणसे कृतवर्माके सारथिको वेगपूर्वक मारकर यमलोकमें पहुंचा दिया। मारा गया वह सारथि रथसे नीचे गिर गया ॥ ४० ॥

धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महारथम् ।
कौरवान्समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥ ४१ ॥

बलवान् धृष्टद्युम्नने अपने महारथी शत्रु कृतवर्माको जीतकर, बाणोंकी वर्षा करके समरमें अन्य कौरवोंको तुरंत रोक दिया ॥ ४१ ॥

ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् ।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्तत ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ २२३६ ॥

तब तुम्हारे अनेक योद्धा सिंहके समान गर्जते हुए धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे, फिर वहां घोर युद्ध शुरू हुआ ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ २२३६ ॥

: ३९ :

संजय उवाच

द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् ।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्तत हृष्टवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जिस समय अश्वत्थामाने देखा, कि सात्यकि और द्रौपदीके शूर पुत्र युधिष्ठिरकी रक्षा कर रहे हैं; तब हर्षसे युक्त होकर उनसे युद्ध करनेको चले गये ॥१॥

किरन्निषुगणान्घोरान्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
दर्शयन्विविधान्मार्गाञ्शिक्षार्थं लघुहस्तवत् ॥ २ ॥

अश्वत्थामा शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाकर अस्त्रोंको छोडते, बाणविद्या और रथकी अनेक गति दिखलाते हुए, तथा सुवर्णके पङ्खवाले शिलापर घिसे हुए तेज बाण चलाते हुए युधिष्ठिरकी ओर चले ॥ २ ॥

ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ।
युधिष्ठिरं च समरे पर्यवारयदस्त्रवित् ॥ ३ ॥

महाअस्त्रोंके जाननेवाले अश्वत्थामाने दिव्यास्त्रोंसे मन्त्रित बाणोंसे समरमें युधिष्ठिरको रोक दिया। उन बाणोंसे आकाश भर गया ॥ ३ ॥

द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किंचन ।
बाणभूतमभूत्सर्वमायोधनशिरो हि तत् ॥ ४ ॥

द्रोणपुत्रके उन बाणोंसे आच्छादित होनेके कारण वहां कुछ भी जान नहीं पड़ता था, वह युद्धकी सारी भूमि बाणमयही हो गयी ॥ ४ ॥

बाणजालं दिविष्ठं तत्स्वर्णजालविभूषितम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव विष्ठितम् ॥ ५ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! सोनेके पंखवाले बाणोंसे विभूषित वह बाणोंका जाल आकाशमें विस्तरकर, वहां वितान (शामियाना) के समान सुशोभित होता था ॥ ५ ॥

तेन छन्ने रणे राजन्बाणजालेन भास्वता ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६ ॥

हे राजन् ! उन प्रकाशमान बाणोंसे आकाश छा गया; बाणोंसे व्याप्त आकाशमें मेघोंकी छायासी बन गयी ॥ ६ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे ।
न स्म संपतते भूमौ दृष्ट्वा द्रौणेः पराक्रमम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार बाणोंसे आकाश छा जानेपर हम लोगोंने वहीं ऐसा आश्चर्य देखा, कि अश्वत्थामा-का पराक्रम देखकर कोई आकाशकी वस्तु पृथ्वीमें नहीं गिरती थी ॥ ७ ॥

लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रतिवीक्षितुम् ।
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम् ॥ ८ ॥

हे महाराज ! द्रोणपुत्रकी शीघ्रताको देख वहांके सब महारथी आश्चर्य करने लगे। उस समय कोई अश्वत्थामाकी ओर देख नहीं सकता था। राजा लोग अश्वत्थामाकी ओर इस प्रकार न देख सके, जैसे दोपहरके समयके तपते हुए सूर्यको कोई नहीं देख सकता ॥ ८ ॥

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः ।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ॥ ९ ॥

अनेक यत्न करनेपर भी सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर, और भी सब वीर कोई पराक्रम न कर सके ॥ ९ ॥

वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ।
सात्यकिर्धर्मराजश्च पाञ्चालाश्चापि संगताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥ १० ॥

इस प्रकार अपनी सेनाको मागी जाती देख, द्रौपदीके पांचों महारथी पुत्र, सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर और पाञ्चालदेशके सब वीर एकत्र होकर, घोर मृत्युका भय छोडकर अश्वत्थामाकी ओर दौडे ॥ १० ॥

सात्यकिः पञ्चविंशत्या द्रौणिं विद्ध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ ११ ॥

सात्यकिने अश्वत्थामाको पच्चीस बाणोंसे विद्ध करके फिर सुवर्ण भूषित सात नाराच बाण मारे ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिस्तु सप्तभिः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिरने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्यने सात, श्रुतकर्माने तीन, श्रुतकीर्त्तिने सात ॥ १२ ॥

सुतसोमश्च नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥ १३ ॥

सुतसोमने नौ और शतानीकने सात बाण चलाये और दूसरे अनेक वीरोंने भी अश्वत्थामाकी ओर चारों ओरसे सहस्रों बाण चलाकर उसे घायल किया ॥ १३ ॥

सोऽतिक्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्राविध्यत शिलाशितैः ॥ १४ ॥

हे राजन् ! तब अश्वत्थामाने क्रोध करके और विष भरे सांपके समान सांस लेकर, सात्यकिको शिलापर घिसकर तेज किये पच्चीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १४ ॥

श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ।
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ १५ ॥

फिर श्रुतकीर्तिको नौ, सुतसोमको पांच, श्रुतकर्माको आठ, प्रतिविंध्यको तीन, शतानीकको नौ और धर्मराजको सात बाण मारे ॥ १५ ॥

अथेतरांस्ततः शूरान्द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ।
श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ १६ ॥

और शेष शूर वीरोंको दो दो बाण मारे । अनन्तर श्रुतकीर्तिका धनुष तेज बाणोंसे काट दिया ॥ १६ ॥

अथान्यद्धनुरादाय श्रुतकीर्तिर्महारथः ।
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः ॥ १७ ॥

अनन्तर महारथी श्रुतकीर्तिने दूसरा धनुप धारण करके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके शरीरमें तीन बाण मार कर, फिर दूसरे अनेक तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ १७ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण भारत ।
छादयामास तत्सैन्यं समन्ताच्च शरैर्नृपान् ॥ १८ ॥

महाराज ! अनन्तर अश्वत्थामाने उस सब सेनाको और राजाओंको सब ओरसे बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ १८ ॥

ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ।
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन्विव्याध च शरैस्त्रिभिः ॥ १९ ॥

अनन्तर अमेयात्मा द्रोणपुत्रने धर्मराजका धनुप काट दिया और फिर हंसकर तीन बाणोंसे उन्हें विव्हल किया ॥ १९ ॥

ततो धर्मसुतो राजन्प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ।
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ २० ॥

अनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा बडा धनुप धारण करके अश्वत्थामाको विद्ध किया और उसके दोनों हाथों और छातीमें सत्तर बाण मारे ॥ २० ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्त्वानदद्भृशम् ॥ २१ ॥

अनन्तर क्रोधित सात्यकिने युद्धमें प्रहार करनेवाले अश्वत्थामाके धनुपको तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाणसे काटकर बहुत जोरसे गर्जना की ॥ २१ ॥

छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ।
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद्द्रुतम् ॥ २२ ॥

धनुप कट जाने पर महा बलवान् अश्वत्थामाने शक्ति चलाकर सात्यकिके सारथिको शीघ्रही रथसे नीचे गिराया ॥ २२ ॥

अथान्यद्धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
शैनेयं शरवर्षेण छादयामास भारत ॥ २३ ॥

भारत ! फिर प्रतापी द्रोणपुत्रने दूसरा धनुप ले लिया, और सात्यकिको बाणोंकी वर्षासे छा दिया ॥ २३ ॥

तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ।
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ॥ २४ ॥

भारत ! रथके सारथिके मरनेसे, सात्यकिके रथके घोडे युद्धमें इधर उधरको भागते हुए दीख पडने लगे ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरपुरोगास्ते द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम् ।
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्शरान् ॥ २५ ॥

उस समय युधिष्ठिर आदि अनेक वीर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाके ऊपर वेगसे अनेक तीक्ष्ण बाण वर्षाने लगे ॥ २५ ॥

आगच्छमानांस्तान्दृष्ट्वा रौद्ररूपान्परंतपः ।
प्रहसन्प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ॥ २६ ॥

उन क्रोधी वीरोंको अपने ऊपर आक्रमण करते देख, शत्रुतापन अश्वत्थामा उस महायुद्धमें हंसकर उनका सामना करने लगे ॥ २६ ॥

ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ।
द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने ॥ २७ ॥

महारथी द्रोणपुत्र समरमें सैकडों बाण रूपी अग्निसे सेनारूपी काठको इस प्रकार जलाने लगे, जैसे अग्नि वनमें सूखे काठको जलाती है ॥ २७ ॥

तद्बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् ।
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अश्वत्थामासे संतप्त हुई वह युधिष्ठिरकी सेना इस प्रकार घबडा उठी, जैसे बडी मछलीके आजानेसे नदीका मुख ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा ते च महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ।
निहतान्मेनिरे सर्वान्पाण्डून्द्रोणसुतेन वै ॥ २९ ॥

महाराज ! तब द्रोणपुत्रका पराक्रम देखकर सबने जान लिया, कि आज द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे सब पांडव मारे जायंगे ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रौणिं श्लिष्य महारथम् ।
अब्रवीद्द्रोणपुत्रं तु रोषामर्षसमन्वितः ॥ ३० ॥

उसी समय महारथी द्रोणपुत्रके पास त्वरासे जाकर युधिष्ठिरने क्रोध और अमर्षमें भरकर अश्वत्थामासे कहा ॥ ३० ॥

×

नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ।
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि ॥ ३१ ॥

हे पुरुषसिंह ! तुम कुछ प्रेम और उपकारको नहीं मानते हो, क्योंकि आज तुम मुझे ही मारनेकी इच्छा करते हो ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ।
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणको तप, दान और विद्या पढना चाहिये । क्षत्रियको धनुष धारण करना चाहिये । सो तुम कहनेके लिये ही ब्राह्मण हो ॥ ३२ ॥

मिषतस्ते महाबाहो जेष्यामि युधि कौरवान् ।
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

महाबाहो ! देखो, तुम्हारे आगे हम कौरवोंको जीत लेंगे । तुम अवश्य ही ब्राह्मणोंमें नीच हो । अच्छा, अपनी शक्तिके अनुसार युद्धमें पराक्रम करो ॥ ३३ ॥

एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ।
युक्तत्वं तच्च संचिन्त्य नोत्तरं किंचिदब्रवीत् ॥ ३४ ॥

महाराज ! उनके ऐसा बोलनेपर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने स्मित किया, और धर्मराजके वचनोंको यथार्थ समझकर, अश्वत्थामाने कुछ उत्तर न दिया ॥ ३४ ॥

अनुक्त्वा च ततः किंचिच्छरवर्षेण पाण्डवम् ।
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ ३५ ॥

और बिना कुछ कहे ही समरमें क्रुद्ध होकर धर्मराजके ऊपर सहस्रों बाण चलाये और उनको आच्छादित किया; जैसे प्रलय कालमें यमराज क्रोध करके प्रजाका नाश करते हैं ॥ ३५ ॥

संछाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ।
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् ॥ ३६ ॥

मारिष ! इस प्रकार द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे छिप जानेके कारण धर्मराज युधिष्ठिर उस बडी सेनाको त्यागकर शीघ्रतासे युद्धसे हट गये ॥ ३६ ॥

अपयाते ततस्तस्मिन्धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ।
द्रोणपुत्रः स्थितो राजन्प्रत्यादेशान्महात्मनः ॥ ३७ ॥

राजन् ! जब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर युद्धसे विमुख हुए, तब महामना द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी वहांसे गये ॥ ३७ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे ।
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ २२७४ ॥

राजन् ! महायुद्धमें युधिष्ठिर अश्वत्थामाको छोडकर फिर वीरोंका नाश करनेका क्रूर कर्म करनेके लिये तुम्हारी सेनामें घुसे ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें उनचालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ २२७४ ॥

: ४० :

संजय उवाच

भीमसेनं सपाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम् ।
वैकर्तनः स्वयं रुद्ध्वा वारयामास सायकैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! पाञ्चाल, चेदि और केकयदेशकी सेनाके सहित भीमसेनको स्वयं वैकर्तन कर्णने बाणोंसे रोक कर, उनका निवारण किया ॥ १ ॥

ततस्तु चेदिकारूषान्सृञ्जयांश्च महारथान् ।
कर्णो जघान संक्रुद्धो भीमसेनस्य पश्यतः ॥ २ ॥

फिर भीमसेनके देखते देखते क्रोधित कर्णने अपने तेज बाणोंसे चेदि, कारूप और सृञ्जय देशके अनेक महारथी वीरोंको मार डाला ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम् ।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमाग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

तब भीमसेन रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको छोडकर, सूखे तृणको जलानेवाली आग्निके समान वे कौरव सेनाको दग्ध करनेके लिये उस ओर दौडे ॥ ३ ॥

सूतपुत्रोऽपि समरे पाञ्चालान्केकयांस्तथा ।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान्निजघान सहस्रशः ॥ ४ ॥

इसी प्रकार सूतपुत्र कर्णने पाण्डवोंकी सेनामें जाकर सृञ्जय, केकय और पाञ्चालदेशीय सेनाके महाधनुर्धर वीरोंको मार डाला ॥ ४ ॥

संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः ।
पाञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५ ॥

संशप्तकोंका अर्जुन, कौरवोंका भीम और पाञ्चालोंका कर्ण ऐसे ये तीनों महारथी नाश करने लगे ॥ ५ ॥

ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः ।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६ ॥

हे राजन् ! अग्निके समान वे तीनों वीर सेनाको दग्ध करने लगे । तुम्हारी दुर्बुद्धिसे युद्धमें यह क्षत्रियोंका नाश हुआ ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः ।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥ ७ ॥

हे भरतकुल श्रेष्ठ ! अनन्तर दुर्योधनने क्रोध करके नौ वाणोंसे नकुलको और उनके चारों घोडोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिपः ।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ८ ॥

अनन्तर तुम्हारे अमेयात्मा नरेश्वर पुत्रने अपने एक क्षुर वाणसे सहदेवके रथकी सोनेकी ध्वजाको काटकर गिरा दिया ॥ ८ ॥

नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं त्रिसप्तभिः ।
जघान समरे राजन्सहदेवश्च पञ्चभिः ॥ ९ ॥

राजन् ! तव समरमें नकुलने क्रोध करके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके शरीरमें इक्कीस और सहदेवने पांच वाण मारे ॥ ९ ॥

तावुभौ भरतश्रेष्ठौ श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १० ॥

अनन्तर दुर्योधनने क्रुद्ध होकर उन दोनों श्रेष्ठ धनुषधारियोंके छातीमें पांच पांच वाण मारे ॥ १० ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत ।
यमयोः प्रहसन्राजन्विव्याधैव च सप्तभिः ॥ ११ ॥

फिर उसने सहसा दो भल्ल वाणोंसे उनके धनुष भी काट दिये और उन दोनोंको सात वाणोंसे विद्ध किया ॥ ११ ॥

तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे ।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि ॥ १२ ॥

तब वे दोनों वीर इन्द्रधनुषके समान दूसरे श्रेष्ठ धनुष लेकर देवपुत्रोंके समान युद्धमें शोभित हुए ॥ १२ ॥

ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं नृप।
शरैर्ववर्षतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥ १३ ॥

और हे नृप! वे दोनों वेगवान् भाई अपने चचेरे भाई दुर्योधनपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे दो बडे मेघ पर्वतपर जल वर्षावें ॥ १३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥ १४ ॥

हे महाराज! तब तुम्हारे महारथी पुत्रने क्रोध करके दोनों महाधनुर्धर पाण्डवोंको अपने बाणोंसे रोक दिया ॥ १४ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥

हे राजेन्द्र! उस समय दुर्योधनके केवल धनुषका मण्डल और उससे चारों ओर छूटनेवाले बाण ही दिखाई देते थे ॥ १५ ॥

तस्य सायकसंछन्नौ चकाशेतां च पाण्डवौ।
मेघच्छन्नौ यथा व्योम्नि चन्द्रसूर्यौ हतप्रभौ ॥ १६ ॥

वे दोनों पाण्डुपुत्र उसके बाणोंसे आच्छादित होकर, जैसे आकाशमें सूर्य और चन्द्र मेघोंसे आच्छादित होकर प्रकाशहीन होते हैं, वैसे ही दीखने लगे ॥ १६ ॥

ते तु बाणा महाराज हेमपुङ्खाः शिलाशिताः।
आच्छादयन्दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवस्तदा ॥ १७ ॥

महाराज! जिस प्रकार सूर्यकी किरणें जगत्में सब दिशाओंको छा जाती हैं, ऐसे ही दुर्योधनके वे सुवर्ण पंखवाले शिलापर घिसकर तेज किये हुए बाण सब आकाशमें छा गये और चारों ओर बाण ही बाण दीखने लगे ॥ १७ ॥

बाणभूते ततस्तस्मिन्संछन्ने च नभस्तले।
यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ १८ ॥

जब आकाश बाणोंसे ढककर बाणमय होता था, तब उस समय नकुल और सहदेवने दुर्योधनको यम और मृत्युके समान देखा ॥ १८ ॥

पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः।
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे ॥ १९ ॥

तुम्हारे पुत्रका यह पराक्रम देख सब महारथियोंने जाना कि माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव मृत्युके समीप पहुंच गये ॥ १९ ॥

ततः सेनापती राजन्पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ॥ २० ॥

राजन् ! तब महात्मा पाण्डवोंके सेनापति धृष्टद्युम्न उधरको दौडे, जिधर नकुल और सहदेव राजा दुर्योधनसे युद्ध कर रहे थे ॥ २० ॥

माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ।
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं ताडयामास सायकैः ॥ २१ ॥

महारथी शूरवीर माद्रीपुत्रोंको लांघकर धृष्टद्युम्नने तुम्हारे पुत्रको बाणोंसे ताडित किया ॥२१॥

तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रोऽत्यमर्षणः ।
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहस्य पुरुषर्षभ ॥ २२ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! फिर अमेयात्मा क्रोधी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने हंसकर धृष्टद्युम्नके शरीरमें पचीस बाण मारे ॥ २२ ॥

ततः पुनरमेयात्मा पुत्रस्ते पृथिवीपते ।
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च ॥ २३ ॥

पृथ्वीपते ! फिर तुम्हारे पुत्र अमेयात्मा दुर्योधनने पैंसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको विद्ध करके गर्जना की ॥ २३ ॥

अथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे ॥ २४ ॥

मारिष ! अनन्तर युद्धमें राजा दुर्योधनने एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे बाण सहित धनुष और चमडोंका पञ्जा अर्थात् हत्थी काट दी ॥ २४ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ॥ २५ ॥

शत्रुनाशन धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंक कर एक नवीन दृढ धनुष शीघ्रतासे धारण किया ॥ २५ ॥

प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद्रुधिरेक्षणः ।
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥ २६ ॥

उस समय क्रोधके मारे धृष्टद्युम्नके नेत्र लाल हो गये। सब शरीर व्रणोंसे युक्त था, इसलिये वे महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न वेगसे जलनेवाले अग्निके समान शोभित होते थे ॥ २६ ॥

स पञ्चदश नाराचाञ्श्वसतः पन्नगानिव ।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यवासृजत् ॥ २७ ॥

अनन्तर धृष्टद्युम्नने दुर्योधनको मारनेकी इच्छासे सांस लेते हुए सांपोंके समान पन्द्रह नाराच बाण छोडे ॥ २७ ॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ।
विविशुर्वसुधां वेगात्कङ्कबर्हिणवाससः ॥ २८ ॥

शिलापर तीक्ष्ण किये हुए कंक और मोरके पङ्खवाले बाण राजा दुर्योधनका सोनेका कवच काटकर वेगसे पृथ्वीमें घुस गये ॥ २८ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत ।
वसन्ते पुष्पशबलः सपुष्प इव किंशुकः ॥ २९ ॥

महाराज ! उन पंखवाले बाणोंके लगनेसे तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके शरीरमें बहुत पीडा हुई, उस समय इनकी शोभा ऐसी बढी, जैसे वसन्त ऋतुमें अनेक फूलोंसे फूले हुए कचनारकी ॥ २९ ॥

स छिन्नवर्मा नाराचैः प्रहारैर्जर्जरच्छविः ।
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ३० ॥

उनका कवच कट गया था और शरीर नाराचोंके लगनेसे जर्जर हुआ था । तब उन्होंने क्रोध करके एक भल्ल बाणसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया ॥ ३० ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ।
सायकैर्दशभी राजन्भ्रुवोर्मध्ये समार्दयत् ॥ ३१ ॥

राजन् ! अनन्तर धनुष कट जानेपर धृष्टद्युम्नकी भौंहोंके मध्यमें राजा दुर्योधनने शीघ्रताके सहित दस बाण मारे ॥ ३१ ॥

तस्य तेऽशोभयन्वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ।
प्रफुल्लं चम्पकं यद्वद्भ्रमरा मधुलिप्सवः ॥ ३२ ॥

कारीगरने साफ किये हुए उन तेज बाणोंसे धृष्टद्युम्नका मुख रस-लोभी भ्रमरोंके सहित प्रफुल्ल चम्पकके समान शोभित हो गया ॥ ३२ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ॥ ३३ ॥

अनन्तर महामना धृष्टद्युम्नने उस टूटे हुए धनुषको फेंक दिया और शीघ्रतासे दूसरा धनुष और सोलह भल्ल बाण ले लिये ॥ ३३ ॥

ततो दुर्योधनस्याश्वान्हत्वा सूतं च पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥

उनमेंसे पांच बाणोंसे घोडे और सारथिको मार डाला । एक भल्लसे उसके सुवर्णभूषित धनुषको काट डाला ॥ ३४ ॥

रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ।
भल्लैश्चिच्छेद नवभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ॥ ३५ ॥

फिर नौ भल्लोंसे धृष्टद्युम्नने तुम्हारे पुत्रके सब साधनों सहित रथ, छत्र, शक्ति, खड्ग, गदा और ध्वज काट दिये ॥ ३५ ॥

तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ ३६ ॥

सब राजाओंने देखा कि कुरुराज दुर्योधनका सोनेके अंगदोंसे युक्त नागचिन्हवाला, विचित्र, मणिजटित उत्तम ध्वज कट गया है ॥ ३६ ॥

दुर्योधनं तु विरथं छिन्नसर्वायुधं रणे ।
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदर्या भरतर्षभ ॥ ३७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! युद्धमें जिसके कवच और आयुध कटे हुए हैं, उस रथहीन दुर्योधनकी उसके सगे भाई रक्षा करने लगे ॥ ३७ ॥

तमारोप्य रथे राजन्दण्डधारो जनाधिपम् ।
अपोवाह च संभ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ३८ ॥

राजन् ! उसी समय दण्डधारने राजा दुर्योधनको अपने रथपर चढा लिया और त्वरासे धृष्टद्युम्नके देखते उसको युद्धसे हटा दिया ॥ ३८ ॥

कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः ।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखं रणे ॥ ३९ ॥

सात्यकिको जीतकर राजा दुर्योधनके हितेच्छु, महाबलवान् कर्ण भी युद्धमें द्रोणाचार्यके मारनेवाले, उग्र बाण रखनेवाले धृष्टद्युम्नके सामने गया ॥ ३९ ॥

तं पृष्ठतोऽभ्ययात्तूर्णं शैनेयो वितुदञ्शरैः ।
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः ॥ ४० ॥

इनके पीछे अनेक बाणोंसे पीडा देते हुए सात्यकि दौडे, जैसे मतवाला हाथी अपने दांतोंसे किसी दूसरे हाथीकी जांघोंमें चोट पहुंचाता हुआ दौडता है, ऐसे ही सात्यकि कर्णके पीछे दौडे ॥ ४० ॥

स भारत महानासीद्योधानां सुमहात्मनाम् ।
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः ॥ ४१ ॥

हे भारत ! यह कर्ण और धृष्टद्युम्नके बीचमें रहे तुम्हारे महात्मा वीरोंका पांडव सेनासे महान् घोर युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥

न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित्पराङ्मुखः।
प्रत्यदृश्यत यत्कर्णः पाञ्चालांस्त्वरितो ययौ ॥ ४२ ॥

तब दोनों—पाण्डव और हमारे—ओरसे कोई वीर युद्धसे पराङ्मुख होकर पीछे हटता दिखाई नहीं दिया। फिर कर्णने त्वरासे पांचालोंपर धावा किया ॥ ४२ ॥

तस्मिन्क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिनरक्षयः।
प्रादुरासीदुभयतो राजन्मध्यंगतेऽहनि। ॥ ४३ ॥

हे नरश्रेष्ठ! माध्यान्हके उस समय दोनों पक्षोंके अनेक हाथी, घोडे और मनुष्य मर गये ॥ ४३ ॥

पाञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ॥ ४४ ॥

महाराज! विजयेच्छु सब पाञ्चाल वीर चारों ओरसे कर्णकी ओर इस प्रकार दौडे, जैसे पक्षिगण वृक्षपर उडे जाते हैं ॥ ४४ ॥

तेषामाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान्मनस्विनः।
विचिन्वन्नेव बाणाग्रैः समासादयदग्रतः ॥ ४५ ॥

उस समय विजयके लिये यत्न करते हुए, पराक्रमी योद्धाओंको चुन चुनकर क्रोधित अधिरथ पुत्र कर्ण अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगा ॥ ४५ ॥

व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं शङ्कुं चोग्रं धनंजयम्।
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ॥ ४६ ॥

व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, शंकु, उग्र, धनंजय, शुक्ल, रोचमान और दुर्जय सिंहसेनसे युद्ध करने लगा ॥ ४६ ॥

ते वीरा रथवेगेन परिवव्रुर्नरोत्तमम्।
सृजन्तं सायकान्क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ४७ ॥

उन सब वीरोंने वेगपूर्ण रथसे आकर, युद्धमें शोभित होनेवाले, क्रुद्ध होकर बाण छोडनेवाले नरोत्तम कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४७ ॥

युध्यमानांस्तु ताञ्शूरान्मनुजेन्द्रः प्रतापवान्।
अष्टाभिरष्टौ राधेयो न्यहनन्निशितैः शरैः। ॥ ४८ ॥

मनुष्यश्रेष्ठ महाप्रतापी राधापुत्र कर्णने अपने आठ तीक्ष्ण बाणोंसे युद्ध करनेवाले उन आठ शूर वीरोंको मारा ॥ ४८ ॥

x

अथापरान्महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान्।
जघान बहुसाहस्रान्योधान्युद्धविशारदः ॥ ४९ ॥

महाराज! फिर प्रतापी सूतपुत्रने अनेक हजार युद्धविशारद वीरोंको सहस्रों बाणोंसे मार डाला ॥ ४९ ॥

विष्णुं च विष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च।
दण्डं च समरे राजंश्चित्रं चित्रायुधं हरिम् ॥ ५० ॥

राजन्! फिर युद्धमें विष्णु, विष्णुकर्मा, देवापि, भद्र, दंड, चित्र, चित्रायुध, हरि, ॥५०॥

सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम्।
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ॥ ५१ ॥

सिंहकेतु, रोचमान, महारथी शलभ और चेदिदेशके अनेक महारथी वीरोंको मार डाला ॥ ५१ ॥

तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः।
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत् ॥ ५२ ॥

इन वीरोंके प्राणोंका हरण करते समय रुधिरसे भीगे अंगोंवाले सूतपुत्र कर्णका शरीर सर्व भूत संहारक शिवके समान देदीप्यमान दीखता था ॥ ५२ ॥

तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ५३ ॥

भारत! इसी प्रकार वहां उन्होंने अनेक बाणोंसे हाथियोंको मार डाला। कर्णके बाणोंसे व्याकुल हुए हाथी सेनाको त्रस्त करते भयभीत हो इधर उधरको भागने लगे ॥ ५३ ॥

निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकपीडिताः।
कुर्वन्तो विविधान्नादान्वज्रनुन्ना इवाचलाः ॥ ५४ ॥

जैसे वज्रके लगनेसे पर्वत गिरते हैं वैसे ही वे हाथी कर्णके बाणोंसे पीडित होकर समरमें नाना प्रकारके शब्दोंसे चिल्लाते हुए गिर गये ॥ ५४ ॥

गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः।
रथैश्चावगतैर्मार्गे पर्यस्तीर्यत मेदिनी ॥ ५५ ॥

कर्णके मार्गमें सब ओर गिरते हुए हाथी, घोडे, मनुष्य और रथोंसे सब भूमि भर गयी थी ॥ ५५ ॥

नैव भीष्मो न च द्रोणो नाप्यन्ये युधि तावकाः।
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ॥ ५६ ॥

जैसा कर्णने वहां रणभूमिमें पराक्रम किया था, वैसा भीष्म, द्रोणाचार्य आदि तुम्हारे ओरके दूसरे किसीभी योद्धाने नहीं किया था ॥ ५६ ॥

सूतपुत्रेण नागेषु रथेषु च हयेषु च ।
नरेषु च नरव्याघ्र कृतं स्म कदनं महत् ॥ ५७ ॥

हे नरसिंह ! हाथी, रथ, घोडे और मनुष्य दलोंके बीचमें सूतपुत्र कर्णने घोर संहार किया ॥ ५७ ॥

मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ।
पाञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत् ॥ ५८ ॥

जैसे हरिणोंके बीचमें सिंह बेडर होकर घूमता दिखायी देता है, ऐसा ही कर्ण उस पांचालोंकी सेनामें निर्भय होकर घूमता था ॥ ५८ ॥

यथा मृगगणांस्त्रस्तान्सिंहो द्रावयते दिशः ।
पाञ्चालानां रथव्रातान्कर्णो द्रावयते तथा ॥ ५९ ॥

सिंह जैसे भयभीत हरिणोंके झुंडोंको सब ओर भगाता है, वैसे ही कर्ण पाञ्चालोंके रथ समूहोंको भगाता था ॥ ५९ ॥

सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित् ।
तथा कर्णमनुप्राप्य न जीवन्ति महारथाः ॥ ६० ॥

जैसे सिंहके मुखके आगे आकर कोई हरिन जीवित नहीं बचते, ऐसे ही कर्णके पास पहुंचकर पांचाल महारथी जीवित नहीं रहते थे ॥ ६० ॥

वैश्वानरं यथा दीप्तं दह्यन्त प्राप्य वै जनाः ।
कर्णाग्निना रणे तद्वद्दग्धा भारत सृञ्जयाः ॥ ६१ ॥

भारत ! जैसे प्रज्वलित अग्निमें पड कर सब मनुष्य जल जाते हैं, वैसे ही युद्धमें सृञ्जय वंशी क्षत्रिय कर्णरूपी अग्निमें जलकर भस्म हो गये ॥ ६१ ॥

कर्णेन चेदिष्वेकेन पाञ्चालेषु च भारत ।
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसंमताः ॥ ६२ ॥

हे भारत ! अकेले कर्णने चेदि और पाञ्चालोंमेंसे अनेक शूर सम्मत वीरोंको नाम सुनाकर मार डाला ॥ ६२ ॥

मम चासीन्मनुष्येन्द्र दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन्पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि ॥ ६३ ॥

जनाधिप ! कर्णका पराक्रम देख हमें यह निश्चय हो गया कि आज युद्धमें सूतपुत्र कर्णके हाथसे कोई पाञ्चाल योद्धा जीवित नहीं बचेगा ॥ ६३ ॥

पाञ्चालान्विधमन्संख्ये सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ६४ ॥

इस प्रकार प्रतापी सूतपुत्र कर्ण युद्धमें पाञ्चालोंको नष्ट करने लगा था । फिर धर्मपुत्र युधिष्ठिर पर क्रुद्ध होकर उसने धावा किया ॥ ६४ ॥

धृष्टद्युम्नश्च राजानं द्रौपदेयाश्च मारिष ।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥ ६५ ॥

मारिष ! तब धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा और भी दूसरे सैकडों वीर शत्रुनाशन राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घिरकर खडे हुए ॥ ६५ ॥

शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा ।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६६ ॥

इनके सिवाय शिखण्डी, सहदेव, नकुल, शतानीक, जनमेजय, सात्यकि और अनेक प्रभद्रक-वंशी क्षत्रिय ॥ ६६ ॥

एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नश्च संयुगे ।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥ ६७ ॥

ये सब महापराक्रमी तेजस्वी वीर युद्धमें धृष्टद्युम्नको आगे कर अनेक बाण चलानेवाले कर्ण पर अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे प्रहार करके घूमने लगे ॥ ६७ ॥

तांस्तत्राधिरथिः संख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान् ।
एको बहूनभ्यपतद्गरुत्मान्पन्नगानिव ॥ ६८ ॥

जैसे अकेला गरुड अनेक सर्पोंपर आक्रमण करता है, वैसे ही अकेले सूतपुत्र कर्ण युद्धमें अनेक चेदि, पाञ्चाल और पाण्डवोंसे युद्ध करने लगे ॥ ६८ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः कुरून्मद्रान्सकेकयान् ।
एकः संख्ये महेष्वासो योधयन्बह्वशोभत ॥ ६९ ॥

भीमसेन क्रोध करके कुरु, केकयोंके सहित मद्रदेशीय योद्धाओंसे युद्ध करने लगे । अकेले महाधनुर्धारी भीमसेन समरमें अनेक वीरोंसे युद्ध करने लगे, तब उनकी शोभा बहुत बढी ॥ ६९ ॥

तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ।
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ॥ ७० ॥

उन्होंने अनेक हाथियोंको मर्मस्थानमें नाराच बाण मारकर घायल कर दिया, तब वे हाथी, सवारोंके सहित पृथ्वीमें गिर गये, इन सबके गिरनेके समय वे पृथ्वीको कंपित करते थे ॥ ७० ॥

वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ।
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ॥ ७१ ॥

सवारोंके रहित घोडे और पैदल सैनिक युद्धमें छिन्नभिन्न होकर रक्त वमन करते हुए प्राण-रहित होकर पृथ्वीमें सो गये ॥ ७१ ॥

सहस्रशश्च रथिनः पतिताः पतितायुधाः ।
अक्षताः समदृश्यन्त भीमाद्भीता गतासवः ॥ ७२ ॥

सहस्रों रथी रुधिरमें भींगकर और शस्त्रहीन होकर पृथ्वीमें गिर गये । वे सब अक्षत होते हुए भी भीमसेनके डरसे प्राणहीन दीखते थे ॥ ७२ ॥

रथिभिर्वाजिभिः सूतैः पत्तिभिश्च तथा गजैः ।
भीमसेनशरच्छिन्नैरास्तीर्णा वसुधाभवत् ॥ ७३ ॥

भीमसेनके बाणोंसे छिन्नभिन्न हुए रथी, घोडे, सारथि, पैदल और हाथियोंकी लोथोंसे पृथ्वी भर गयी थी ॥ ७३ ॥

ततस्तम्भितमिवातिष्ठद्भीमसेनबलार्दितम् ।
दुर्योधनबलं राजन्निरुत्साहं कृतव्रणम् ॥ ७४ ॥

राजन् ! भीमसेनके बलसे पीडित होकर वह सेना कुछ न कर सकी, वह स्तब्ध जैसी खडी थी । उस युद्धमें दुर्योधनकी सेना घावोंसे व्याकुल होकर उत्साह रहित हो गई ॥ ७४ ॥

निश्चेष्टं तुमुले दीनं बभौ तस्मिन्महारणे ।
प्रसन्नसलिलः काले यथा स्यात्सागरो नृप ॥ ७५ ॥

नृप ! जैसे शरदृतुमें समुद्र ज्वार न उठनेसे अचल हो जाता है, वैसे ही उस भयंकर समरमें वह निश्चेष्ट और दीन दीखती थी ॥ ७५ ॥

मन्युवीर्यबलोपेतं बलात्पर्यवरोपितम् ।
अभवत्तव पुत्रस्य तत्सैन्यमिषुभिस्तदा ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥ ७६ ॥

जो तुम्हारे पुत्रकी सेना क्रोध, वीर्य और बलसे युक्त थी वह भीमसेनके बाणोंके बलसे मद और उत्साहसे रहित होकर तेज हीन हो गई। वह सेना रुधिरके प्रवाहमें गोता खाकर रुधिरसे भीगकर व्याकुल हो गई ॥ ७६ ॥

सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्बह्वशोभत ॥ ७७ ॥

सूतपुत्र कर्ण क्रोध करके युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाको और भीमसेन कौरवोंकी सेनाको भगाने लगे । उस समय उन दोनों वीर रणभूमिमें शोभने लगे ॥ ७७ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने।
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान्बहून् ॥ ७८ ॥

इस प्रकार यह अद्भुत और घोर युद्ध चल रहा था, तो सेनाके मध्यमें अनेक संशप्तक वीरोंको मार कर ॥ ७८ ॥

अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत्।
प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन ॥ ७९ ॥

महा विजयी अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले– हे कृष्ण ! देखो, हमारे साथ युद्ध करनेवाली यह संशप्तकोंकी सेना भग्न हो गई है ॥ ७९ ॥

एते धावन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः।
अपारयन्तो मद्बाणान्सिंहशब्दान्मृगा इव ॥ ८० ॥

अब ये संशप्तक महारथी अपने दलोंके साथ युद्ध छोडकर भागे जाते हैं, जैसे सिंहके शब्दको सुनकर हिरण भागते हैं, ऐसे ही मेरे बाणोंको न सह कर ये सेना भागी जाती है ॥८०॥

दीर्यते च महत्सैन्यं सृञ्जयानां महारणे।
हस्तिकक्ष्यो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः।
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुहुः ॥ ८१ ॥

ये देखो, वह सृंजयोंकी महान् सेना भी महायुद्धमें विदीर्ण हो रही है। हे कृष्ण ! राजाओंकी सेनाके बीचमें बार बार घूमते हुए हस्तिकक्षासे युक्त बुद्धिमान् कर्णकी ध्वजा दीखती है ॥ ८१ ॥

न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः।
जानीते हि भवान्कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥ ८२ ॥

कर्णको युद्धमें दूसरे कोई भी महारथी नहीं जीत सकते हैं, आप कर्णके बल और पराक्रमको जानते ही हैं ॥ ८२ ॥

तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम् ॥ ८३ ॥
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम्।
श्रमो मा बाधते कृष्ण यथा वा तव रोचते ॥ ८४ ॥

जहां यह कर्ण हमारी सेनाको भगा रहे हैं, वहां चालिये, समरमें संशप्तकोंको छोडकर अब महारथी सूतपुत्रके पास ही आप हमारे रथको शीघ्र ले चलिये। हे कृष्ण ! परिश्रम तो नहीं कष्ट देते, आगे आपकी जो इच्छा हो ॥ ८३-८४ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाराज गोविन्दः प्रहसन्निव।
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव ॥ ८५ ॥

तो अर्जुनके ऐसे वचन सुन श्रीकृष्ण हंसकर बोले, हे अर्जुन! तुम कौरवोंको युद्धमें मारो ॥ ८५ ॥

ततस्तव महत्सैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः।
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ ॥ ८६ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णसे चलाये हुए हंसके समान श्वेतवर्णवाले घोडे श्रीकृष्ण और अर्जुनको लेकर तुम्हारी बडी सेनामें प्रविष्ट हुए ॥ ८६ ॥

केशवप्रहितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः।
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत ॥ ८७ ॥

श्रीकृष्णसे हांके हुए उन सुवर्णके भूषणोंसे भूषित अर्जुनके रथके सफेद घोडोंने जब तुम्हारी सेनामें प्रवेश किया, तब तुम्हारी सेना चारों ओरसे भग्न होने लगी ॥ ८७ ॥

तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ।
क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ व्यभ्राजेतां महाद्युती ॥ ८८ ॥

रथ पर चढे श्रीकृष्ण और अर्जुन तुम्हारी सेनाको भग्न करके उसमें प्रविष्ट हुए। वे दोनों महापराक्रमी वीर अत्यंत क्रोधित और क्रोधसे नेत्र लाल किए हुए, महान् तेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८८ ॥

युद्धशौण्डौ समाहूतावरिभिस्तौ रणाध्वरम्।
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ ॥ ८९ ॥

जैसे किसी यज्ञमें ऋत्विजोंसे विधिपूर्वक बुलाये अश्विनीकुमार देवता आते हैं, ऐसे ही ये दोनों युद्धकुशल वीर शत्रुओंसे आह्वान किये जानेपर रणयज्ञमें आये ॥ ८९ ॥

क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ वेगवन्तौ बभूवतुः।
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महाहवे ॥ ९० ॥

जैसे दो मतवाले हाथी महावनमें तालीकी आवाजसे क्रुद्ध होकर दौडते आते हैं, वैसे ही वे दोनों पुरुषसिंह क्रुद्ध होकर आगे आते थे ॥ ९० ॥

विगाहन्स रथानीकमश्वसंघांश्च फल्गुनः।
व्यचरत्पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः ॥ ९१ ॥

जैसे फांसी लेकर यमराज जगत्में घूमते हैं, वैसे ही अर्जुन तुम्हारी रथोंकी और घुड-सवारोंकी सेनामें घुसकर कौरवसेनाके बीचमें घूमने लगे ॥ ९१ ॥

तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ।
संशप्तकगणान्भूयः पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ ९२ ॥

भारत ! युद्धमें पराक्रम करनेवाले अर्जुनको अपनी सेनामें प्रविष्ट हुआ देख, तुम्हारे पुत्रने संशप्तकोंको फिर अर्जुनसे युद्ध करनेको प्रेरित किया ॥ ९२ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ।
चतुर्दशसहस्रैश्च तुरगाणां महाहवे ॥ ९३ ॥

तब महायुद्धमें एक सहस्र रथ, तीन सौ हाथी, चौदह सहस्र घोडे ॥ ९३ ॥

द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनां च धन्विनाम् ।
शूराणां नामलब्धानां विदितानां समन्ततः ।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ छादयन्तो महारथाः ॥ ९४ ॥

और दो लाख धनुषधारी शूर पदाति श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करनेको चढ आये, उन सब लक्ष्यवेधी, सर्वत्र प्रसिद्ध, पराक्रमी पदातियोंको लेकर महारथी संशप्तक उन दोनों वीरोंके ऊपर बाण वर्षा करके आच्छादित करने लगे ॥ ९४ ॥

स छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ।
दर्शयन्रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः ।
निघ्नन्संशप्तकान्पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् ॥ ९५ ॥

उस समय समरमें अर्जुन चारों ओरसे उनके बाणोंमें छिप गये । अनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुन पाशधारी यमराजके समान भयंकर अपना रूप दिखाते और संशप्तकोंका नाश करते हुए अत्यन्त सुन्दर दीखते थे ॥ ९५ ॥

ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः ।
निरन्तरमिवाकाशमासीन्नुन्नैः किरीटिना ॥ ९६ ॥

तब सोनेके पङ्खवाले, बिजलीके समान प्रकाशमान किरीटधारी अर्जुनके छोडे हुए बाणोंसे समस्त आकाश भर गया ॥ ९६ ॥

किरीटिभुजनिर्मुक्तैः संपतद्भिर्महाशरैः ।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥ ९७ ॥

प्रभो ! उस समय जैसे सब ओर सर्पोंके उडनेसे आकाश दीखना सम्भव है, ऐसे ही किरीट-धारी अर्जुनके हाथोंसे छूटकर गिरनेवाले बडे बाणोंसे व्याप्त आकाश दीखने लगा ॥ ९७ ॥

रुक्मपुङ्खान्प्रसन्नाग्राञ्शरान्संनतपर्वणः ।
अदर्शयदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥ ९८ ॥

अमेयात्मा अर्जुनने तेज धार, नतपर्व और सोनेके पङ्खवाले बाणोंसे दसों दिशाओंको पूरित कर दिया ॥ ९८ ॥

हत्वा दश सहस्राणि पार्थिवानां महारथः ।
संशप्तकानां कौन्तेयः प्रपक्षं त्वरितोऽभ्ययात् ॥ ९९ ॥

दस सहस्र संशप्तक राजाओंको मारकर महारथी अर्जुन शीघ्रही उस सेनासे बाहर हुए ॥ ९९ ॥

प्रपक्षं स समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम् ।
प्रममाथ बलाद्बाणैर्दानवानिव वासवः ॥ १०० ॥

उस सेनासे बाहर होकर, अर्जुनने काम्बोज राजसे सुरक्षित सेनामें प्रवेश किया और उनका बलपूर्वक चलाये बाणोंसे इस प्रकार नाश करने लगे, जैसे इन्द्र दानवोंको मारते हैं ॥ १०० ॥

प्रचिच्छेदाशु भल्लैश्च द्विषतामाततायिनाम् ।
शस्त्रपाणींस्तथा बाहूंस्तथापि च शिरांस्युत ॥ १०१ ॥

अर्जुनने अपने भल्ल बाणोंसे बलवान् आततायी शत्रुओंके शस्त्रयुक्त हाथ, भुजा और शिर बडी शीघ्रतासे काट डाले ॥ १०१ ॥

अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन्क्षितौ ।
विष्वग्वाताभिसंभग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः ॥ १०२ ॥

जैसे अनेक शाखावाले वृक्ष वायुके चलनेसे गिर पडते हैं, ऐसे ही अपने शरीरके अवयव कट जानेसे वे वीर शस्त्रहीन होकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ १०२ ॥

हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान्निघ्नन्तमर्जुनम् ।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥ १०३ ॥

अर्जुनको हाथी, घोडे, रथ और पदातियोंका नाश करते देख, राजा सुदक्षिणका छोटा भाई उन पर बाण वर्षाने लगा ॥ १०३ ॥

अस्यास्यतोऽर्धचन्द्राभ्यां स बाहू परिघोपमौ ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहनच्छिरः ॥ १०४ ॥

तब अर्जुनने दो अर्ध चन्द्राकार बाणोंसे बाणोंकी वर्षा करनेवाले परिघ समान उसके दोनों हाथ और एक क्षुर बाणसे पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाला शिर काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १०४ ॥

×

स पपात ततो वाहात्स्वलोहितपरिस्रवः।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् ॥ १०५ ॥

जैसे मैनसिलसे भरा हुआ पर्वतका शिखर वज्रके लगनेसे विदीर्ण होकर गिरता है, ऐसे ही स्वयंका रुधिर बहाता हुआ वह अपने वाहनसे गिरा ॥ १०५ ॥

सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम्।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम्।
काञ्चनस्तम्भसंकाशं भिन्नं हेमगिरिं यथा ॥ १०६ ॥

कमलके समान नेत्रवाले महासुन्दर काम्बोज देशीय देखनेमें प्रिय सुदक्षिणके छोटे भाईको सोनेके खम्भेके समान कदवाला, विदीर्ण हुए सोनेके पर्वतके समान गिरा हुआ उस समय सब लोगोंने देखा ॥ १०६ ॥

ततोऽभवत्पुनर्युद्धं घोरमद्भुतदर्शनम्।
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युध्यताम् ॥ १०७ ॥

फिर घोर और अद्भुत दर्शनीय युद्ध होने लगा। उन महा युद्ध करते हुए वीरोंके अनेक रूप दीखने लगे ॥ १०७ ॥

एतैष्वावर्जितैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः।
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद्विशां पते ॥ १०८ ॥

पृथ्वीपते ! काम्बोज, यवन और शकदेशके अनेक घोडे बाणोंके लगनेसे मर गये, मरे घोडोंके शरीरसे रुधिर बहने लगा और वह सब भूमि लाल हो गयी ॥ १०८ ॥

रथै रथाश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥ १०९ ॥

महाराज ! रथ, रथोंके घोडे और सारथि, घुडसवार, हाथियोंके सवार, महावत और हाथी भी मारे गये थे। इन्होंने परस्पर प्रहार करके घोर जनसंहार किया ॥ १०९ ॥

तस्मिन्प्रपक्षे पक्षे च वध्यमाने महात्मना।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरायथौ ॥ ११० ॥

जिस समय अर्जुनने व्यूहके उस पक्ष और प्रपक्षको नाश कर दिया, तब विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शीघ्र दौडे ॥ ११० ॥

विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
आददानः शरान्घोरान्स्वरश्मीनिव भास्करः ॥ १११ ॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंको जगत्में फैलाते हैं, वैसे ही सुवर्ण भूषित विशाल धनुषको खींच कर अश्वत्थामा घोर बाण चलाने लगे ॥ १११ ॥

तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥ ११२ ॥

हे महाराज ! अश्वत्थामाके हाथोंसे छूटकर चारों ओर गिरनेवाले उन बाणोंसे रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों छिप गये ॥ ११२ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
निश्चेष्टौ तावुभौ चक्रे युद्धे माधवपाण्डवौ ॥ ११३ ॥

अनन्त प्रतापवान् अश्वत्थामाने अपने सैकड़ों तीक्ष्ण बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको निश्चेष्ट कर दिया ॥ ११३ ॥

हाहाकृतमभूत्सर्वं जङ्गमं स्थावरं तथा ।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः ॥ ११४ ॥

स्थिर-चरके रक्षक अर्जुन और श्रीकृष्णको बाणोंसे आच्छादित हुआ देख सब स्थावर जंगम प्राणी हाहाकार करने लगे ॥ ११४ ॥

सिद्धचारणसंघाश्च संपेतुर्वै समन्ततः ।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीत्यह ॥ ११५ ॥

सब सिद्ध और चारणोंके संघ सब ओरसे वहां आकर आज सब जगत्का कल्याण हो, ऐसा कहने लगे ॥ ११५ ॥

न मया तादृशो राजन्दृष्टपूर्वः पराक्रमः ।
संजज्ञे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः ॥ ११६ ॥

हे राजन् ! अश्वत्थामाने जब श्रीकृष्ण और अर्जुनको युद्धमें बाणोंसे छा लिया, उस समय उसने जैसा पराक्रम किया, वैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥ ११६ ॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे ।
अश्रौषं बहुशो राजन्सिंहस्य नदतो यथा ॥ ११७ ॥

जङ्गलमें सिंह गर्जता है, वैसे ही युद्धमें अश्वत्थामाके धनुषका शत्रुओंको त्रास देनेवाला शब्द बारबार सुनायी देता था ॥ ११७ ॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः ।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥ ११८ ॥

जैसे घूमते हुए मेघके बीचमें बिजली चमकती है, वैसे दायें-बांये बाण छोडते घूमते हुए अश्वत्थामाके धनुषकी प्रत्यञ्चा चमकने लगी ॥ ११८ ॥

स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः ।
संमोहं परमं गत्वा प्रैक्षत द्रोणजं ततः ॥ ११९ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको देखकर दृढ महापराक्रमी शीघ्र शस्त्र चलानेवाले, अर्जुन अत्यंत मोहित होकर खडे रह गये ॥ ११९ ॥

स विक्रमं हृतं मेने आत्मनः सुमहात्मना ।
तथास्य समरे राजन्वपुरासीत्सुदुर्दृशम् ॥ १२० ॥

महात्मा अर्जुन मानने लगे, कि अपना सब पराक्रम नष्ट हो गया । राजन् ! उस समय समरमें उसके शरीरको देखनाही कठिन हो गया ॥ १२० ॥

द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे ।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ।
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णं रोषः समभ्ययात् ॥ १२१ ॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार अर्जुन और अश्वत्थामाके चले हुए महा युद्धमें महाबलवान् अश्वत्थामाकी वृद्धि हुई और कुन्तीपुत्र अर्जुनका पराक्रम मन्द होने लगा, तब कृष्ण एकाएक महा क्रोधमें भर गये ॥ १२१ ॥

स रोषान्निःश्वसन्राजन्निर्दहन्निव चक्षुषा ।
द्रौणिं ह्यपश्यत्संग्रामे फल्गुनं च मुहुर्मुहुः ॥ १२२ ॥

राजन् ! वे क्रोधसे लंबी सांस लेकर और अपने आंखोंसे सब दग्ध–सा करते हुए संग्राममें अश्वत्थामा और अर्जुनकी ओर बार बार देखने लगे ॥ १२२ ॥

ततः क्रुद्धोऽब्रवीत्कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ।
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे ।
अतिशेते हि यत्र त्वा द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥ १२३ ॥

फिर क्रोधमें भरे हुए श्रीकृष्ण अर्जुनकी ओर देखकर प्रेमसे बोले, हे पार्थ ! युद्धमें तुम्हारा यह वर्तन अत्यंत विस्मयकारक ऐसा हम देख रहे हैं । भारत ! आज द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुमसे बढकर कर्म कर रहा है ॥ १२३ ॥

कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ।
कच्चित्कुशलिनौ बाहू कच्चिद्वीर्यं तदेव ते ॥ १२४ ॥

हे अर्जुन ! कहो, तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष तो है ? तुम रथपर तो खडे हो ? कहो तुम्हारे दोनों हाथ तो अच्छे हैं ? तुम्हारी शक्ति पहले जैसी ही है न ? ॥ १२४ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन क्षिप्त्वा भल्लांश्चतुर्दश ।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ।
ध्वजं छत्रं पताकां च रथं शक्तिं गदां तथा ॥ १२५ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनते ही अर्जुनने अपने धनुष पर चौदह भल्ल बाण चढाये और उनको छोडकर, शीघ्रता सहित अश्वत्थामाका धनुष काट दिया। अनन्तर ध्वजा, छत्र, पताका, रथ, शक्ति और गदाको भी काट दिया ॥ १२५ ॥

जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ।
स मूर्च्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १२६ ॥

अनन्तर वत्सदन्त बाणोंसे उसके गलेमें गहरा आघात किया। उन बाणोंके लगनेसे अश्वत्थामा-को मूर्छा आ गई, तब वे ध्वजाके बांसको पकडकर बैठ गये ॥ १२६ ॥

तं विसंज्ञं महाराज किरीटिभयपीडितम् ।
अपोवाह रणात्सूतो रक्षमाणो धनंजयात् ॥ १२७ ॥

महाराज! तब उनको मूर्छित और अर्जुनके भयसे व्याकुल जानकर उनके सारथिने अर्जुनसे उनकी रक्षा करनेके लिये उन्हें रणभूमिसे दूर हटा लिया ॥ १२७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु विजयः शत्रुतापनः ।
न्यवधीत्तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः ।
पश्यतस्तव पुत्रस्य तस्य वीरस्य भारत ॥ १२८ ॥

भारत! उसी समय शत्रुनाशन अर्जुनने तुम्हारे पुत्र और अश्वत्थामाके देखते देखते तुम्हारी सेनाके सैकडों सहस्रों वीरोंको मार डाला ॥ १२८ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह ।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२९ ॥

हे राजन्! यह शत्रु पाण्डवोंकी सेनाके साथ तुम्हारी सेनाका क्रूर और घोर नाश हुआ। यह केवल तुम्हारी दुर्बुद्धिसे हुआ ॥ १२९ ॥

संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः ।
वसुषेणं च पाञ्चालः कृत्स्नेन व्यधमद्रणे ॥ १३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ २४०४ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुनने संशप्तकोंको, भीमसेनने कौरवोंको और कर्णको पाञ्चालने युद्धमें बहुत व्याकुल कर दिया ॥ १३० ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ २४०४ ॥

: ४१ :

संजय उवाच

त्वरमाणः पुनः कृष्णः पार्थमभ्यवदच्छनैः ।
पश्य कौरव्य राजानमपयातांश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥

संजय बोले– भगवान् श्रीकृष्ण फिर बडी उतावलीसे अर्जुनको धीरेसे बोले– हे कुरुवंशी ! वह देखो, सब पाण्डव राजाके पास पहुंचकर खडे हैं ॥ १ ॥

कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम् ।
असौ भीमो महेष्वासः संनिवृत्तो रणं प्रति ॥ २ ॥

ये देखो, कर्ण महा युद्धमें जलती हुई अग्निके समान प्रकाश कर रहे हैं और महाधनुषधारी भीमसेन युद्धस्थलकी ओर लौटते हैं ॥ २ ॥

तमेतेऽनु निवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
पाञ्चालानां सृञ्जयानां पाण्डवानां च यन्मुखम् ।
निवृत्तैश्च तथा पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ॥ ३ ॥

पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवोंके जो धृष्टद्युम्न आदि अनेक प्रधान योद्धा हैं, वे इनके साथ ही युद्धके लिये लौट रहे हैं । लौटे हुए पाण्डवोंने शत्रुओंकी बडी सेना फिर भग्न कर दी ॥ ३ ॥

कौरवान्द्रवतो ह्येष कर्णो धारयतेऽर्जुन ।
अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ४ ॥

अर्जुन ! भागते हुए उन कौरवोंको यह कर्ण बलसे रोक रहे हैं । ये वेगमें यमराज और पराक्रममें इन्द्रके समान हैं ॥ ४ ॥

असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिरस्त्रभृतां वरः ।
तमेष प्रद्रुतः संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ५ ॥

हे कुरुनंदन ! महातेजस्वी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा उधर ही जा रहे हैं । उसी अश्वत्थामासे युद्ध करनेको महारथी धृष्टद्युम्न वेगसे दौडे जाते हैं ॥ ५ ॥

सर्वं व्याचष्ट दुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने ।
ततो राजन्प्रादुरासीन्महाघोरो महारणः ॥ ६ ॥

राजन् ! दुर्जय वीर श्रीकृष्णने किरीटधारी अर्जुनसे यह सब बातें कहीं । फिर उधर अत्यंत घोर महायुद्ध होने लगा ॥ ६ ॥

सिंहनादरवाश्चात्र प्रादुरासन्समागमे ।
उभयोः सेनयो राजन्मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ २४११ ॥

राजन् ! दोनों सेनाके वीर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेका निश्चय करके सिंहके समान गर्जने और घोर युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ ॥ २४११ ॥

: ४२ :

संजय उवाच

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः ।
युधिष्ठिरमुखाः पार्था वैकर्तनमुखा वयम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अनन्तर फिर युधिष्ठिरको आगे करके पाण्डव–सृञ्जय और वैकर्तन कर्णको आगे करके हम कौरव लोग–ऐसे सब निर्भय चित्तसे युद्ध करने लगे ॥१॥

ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २ ॥

तब कर्ण और पाण्डवोंका घोर रोएं खडे करनेवाला संग्राम हुआ, वह यमके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ २ ॥

तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके ।
संशप्तकेषु शूरेषु किंचिच्छिष्टेषु भारत ॥ ३ ॥

भारत ! जब यह पानीके समान रुधिर बहानेवाला घोर युद्ध होने लगा, तब थोडेसे बचे हुए संशप्तक वीर भी युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः ।
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्न सब राजाओंके सहित और अन्य पाण्डव महारथी भी कर्णसे युद्ध करनेको चले ॥४॥

आगच्छमानांस्तान्संख्ये प्रहृष्टान्विजयैषिणः ।
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥ ५ ॥

जैसे अनेक जलप्रवाहोंके वेगको पर्वत रोकता है, वैसे ही युद्धमें इन प्रसन्न, विजयकी इच्छा करनेवाले वीरोंको आते देख अकेले कर्णने रोका ॥ ५ ॥

तमासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः ।
यथाचलं समासाद्य जलौघाः सर्वतोदिशम् ।
तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ६ ॥

जैसे पर्वतके पास आकर जलके प्रवाह इधर उधर सब दिशाओंमें फैल जाते हैं, वैसे ही कर्णके पास आकर ये सब महारथी इधर उधर हो गये । हे महाराज ! धृष्टद्युम्न और कर्णका रोमांचकारी युद्ध हुआ ॥ ६ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेण नतपर्वणा ।
ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ७ ॥

तब समरमें धृष्टद्युम्नने आनतपर्व बाणसे कर्णको पीडित किया और कहा कि, खडे रहो ! खडे रहो ! ॥ ७ ॥

विजयं तु धनुःश्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ।
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरानाशीविषोपमान् ।
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः ॥ ८ ॥

तब महारथी कर्णने भी अपने श्रेष्ठ विजय धनुषको घुमाकर धृष्टद्युम्नका धनुष और विषधारी सर्पके समान बाणोंको भी काट दिया, अनन्तर क्रोधित होकर धृष्टद्युम्नको तेज नौ बाण मारे ॥ ८ ॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महात्मनः ।
शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ ॥ ९ ॥

हे पापरहित ! उन बाणोंने महात्मा धृष्टद्युम्नका सुवर्णभूषित कवच काट दिया, फिर वे रुधिरमें भीगकर वीरवहौटीके समान दीखने लगे ॥ ९ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
अन्यद्धनुरुपादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ।
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥

महारथी धृष्टद्युम्नने उस कटे धनुषको फेंककर, शीघ्रता सहित दूसरा धनुष और विषीले सांपके समान बाण लिये और सत्तर नतपर्व बाणोंसे कर्णको विद्ध किया ॥ १० ॥

तथैव राजन्कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ।
द्रोणशत्रुं महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः ॥ ११ ॥

राजन् ! इसी प्रकार महाधनुर्धर कर्णने भी शत्रुतापन द्रोण शत्रु धृष्टद्युम्नको तीक्ष्ण बाणोंसे घायल किया ॥ ११ ॥

तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ १२ ॥

महाराज ! अनन्तर कर्णने क्रुद्ध होकर यमराजके दूसरे दण्डके समान एक सोनेके पङ्खवाला बाण धृष्टद्युम्नकी ओर चलाया ॥ १२ ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशां पते ।
चिच्छेद सप्तधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥

पृथ्वीपते ! उस घोर बाणको सहसा आते देख महाशस्त्रधारी सात्यकिने उसके सौ टुकडे करके गिरा दिया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा विनिहितं बाणं शरैः कर्णो विशां पते ।
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयत् ॥ १४ ॥

प्रजापते ! सात्यकिके बाणोंसे अपने बाणको कटे हुए देख, कर्णने सात्यकिको चारों ओरसे अनेक बाणोंकी वर्षा करके छा दिया ॥ १४ ॥

विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः ।
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमविभूषितैः ॥ १५ ॥

अनन्तर कर्णने फिर सात्यकिके शरीरमें सात नाराच बाण मारे। सात्यकिने भी सोनेके पङ्खवाले अनेक बाण कर्णकी ओर चलाये ॥ १५ ॥

ततो युद्धमतीवासीच्चक्षुःश्रोत्रभयावहम् ।
राजन्घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ १६ ॥

राजन् ! तब आंखोंसे देखने और कानोंसे सुननेपर भी भयदायक यह घोर विचित्र युद्ध होने लगा, वह सब ओरसे देखने योग्य था ॥ १६ ॥

सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षो व्यजायत ।
तद्दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप ॥ १७ ॥

नृप ! समरमें कर्ण और सात्यकिका वह पराक्रम युक्त कर्म देखकर सब प्राणियोंके रोएं खडे हो गए ॥ १७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात्सुमहाबलम् ।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ १८ ॥

इसी बीचमें शत्रुओंका शौर्य और प्राणोंका नाश करनेवाले महा बलवान् शत्रुनाशन अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नसे युद्ध करनेको आये ॥ १८ ॥

×

अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिर्दूरे धनंजये ।
तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥ १९ ॥

धनंजयसे दूर हटकर वहां पहुंचकर शत्रुनाशन अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर बोले— रे ब्रह्महत्यारे ! खडा रह, खडा रह ! आज तू हमसे जीता नहीं बचेगा ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा सुभृशं वीरः शीघ्रकृन्निशितैः शरैः ।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ।
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः ॥ २० ॥

ऐसा कहकर शीघ्रतासे प्रयत्नपूर्वक महारथी अश्वत्थामाने अपने शक्त्यनुसार विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले धृष्टद्युम्नकी ओर तेज, घोर और तीक्ष्ण बाण चलाकर उनको आच्छादित किया ॥ २० ॥

यथा हि समरे द्रौणिः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ।
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा ।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥ २१ ॥

मारिष ! जैसे अश्वत्थामा समरमें धृष्टद्युम्मको देखकर मनमें दुःखित होकर, उसे अपनी मृत्यु मानता था, वैसे ही शत्रुवीरनाशन धृष्टद्युम्न भी युद्धमें अश्वत्थामाको देखकर दुःखी होकर उसे अपनी मृत्यु समझते थे ॥ २१ ॥

द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नं रणे स्थितम् ।
क्रोधेन निःश्वसन्वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ।
तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम् ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र ! वीर अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको युद्धमें खडा देख क्रोधमें भर अनेक लंबे सांस लिये और उनसे युद्ध करनेको दौडे । ये दोनों इस प्रकार एक दूसरेकी ओर देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥ २२ ॥

अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशां पते ।
पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ २३ ॥

विशांपते ! तब महाप्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उतावलीसे अपने समीप स्थित धृष्टद्युम्नसे बोले— रे नीच पाञ्चाल ! आज मैं तुझे यमराजके यहां भेजूंगा ॥ २३ ॥

पापं हि यत्त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम् ।
अद्य त्वा पतस्यते तद्वै यथा ह्यकुशलं तथा ॥ २४ ॥

तुमने जो पहले ब्राह्मण द्रोणाचार्यको मारकर पाप कर्म किया है, वह एक अनिष्ट कर्मके समान आज तेरा पतन करेगा ॥ २४ ॥

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे ।
नापक्रमसि वा मूढ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २५ ॥

रे मूर्ख ! यदि अर्जुनसे रक्षित न होकर तू युद्धमें खडा रहेगा, या तू युद्धको छोडकर नहीं भागेगा, तो जीता नहीं बचेगा । हम सत्य कहते हैं कि आज तेरी कुशल नहीं है ॥ २५ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ।
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे ॥ २६ ॥

उनके वचन सुन प्रतापी धृष्टद्युम्न बोले, तेरे वचनका उत्तर हमारा वही खड्ग देगा, जिस खड्गने युद्धमें विजयके लिये यत्न करते हुए तेरे पिताको दिया है ॥ २६ ॥

यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ।
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात् ॥ २७ ॥

हमने जब क्षुद्र ब्राह्मण द्रोणाचार्यको पहले मार डाला, तो अब पराक्रम करके तुझे युद्धमें क्यों न मारेंगे ? ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः ।
निशितेनाथ बाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः ॥ २८ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर अमर्षशील सेनापति धृष्टद्युम्नने एक तेज बाणसे अश्वत्थामाको विद्ध किया ॥ २८ ॥

ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ।
प्राच्छादयद्दिशो राजन्धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ॥ २९ ॥

राजन् ! अनन्तर अश्वत्थामाने भी क्रोध करके अनेक तेज नतपर्व बाण चलाये, उन बाणोंने युद्धमें धृष्टद्युम्नकी सब दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ २९ ॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो नैव योधाः समन्ततः ।
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः ॥ ३० ॥

महाराज ! सब ओरसे बाणोंसे आच्छादित होनेके कारण आकाश, दिशाएं और सहस्रों योद्धा दिखाई नहीं देते थे ॥ ३० ॥

तथैव पार्षतो राजन्द्रौणिमाहवशोभिनम् ।
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः ॥ ३१ ॥

ऐसे ही धृष्टद्युम्नने युद्धमें शोभायमान अश्वत्थामाको राधापुत्र कर्णके देखते ही देखते बाणोंसे छिपा दिया ॥ ३१ ॥

राधेयोऽपि महाराज पाञ्चालान्सह पाण्डवैः ।
द्रौपदेयान्युधामन्युं सात्यकिं च महारथम् ।
एकः स वारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥ ३२ ॥

महाराज ! दर्शनीय राधापुत्र कर्णने भी पाण्डवोंके साथ पाञ्चाल, द्रौपदीके पांचों पुत्र, युधामन्यु और महारथी सात्यकिको अकेले ही रोक दिया ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुश्छिन्नमन्यदादत्त कार्मुकम् ।
वेगवत्समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नने युद्धमें अश्वत्थामाका धनुष काट दिया, तब अश्वत्थामाने शीघ्रतासे उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सांपोंके समान अनेक भयंकर वाण धारण करके ॥ ३३ ॥

स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम् ।
हयान्सूतं रथं चैव निमेषाद्व्यधमच्छरैः ॥ ३४ ॥

राजेन्द्र ! उनसे धृष्टद्युम्नका धनुष, शक्ति, गदा, ध्वज, घोडे, सारथि और रथको क्षण-मात्रमें नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ ३५ ॥

धनुष कट जानेपर और घोडे और सारथिके मारे जानेपर रथहीन धृष्टद्युम्नने विशाल खड्ग और सौ चन्द्रोंके चिन्होंसे युक्त प्रकाशमान् ढाल ले ली ॥ ३५ ॥

द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ।
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! महारथी, दृढ शस्त्रधारी, शीघ्र वाण चलानेवाले वीर अश्वत्थामाने रथसे न उतरनेके पहलेही धृष्टद्युम्नकी उस ढाल–तलवारको शीघ्रतासे भल्ल वाणोंसे काट दिया । यह एक अद्भुत ही पराक्रम हो गया ॥ ३६ ॥

धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम् ।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ।
नातरद्भरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः ॥ ३७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय धृष्टद्युम्न रथ, घोडे और धनुष रहित हो गये थे । उनके शरीरमें वाणोंके अनेक घाव लगे थे, अस्त्रोंसे जर्जर हो गये थे, तो भी महारथी अश्वत्थामा प्रयत्न करने पर भी उनको मार न सके ॥ ३७ ॥

तस्यान्तमिषुभी राजन्यदा द्रौणिर्न जग्मिवान् ।
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽन्वगात् ॥ ३८ ॥

राजन् ! जब वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा बाणोंसे उनका वध न कर सका, तब अश्वत्थामाने धनुषको फेंक दिया और तुरन्त ही धृष्टद्युम्नकी ओर दौडा ॥ ३८ ॥

आसीदाद्रवतो राजन्वेगस्तस्य महात्मनः ।
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् ॥ ३९ ॥

राजन् ! रथसे कूदकर दौडते हुए महात्मा अश्वत्थामाका वेग बहुत बडे सर्पको पकडनेके लिये आक्रमण करते हुए गरुडके समान दीखता था ॥ ३९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति ।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनमसंशयम् ॥ ४० ॥

उसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, हे अर्जुन ! देखो, धृष्टद्युम्नके मारनेको अश्वत्थामा कैसे महान् यत्न कर रहे हैं ! यह अवश्य इन्हें मार डालेंगे इसमें संशय नहीं है ॥ ४० ॥

तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुतापनम् ।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥ ४१ ॥

हे महाबाहो ! शत्रुतापन अर्जुन ! जैसे कोई मृत्युके मुखमें पड गया हो, उसी प्रकार अश्वत्थामाके मुखमें पडे हुए धृष्टद्युम्नकी रक्षा करो ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रैषयत्तत्र तुरगान्यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रतापी श्रीकृष्णने अपने घोडोंको उसी ओर हांका, जहां अश्वत्थामा खडा था ॥ ४२ ॥

ते हयाश्चन्द्रसंकाशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
पिबन्त इव तद्व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥ ४३ ॥

वे चन्द्रमाके समान सफेद घोडे श्रीकृष्णके हांकनेसे अश्वत्थामाके रथकी ओर दौडे, मानो आकाशको पीते जा रहे हैं ॥ ४३ ॥

दृष्ट्वायान्तौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनंजयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे राजंश्चक्रे यत्नं महाबलः ॥ ४४ ॥

राजन् ! महापराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख महाबलवान् अश्वत्थामा शीघ्रता सहित धृष्टद्युम्नके मारनेका यत्न करने लगे ॥ ४४ ॥

विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं जनेश्वर ।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥ ४५ ॥

जनेश्वर ! धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामासे खिचता हुआ देख, महा बलवान् अर्जुनने उसपर अनेक बाण चलाये ॥ ४५ ॥

ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम् ।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ४६ ॥

जैसे सांप बिलमें घुसते हैं, ऐसे ही सोनेके पङ्खवाले अर्जुनके गाण्डीव धनुपसे वेगसे छोडे बाण अश्वत्थामाके पास पहुंचकर उनके शरीरमें घुस गये ॥ ४६ ॥

स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
रथमारुरुहे वीरो धनंजयशरार्दितः ।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥ ४७ ॥

प्रतापी द्रोणपुत्र वीर अश्वत्थामा उन घोर बाणोंसे पीडित होकर अपने रथपर जा चढा, वह धनंजयके बाणोंसे अत्यंत विव्हल हुआ था, उसने भी श्रेष्ठ धनुप धारण करके अर्जुनको अनेक बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप ।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ४८ ॥

जनाधिप ! उसी समय वीर सहदेव शत्रुतापन धृष्टद्युम्नको अपने रथसे समरमें दूसरी ओर हटा ले गये ॥ ४८ ॥

अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ ४९ ॥

महाराज! अर्जुनने भी अश्वत्थामाको अनेक बाणोंसे घायल कर दिया, इसी प्रकार अश्वत्थामाने भी क्रोधसे अर्जुनके बाहु और छातीमें बाण चलाये ॥ ४९ ॥

क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसंमितम् ।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ।
स ब्राह्मणस्यांसदेशे निपपात महाद्युतिः ॥ ५० ॥

तब युद्धमें अर्जुनने क्रोध करके एक यमराजके दण्डके समान घोर कालरूप नाराच बाण अश्वत्थामाकी ओर चलाया । वह अत्यंत तेज बाण उस ब्राह्मण अश्वत्थामाके कन्धेमें लगा ॥ ५० ॥

स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ।
निषसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ ॥ ५१ ॥

महाराज ! उस बाणके वेगसे वे व्याकुल हो गये और रथमें बैठ गये, फिर अत्यंत मूर्च्छित हो गये ॥ ५१ ॥

ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद्विजयं धनुः ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ५२ ॥

महाराज ! उसी समय कर्ण अपने विजय धनुषकी टंकार करते हुए, अर्जुनकी ओर बार बार देखते हुए क्रोधमें भरकर युद्धमें आये, वह महायुद्धमें अर्जुनसे द्वैरथ युद्ध करना चाहते थे ॥ ५२ ॥

तं तु हित्वा हतं वीरं सारथिः शत्रुकर्शनम् ।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात् ॥ ५३ ॥

इधर शत्रुकर्शन वीर अश्वत्थामाको व्याकुल देख उनके सारथिने अत्यंत त्वरासे उन्हें रथके द्वारा युद्धसे हटा दिया ॥ ५३ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पाञ्चालैर्जितकाशिभिः ।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥ ५४ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाको पीडित और धृष्टद्युम्नको संकटमुक्त देख, विजयसे प्रसन्न पाञ्चालोंने गर्जना की ॥ ५४ ॥

वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे दृष्ट्वा घोरं महाद्भुतम् ॥ ५५ ॥

इस घोर महा अद्भुत कर्मको देखकर, पाण्डवोंकी सेनामें अनेक प्रकारके दिव्य सहस्रों बाजे बजने लगे और अनेक वीर सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ५५ ॥

एवं कृत्वाब्रवीत्पार्थो वासुदेवं धनंजयः ।
याहि संशप्तकान्कृष्ण कार्यमेतत्परं मम ॥ ५६ ॥

इस युद्धके पश्चात् अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, हे श्रीकृष्ण ! तुम हमारे रथको संशप्तकोंकी ओर ले चलो, यही हमारा इस समय महान् कार्य है ॥ ५६ ॥

ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम् ।
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ २४६८ ॥

अनन्तर अर्जुनके वचन सुन श्रीकृष्णने पताका युक्त, मन और वायुके समान शीघ्रवेगी रथको संशप्तकोंकी सेनाकी ओर हांका ॥ ५७ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बंयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ २४६८ ॥

: ४३ :

संजय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत् ।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! उसी समय धर्मराज युधिष्ठिरको दिखलाते हुए श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले ॥ १ ॥

एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थाऽनुसर्यते ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! देखो, यही तुम्हारे भाई कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हैं; इनको मारनेकी इच्छावाले, महाबलवान्, महाधनुर्धारी धृतराष्ट्रके पुत्र शीघ्रतासे इनका पीछा कर रहे हैं ॥ २ ॥

तथानुयान्ति संरब्धाः पाञ्चाला युद्धदुर्मदाः ।
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाजवाः ॥ ३ ॥

और महात्मा युधिष्ठिरकी रक्षा करते हुए महापराक्रमी महा वेगवान् पांचालदेशी क्षत्रिय संतप्त होकर उनके पीछे जा रहे हैं ॥ ३ ॥

एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥ ४ ॥

पार्थ ! ये देखो, सब जगत्‌का राजा दुर्योधन कवच धारण करके रथसेनाके सहित महाराजका पीछा कर रहा है ॥ ४ ॥

जिघांसुः पुरुषव्याघ्रं भ्रातृभिः सहितो बली ।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥ ५ ॥

ये देखो, सब युद्धविद्याके जाननेवाले, विषधर सर्पके समान स्पर्शवाले भाईयोंके साथ बलवान् दुर्योधन पुरुषसिंह युधिष्ठिरको मारनेकी इच्छासे उनके पीछे जा रहा है ॥ ५ ॥

एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः ।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा रत्नोत्तममिवार्थिनः ॥ ६ ॥

ये देखो, जैसे याचक श्रेष्ठ रत्नको पाना चाहते हैं, वैसे ही धृतराष्ट्रके पुत्र हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंके सहित महाराजको पकडनेके लिये जाते हैं ॥ ६ ॥

पश्य सात्वतभीमाभ्यां निरुद्धाधिष्ठितः प्रभुः ।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्निभ्यामिवावशाः ॥ ७ ॥

ये देखो, भीमसेन और सात्यकिने इस सेनाको रोक रखनेके कारण प्रभु खडे हो गये हैं, जैसे इन्द्र और अग्नि अमृतका अपहरण करनेके लिये लडते हुए दानवोंको रोकते हैं ॥ ७ ॥

एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम् ।
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥ ८ ॥

जैसे वर्षाकालमें जलौघ अधिक होनेके कारण समुद्रमें जाते हैं, वैसे ही ये महारथी अनेक होनेके कारण फिर धर्मराजकी ओर जा रहे हैं ॥ ८ ॥

नदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान् ।
बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥ ९ ॥

ये बलवान्, महाधनुर्धर वीर गर्जते, शङ्ख बजाते और धनुष टङ्कारते हुए युद्ध करनेको जाते हैं ॥ ९ ॥

मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हुतमग्नौ च भद्रं ते दुर्योधनवशं गतम् ॥ १० ॥

ये देखो, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर दुर्योधनके वशमें हो गये, जैसे अग्निमें पड कर आहुति भस्म हो जाती है, वैसे ही महाराज दुर्योधनके मृत्युके मुखमें चले गये हैं, ऐसा मैं मानता हूं ॥ १० ॥

यथायुक्तमनीकं हि धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव ।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत संप्राप्तो बाणगोचरम् ॥ ११ ॥

हे पाण्डव ! आज दुर्योधनकी सेनाका जैसा योग्य व्यूह बना है, इसके बाणोंके मार्गमें आजानेसे इन्द्र भी जीवित नहीं बच सकते ॥ ११ ॥

दुर्योधनस्य शूरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि दारयेत् ॥ १२ ॥

वीर दुर्योधन, अश्वत्थामा, शरद्वतपुत्र कृपाचार्य और कर्णके बाणोंका वेग पर्वतोंको भी तोड सकता है ॥ १२ ॥

+

दुर्योधनस्य शूरस्य शरौघाञ्शीघ्रमस्यतः ।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद्रणे ॥ १३ ॥

जैसे क्रुद्ध यमराजके बलको कोई नहीं सह सकता, ऐसे ही शूर दुर्योधनके शीघ्र चलते हुए बाणोंकी वर्षाके वेगको इस युद्धमें सहनेका किसका सामर्थ्य है ? ॥ १३ ॥

कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः ।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥ १४ ॥

शत्रुतापन, बलवान् , शीघ्र शस्त्र चलानेवाले, विद्वान् और युद्धकला जाननेवाले राजा युधिष्ठिरको कर्णने युद्धसे विमुख कर दिया ॥ १४ ॥

राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे ।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरो महात्मभिः ॥ १५ ॥

महात्मा धृतराष्ट्रपुत्रोंके सहित शूर राधापुत्र कर्ण पांडव श्रेष्ठ युधिष्ठिरको युद्धमें पीडा देता है ॥ १५ ॥

तस्यैवं युध्यमानस्य संग्रामे संयतात्मनः ।
अन्यैरपि च पार्थस्य हृतं वर्म महारथैः ॥ १६ ॥

इस प्रकार संग्राममें युद्ध करते हुए संयमी युधिष्ठिरके कवचको इन धृतराष्ट्र पुत्रोंने और दूसरे महारथियोंने नष्ट कर दिया है ॥ १६ ॥

उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तम ।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षत्रेऽतिबले विभो ॥ १७ ॥

भरतकुल श्रेष्ठ प्रभो ! राजा युधिष्ठिर उपवास करनेसे दुर्बल हो गये हैं । ये सदा ब्राह्मणोंके समान शीलवृत्तिसे रहते हैं, कभी क्षत्रियोंके समान क्षात्रबलके लिये समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥

न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद्भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥ १८ ॥

पार्थ ! हमें जान पडता है कि, महाराज युधिष्ठिर जीवित नहीं हैं, कारण कि अमर्षशील भीमसेन खडे हुए सिंहनाद सुन रहे हैं ॥ १८ ॥

नर्दतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिंदम ।
धमतां च महाशङ्खान्संग्रामे जितकाशिनाम् ॥ १९ ॥

हे शत्रुदमन ! बार बार गर्जते हुए और बडे बडे शङ्ख बजानेवाले विजयी कौरवोंके सिंह समान शब्दको सुनते हैं ॥ १९ ॥

युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ ।
संचोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ॥ २० ॥

भरतर्षभ ! वह कर्ण महाबली धृतराष्ट्रके पुत्रोंको प्रेरित कर रहा है कि पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको मारो ॥ २० ॥

स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च ।
प्रच्छादयन्तो राजानमनुयान्ति महारथाः ।
आतुरो मे मतो राजा संनिषेव्यश्च भारत ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! स्थूणाकर्ण, पाशुपत और इन्द्रजाल आदि अनेक शस्त्रोंसे राजाको आच्छादित किया है और ये महारथी उनके पीछे जा रहे हैं । भारत ! राजा युधिष्ठिर घोर आपत्तिमें पडे हैं ऐसा मैं मानता हूं, इसलिये वे सेवाके लिये योग्य हैं ॥ २१ ॥

यथैनमनुवर्तन्ते पाञ्चालाः सह पाण्डवैः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः ॥ २२ ॥

पाण्डवों सहित पाञ्चाल महाराजकी ओर सेवाके लिये दौडे जाते हैं । शीघ्रताके समयपर त्वरा करनेवाले, सब शस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ बलवान् योद्धा पातालमें डूबनेवाले बलिके समान सेना सागरमें डूबते हुए महाराजका उद्धार करनेकी इच्छासे दौडे हुए जाते हैं ॥२२॥

न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः ।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो ।
पाञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत ॥ २४ ॥

पार्थ ! राजाका ध्वज नहीं दीखता है । हे भारत ! प्रभो ! नकुल, सहदेव, सात्यकि, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शतानीक सब पाञ्चाल और समस्त चेदिदेशी क्षत्रियोंके देखते देखते कर्णने अपने बाणोंसे राजाका ध्वज काट डाला है ॥ २३-२४ ॥

एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम् ।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ २५ ॥

पार्थ ! जैसे तालावमें घुसकर हाथी कमलोंका नाश करता है, वैसे ही यह कर्ण युद्धमें अपने बाणोंसे पाण्डव सेनाको मार रहा है ॥ २५ ॥

एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन ।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥ २६ ॥

हे पार्थ ! देखो, तुम्हारी सेनाके रथी वीर भागे जाते हैं । देखो, ये महारथी भी कैसे जा रहे हैं ? ॥ २६ ॥

एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहता रणे।
आर्तनादान्विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश ॥ २७ ॥

हे अर्जुन! ये देखो, ये हाथी कर्णके वाणोंसे पीडित होकर आर्तनाद करते हुए चारों ओरको भागे जाते हैं ॥ २७ ॥

रथानां द्रवतां वृन्दं पश्य पार्थ समन्ततः।
द्राव्यमाणं रणे चैव कर्णेनामित्रकर्शिना ॥ २८ ॥

हे पार्थ! युद्धमें शत्रुनाशन कर्णने भगाये हुए ये रथोंके झुण्ड चारों ओर भागे जाते हैं ॥ २८ ॥

हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ॥ २९ ॥

हे उत्तम ध्वजावाले! ये देखो, सूतपुत्र रथके ऊपर हाथि–कक्ष्यावाली कर्णकी ध्वजा युद्धमें सब जगह कैसे फहरा रही है ॥ २९ ॥

असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति।
किरञ्शरशतानीव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥ ३० ॥

ये देखो, तुम्हारी सेनाको अनेक वाणोंकी वर्षासे मारते हुए राधापुत्र कर्ण भीमसेनके रथकी ओर दौडे जा रहे हैं ॥ ३० ॥

एतान्पश्य च पाञ्चालान्द्राव्यमाणान्महात्मना।
शक्रेणेव यथा दैत्यान्हन्यमानान्महाहवे ॥ ३१ ॥

जैसे इन्द्र दानवोंको मारते हैं, ऐसे ही महात्मा कर्णसे भगाये हुए इन पाञ्चालोंको देखो ॥ ३१ ॥

एष कर्णो रणे जित्वा पाञ्चालानपाण्डुसृञ्जयान्।
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥ ३२ ॥

यह कर्ण पाञ्चाल, पाण्डव और सृंजयोंको जीतकर तुम्हारे लिये सब ओर देख रहा है, ऐसा मेरा मानना है ॥ ३२ ॥

पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन्साधु शोभते।
शत्रुञ्जित्वा यथा शक्रो देवसंघैः समावृतः ॥ ३३ ॥

पार्थ! देखो, कौरवोंके वीचमें खडे हुए कर्ण इस प्रकार अपने श्रेष्ठ धनुषको खींचते हुए शोभित हो रहे हैं, जैसे दानवोंको जीतकर देवताओंसे घिरे हुए इन्द्र ॥ ३३ ॥

एते नदन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
त्रासयन्तो रणे पार्थान्सृञ्जयांश्च सहस्रशः ॥ ३४ ॥

कर्णका पराक्रम देखकर ये कौरव वीर आनन्दसे गर्ज रहे हैं, पाण्डव और सृञ्जयोंको सब ओरसे डरा रहे हैं ॥ ३४ ॥

एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानदः ॥ ३५ ॥

यह मानद राधापुत्र कर्ण महा युद्धमें सब प्रकारसे पाण्डवोंकी सेनाको त्रस्त करके अपनी सेनाको कह रहे हैं– ॥ ३५ ॥

अभिद्रवत गच्छध्वं द्रुतं द्रवत कौरवाः।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्यते युधि सृञ्जयः ॥ ३६ ॥

कौरवों ! तुम लोग जल्दी दौडो, जाओ और वेगसे आक्रमण करो ! आज युद्धमें कोई सृंजय तुम्हारेसे जीता न जाने पावे ॥ ३६ ॥

तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः।
एवमुक्त्वा ययावेष पृष्ठतो विकिरञ्शरैः ॥ ३७ ॥

सावधानतासे ऐसा ही करो। हम तुम्हारे पीछे चलेंगे। ऐसा कहकर यह कर्ण पीछेसे बाण छोडता हुआ गया ॥ ३७ ॥

पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छविविराजितम्।
उदयं पर्वतं यद्वच्छोभयन्वै दिवाकरः ॥ ३८ ॥

पार्थ ! देखो, कर्ण युद्धमें सफेद अंगकान्तिसे विराजित इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, जैसे सूर्यसे शोभित उदयाचल ॥ ३८ ॥

पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्नि छत्रेण भारत।
ध्रियमाणेन समरे तथा शतशलाकिना ॥ ३९ ॥
एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षो विशां पते।
उत्तमं यत्नमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥ ४० ॥

भारत ! प्रजापते ! समरमें मस्तकपर सौ शलाकाओंसे युक्त और पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान सफेद छत्रधारी यह कर्ण अब केवल तुम्हारी ही ओर देख रहे हैं। अब ये युद्धमें उत्तम प्रयत्न करके निश्चयसे यहां आयेंगे ॥ ३९-४० ॥

पश्य ह्येनं महाबाहो विधुन्वानं महद्धनुः।
शरांश्चाशीविषाकारान्विसृजन्तं महाबलम् ॥ ४१ ॥

हे महाबाहो ! ये देखो, कर्ण अपना बडा धनुष घुमाकर विषधर सर्पोंके समान विषैले दृढ बाणोंको चला रहे हैं ॥ ४१ ॥

असौ निवृत्तो राधेयो दृश्यते वानरध्वज ।
वधाय चात्मनोऽभ्येति दीपस्य शलभो यथा ॥ ४२ ॥

हे वानरध्वज ! यह राधापुत्र कर्ण तुम्हें देखकर लौटा है । जैसे प्रदीप्त अग्निके मुखमें पतङ्ग आ पडता है, वैसे ही कर्ण अपने वधके लिये तुम्हारे पास आता है ॥ ४२ ॥

कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत ।
रिरक्षिषुः सुसंयत्तो धार्तराष्ट्रोऽभिवर्तते ॥ ४३ ॥

भारत ! अकेले कर्णको शीघ्र आते देख, यह धृतराष्ट्रका पुत्र सब रथ सेनाके सहित उनकी रक्षाके हेतु चला आता है ॥ ४३ ॥

सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्य एष प्रयत्नतः ।
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता ॥ ४४ ॥

तुम यशकी इच्छा रखकर राज्य और उत्तम सुख इन सबके सहित दुष्टात्मा कर्णको आज यत्न करके मार डालो ॥ ४४ ॥

आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे ॥ ४५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन ! अब तुम अपनेको शस्त्रास्त्रविद्यामें प्रवीण और कर्णको धर्मात्मा युधिष्ठिरका अपराधी जानकर ॥ ४५ ॥

प्रतिपद्यस्व राधेयं प्राप्तकालमनन्तरम् ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम् ॥ ४६ ॥

समयके अनुसार राधापुत्रके साथ जो व्यवहार करना योग्य हो वही करो और आर्य बुद्धिका अवलम्बन कर रथयूथपति कर्णके साथ युद्ध करो ॥ ४६ ॥

पञ्च ह्येतानि मुख्यानां रथानां रथसत्तम ।
शतान्यायान्ति वेगेन बलिनां भीमतेजसाम् ॥ ४७ ॥

हे महारथि ! ये पांचसौ महातेजस्वी, महाबलवान् और प्रधान रथी हैं, सो युद्ध करनेको चले आते हैं ॥ ४७ ॥

पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा ।
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च ।
अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते ॥ ४८ ॥

इनके साथ ही पांच सहस्र हाथी और दस हजार घोडे चले आते हैं। कौन्तेय ! सब मिलकर दस लाख पदातियोंको साथ लाते हैं । वीर ! ये सब सेना एक दूसरेकी रक्षा करती हुई तुम्हारी ही ओर चली आती है ॥ ४८ ॥

सूतपुत्रे महेष्वासे दर्शयात्मानमात्मना।
उत्तमं यत्नमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

हे भारतकुलसिंह ! महाधनुषधारी सूतपुत्रके सामने स्वयं अपना पराक्रम दिखाओ । अब उत्तम प्रयत्न करके आक्रमण करो ॥ ४९ ॥

असौ कर्णः सुसंरब्धः पाञ्चालानभिधावति ।
केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
समुच्छेत्स्यति पाञ्चालानिति मन्ये परंतप ॥ ५० ॥

वह देखो, कर्ण क्रोधसे पांचालोंकी ओर आक्रमणके लिये बढ रहा है, धृष्टद्युम्नके रथके समीप उसके रथकी ध्वजा मुझे दीख पडती है । शत्रुतापन ! इससे मुझे प्रतीत होता है, कि यह थोडे ही समयमें पांचालोंपर आक्रमण करेगा ॥ ५० ॥

आचक्षे ते प्रियं पार्थ तदेवं भरतर्षभ ।
राजा जीवति कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन ! अब मैं तुझे एक प्रिय वृत्त निवेदन करता हूं, कि ये कुरुवंशी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर जीवित हैं ॥ ५१ ॥

असौ भीमो महाबाहुः संनिवृत्तश्चमूमुखे ।
वृतः सृञ्जयसैन्येन सात्यकेन च भारत ॥ ५२ ॥

ये महाबाहु भीमसेन लौटके सेनाके मुखमें खडे हैं; ये देखो, इनके पास सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंके सहित सात्यकि भी खडे हैं ॥ ५२ ॥

वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ।
भीमसेनेन कौन्तेय पाञ्चालैश्च महात्मभिः ॥ ५३ ॥

कौन्तेय ! ये देखो, भीमसेन और महात्मा पाञ्चाल वीर समरमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे कौरव वीरोंको मार रहे हैं ॥ ५३ ॥

सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा चाभवद्रणात् ।
विप्रधावति वेगेन भीमस्य निहता शरैः ॥ ५४ ॥

यह देखो, धृतराष्ट्रपुत्रकी सेना भीमसेनके बाणोंसे पीडित होके रणभूमिसे विमुख होकर वेगसे भाग रही है ॥ ५४ ॥

विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ।
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना ॥ ५५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यह देखो, रुधिरसे भीगी हुई यह भारती सेना विनष्ट धान्यवाली भूमिके समान कृपणरूप दीखती है ॥ ५५ ॥

निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तस्माद्द्रवति वाहिनी ॥ ५६ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! योद्धाओंके अधिपति विषवाले सांपके समान क्रोधी भीमसेनको लौटते देख, यह दुर्योधनकी सेना भागी जाती है ॥ ५६ ॥

पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः ।
पताका विप्रकीर्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन ॥ ५७ ॥

अर्जुन ! ये सफेद, लाल, पीली, काली, तारे, चन्द्रमा और सूर्यके चिन्होंसे युक्त ध्वजा और श्वेत छत्र बिखरे पडे हैं ॥ ५७ ॥

सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ।
केतवो विनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं विप्रकीर्यते ॥ ५८ ॥

सोने, चांदी और लोहेके दण्डवाली अनेक प्रकारकी पताकाएं पृथ्वीमें कटकर गिरायी जाती हैं । हाथी और घोडे बिखर गये हैं ॥ ५८ ॥

रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः ।
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः ॥ ५९ ॥

युद्धको न छोडनेवाले पाञ्चालोंके अनेक प्रकारके रंगोंवाले बाणोंसे मारे जाकर, ये अनेक रथी वीर रथोंसे नीचे गिर रहे हैं ॥ ५९ ॥

निर्मनुष्यान्गजानश्वान्रथांश्चैव धनंजय ।
समाद्रवन्ति पाञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः ॥ ६० ॥

धनंजय ! ये वेगशाली पाञ्चाल वीर रहित हाथी, घोडे, रथ और धृतराष्ट्रके सैनिकोंपर आक्रमण करते हैं ॥ ६० ॥

मृद्नन्ति च नरव्याघ्रा भीमसेनव्यपाश्रयात् ।
बलं परेषां दुर्धर्षं त्यक्त्वा प्राणानरिंदम ॥ ६१ ॥

हे शत्रुदमन ! ये पुरुषसिंह दुर्धर्ष पाञ्चाल भीमसेनके बलके आश्रयसे अपने प्राणोंका मोह छोडकर शत्रुओंकी सेनाको मार रहे हैं ॥ ६१ ॥

एते नदन्ति पाञ्चाला धमन्त्यपि च वारिजान् ।
अभिद्रवन्ति च रणे निघ्नन्तः सायकैः परान् ॥ ६२ ॥

उस समय ये पाञ्चाल गरज रहे हैं और शङ्ख बजा रहे हैं । ये युद्धमें अपने बाणोंसे शत्रुओंको मारते हुए सब ओर दौडते हैं ॥ ६२ ॥

पश्य स्वर्गस्य माहात्म्यं पाञ्चाला हि परंतप ।
धार्तराष्ट्रान्विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान् ॥ ६३ ॥

हे शत्रुतापन ! यह देखो, स्वर्गकी महिमा कैसी है ? जैसे क्रोधी सिंह हाथियोंका नाश करते हैं, वैसे ही ये पाञ्चाल शत्रुओंको मार रहे हैं ॥ ६३ ॥

सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पाञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः ॥ ६४ ॥

जैसे वेगवान् हंसोंका झुण्ड मानसरोवरसे निकलकर गङ्गापर आते हैं, ऐसे ही पाञ्चालोंसे दुर्योधनकी यह बडी सेना चारों ओरसे विवश हो गई है ॥ ६४ ॥

सुभृशं च पराक्रान्ताः पाञ्चालानां निवारणे ।
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ॥ ६५ ॥

कृपाचार्य और कर्ण आदि वीर पाञ्चालोंको रोकनेके लिये बहुत पराक्रम कर रहे हैं, जैसे बैल दूसरे बैलोंको ॥ ६५ ॥

सुनिमग्नांश्च भीमास्त्रैर्धार्तराष्ट्रान्महारथान् ।
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून्सहस्रशः ।
विषण्णभूयिष्ठरथा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ६६ ॥

भीमसेनके अस्त्रोंसे भग्न हुए धृतराष्ट्र पुत्रकी सेनाके महारथियों और हजारों शत्रुओंको धृष्टद्युम्न आदि वीर मार रहे हैं । दुर्योधनकी वडी सेनाके बहुत रथि वीर अत्यंत खिन्न हुए हैं ॥ ६६ ॥

पश्य भीमेन नाराचैश्छिन्ना नागाः पतन्त्यमी ।
वज्रिवज्राहतानीव शिखराणि महीभृताम् ॥ ६७ ॥

देखो, ये भीमसेनके नाराच बाणोंसे हाथी मर कर पृथ्वीपर गिर रहे हैं, जैसे इन्द्रके वज्रसे कटते हुए पर्वतके शिखर ॥ ६७ ॥

भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः संनतपर्वभिः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः ॥ ६८ ॥

ये भीमसेनके नतपर्व बाणोंसे व्याकुल होकर अपनी ही सेनाओंको मारते हुए वडे हाथी भाग रहे हैं ॥ ६८ ॥

नाभिजानासि भीमस्य सिंहनादं दुरुत्सहम् ।
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः ॥ ६९ ॥

अर्जुन ! ये महापराक्रमी विजयी वीर भीमसेन गर्ज रहे हैं, उनका संग्राममें असह्य सिंहनाद हो रहा है, वह तुमने पहचाना नहीं ? ॥ ६९ ॥

×

एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ।
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ७० ॥

ये निषादपुत्र मतवाले श्रेष्ठ हाथीपर चढ़कर भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे तोमर लिये दण्ड-धारी यमराजके समान क्रोधमें भरे युद्ध करनेको चले आते हैं ॥ ७० ॥

सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः ।
तीक्ष्णैरग्निशिखाप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः ॥ ७१ ॥

देखो, भीमसेनने गर्जना करनेवाले इनके तोमरसहित दोनों हाथ काट दिये । भीमसेनने अग्निके ज्वालाओंके समान तेजस्वी दस तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे निषादपुत्रको मार डाला ॥ ७१ ॥

हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान्प्रहारिणः ।
पश्य नीलाम्बुदनिभान्महामात्रैरधिष्ठितान् ।
शक्तितोमरसंकाशैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥ ७२ ॥

अब ये निषाद पुत्रको मारकर फिर प्रहार करनेवाले दूसरे हाथियोंपर धावा कर रहे हैं । ये देखो, काले मेघोंके समान महावतोंसे युक्त हाथियोंको भीमसेन शक्ति, तोमर और बाणोंसे मार रहे हैं ॥ ७२ ॥

सप्त सप्त च नागांस्तान्वैजयन्तीश्च सध्वजाः ।
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ।
दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः ॥ ७३ ॥

हे पार्थ ! देखो, तुम्हारे बड़े भाई भीमसेनने अपने तेज बाणोंसे सात सात हाथियोंको मार डाला और इनकी वैजयन्ती माला तथा ध्वजा कटकर पृथ्वीमें गिर गई । इधर देखो, भीमसेनने अपने दस दस नाराच बाणोंसे एक एक हाथीको मार डाला ॥ ७३ ॥

न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ।
पुरंदरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभे ॥ ७४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इन्द्रके समान पराक्रमी भीमसेनके क्रोध करके लौटनेपर, धृतराष्ट्र पुत्रोंकी वह गर्जना अब नहीं सुनाई देती ॥ ७४ ॥

अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः ।
क्रुद्धेन नरसिंहेन भीमसेनेन वारिताः ॥ ७५ ॥

वहां दुर्योधनकी तीन अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हैं । परन्तु अकेले पुरुषसिंह भीमसेन क्रोधित होकर इन सबको रोक रहे हैं ॥ ७५ ॥

संजय उवाच

भीमसेनेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ।
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहितान्निशितैः शरैः ॥ ७६ ॥

सञ्जय बोले– भीमसेनके इस महादुष्कर पराक्रमको देख, अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे बचे हुए संशप्तकोंको मारने लगे ॥ ७६ ॥

ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवन्मुदा ॥ ७७ ॥

प्रभो ! समरमें मारे जाते हुए संशप्तकगण इन्द्रके अतिथि बनकर प्रसन्नतासे शोकसे मुक्त हो गये ॥ ७७ ॥

पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः संनतपर्वभिः ।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ २५४६ ॥

पुरुषसिंह अर्जुन भी अपने नतपर्व बाणोंसे दुर्योधनकी चारों प्रकारकी सेनाको मारने लगे ॥ ७८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तैतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ ॥ २५४६ ॥

: ४४ :

धृतराष्ट्र उवाच

निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे ।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जिस समय भीमसेन और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमारी सेनाको मारनेको लौटे और पाण्डव तथा सञ्जयोंके द्वारा मेरी सेना मरने लगी ॥ १ ॥

द्रवमाणे बलौघे च निराक्रन्दे मुहुर्मुहुः ।
किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

और आनंदरहित होकर हाहाकार करके बार बार भागने लगी, तब कौरवोंने क्या किया ? सो मुझे कहो ॥ २ ॥

संजय उवाच

दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन्भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

संजय बोले– हे राजन् ! महाबाहु भीमसेनको देखकर प्रतापवान् सूतपुत्र कर्ण क्रोधसे लाल नेत्र करके उनकी ओर दौडे ॥ ३ ॥

तावकं च बलं दृष्ट्वा भीमसेनात्पराङ्मुखम् ।
यत्नेन महता राजन्पर्यवस्थापयद्बली ॥ ४ ॥

और राजन् ! महाबली कर्णने तुम्हारी सेनाको भीमसेनके भयसे पराङ्मुख होकर भागते देख, उसको बडे यत्नसे स्थिर किया ॥ ४ ॥

व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान्युद्धदुर्मदान् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण तुम्हारे पुत्रके सेनाको स्थिर करके महापराक्रमी पाण्डवोंसे युद्ध करनेको चले ॥ ५ ॥

प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः ।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥ ६ ॥

राधापुत्र कर्णको आते देख उसका सामना करनेके लिये पाण्डवोंकी सेनाके अनेक महारथी धनुष खींचते और बाण छोडते समरमें आगे दौडे ॥ ६ ॥

भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः ।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान्सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ ७ ॥

भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, बलवान् धृष्टद्युम्न और सब प्रभद्रक ॥ ७ ॥

पाञ्चालाश्च नरव्याघ्राः समन्तात्तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥ ८ ॥

और पांचाल ये सब विजयी महापराक्रमी पुरुषसिंह क्रुद्ध होकर दौडकर तुम्हारी सेनापर चारों ओरसे टूट पडे ॥ ८ ॥

तथैव तावका राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥ ९ ॥

राजन् ! इसी प्रकार तुम्हारी सेनाके महारथी भी पाण्डवोंकी सेनाको मारनेके लिये अत्यंत वेगसे उसकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥

हे पुरुषसिंह ! उस समय रथ, हाथी, घोडे और पदातियोंसे भरी, अनेक ध्वजाओंसे शोभित दोनों सेनाओंका रूप अद्भुत हो गया ॥ १० ॥

शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥ ११ ॥

हे महाराज ! शिखण्डीने कर्णपर और धृष्टद्युम्नने बहुत सेना सहित तुम्हारे पुत्र दुःशासन पर धावा किया ॥ ११ ॥

नकुलो वृषसेनं च चित्रसेनं युधिष्ठिरः ।
उलूकं समरे राजन्सहदेवः समभ्ययात् ॥ १२ ॥

राजन् ! नकुल वृषसेनसे, युधिष्ठिर चित्रसेनसे और सहदेव उलूकसे समरमें युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

सात्यकिः शकुनिं चापि भीमसेनश्च कौरवान् ।
अर्जुनं च रणे यत्तं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥

सात्यकि शकुनिसे और भीमसेन सब कौरववीरोंसे युद्ध करने लगे। इसी प्रकार सावध चित्त अर्जुनसे युद्ध करनेको महारथी अश्वत्थामा चले ॥ १३ ॥

युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद्रणे ।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४ ॥

युद्धमें महाधनुषधारी युधामन्युसे कृपाचार्य, उत्तमौजासे बलवान् कृतवर्मा युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

भीमसेनः कुरून्सर्वान्पुत्रांश्च तव मारिष ।
सहानीकान्महाबाहुरेक एवाभ्यवारयत् ॥ १५ ॥

हे मारिष ! इसी प्रकार महाबाहु भीमसेनने अकेले ही सेनाके साथ सब कौरव वीर और तुम्हारे सब पुत्रोंको रोक दिया ॥ १५ ॥

शिखण्डी च ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥ १६ ॥

हे महाराज ! अनन्तर भीष्मके मारनेवाले शिखण्डीने पाण्डवोंकी सेनामें घूमते हुए बेडर कर्णको अपने बाणोंसे रोक दिया ॥ १६ ॥

प्रतिरब्धस्ततः कर्णो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्ये व्यताडयत् ॥ १७ ॥

उन बाणोंसे अवरुद्ध हो जानेसे क्रोधके मारे कर्णके होंठ फरकने लगे । तब उन्होंने तीन बाण शिखण्डीकी भौंहोंमें मारे ॥ १७ ॥

धारयंस्तु स तान्बाणाञ्शिखण्डी बह्वशोभत ।
राजतः पर्वतो यद्वत्त्रिभिः शृङ्गैः समन्वितः ॥ १८ ॥

उन बाणोंको ललाटमें धारण किये शिखण्डीकी शोभा ऐसी बढी, जैसे तीन शिखरयुक्त चांदीका पर्वत शोभित होता है ॥ १८ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे ।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

युद्धमें सूतपुत्रके बाणोंसे व्याकुल हुए महाधनुषधारी शिखण्डीने कर्णको तीक्ष्ण नव्वे बाण मारकर बिद्ध किया ॥ १९ ॥

तस्य कर्णो हयान्हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥ २० ॥

महारथी कर्णने तीन बाणोंसे शिखण्डीके घोडे और सारथिको मारा, फिर एक क्षुरप्र बाणसे ध्वजा काटी ॥ २० ॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः ॥ २१ ॥

शत्रुतापन महारथी शिखण्डी उस अश्वहीन रथसे कूद पडे और उन्होंने एक शक्ति कर्णकी ओर चलायी ॥ २१ ॥

तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः ।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

हे भारत ! कर्णने अपने तीन बाणोंसे उस शक्तिको समरमें काट दिया और नौ तीक्ष्ण बाण शिखण्डीके शरीरमें मारे ॥ २२ ॥

कर्णचापच्युतान्बाणान्वर्जयंस्तु नरोत्तमः ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी जयतां वरः ॥ २३ ॥

उस समय पुरुषश्रेष्ठ, विजयी वीरोंमें उत्तम शिखण्डी कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे बचनेके लिये त्वरासे युद्धसे भाग गये ॥ २३ ॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत् ।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाजवः ॥ २४ ॥

महाराज ! जैसे वायु रुईके ढेरको उडाती है, वैसे ही शिखण्डीके भागनेपर महा वेगवान् कर्ण पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ २५ ॥

हे महाराज ! जब दुःशासनने धृष्टद्युम्नकी ओर अनेक बाण चलाये, तब उसके बाणोंसे पीडित होकर धृष्टद्युम्नने दुःशासनकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ २५ ॥

तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष ।
शितेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेन नतपर्वणा ॥ २६ ॥

मारिष ! दुःशासनने भी एक सोनेके पङ्खवाला तेज नतपर्व भल्ल बाण धृष्टद्युम्नके बायें हाथमें मारा ॥ २६ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ २७ ॥

तब घायल हुए अमर्षशील धृष्टद्युम्नने क्रोध करके एक घोर बाण दुःशासनकी ओर चलाया ॥ २७ ॥

आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशां पते ॥ २८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! धृष्टद्युम्नके चलाये हुए उस घोर वेगवान् बाणको आते देख तुम्हारे पुत्रने तीन बाणसे उसे काट दिया ॥ २८ ॥

अथापरैः सप्तदशैर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्दयत् ॥ २९ ॥

अनन्तर धृष्टद्युम्नके पास जाकर सोनेसे भूषित शीघ्र चलनेवाले सतरह भल्ल बाण उसके हृदय और हाथोंमें मारे ॥ २९ ॥

ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३० ॥

मारिष ! तब द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नने क्रोध करके एक तेज क्षुरप्र बाणसे तुम्हारे पुत्रका धनुष काट दिया, तब सब लोग कोलाहल करने लगे ॥ ३० ॥

अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब तुम्हारे पुत्रने दूसरा धनुष लिया और सहस्रों बाणोंसे धृष्टद्युम्नको सब ओरसे रोक दिया ॥ ३१ ॥

तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं तं महात्मनः ।
व्यहसन्त रणे योधाः सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३२ ॥

तुम्हारे पुत्र महात्मा दुःशासनके इस पराक्रमको देख समरमें सब वीर, अप्सरा और सिद्ध आश्चर्य करने लगे ॥ ३२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ।
घोरं प्राणभृतां काले घोररूपं परंतप ॥ ३३ ॥

हे शत्रुनाशन ! फिर तुम्हारी सेनाका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध हुआ । वह उस समय सब प्राणियोंके लिये घोर रूप था ॥ ३३ ॥

नकुलं वृषसेनस्तु विद्‌ध्वा पञ्चभिरायसैः ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं त्रिभिरन्यैरविध्यत ॥ ३४ ॥

वृषसेनने, अपने पिता कर्णके पास खडे होकर नकुलको लोहेके पांच बाणोंसे घायल किया, और भी दूसरे तीन बाण मारे ॥ ३४ ॥

नकुलस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनं स्मयन्निव ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये दृढम् ॥ ३५ ॥

तब शूरवीर नकुलने हंसकर एक अत्यंत तेज नाराच बाण वृषसेनके हृदयमें मारकर उसको अत्यंत विव्हल किया ॥ ३५ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः ॥ ३६ ॥

बलवान् शत्रुके उस बाणसे अत्यंत व्याकुल होकर शत्रुकर्षण वृषसेनने अपने शत्रु नकुलके शरीरमें बीस बाण मारे, फिर नकुलने भी उसके शरीरमें पांच बाण मारे ॥ ३६ ॥

ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथाभज्यत वाहिनी ॥ ३७ ॥

तब वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ वीर एक दूसरे पर सहस्रों बाण चलाने लगे, और परस्पर बाणोंसे आच्छादित करने लगे । तब इसी समय बाणोंसे पीडित होकर, तुम्हारी सेना भागने लगी ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा तु प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः ।
निवारयामास बलादनुपत्य विशां पते ।
निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान्ययौ ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! दुर्योधनकी सेनाको भागती हुई देख, सूतपुत्र कर्णने अपने बलसे अपनी सेनाको स्थिर किया । जब कर्ण लौटे तब नकुल कौरवोंसे युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥

कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु ।
जुगोप चक्रं त्वरितं राधेयस्यैव मारिष ॥ ३९ ॥

कर्णपुत्र वृषसेन नकुलको छोडकर शीघ्रतासे अपने पिताके रथके पहियोंकी रक्षा करने लगा ॥ ३९ ॥

उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः ।
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान् ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ४० ॥

सहदेवने युद्धमें क्रुद्ध हुए उलूकको अपने बाणोंसे रोक दिया। महा प्रतापी सहदेवने उलूकके चारों घोडोंको मारकर, उसके सारथिको भी मार डाला ॥ ४० ॥

उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशां पते ।
त्रिगर्तानां बलं पूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥ ४१ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! अनन्तर पितृनन्दन उलूक उस रथसे कूदकर शीघ्रही त्रिगर्त्त देशकी सेनाकी ओर चले गये ॥ ४१ ॥

सात्यकिः शकुनिं विद्ध्वा विंशत्या निशितैः शरैः ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ४२ ॥

सात्यकिने हंसकर शकुनिके शरीरमें तीक्ष्ण वीस बाण मारकर उसको विद्ध किया और एक भल्ल बाणसे सुबलपुत्रकी ध्वजा काट डाली ॥ ४२ ॥

सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन्प्रतापवान् ।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ४३ ॥

हे राजन् ! युद्धमें प्रतापवान् सुबलपुत्र शकुनिने भी क्रोध करके सात्यकिका कवच छिन्नभिन्न किया और सोनेकी ध्वजा काट दी ॥ ४३ ॥

अथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत ।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्दयत् ।
अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ४४ ॥

महाराज ! सात्यकिने भी अनेक तेज बाण शकुनिके शरीरमें मारे और तीन बाणोंसे उनके सारथिको घायल किया। अनन्तर शीघ्रता करके बाणोंसे चारों घोडे मार डाले ॥ ४४ ॥

ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ।
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महारथः ।
अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद्युद्धशालिनः ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब महारथी शकुनि सहसा उस रथसे कूदे और उलूकके रथपर तुरंत ही जा चढे, युद्धमें शोभायमान सात्यकिके पाससे अपने रथको उलूक शीघ्र ही दूर हटा ले गया ॥ ४५ ॥

×

सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम्।
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभिद्यत ॥ ४६ ॥

राजन्! तब सात्यकि वेगसे तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाकी ओर समरमें आक्रमणके लिये दौडे, तब तुम्हारी सेना इधर उधरको भागने लगी ॥ ४६ ॥

शैनेयशरनुन्नं तु ततः सैन्यं विशां पते।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥ ४७ ॥

प्रजापते! सात्यकिके बाणोंसे व्याकुल होकर तुम्हारी सेना इधर उधरको दसों दिशाओंमें भागने लगी और प्राणहीनसी होकर पृथ्वीमें गिरने लगी ॥ ४७ ॥

भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे।
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम्।
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त चारणाः ॥ ४८ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने भीमसेनको युद्धमें रोका। तब भीमसेनने दो ही क्षणमें पृथ्वीपति दुर्योधनको घोडे, सारथि, रथ और ध्वजासे रहित कर दिया, भीमसेनके इस पराक्रमको देख चारण बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४८ ॥

ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात्।
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत्
तत्र रावो महानासीद्भीममेकं जिघांसताम्। ॥ ४९ ॥

तब राजा दुर्योधन भीमसेनके आगेसे दूर हट गये, तब कौरवोंकी सब सेना क्रोध करती हुई भीमसेनकी ओर दौडी, तब भीमसेनको मारनेकी इच्छासे आये हुए कौरव सैनिकोंका वहां बडा शब्द हुआ ॥ ४९ ॥

युधामन्युः कृपं विद्ध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे।
अथान्यद्धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५० ॥

युधामन्युने कृपाचार्यको विद्ध किया, फिर शीघ्र ही एक बाणसे उनका धनुप काट दिया; शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष लिया ॥ ५० ॥

युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत्क्षितौ।
ततोऽपायाद्रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥ ५१ ॥

और अपने बाणोंसे युधामन्युके सारथि, ध्वजा और छत्रको पृथ्वीपर गिरा दिया। तब महारथी युधामन्यु रथसे भाग गये ॥ ५१ ॥

उत्तमौजास्तु हार्दिक्यं शौरिर्भीमपराक्रमम् ।
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्या यथाचलम् ॥ ५२ ॥

जैसे मेघ पर्वतके ऊपर जल वर्षाकर उसको ढक देता है, ऐसे ही उत्तमौजाने महा पराक्रमी कृतवर्माको अपने बाणोंसे सहसा आच्छादित किया ॥ ५२ ॥

तद्युद्धं सुमहच्चासीद्धोररूपं परंतप ।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशां पते ॥ ५३ ॥

हे परंतप ! पृथ्वीनाथ ! इन दोनों वीरोंका वह महान् घोर युद्ध हुआ, जैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥ ५३ ॥

कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे ।
हृदि विव्याध स तदा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५४ ॥

राजन् ! अनन्तर युद्धमें कृतवर्माने उत्तमौजाके हृदयमें सहसा एक बाण मारा, तब उत्तमौजा मूर्च्छा खाकर रथमें बैठ गया ॥ ५४ ॥

सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम् ।
ततस्तु सत्वरं राजन्पाण्डुसैन्यमुपाद्रवत् ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ २६०१ ॥

तब उनके सारथिने रथियोंमें श्रेष्ठ उत्तमौजाको रथके द्वारा युद्धसे दूर हटा दिया। फिर तो तुरंत ही सब कौरवसेना पांडवोंकी सेनापर टूट पडी ॥ ५५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ २६०१ ॥

: ४५ :

सञ्जय उवाच

द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः ।
आपतत्सहसा राजन्यत्र राजा व्यवस्थितः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी विशाल रथ और सेनाके सहित जहां राजा युधिष्ठिर थे, वहां सहसा आ गया ॥ १ ॥

तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान् ।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण जिनके सहायक हैं, उन शूरवीर अर्जुनने सहसा आते हुए अश्वत्थामाको रोका, जैसे समुद्रके वेगको पर्वत रोकता है ॥ २ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
अर्जुनं वासुदेवं च छादयामास पत्रिभिः ॥ ३ ॥

हे महाराज ! तब महाप्रतापी अश्वत्थामाने क्रोध करके श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे छा दिया ॥ ३ ॥

अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा ॥ ४ ॥

वहां श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंमें छिपा हुआ देख, कौरव सेनाके महारथी बडा आश्चर्य करके देखने लगे ॥ ४ ॥

अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव ।
तदस्त्रं ब्राह्मणो युद्धे वारयामास भारत ॥ ५ ॥

भारत ! तब अर्जुनने हंसकर एक दिव्य अस्त्र चलाया, परन्तु ब्राह्मण अश्वत्थामाने युद्धमें उसका निवारण कर दिया ॥ ५ ॥

यद्यद्धि व्याक्षिपद्युद्धे पाण्डवोऽस्त्रं जिघांसया ।
तत्तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत् ॥ ६ ॥

युद्धमें अर्जुन अश्वत्थामाके मारनेको जो जो अस्त्र चलाते थे, उसीको महाधनुषधारी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा काट देता था ॥ ६ ॥

अस्त्रयुद्धे ततो राजन्वर्तमाने भयावहे ।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ७ ॥

राजन् ! जब इस प्रकार यह भयङ्कर अस्त्र युद्ध होने लगा, तब हमने अश्वत्थामाको मुह फैलाये कालके समान देखा ॥ ७ ॥

स दिशो विदिशश्चैव छादयित्वा विजिह्मगैः ।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद्दक्षिणे भुजे ॥ ८ ॥

उन्होंने अपने तेज चलनेवाले बाणोंसे दिशा और आकाशको पूरित करके श्रीकृष्णके दाहिने हाथमें तीन बाण मारे ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनो हयान्हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः ।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने अपने बाणोंसे उस महात्मा अश्वत्थामाके सब घोडोंको मारकर समरभूमिमें रुधिरकी नदी बहा दी ॥ ९ ॥

निहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः ।
हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः ॥ १० ॥

अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे अनेक रथोंमें बैठे हुए वीर मरकर भूमिमें गिर गये । अनेक घोडे लगाम कटनेसे इधर उधर भागने लगे ॥ १० ॥

तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः ।
अवाकिरद्रणे कृष्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ११ ॥

युद्धमें शोभायमान अर्जुनके उस पराक्रमको देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपने तेज बाणोंसे श्रीकृष्णको युद्धमें सब ओरसे छा दिया ॥ ११ ॥

ततोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा ।
वक्षोदेशे समासाद्य ताडयामास संयुगे ॥ १२ ॥

महाराज ! अनन्तर द्रोणपुत्रने धनुष खींचकर एक पंखयुक्त बाण अर्जुनके हृदयका लक्ष्य करके युद्धमें मारा ॥ १२ ॥

सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत ।
आदत्त परिघं घोरं द्रौणेश्चैनमवाक्षिपत् ॥ १३ ॥

भारत ! युद्धमें द्रोणपुत्रके उस बाणसे अत्यंत घायल किये गये अर्जुनने एक घोर परिघ लेकर उसको अश्वत्थामापर छोड दिया ॥ १३ ॥

तमापतन्तं परिघं कार्तस्वरविभूषितम् ।
द्रौणिश्चिच्छेद सहसा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १४ ॥

उस सुवर्ण भूषित परिघको सहसा अपनी ओर आते देख, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सहसा उसे काट दिया, तब लोगोंने जोरसे गर्जना की ॥ १४ ॥

सोऽनेकधापतद् भूमौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
विशीर्णः पर्वतो राजन्यथा स्यान्मातरिश्वना ॥ १५ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाके बाणोंसे टुकडे टुकडे हो जानेसे वह परिघ वायुसे कटे हुए पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर गया ॥ १५ ॥

ततोऽर्जुनो रणे द्रौणिं विव्याध दशभिः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ॥ १६ ॥

अनन्तर अश्वत्थामाको अर्जुनने दस बाणोंसे विद्ध किया और उसके सारथिको एक भल्ल बाणसे मारकर रथसे नीचे गिरा दिया ॥ १६ ॥

स संगृह्य स्वयं वाहान्कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ १७ ॥

तब अश्वत्थामाने आप ही घोडोंकी लगाम हाथमें ली और अपने बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको छा दिया । वहां अश्वत्थामाका शीघ्र अद्भुत पराक्रम हमने देखा ॥ १७ ॥

अयच्छत्तुरगान्यच्च फल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
तदस्य समरे राजन्सर्वे योधा अपूजयन् ॥ १८ ॥

राजन् ! अर्जुनसे युद्ध करना और घोडोंको काबूमें रखकर हांकना, इन दोनों कर्मोंको करते देख, युद्धमें सब योद्धा अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे ॥ १८ ॥

यदा त्वग्रसत रणे द्रोणपुत्रेण फल्गुनः ।
ततो रश्मीन्रथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥ १९ ॥

जब युद्धमें अर्जुन द्रोणपुत्रसे आक्रमित हो रहे थे, तब अर्जुनने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणोंसे अश्वत्थामाके रथके घोडोंकी राश काट दी ॥ १९ ॥

प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रबाधिताः ।
ततोऽभून्निनदो भूयस्तव सैन्यस्य भारत ॥ २० ॥

भारत ! बाणोंके वेगसे अत्यंत विह्वल हुए वे उसके घोडे भाग गये । उस समय तुम्हारी सेनामें महाहाहाकार होने लगा ॥ २० ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यमुपाद्रवन् ।
समन्तान्निशितान्बाणान्विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ २१ ॥

पाण्डवोंने विजय पाकर तुम्हारी सेनाके ऊपर आक्रमण किया और विजयकी इच्छासे चारों ओरसे तेज बाण चलाना आरंभ किया ॥ २१ ॥

पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पुनः पुनरथो वीरैरभज्यत जयोद्धतैः ॥ २२ ॥

विजयसे उत्साहित पाण्डवोंने दुर्योधनकी बडी सेनामें बार बार भगदड निर्माण की ॥ २२ ॥

पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च महात्मनः ॥ २३ ॥

महाराज ! उस समय विचित्र युद्ध करनेवाले तुम्हारे पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि और महात्मा कर्ण देखते ही रह गये ॥ २३ ॥

वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
नावतिष्ठत संग्रामे ताड्यमाना समन्ततः ॥ २४ ॥

प्रजापते ! सब ओरसे पीडित हुई तुम्हारी बडी सेना तुम्हारे पुत्र रोकते थे, तो भी किसी प्रकार युद्धमें खडी न हुई ॥ २४ ॥

ततो योधैर्महाराज पलायद्भिस्ततस्ततः ।
अभवद्व्याकुलं भीतैः पुत्राणां ते महद्बलम् ॥ २५ ॥

महाराज ! भयभीत हुए वे सब योद्धा चारों ओर भागने लगे, इस कारण उस समय तुम्हारे पुत्रोंकी बडी सेना व्याकुल हो गयी ॥ २५ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति सततं सूतपुत्रस्य जल्पतः ।
नावतिष्ठत सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥ २६ ॥

यद्यपि सूतपुत्र कर्ण सेनाको ठहरो, ठहरो कहकर बहुत रोकते रहे, परन्तु वह सेना महात्मा पाण्डवोंके द्वारा मारी जानेसे व्याकुल होकर खडी न रह सकी ॥ २६ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा द्रवमाणं समन्ततः ॥ २७ ॥

महाराज ! दुर्योधनकी सेनाको सब ओर भागती देख पाण्डवोंकी विजयी सेना गर्जने लगी ॥ २७ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत्प्रणयादिव ।
पश्य कर्ण यथा सेना पाण्डवैरर्दिता भृशम् ॥ २८ ॥

तब दुर्योधनने कर्णसे प्रेमसे कहा—हे कर्ण ! यह देखो, हमारी सेनाको पाण्डवोंने अत्यंत पीडित कर दिया है ॥ २८ ॥

त्वयि तिष्ठति संत्रासात्पलायति समन्ततः ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिंदम ॥ २९ ॥

हे शत्रुदमन महाबाहु वीर ! तुम्हारे रहते हुए भी हमारी सेना सब ओर भयसे भाग रही है, यह जानकर अब जो कुछ करने योग्य हो सो करो ॥ २९ ॥

सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषर्षभ ।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥ ३० ॥

हे वीर ! हे पुरुषोत्तम ! पाण्डवोंसे भगाये जाते हुए हमारे सहस्रों योद्धा केवल तुम्हें ही समरमें पुकार रहे हैं ॥ ३० ॥

एतच्छ्रुत्वा तु राधेयो दुर्योधनवचो महत् ।
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत्सूतनन्दनः ॥ ३१ ॥

दुर्योधनके श्रेष्ठ वचन सुन राधापुत्र कर्ण मद्रराज शल्यसे बोले ॥ ३१ ॥

पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर।
अद्य हन्मि रणे सर्वान्पाञ्चालान्पाण्डुभिः सह।
वाहयाश्वान्नरव्याघ्र भद्रेणैव जनेश्वर ॥ ३२ ॥

हे पृथ्वीनाथ! आप आज हमारे अस्त्र और हाथोंके बलको देखिये, हम युद्धमें अभी पाण्डवोंके सहित सब पाञ्चालोंको मारते हैं। हे पुरुषसिंह! अब आप शुभेच्छापूर्वक हमारे घोडोंको हांकिये ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान्।
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुःश्रेष्ठं पुरातनम्।
सज्यं कृत्वा महाराज संमृज्य च पुनः पुनः ॥ ३३ ॥

ऐसे कहकर प्रतापवान् सूतपुत्र वीर कर्णने प्राचीन और श्रेष्ठ विजय धनुषको लेकर उसपर रोदा चढाया और बार बार आगे जाकर ॥ ३३ ॥

संनिवार्य च योधान्स्वान्सत्येन शपथेन च।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥ ३४ ॥

सत्य प्रतिज्ञा करके सब योद्धाओंको लौटा लिया, अनन्तर अमेयात्मा महा बलवान् वीरने परशुरामका दिया हुआ अस्त्र चलाया ॥ ३४ ॥

ततो राजन्सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन्महामृधे ॥ ३५ ॥

हे राजन्! फिर कर्णके उस अस्त्रसे सैकडों, सहस्रों, लाखों, करोडों और अरबों तीक्ष्ण बाण निकलकर महा युद्धमें घूमने लगे ॥ ३५ ॥

ज्वलितैस्तैर्महाघोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३६ ॥

उन कंक और मोर पंख युक्त जलते हुए घोर बाणोंसे पाण्डवोंकी सेना छा गयी, और कुछ भी नहीं जान पडता था ॥ ३६ ॥

हाहाकारो महानासीत्पाञ्चालानां विशां पते।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥ ३७ ॥

हे पृथ्वीनाथ! बलवान् भार्गवास्त्रसे व्याकुल होकर पाञ्चाल सेना युद्धमें महान् हाहाकार करने लगी ॥ ३७ ॥

निपतद्भिर्गजै राजन्नरैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र हयैश्चापि समन्ततः ॥ ३८ ॥

हे पुरुषसिंह ! अनेक हाथी, घोडे, रथ और हजारों मनुष्य कट कटकर सब ओर गिर गये ॥ ३८ ॥

प्राकम्पत मही राजन्निहतैस्तैस्ततस्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत्पाण्डवानां महद्बलम् ॥ ३९ ॥

उनके मरकर गिरनेसे पृथ्वी सब ओर कांपने लगी और पाण्डवोंकी सब बडी सेना व्याकुल हो गयी ॥ ३९ ॥

कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहञ्शत्रून्नरव्याघ्र शुशुभे स परंतपः ॥ ४० ॥

नरव्याघ्र ! अकेले शत्रुतापन योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्ण धुवांरहित अग्निके समान शत्रुओंकी सेनाको जलाते हुए शोभित होने लगे ॥ ४० ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पाञ्चालाश्चेदिभिः सह ।
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ।
चुक्रुशुस्ते नरव्याघ्र यथाप्राग्वा नरोत्तमाः ॥ ४१ ॥

जैसे वनमें आग लगनेसे हाथी सब ओर अग्निदाहसे मूर्च्छित होते हैं, ऐसे ही कर्णके बाणोंसे मारे जानेवाले चेदि और पाञ्चाल वीर मूर्च्छित हो गये । नरव्याघ्र ! वे सब नरश्रेष्ठ योद्धा हाहाकार करके इधर उधर भागने लगे ॥ ४१ ॥

तेषां तु क्रोशतां श्रुत्वा भीतानां रणमूर्धनि ।
धावतां च दिशो राजन्वित्रस्तानां समन्ततः ।
आर्तनादो महांस्तत्र प्रेतानामिव संप्लवे ॥ ४२ ॥

जैसे प्रलयकालमें सब जगत् हाहाकार करता है, ऐसे ही वह पाण्डवोंकी सेना युद्धके अग्रभागमें भयसे चिल्लाती और डरकर सब ओर भागती हुई महान् आर्तनाद करने लगी ॥ ४२ ॥

वध्यमानांस्तु तान्दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ ४३ ॥

मारिष ! इस प्रकार कर्णके हाथसे पाण्डवोंकी सेनाका नाश होते देख, सब प्राणी, पशु, पक्षी भी डरने लगे ॥ ४३ ॥

+

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च व्याक्रोशन्त मुहुर्मुहुः ।
प्रेतराजपुरे यद्वत्प्रेतराजं विचेतसः ॥ ४४ ॥

सूतपुत्र कर्णके बाणोंसे युद्धमें मारे जाते हुए सृञ्जय बार बार श्रीकृष्ण और अर्जुनको पुकारने लगे । जैसे यमराजके पुरीमें दुःखसे अचेत हुए प्राणी प्रेतराजको बुलाते हैं ॥ ४४ ॥

अथाब्रवीद्वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥ ४५ ॥

कर्णने परशुरामका दिया हुआ महाघोर अस्त्र छोडा है यह देख, कुन्तीपुत्र अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले ॥ ४५ ॥

पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् ।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथंचन ॥ ४६ ॥

हे महाबाहो ! श्रीकृष्ण ! ये देखो, यह भार्गवास्त्रका पराक्रम । इस अस्त्रको समरमें किसी भी तरह नष्ट नहीं किया जा सकता ॥ ४६ ॥

सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीरं कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥ ४७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! ये देखो, यमराजके समान पराक्रमी वीर कर्ण क्रोध करके महायुद्धमें दारुण कर्म कर रहा है ॥ ४७ ॥

सुतीक्ष्णं चोदयन्नश्वान्प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णस्य प्रपलायितम् ॥ ४८ ॥

ये देखो, कर्ण अपने घोडोंको शीघ्र हांकते हुए, हमारी ओरको बार बार देख रहे हैं । समरमें कर्णको भगाना मैं शक्य नहीं देखता ॥ ४८ ॥

जीवन्प्राप्नोति पुरुषः संख्ये जयपराजयौ ।
जितस्य तु हृषीकेश वध एव कुतो जयः ॥ ४९ ॥

हे हृषीकेश ! जीता हुआ मनुष्य युद्धमें कभी हारता है, कभी जीतता है । जिते हुएका नित्यके लिये मृत्यु ही है, उसका जय कैसा होगा ? ॥ ४९ ॥

ततो जनार्दनः प्रायाद्द्रष्टुमिच्छन्युधिष्ठिरम् ।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च कर्णं युद्धेन मारिष ॥ ५० ॥

मारिष ! अनन्तर जनार्दन श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे मिलनेकी इच्छासे और कर्णको इतने समयमें और भी युद्धमें थक जायेंगे, इसलिये वहांसे चले गये ॥ ५० ॥

अर्जुनं चाब्रवीत्कृष्णो भृशं राजा परिक्षतः ।
तमाश्वास्य कुरुश्रेष्ठ ततः कर्णं हनिष्यसि ॥ ५१ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! कर्णने राजा युधिष्ठिरको बहुत क्षतविक्षत कर दिया है, उनको धीरज देकर फिर कर्णको मारिये, ऐसा श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा ॥ ५१ ॥

ततो धनंजयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामे केशवाज्ञया ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञासे अर्जुन बाण पीडित राजा युधिष्ठिरको देखनेके लिये रथसे युद्धमें शीघ्रता-पूर्वक चले गये ॥ ५२ ॥

गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया ।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत्तत्र चाग्रजम् ॥ ५३ ॥

जाते समय धर्मराजको देखनेकी इच्छासे मार्गमें अर्जुन सेनाको देखते चले गये, परन्तु अपने बडे भाई युधिष्ठिरको कहीं न देखा ॥ ५३ ॥

युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत ।
दुःसहं वज्रिणा संख्ये पराजिग्ये भृगोः सुतम् ॥ ५४ ॥

भारत ! कुन्तीपुत्र अर्जुनने अश्वत्थामाके साथ युद्ध करके युद्धमें वज्रधारी इन्द्रके लिये भी दुःसह उस भृगुपुत्रको पराजित कर युधिष्ठिरके दर्शनको चले गये ॥ ५४ ॥

द्रौणिं पराजित्य ततोग्रधन्वा कृत्वा महद्दुष्करमार्यकर्म ।
आलोकयामास ततः स्वसैन्यं धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ ५५ ॥

महाधनुषधारी शत्रुओंके लिये अजेय अर्जुन अश्वत्थामाको जीतकर और कठिनतासे करने योग्य आर्य कर्म करके, अपनी सेनाको देखने लगे ॥ ५५ ॥

स युध्यमानः पृतनामुखस्थाञ्शूराञ्शूरो हर्षयन्सव्यसाची ।
पूर्वापदानैः प्रथितैः प्रशंसन्स्थिरांश्चकारात्मरथाननीके ॥ ५६ ॥

अनन्तर वे युद्ध करनेके लिये सिद्ध, सव्यसाची शूरवीर अर्जुन सेनाके मुखमें खडे युद्ध करते अपने शूर वीरोंका उत्साह बढाकार और पहलेके घावोंसे क्षत-विक्षत हुए अपने रथी वीरोंकी प्रशंसा करने लगे । फिर उनको अपनी सेनामें स्थिरतापूर्वक स्थापित किया ॥ ५६ ॥

अपश्यमानस्तु किरीटमाली युधि ज्येष्ठं भ्रातरमाजमीढम् ।
उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य राज्ञः प्रवृत्तिस्त्विह केति राजन् ॥ ५७ ॥

परंतु वहां युद्धमें अपने बडे भाई अजमीढकुलनन्दन महाराज युधिष्ठिरको सेनामें न देखकर किरीटधारी अर्जुनने शीघ्रता सहित भीमसेनके पास जा कर उनका समाचार पूछा—महाराज कहां ? और कैसे हैं ? ॥ ५७ ॥

भीम उवाच

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कर्णबाणविभुग्नाङ्गो यदि जीवेत्कथंचन ॥ ५८ ॥

भीमसेन बोले– कर्णके बाणोंसे सब अंग व्याकुल हो धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर यहांसे चले गये हैं । परन्तु जीते हैं, या नहीं सो हम नहीं कह सकते ॥ ५८ ॥

अर्जुन उवाच

तस्माद्भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य ।
नूनं हि विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ ॥ ५९ ॥

अर्जुन बोले– इसलिये आप शीघ्र यहांसे कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका समाचार लानेके लिये जाइये । अवश्य ही कर्णके बाणोंसे अत्यन्त व्याकुल होकर राजा डेरेको चले गये हैं ॥५९॥

यः संप्रहारे निशि संप्रवृत्ते द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी ।
तस्थौ च तत्रापि जयप्रतीक्षो द्रोणेन यावन्न हतः किलासीत् ॥ ६० ॥

जो वेगशाली वीर युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके घावों और तेज बाणोंसे अत्यंत घायल होनेपर भी अपनी विजयकी प्रतीक्षामें विना द्रोणके नाश हुए युद्धसे नहीं हटे थे ॥ ६० ॥

स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः संख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः ।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम स्थास्याम्यहं शत्रुगणान्निरुध्य ॥ ६१ ॥

वही महात्मा पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर आज कर्णके बाणोंसे युद्धमें जीवनके सन्देहमें पड गये हैं । इसलिये, हे भीम ! आप शीघ्रही उनका समाचार जाननेके लिये जाइये और हम आपके स्थान पर खडे होकर शत्रुओंके गणोंको रोकेंगे ॥ ६१ ॥

भीम उवाच

त्वमेव जानीहि महानुभाव राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य ।
अहं हि पद्यर्जुन यामि तत्र वक्ष्यन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥ ६२ ॥

भीमसेन बोले– हे महानुभाव अर्जुन ! तुम ही भरतश्रेष्ठ महाराजका समाचार जाननेके लिये जाओ, क्योंकि यदि मैं यहांसे जाऊंगा तो हमारे जानेसे हमारे वीर शत्रु कहेंगे, कि भीमसेन डरकर भाग गये ॥ ६२ ॥

ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं संशप्तकाः प्रत्यनीकं स्थिता मे ।
एतानहत्वा न मया तु शक्यमितोऽपयातुं रिपुसंघगोष्ठात् ॥ ६३ ॥

तब अर्जुनने भीमसेनसे कहा कि यह संशप्तक सेना हमारे आगे विपक्षमें खडी है, इसको विना मारे मैं इस शत्रुसमुदायके बाहर नहीं जा सकता ॥ ६३ ॥

अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः स्ववीर्यमाश्रित्य कुरुप्रवीर ।
संशप्तकान्प्रतियोत्स्यामि संख्ये सर्वानहं याहि धनंजयेति ॥ ६४ ॥
ऐसा सुन भीमसेन अर्जुनसे बोले– हे कुरुकुल वीर श्रेष्ठ अर्जुन ! तुम जाओ, हम अपने बलका आश्रय लेकर सब संशप्तकोंके साथ समरमें युद्ध करेंगे ॥ ६४ ॥

तद्भीमसेनस्य वचो निशम्य सुदुर्वचं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयातुं प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ ६५ ॥
अपने भाई भीमसेनके शत्रुओंके बीचमें कठोर वचन सुनकर, कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरके दर्शन करनेको जानेकी इच्छासे, वृष्णिवंश श्रेष्ठ श्रीकृष्णको ऐसे बोले ॥ ६५ ॥

चोदयाश्वान्हृषीकेश विगाह्यैतं रथार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ ६६ ॥
हृषीकेश ! आप इस समुद्रके समान रथ सेनाको पार कर घोडोंको हांकिये । केशव ! मैं अजात शत्रु राजा युधिष्ठिरके दर्शन करनेकी इच्छा करता हूं ॥ ६६ ॥

ततो हयान्सर्वदाशार्हमुख्यः प्राचोदयद्भीममुवाच चेदम् ।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य वीर यास्यामहे जहि भीमारिसंघान् ॥ ६७ ॥
तब सब यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्णने घोडोंको हांका और चलते समय भीमसेनसे इस प्रकार कहा कि, हे वीर भीम ! यह कर्म आज आपके लिये कुछ भारी आश्चर्यका नहीं है । अब आप शत्रुओंका नाश कीजिये, हम जाते हैं ॥ ६७ ॥

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन्वाजिभिर्गरुडोपमैः ॥ ६८ ॥
राजन् ! तब श्रीकृष्ण जहां राजा युधिष्ठिर थे, वहां गरुडके समान वेगवान् घोडोंसे बहुत शीघ्र जा पहुंचे ॥ ६८ ॥

प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिंदमम् ।
संदिश्य चैव राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥ ६९ ॥
राजेन्द्र ! शत्रुदमन वृकोदर भीमसेनको शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके लिये रखकर और युद्धके विषयमें सूचना देकर ॥ ६९ ॥

ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ राजानमासाद्य शयानमेकम् ।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ ७० ॥
वे दोनों वीर श्रेष्ठ पलङ्गपर अकेले लेटे हुए राजा युधिष्ठिरके पास जाकर रथसे उतरे और उन्होंने धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ७० ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ क्षेमिणौ पुरुषर्षभ ।
मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥ ७१ ॥

पुरुषर्षभ ! पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको सकुशल और इन्द्रके पास गये हुए अश्विनी-कुमारोंके समान प्रसन्नतासे अपने समीप आये इन दोनों कृष्णोंको देख ॥ ७१ ॥

तावभ्यनन्दद्राजा हि विवस्वानश्विनाविव ।
हते महासुरे जम्भे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥ ७२ ॥

राजाने भी उनका ऐसा अभिनन्दन किया, जैसे सूर्य दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वागत करते हैं और जैसे महान् असुर जम्भके मारे जानेके पश्चात् बृहस्पतिने विष्णु और इन्द्रका सत्कार किया था ॥ ७२ ॥

मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परंतपौ ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ २६७४ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर कर्णको मारा गया मानकर, आनंदयुक्त वाणीसे और प्रसन्न चित्तसे उन दोनों शत्रुतापन वीरोंसे बोले ॥ ७३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ २६७४ ॥

: ४६ :

संजय उवाच

महासत्त्वौ तु तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
हतमाधिरथिं तेने संख्ये गाण्डीवधन्वना ॥ १ ॥

संजय बोले— महान् धैर्यशाली श्रीकृष्ण और अर्जुनको संग आये देख, उन्हें मान लिया कि अधिरथपुत्र कर्णको गाण्डीवधारी अर्जुनने युद्धमें मार डाला ॥ १ ॥

तावभ्यनन्दत्कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नः पूजयन्भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतकुलश्रेष्ठ ! शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने उन दोनोंकी प्रशंसा करके, बहुत शान्तिपूर्वक स्मित करके मधुर शब्दोंसे उन दोनोंका अभिनंदन किया ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं देवकीपुत्र स्वागतं ते धनंजय ।
प्रियं मे दर्शनं बाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे देवकीपुत्र कृष्ण ! तुम्हारा स्वागत हो ! हे अर्जुन ! तुम्हारा भी स्वागत हो । तुम्हारे दर्शनसे हम बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥

अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां कथं युध्य महारथम्।
आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ ४॥

तुम दोनोंने अक्षत शरीरसे सकुशल रहकर, सब शस्त्रोंके जाननेवाले, महारथी, युद्धमें विषैले सांपके समान भयंकर कर्णसे कैसे युद्ध किया ? ॥ ४ ॥

अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ५॥

यह कर्ण सब धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें श्रेष्ठ था, यह सदा दुर्योधनका कल्याण करता था और उसका कवच बना हुआ था; धनुषधारी वृषसेन तथा सुषेण उसकी रक्षा करते थे ॥ ५ ॥

अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रेषु दुर्जयम्।
त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे ॥ ६॥

वह कर्ण परशुरामके सब शस्त्रोंके जाननेवाले होकर महान् बलवान् और दुर्जय हुए थे। यही सदा धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी रक्षा करते थे और उनकी सेनाके आगे चलते थे ॥ ६ ॥

हन्तारमरिसैन्यानाममित्रगणमर्दनम्।
दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्युद्धाय चोद्यतम् ॥ ७॥

जो सदा शत्रुओंकी सेनाका और शत्रुगणका नाश करते थे, यही सदा दुर्योधनके कल्याणके लिये हमारे साथ युद्धके लिये तैयार होते थे ॥ ७ ॥

अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः।
अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च ॥ ८॥

महायुद्धमें इनको इन्द्र सहित सब देवता भी पराजित नहीं कर सकते थे। ये तेज और बलमें अग्नि और वायुके समान थे ॥ ८ ॥

पातालमिव गम्भीरं सुहृदानन्दवर्धनम्।
अन्तकाभममित्राणां कर्णं हत्वा महाहवे।
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ ९॥

गम्भीरतामें पातालके समान थे, सब मित्रोंका आनन्द बढानेवाले थे। शत्रुओंके लिये यमराजके समान थे। राक्षसको जीत कर दो देवताओंके समान तुम दोनों महायुद्धमें कर्णको मारकर हमारे पास आये हो, यह प्रारब्धकी ही बात है ॥ ९ ॥

तेन युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ।
कुपितेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥ १०॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन ! प्रलयकालमें सब प्रजाका नाश करनेकी इच्छा रखनेवाले क्रोधित यमराजके समान उसने मेरे साथ युद्ध किया, परंतु मैंने दीनता नहीं दिखायी ॥ १० ॥

तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी ।
हतवाहः कृतश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥ ११ ॥

उन्होंने सात्यकिके देखते ही मेरी ध्वजा काट दी । पार्श्व रक्षकोंको मार डाला और मेरे घोडोंको मारकर वाहनहीन कर दिया ॥ ११ ॥

धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः ।
पश्यतां द्रौपदेयानां पाञ्चालानां च सर्वशः ॥ १२ ॥

धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी, द्रौपदीके पांचों पुत्र और सब पाञ्चाल योद्धा देखते ही रह गये ॥ १२ ॥

एताञ्जित्वा महावीर्यान्कर्णः शत्रुगणान्बहून् ।
जितवान्मां महाबाहो यतमानं महारणे ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! इन महावीर्यवान् अनेक शत्रुगणोंको जीतकर, महायुद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले मुझे भी जीत लिया ॥ १३ ॥

अनुसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान्बहु ।
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठः परिभूय न संशयः ॥ १४ ॥

फिर उस योद्धाओंमें श्रेष्ठने युद्धमें मेरा पीछा करके, सर्वत्र मुझे अपमानित करके अनेक दुर्वचन कहे इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥

भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनंजय ।
बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत्सोढुमुत्सहे ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! मैं जो जीता बचा हूं, सो केवल भीमसेन ही के बलका प्रभाव है। अधिक क्या कहें ? हम किसी प्रकारसे उस अपमानको सहन नहीं कर सकते ॥ १५ ॥

त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद्भीतो धनंजय ।
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! मैं जिसके भयसे तेरह वर्षोंतक रातमें नींद नहीं ले सका और दिनमें कुछ सुख भी नहीं पा सका ॥ १६ ॥

तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनंजय ।
आत्मनो मरणं जानन्वाध्रीणस इव द्विपः ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! कर्णके द्वेषसे हम सदा जलते रहते थे । जैसे वाध्रीणस पशु अपनी मृत्युके लिये वधस्थानमें पहुंचता है, उसी प्रकार मैं अपनी मृत्युके लिये जानते हुए भी उसके साथ युद्ध करनेको गया ॥ १७ ॥

यस्यायमगमत्कालश्चिन्तयानस्य मे विभो ।
कथं शक्यो मया कर्णो युद्धे क्षपयितुं भवेत् ॥ १८ ॥

विभो ! किस प्रकारसे मैं युद्धमें कर्णको मारूंगा, यही सोचते हुए मेरा यह समय वीत गया है ॥ १८ ॥

जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम् ।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १९ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! मैं सदा सोता जागता कर्णहीको देखता था । मुझे यह जान पडता था, कि यह सब जगत् कर्णरूप हो गया ॥ १९ ॥

यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद्भीतो धनंजय ।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! मैं जहां जहां जाता था, वहीं कर्णके भयसे उसे अपने सामने खडा देखता था ॥ २० ॥

सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना ।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥ २१ ॥

पार्थ ! उस ही युद्धमें पीठ न दिखानेवाले वीरने मुझे रथ और घोडों समेत जीत लिया और केवल जीवित छोड दिया है ॥ २१ ॥

को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थोऽथ वा पुनः ।
ममैवं धिक्कृतस्येह कर्णेनाहवशोभिना ॥ २२ ॥

अव मुझे इस जीवनसे और राज्यसे क्या लाभ है ? युद्धमें शोभित होनेवाले कर्णने आज मुझे ऐसा अपमानित किया है ॥ २२ ॥

न प्राप्तपूर्वं यद्भीष्मात्कृपाद्द्रोणाच्च संयुगे ।
तत्प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥ २३ ॥

पहले भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे भी मुझे युद्धमें ऐसा अपमान प्राप्त नहीं हुआ था, सो आज महारथी सूतपुत्रसे युद्धमें प्राप्त हुआ है ॥ २३ ॥

तत्त्वा पृच्छामि कौन्तेय यथा ह्यकुशलस्तथा ।
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णस्त्वया हतः ॥ २४ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! हम तुमसे पूछते हैं कि तुमने कर्णको कैसे मारा, वह सब वृत्त हमें यथार्थ रूपसे कहो । अनिष्ट हो तो भी ॥ २४ ॥

×

शक्रवीर्यसमो युद्धे यमतुल्यपराक्रमः ।
रामतुल्यस्तथास्त्रे यः स कथं वै निषूदितः ॥ २५ ॥

युद्धमें शौर्यबलमें इन्द्रके समान, पराक्रममें यमराजके समान, अस्त्रविद्यामें परशुरामके समान ज्ञाता कर्ण तुमसे युद्धमें कैसे मारा गया ? ॥ २५ ॥

महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः ।
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २६ ॥

कर्ण सब जगत्में महारथी कहके प्रसिद्ध था, सब युद्धोंमें बहुत कुशल था, सब धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ और सब पुरुषोंमें एक पुरुष कहा जाता था ॥ २६ ॥

पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण विशां पते ।
सदा त्वदर्थं राधेयः स कथं निहतस्त्वया ॥ २७ ॥

हे पृथ्वीपते ! पुत्रोंके सहित राजा धृतराष्ट्र तुम्हारा सामना करनेके लिये ही जिसका सदा संमान करते थे, उसी राधापुत्र कर्णको तुमने कैसे मारा ? ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन ।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभः ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! पुरुषश्रेष्ठ धृतराष्ट्र सब योद्धाओंमें रणमें सदा कर्णकोही तुम्हारे मृत्युका कारण मानते थे ॥ २८ ॥

स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः ।
तन्ममाचक्ष्व बीभत्सो यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २९ ॥

पुरुषसिंह अर्जुन ! वही कर्ण तुम्हारे हाथसे युद्धमें कैसा मारा गया ? जिस प्रकार तुमने कर्णोको मारा, वह वृत्तान्त मुझसे कहो ॥ २९ ॥

सोत्सेधमस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम् ।
त्वया पुरुषशार्दूल शार्दूलेन यथा रुरोः ॥ ३० ॥

हे पुरुषसिंह ! जैसे सिंह रुरु नामक हरिणको मारता है, वैसे तुमने आज सब मित्रोंके देखते रहते ही लढते हुए कर्णका शिर काटा है ॥ ३० ॥

यः पर्युपासीत्प्रदिशो दिशश्च त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन् ।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिपूगं स हीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः ॥ ३१ ॥

समरमें जो सूतपुत्र कर्ण सब ओर दिशा–प्रदिशाओंमें तुमसे युद्ध करनेके लिये तुम्हें देखता था और तुम्हें दिखानेवालेको हाथीके समान छः बैलोंको भी देनेको तैयार था, उसी कर्णको आज तुमने अपने कंकपत्रयुक्त तेज बाणोंसे ॥ ३१ ॥

त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा।
कच्चित्प्रियं मे परमं त्वयाद्य कृतं रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३२ ॥

युद्धमें मार डाला। आज तुमने दुरात्मा सूतपुत्रको मारकर पृथ्वीमें सुला दिया? आज तुमने युद्धमें सूतपुत्रको मारकर मेरा यह परम प्रिय कार्य किया है ? ॥ ३२ ॥

यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे मदान्वितो गर्वितः सूतपुत्रः।
स शूरमानी समरे समेत्य कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽद्य ॥ ३३ ॥

जो सदा ही मदोन्मत्त घमंडमें भरा हुआ सूतपुत्र तुमसे युद्ध करनेकी इच्छा किया करता था, क्या आज उसी अभिमानी कर्णको समरमें उससे युद्ध करके तुमने मार डाला है ? ॥ ३३ ॥

रौक्मं रथं हस्तिवरैश्च युक्तं रथं दित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापः कच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे ॥ ३४ ॥

हे प्यारे अर्जुन ! समरमें तुम्हारा पता बतानेके लिये दूसरोंको जो सदा उत्तम हाथियोंसे युक्त और सोनेका बना हुआ रथ देनेकी इच्छा करता था और सदा तुमसे स्पर्धा करता था, क्या आज उस पापी कर्णको युद्धमें तुमने मारा ? ॥ ३४ ॥

योऽसौ नित्यं शूरमदेन मत्तो विकत्थते संसदि कौरवाणाम्।
प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य कच्चित्स पापो निहतस्त्वयाद्य ॥ ३५ ॥

जो शौर्यके अभिमानसे मत्त होकर सदा कौरवोंकी सभामें गरजा करता था और दुर्योधनका प्यारा मित्र था, क्या उस पापीको आज तुमने मारा ? ॥ ३५ ॥

कच्चित्समागम्य धनुःप्रमुक्तैस्त्वत्प्रेषितैर्लोहितार्थैर्विहंगैः।
शेतेऽद्य पापः स विभिन्नगात्रः कच्चिद्भग्नो धार्तराष्ट्रस्य बाहुः ॥ ३६ ॥

आज वह पापी तुमसे युद्ध करते तुम्हारे धनुषसे छूटे रुधिरके प्यासे पक्षियोंके समान शीघ्र चलनेवाले बाणोंसे शरीर छिन्नभिन्न होनेके कारण पृथ्वीमें गिर गया ? क्या आज दुर्योधनका हाथ कट गया ? ॥ ३६ ॥

योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये दुर्योधनं हर्षयन्दर्पपूर्णः।
अहं हन्ता फल्गुनस्येति मोहात्कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ॥ ३७ ॥

जो मूर्ख अभिमानी दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये राजाओंके बीचमें मोहवश होकर घमंडसे सदा कहा करता था कि मैं अर्जुनको मारूँगा, आज उस रथिने अपनी प्रतिज्ञाको सत्य क्यों नहीं किया ? ॥ ३७ ॥

नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचिद्यावत्स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धिः ।
व्रतं तस्यैतत्सर्वदा शक्रसूनो कच्चित्त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः ॥ ३८ ॥

हे इन्द्रकुमार ! उस मूर्ख कर्णने सदाके लिये यह व्रत लिया था, कि जब तक कुन्तीपुत्र अर्जुन जीता है, तबतक मैं दूसरोंसे पैर नहीं धुलाऊंगा, उस कर्णको तुमने क्या आज मारा ? ॥ ३८ ॥

योऽसौ कृष्णामब्रवीद्दुष्टबुद्धिः कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये ।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे सुदुर्बलान्पतितान्हीनसत्त्वान् ॥ ३९ ॥

जिस दुष्टबुद्धि कर्णने सब वीर कौरवोंकी सभामें द्रौपदीसे कहा था कि " कृष्णे ! पाण्डव सत्त्वहीन, पतित और दुर्बल हैं । इन्हें तू क्यों नहीं छोडती ? " ॥ ३९ ॥

यत्तत्कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे नाहत्वाहं सह कृष्णेन पार्थम् ।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः कच्चिच्छेते शरसंभिन्नगात्रः ॥ ४० ॥

जिसने तुम्हारा पराक्रम जान कर भी दुर्योधनसे तुम्हारे लिये यह प्रतिज्ञा की थी, कि हम तुम्हारे लिये श्रीकृष्ण सहित अर्जुनको विना मारे नहीं लौटेंगे, क्या आज वही पापी तुम्हारे बाणोंसे कटकर पृथ्वीमें सोता है ? ॥ ४० ॥

कच्चित्संग्रामे विदितो वा तदायं समागमः सृञ्जयकौरवाणाम् ।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं कच्चित्त्वया सोऽद्य हतः समेत्य ॥ ४१ ॥

आजके युद्धमें कुरु और सृञ्जयोंका जो संघर्ष हुआ, जिसमें हम ऐसी दुर्दशाको प्राप्त हुए, सो तुम जानते हो, और तुमने उस दुरात्मासे सामना करके मारा ? ॥ ४१ ॥

कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धेर्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः ।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं कायात्प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४२ ॥

हे सव्यसाची ! तुमने युद्धमें अपने गाण्डीव धनुपसे छोडे, बिजलीके समान प्रकाशित बाणोंसे उस मन्दबुद्धि पापीका सूर्यके समान प्रकाशित कुण्डलसहित शिर धडसे काटकर पृथ्वीमें गिराया ? ॥ ४२ ॥

यत्तन्मया बाणसमर्पितेन ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर ।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य ध्यातं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४३ ॥

हे वीर ! जिस समय कर्णने मुझे बाणोंसे व्याकुल किया था, उसी समय मैंने उसका नाश होनेके लिये तुम्हारा ध्यान किया था । कहो, तुमने मेरी इस इच्छाको कर्णको मारकर आज सफल बना दिया ? ॥ ४३ ॥

यद्दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मानवेक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित्त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य ॥ ४४ ॥

जिस कर्णके आश्रयसे दुर्योधन अभिमानमें भरकर हमको देखता था, क्या आज तुमने अपने पराक्रमसे उस आश्रयरूप कर्णको मारकर दुर्योधनका आश्रय तोड दिया ? ॥ ४४ ॥

यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत्सभामध्ये पार्थिवानां समक्षम् ।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य संख्ये त्वया हतः सूतपुत्रोऽत्यमर्षी ॥ ४५ ॥

पहले इस दुर्मति सूतपुत्रने राजाओंके सामने सभाके बीचमें हमें तिलोंके समान नपुंसक कहा था, वह क्रोधी आज युद्धमें आकर तुम्हारे हाथसे मारा गया ? ॥ ४५ ॥

यः सूतपुत्रः प्रहसन्दुरात्मा पुराब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनीमपीह कच्चित्स हतस्त्वयाद्य ॥ ४६ ॥

जिस दुरात्मा सूतपुत्रने हंसकर पहले दुःशासनसे कहा था कि, जुएके समय शकुनिसे जीती हुई द्रौपदीको तुम स्वयं जाकर बलपूर्वक सभामें ले आवो, क्या उसीको तुमने आज मार डाला ? ॥ ४६ ॥

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमं पृथिव्यां पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः ।
संख्यायमानोऽर्धरथः स कच्चित्त्वया हतोऽद्याधिरथिर्दुरात्मा ॥ ४७ ॥

जो पृथ्वीपर सब शस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ माना जाता था और हमारे पितामह भीष्मकी निन्दा किया करता था, और जिस दुरात्माने अर्धरथी कहे जानेपर पितामह भीष्मके ऊपर आक्षेप किया था, उस अधिरथके पुत्रको क्या तुमने आज मारा ? ॥ ४७ ॥

अमर्षणं निकृतिसमीरणेरितं हृदि श्रितं ज्वलनमिमं सदा मम ।
हतो मया सोऽद्य समेत्य पापधीरिति ब्रुवन्प्रशमय मेऽद्य फल्गुन ॥४८॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ २७२२ ॥

हे अर्जुन ! हमें यह आशा है, कि हमारे हृदयमें जिस कर्णकी दुष्टतारूपी वायुसे प्रेरित क्रोधकी आग सदा जलती रही है, उस आगको " हमने कर्णको आज युद्धमें पाकर मारा " ऐसा कहकर तुम शान्त करोगे ॥ ४८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ २७२२ ॥

: ४७ :

संजय उवाच

तद्धर्मशीलस्य वचो निशम्य राज्ञः क्रुद्धस्याधिरथो महात्मा ।

उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! क्रोधमें भरे धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिरके वचन सुन, महापराक्रमी अतिरथी महात्मा विजयी अर्जुन उदारचित दुर्धर्ष राजा युधिष्ठिरसे बोले ॥ १ ॥

संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य सेनाग्रयायी कुरुसैन्यस्य राजन् ।

आशीविषाभान्खगमान्प्रमुञ्चन्द्रौणिः पुरस्तात्सहसा व्यतिष्ठत् ॥ २ ॥

हे महाराज ! आज मैं इस समय संशप्तक सेनासे युद्ध कर रहा था, वहां कौरवोंकी सेनाके अग्रगामी महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, विषैले सांपके समान तेज बाण चलाते हुए सहसा मेरे सामने आये ॥ २ ॥

दृष्ट्वा रथं मेघनिभं ममेममम्बष्ठसेना मरणे व्यतिष्ठत् ।

तेषामहं पञ्च शतानि हत्वा ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३ ॥

हे महाराज ! मेघके समान शब्दवाले मेरे रथको देख, कौरवोंकी हाथी सेना युद्धमें मरनेके लिये तैयार होकर खडी हुई, तब मैं उनमेंसे पांच सौ वीरोंको मारकर, अश्वत्थामाके पास पहुंचा ॥ ३ ॥

ततोऽपरान्बाणसंघाननेकानाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।

ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नैस्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ४ ॥

अनन्तर अश्वत्थामाने शिक्षा, अस्त्र, बल और प्रयत्नके आश्रयसे धनुषको कानतक खींचकर सहस्रों बाण इस प्रकार चलाये, जैसे वर्षाकालमें मेघ जल बर्षाता है ॥ ४ ॥

नैवाददानं न च संदधानं जानीमहे कतरेणास्यतीति ।

वामेन वा यदि वा दक्षिणेन स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत् ॥ ५ ॥

हमने उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको बाण चलाते, निकालते, चढाते नहीं देखा और यह भी नहीं जान सके, कि वह दहने हाथसे बाण चलाते हैं या बायेंसे । वह समरमें सब ओर घुमने लगा ॥ ५ ॥

अविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ।

अहं तु तं त्रिंशता वज्रकल्पैः समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ॥ ६ ॥

अनन्तर द्रोणपुत्रने मेरे और श्रीकृष्णके शरीरमें अत्यन्त तेज पांच पांच बाण मारे और विद्ध किया । मैंने भी एक पलकमें वज्रके समान तीक्ष्ण बाण अश्वत्थामाको मारे ॥ ६ ॥

स विक्षरन्रुधिरं सर्वगात्रै रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाभिभूतः सैनिकानां प्रबर्हानसावपश्यन्रुधिरेण प्रदिग्धान् ॥ ७ ॥
तब उसके सारे शरीरसे रुधिर बहने लगा, अनन्तर मुझसे पराभूत हुआ वह मेरे बाणोंसे अपनी सेनाके प्रमुख वीरोंको व्याकुल तथा रुधिरसे लथपथ देखकर सूतपुत्रकी रथसेनामें घुस गया ॥ ७ ॥

ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं विध्वस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेतः कर्णस्त्वरन्मामुपायात्प्रमाथी ॥ ८ ॥
वीरोंको भयसे भग्न और हाथी घोडोंको भागते देख, पचास मुख्य रथि वीरोंके सहित हमसे युद्ध करनेको शत्रुओंको मथनेवाले कर्ण शीघ्रतासे मेरे पास आये ॥ ८ ॥

तान्सूदयित्वाहमपास्य कर्णं द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः ।
सर्वे पाञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णाद्गन्धाद्गावः केसरिणो यथैव ॥ ९ ॥
परन्तु मैं उन सब रथियोंको मारकर और कर्णको छोडकर आपके दर्शन करनेको शीघ्रतासे चला आया हूं। जैसे सिंहके गंधसे गौएं भाग जाती हैं, वैसे ही सब पांचाल सेना कर्णको देखकर उद्विग्न होती है ॥ ९ ॥

महाझषस्येव मुखं प्रपन्नाः प्रभद्रकाः कर्णमभि द्रवन्ति ।
मृत्योरास्यं व्यात्तमिवान्वपद्यन्प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् ॥ १० ॥
प्रभद्रक गण कर्णपर आक्रमण कर रहे हैं, मानो बडी मछलीके मुखमें पड गये हैं। मृत्युके फैले हुए मुंहके समान कर्णके आगे जाकर प्रभद्रक वंशी क्षत्रिय बडे संकटमें पडे हैं ॥ १० ॥

आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं मां सूतपुत्रं च वृतौ जयाय ।
षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः स्वर्गाय लोकाय रथा निमग्नाः ॥ ११ ॥
हे भारत ! अब आप चलकर देखिये कि विजयके लिये मैं कर्णसे कैसा युद्ध करता हूं। छः सहस्र रथी राजकुमार स्वर्गकी इच्छासे लडनेको उपस्थित हैं ॥ ११ ॥

समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य ।
योत्स्ये भृशं भारत सूतपुत्रमस्मिन्संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य ॥ १२ ॥
हे राजश्रेष्ठ ! भारत ! सूतपुत्र कर्णको जब इस युद्धमें आज मैं देखूंगा, तब मैं जैसे वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरके साथ युद्ध किया था, ऐसे ही कर्णके साथ उसे मिलकर बहुत भारी युद्ध करूंगा ॥ १२ ॥

कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ।
प्रतिश्रुत्याकुर्वतां वै गतिर्या कष्टां गच्छेयं तामहं राजसिंह ॥ १३ ॥

हे महाराज ! राजसिंह ! यदि हम आज बान्धवोंके सहित युद्धमें लगे हुए कर्णको निश्चयपूर्वक नहीं मार डालेंगे, तो प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवाले मनुष्यको जो दुःखप्रद गति प्राप्त होती है, सो हमें मिलेगी ॥ १३ ॥

आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ।
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ २७३६ ॥

अब आप हमें युद्धमें जानेकी आज्ञा दीजिये । आप युद्धमें मेरी विजयका आशीर्वाद दीजिये । नरेन्द्रसिंह ! ये देखिये, धृतराष्ट्रके पुत्र भीमसेनको पीडित कर रहे हैं । हम आज सूतपुत्र कर्णको, उसकी सेनाको और सब शत्रुओंको नष्ट करेंगे ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सैतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ ॥ २७३६ ॥

: ४८ :

संजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं कल्पमुदारवीर्यं क्रुद्धः पार्थः फल्गुनस्यामितौजाः ।
धनंजयं वाक्यमुवाच चेदं युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! बडा वीर्यवान् कर्ण सकुशल है, यह सुनकर कर्णके बाणोंसे व्याकुल महातेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अर्जुनपर क्रोध करके उनसे ऐसे बोले ॥ १ ॥

इदं यदि द्वैतवने ह्यवक्ष्यः कर्णं योद्धुं न प्रसहे नृपेति ।
वयं तदा प्राप्तकालानि सर्वे वृत्तान्युपैष्याम तदैव पार्थ ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! यदि तुम हमसे द्वैत वनमें कहते कि, हे महाराज ! हम कर्णसे युद्ध नहीं कर सकेंगे, तो हम सब समयानुसार कर्तव्यका विचार करके कुछ और ही प्रबन्ध कर लेते ॥२॥

मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य बलस्य चाप्तस्य तथैव वीर ।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्ठाः ॥ ३ ॥

हे वीर अर्जुन ! तुमने मेरे सामने कर्णके और उसके सेनाके तथा आप्तबंधुओंके वधकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु प्रतिज्ञाके अनुसार कोई भी कार्य नहीं किया । अब तुम रणभूमिपर शत्रुओंके बीचमें आये हुए हम लोगोंको भूमिपर पटक कर विशीर्ण करनेका कार्य कर रहे हो ॥३॥

अन्वाशिष्म वयमर्जुन त्वयि यियासवो बहु कल्याणमिष्टम् ।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र फलार्थिनां निचुल इवातिपुष्पः ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! हे राजपुत्र ! हमने अपने बहुत कल्याणके लिये सदा ही तुमपर आशा रखकर इच्छा की थी, परन्तु जैसे फलकी इच्छा करनेवालेको अधिक फूलोंवाला फलहीन निचुल वृक्ष निराश करता है, वैसे ही तुमने आज हमारी उस आशाको नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण प्रच्छादितो गवय इवापवाचा ।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम् ॥ ५ ॥

जैसे मांससे लपेटकर कोई किसीको कांटा खानेको दे और जैसे कोई उत्तम भोजनमें लपेटकर विष दे, वैसे ही तुमने हमें दर्शन दिये; हम राज्यकी इच्छा कर रहे थे और तुमने संकटमय विनाशरूप दिखलाया ॥ ५ ॥

यत्तत्पृथां वागुवाचान्तरिक्षे सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धौ ।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं सर्वाञ्शूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति ॥ ६ ॥

जब तू मन्दबुद्धि उत्पन्न हुआ था, और सात दिन बीते थे, तब कुन्तीसे आकाशवाणीने कहा था कि, यह तुम्हारा पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी पैदा हुआ है । यह अपने सब शूर शत्रुओंको बाणोंसे जीतेगा ॥ ६ ॥

अयं जेता खाण्डवे देवसंघान्सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः ।
अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकयानयं कुरून्हन्ति च राजमध्ये ॥ ७ ॥

यही महातेजस्वी खाण्डव वनमें देवगणों और सब प्राणियों पर भी विजय प्राप्त करेगा । यही मद्र, कलिङ्ग और केययोंको जीतेगा और राजाओंके बीच कौरवोंका नाश करेगा ॥७॥

अस्मात्परो न भविता धनुर्धरो न वै भूतः कश्चन जातु जेता ।
इच्छन्नार्यः सर्वभूतानि कुर्याद्वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ ८ ॥

इससे बढकर दूसरा कोई धनुषधारी नहीं होगा, इसको जगत्में कोई नहीं जीत सकेगा । यह अपने इंद्रियोंको वशमें रखकर सब विद्याओंको पढेगा, और अपनी इच्छासे जगत्के सब प्राणिमात्रको वशमें कर लेगा ॥ ८ ॥

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः ।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः ॥ ९ ॥

यह सुन्दरतामें चन्द्रमा, वेगमें वायु, स्थिरतामें मेरु, क्षमामें पृथ्वी, तेजमें सूर्य, धनमें कुबेर शौर्यमें इन्द्र और बलमें विष्णुके तुल्य होगा ॥ ९ ॥

तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता ॥ १० ॥

हे कुन्ती ! यह तुम्हारा महात्मा पुत्र अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए शत्रुनाशन विष्णुके समान उत्पन्न हुआ है। यह अत्यंत तेजस्वी पुत्र स्वजनोंकी विजय और सब शत्रुओंके नाशके लिये प्रख्यात होगा और अपने कुलका भूषण होगा ॥ १० ॥

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच ।
एवंविधं त्वां तच्च नाभूत्तवाद्य देवा हि नूनमनृतं वदन्ति ॥ ११ ॥

ये बात आकाशवाणीने शतशृंग पर्वतके शिखर पर ऋषियोंके सुनते हुए कही थी; परन्तु वह सत्य न हुई। इससे हमें निश्चय होता है कि देवता भी झूंठ बोलते हैं ॥ ११ ॥

तथापरेषामृषिसत्तमानां श्रुत्वा गिरं पूजयतां सदैव ।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य न त्वा जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् ॥ १२ ॥

ऐसे ही और भी दूसरे श्रेष्ठ ऋषियोंने सदा तुम्हारी प्रशंसा करते तुम्हारा सत्कार किया और उनकी बातें सुनकर मैं कभी दुर्योधनके सामने नत मस्तक नहीं हुआ, परन्तु हम यह नहीं जानते थे, कि तुम अधिरथपुत्र कर्णके डरसे पीडित हो जाओगे ॥ १२ ॥

त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं शुभं समास्थाय कपिध्वजं त्वम्।
खड्गं गृहीत्वा हेमचित्रं समिद्धं धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम्।
स केशवेनोह्यमानः कथं नु कर्णाद्भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ ॥ १३ ॥

पार्थ ! तुम इस उत्तम विश्वकर्माके बनाये, उसके धूरेसे कोई आवाज नहीं होनेवाले, कपि ध्वजायुक्त सुन्दर रथपर बैठकर, सोनेकी विचित्र मूठवाले खड्ग और ताडके बराबर गाण्डीव धनुष लेकर तथा श्रीकृष्णको सारथी बनाकर भी कर्णसे डरकर युद्ध छोड कैसे भाग आये ? ॥ १३ ॥

धनुश्चैतत्केशवाय प्रदाय यन्ताभविष्यस्त्वं रणे चेद्दुरात्मन्।
ततोऽहनिष्यत्केशवः कर्णमुग्रं मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ॥ १४ ॥

अब तुम यह धनुष श्रीकृष्णको दे दो और तुम स्वयं घोडे हांको और इनके सारथि बनो। हे दुष्ट ! तब जिस प्रकार इन्द्रने वज्र हाथमें लेकर वृत्रासुरको मारा था, वैसे ही ये श्रीकृष्ण उग्र वीर कर्णको मारेंगे ॥ १४ ॥

मासेऽपतिष्यः पञ्चमे त्वं प्रकृच्छ्रे न वा गर्भोऽप्यभविष्यः पृथायाः ।
तत्ते श्रेयो राजपुत्राभविष्यन्न संग्रामादपयातुं दुरात्मन् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ २७५१ ॥

हे दुरात्मा राजपुत्र ! तुम कुन्तीके गर्भसे पांचवें महीनेमें नष्ट हो जाते अथवा उनके अत्यन्त दुःखदायक गर्भसे जन्म न लेते, तो आज तुमको श्रमही नहीं पडते ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ २७५१ ॥

: ४९ :

संजय उवाच

युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! श्वेतवाहन कुन्तीपुत्र अर्जुनने युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन, क्रोध करके उन भरतश्रेष्ठको मारनेकी इच्छासे खड्ग उठाया ॥ १ ॥

तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत ॥ २ ॥

उनका क्रोध देखकर, सबके मनका भाव जाननेवाले श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन ! यह क्या है ? तुमने यहां खड्ग क्यों उठाया ? ॥ २ ॥

नेह पश्यामि योद्धव्यं तव किंचिद्धनंजय ।
ते ध्वस्ता धार्तराष्ट्रा हि सर्वे भीमेन धीमता ॥ ३ ॥

धनंजय ! तुम यहां किससे लडनेको खड्ग उठाते हो ? हमें यहां तुम्हारा शत्रु कोई नहीं दीखता । धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको बुद्धिमान् भीमसेन मार ही रहे हैं ॥ ३ ॥

अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

हे कौन्तेय ! तुम युद्धसे यह कहकर हट आये थे कि हम महाराजके दर्शन करने जाते हैं । सो तुमने कुशल सहित महाराज युधिष्ठिरके दर्शन किये ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले तु संप्राप्ते कस्मात्त्वा मन्युराविशत् ॥ ५ ॥

तुमने शार्दूलके समान पराक्रमी राजाओंमें शार्दूल युधिष्ठिरके दर्शन किये, सो इस प्रसन्नताके समयमें क्रोधमें भरकर यह क्यों भूल करते हो ? तुम्हारे चित्तमें क्या भ्रम आ गया है ? ॥५॥

न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भवेदिह ।
कस्माद्भवान्महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरम् ॥ ६ ॥

कौन्तेय ! यहां कोई तुमसे वध करने योग्य ऐसे मनुष्यको मैं नहीं देखता । तुमने इतनी शीघ्रता सहित विशाल खड्ग क्यों हाथमें ले लिया ? ॥ ६ ॥

तत्त्वा पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ।
परामृशसि यत्क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ॥ ७ ॥

हे अद्भुत पराक्रमवाले कुन्तीपुत्र ! हम तुमसे पूछते हैं कि तुम्हें यह क्या करनेकी इच्छा हुई और किस लिये क्रोधसे खड्गको उठाने लगे हो ? ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन, युधिष्ठिरकी ओर देखते हुए फुफकारते हुए सांपके समान अर्जुनने क्रोध करके श्रीकृष्णसे कहा ॥ ८ ॥

दद गाण्डीवमन्यस्मा इति मां योऽभिचोदयेत् ।
छिन्द्यामहं शिरस्तस्य इत्युपांशुव्रतं मम ॥ ९ ॥

मेरी यह मनही मन प्रतिज्ञा है कि जो मुझसे कहेगा कि अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो, मैं उसका शिर काट लूंगा ॥ ९ ॥

तदुक्तोऽहमदीनात्मन्राज्ञामितपराक्रम ।
समक्षं तव गोविन्द न तत्क्षन्तुमिहोत्सहे ॥ १० ॥

हे अमित पराक्रमी गोविंद ! आज महाराजने हमसे यह बात आपके सामने ही कही है, इसलिये हम इन्हें क्षमा नहीं कर सकते ॥ १० ॥

तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ।
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वेमं नरसत्तमम् ।
एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ ११ ॥

इसलिये हम आज धर्मभीरु महाराजका वध करेंगे । हे यदुनन्दन ! आज सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरको मारकर हम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करेंगे, इसीलिये हमने यह खड्ग हाथमें लिया है ॥ ११ ॥

सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्येऽप्यानृण्यतां गतः ।
विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥ १२ ॥

हे जनार्दन ! हम युधिष्ठिरको मारकर सत्य पालन करके ऋण मुक्त हो जायेंगे, तथा शोक और दुःखोंसे रहित होंगे ॥ १२ ॥

किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन्काले समुस्थिते ।
त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ।
तत्तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान् ॥ १३ ॥

तात ! अथवा आप इस समय हमें क्या करना योग्य समझते हैं ? क्योंकि आप सब जगत्के भूत और भविष्यको जानते हैं । आप मुझे जैसा कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे ॥ १३ ॥

कृष्ण उवाच

इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ।
अकाले पुरुषव्याघ्र संरम्भक्रिययानया ।
न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनंजय ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णने कहा– हे अर्जुन ! इस समय हमें जान पडता है, कि तुमने बूढोंकी सेवा नहीं की है । पुरुषव्याघ्र ! तुम्हें विना समय ही क्रोध आगया है । धनंजय ! ऐसे कर्म धर्म जाननेवाला कभी भी नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

अकार्याणां च कार्याणां संयोगं यः करोति वै ।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! जो काम नहीं करने योग्य हैं उसको करनेवाला और करने योग्य कामको न करनेवाला मनुष्य नीच कहाता है ॥ १५ ॥

अनुसृत्य तु ये धर्मं कवयः समुपस्थिताः ।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्थ निश्चयम् ॥ १६ ॥

जो विद्वान् स्वयं धर्मका आचरण करके उपदेश करते हैं और जो विस्तार और संक्षेपको जाननेवाले महात्मा धर्म वर्णन करते हैं, तुम उनके सिद्धान्तोंको नहीं जानते ॥ १५ ॥

अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये ।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥ १७ ॥

पार्थ ! जो मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यके निश्चयको नहीं जानता, वह परवश होकर दुर्दशामें पडता है । इस समय तुम भी हमें मूर्खके समान दीखते हो ॥ १७ ॥

न हि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथंचन ।
श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १८ ॥

कोई मनुष्य केवल अपनी बुद्धिसे अनायास करने और न करने योग्य कामको नहीं जानता, केवल विद्याहीसे जान सकता है, सो विद्या तुमको किञ्चित् भी नहीं ॥ १८ ॥

अविज्ञानाद्भवान्यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित्।
प्राणिनां हि वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यते ॥ १९ ॥

पार्थ ! अज्ञानतासे तुम स्वयंको धर्मविद् मानकर धर्मकी रक्षा करना चाहते हो, वह तो प्राणियोंकी हिंसाका पाप है, यह तुम्हारे जैसे स्वयंको धार्मिक समझनेवाले नहीं समझते ॥ १९ ॥

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम।
अनृतं तु भवेद्वाच्यं न च हिंस्यात्कथंचन ॥ २० ॥

तात ! हमारी सम्मतिमें प्राणियोंको न मारना सबसे श्रेष्ठ धर्म है। चाहे मनुष्य झूठ बोल दे, परन्तु किसीतरह उसको मारे नहीं ॥ २० ॥

स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम्।
हन्याद्भवान्नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव ॥ २१ ॥

नरश्रेष्ठ ! सो तुम सब धर्मोंको जानकर भी दूसरे साधारण मनुष्योंके समान सब धर्मके जाननेवाले बडे भाई राजा युधिष्ठिरको कैसे मारते हो ? ॥ २१ ॥

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशस्त्रस्य भारत।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं वाभिगच्छतः।
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य न वधः पूज्यते बुधैः ॥ २२ ॥

भारत ! विना युद्ध करते, शस्त्र धारण न करते, युद्धसे विमुख होकर भागते, शरण आये और हाथ जोडकर अपने आश्रयमें आये हुए मनुष्यको नहीं मारना चाहिये, ऐसा विद्वान् मानते हैं ॥ २२ ॥

त्वया चैव व्रतं पार्थ बालेनैव कृतं पुरा।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौढ्यात्कर्म व्यवस्यसि ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! तुमने पहले यह प्रतिज्ञा अज्ञान बालकके समान की थी, इसलिये अब मूर्खतासे यह अधर्मवाला कर्म कर रहे हो ॥ २३ ॥

स गुरुं पार्थ कस्मात्त्वं हन्या धर्ममनुस्मरन्।
असंप्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरन्वयाम् ॥ २४ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! सो तुम धर्मकी सूक्ष्म और दुरन्वय गतिको न जानकर, धर्मका आचरण करनेवाले तुम अपने गुरुको कैसे मार सकते हो ? ॥ २४ ॥

इदं धर्मरहस्यं च वक्ष्यामि भरतर्षभ।
यद्ब्रूयात्तव भीष्मो वा धर्मज्ञो वा युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब हम तुमसे धर्मका रहस्य कहते हैं। इस रहस्यको केवल भीष्म अथवा धर्मज्ञ युधिष्ठिर ही कह सकते हैं ॥ २५ ॥

विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी।
तत्ते वक्ष्यामि तत्त्वेन तन्निबोध धनंजय ॥ २६ ॥

इसको विदुर अथवा यशस्विनी कुन्ती भी जानती है। धनंजय! सो यह गुप्त रहस्य तत्वतः हम तुमसे कहते हैं, इसे सुनो ॥ २६ ॥

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।
तत्त्वेनैतत्सुदुर्ज्ञेयं यस्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ २७ ॥

हे अर्जुन! सत्य बोलना उत्तम है और सत्यसे बढकर दूसरा कुछ नहीं है। परन्तु आचरणमें लाये हुए सत्यके तत्त्वको जानना बडा कठिन है ॥ २७ ॥

भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत् ॥ २८ ॥

कहीं बात कहनेसे सत्य रहती है और कहीं न कहनेसे सत्य रहती है और कहनेसे झूंठ हो जाती है। जब किसीका सर्वस्व छीना जाता है, तब झूठ बोलना योग्य है ॥ २८ ॥

प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ २९ ॥

किसीके प्राणोंपर संकट आनेपर और विवाहके समय असत्य बोलना चाहिये। जहां असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है ॥ २९ ॥

तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ३० ॥

मूर्ख मनुष्य ही उस प्रकार लाये हुए सत्यको सब जगह अत्यावश्यक समझता है। इस प्रकार जो सत्य और असत्यका विचार करता है और उस प्रकार आचरण करता है, वही धर्मज्ञ कहाता है ॥ ३० ॥

किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः।
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ॥ ३१ ॥

क्या आश्चर्य है कि विद्वान् शुद्ध बुद्धिवाला मनुष्य अत्यंत कठोर होनेपर भी उत्तम गतिको प्राप्त हो जाता है, जैसे बलाक नामक व्याधको अन्धे पशुके मारनेसे ही उत्तम गति मिल गयी ॥ ३१ ॥

किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामोऽप्यपण्डितः।
सुमहत्प्राप्नुयात्पापमापगामिव कौशिकः ॥ ३२ ॥

धर्मके लिये इच्छा रखनेवाला स्वयं मूर्ख और अज्ञानी होनेके कारण महान् पापका भागी हो जाता है; जैसे नदीके तटपर बसे हुए कौशिक मुनि ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच

आचक्ष्व भगवन्नेतद्यथा विद्यामहं तथा ।
बलाकान्धाभिसंबद्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥ ३३ ॥

अर्जुन बोले, हे भगवन् ! आप हमको ज्ञान होनेके लिये अन्धा पशुके संबंधमें बालक व्याध और नदियोंके तटपर रहनेवाले कौशिक मुनिकी कथा कहिये ॥ ३३ ॥

कृष्ण उवाच

मृगव्याधोऽभवत्कश्चिद्बलाको नाम भारत ।
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान्हन्ति न कामतः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण बोले, हे भारत ! पहले समयमें एक बलाक नाम मृग व्याध रहता था । वह अपनी स्त्री और पुत्रोंकी जीवन रक्षाके लिये हरिनोंको मारा करता था, परन्तु किसीकी हत्या अपने लिये नहीं करता था ॥ ३४ ॥

सोऽन्धौ च मातापितरौ बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान् ।
स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ॥ ३५ ॥

अपने अन्धे माता पिता और अन्य सब कुटुम्बजनोंको पालता था । सदा सत्य बोलता था, किसीकी बढतीसे दुखी नहीं होता था और न कभी अपने धर्मको छोडता था ॥ ३५ ॥

स कदाचिन्मृगाँल्लिप्सुर्नान्वविन्दत्प्रयत्नवान् ।
अथापश्यत्स पीतोदं श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ३६ ॥

एक दिन वह वनमें पशुको मारकर लानेके लिये बहुत घूमा, परन्तु प्रयत्न करने पर भी उसको कहीं हरिण न मिला । थोडे समयमें उसने एक जल पीते हुए पशुको देखा वह अन्धा था, नाकसे सूंघकर आंखका काम करता था ॥ ३६ ॥

अदृष्टपूर्वमपि तत्सत्त्वं तेन हतं तदा ।
अन्वेव च ततो व्योम्नः पुष्पवर्षमवापतत् ॥ ३७ ॥

व्याधने वैसे पशुको पहले कभी नहीं देखा था तो भी उस समय उसने उसे मार दिया । अन्धे पशुके मारे जाते ही व्याधके ऊपर आकाशसे फूल बरसने लगे ॥ ३७ ॥

अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम् ।
विमानमागमत्स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥ ३८ ॥

थोडे समयमें अप्सराओंके गीतों और वाद्योंसे निनादित एक सुंदर विमान उस पशुओंको मारनेवाले व्याधको ले जानेके लिये स्वर्गसे आया ॥ ३८ ॥

तद्भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयंभुवा ॥ ३९ ॥

अर्जुन ! उस जन्तुने सब जगत्‌के प्राणियोंका नाश करनेके लिये तपस्या करके वर प्राप्त किया था; इसीलिये ब्रह्माने उसे अन्धा कर दिया था ॥ ३९ ॥

तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम्।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥ ४० ॥

सब प्राणियोंको नष्ट कर देनेके निश्चयसे भरे हुए उस जन्तुको मारकर बालक स्वर्गको प्राप्त हुआ, सो धर्मकी गति बहुत कठिनतासे जानी जाती है ॥ ४० ॥

कौशिकोऽप्यभवद्विप्रस्तपस्वी न बहुश्रुतः।
नदीनां संगमे ग्रामाददूरे स किलावसत् ॥ ४१ ॥

प्राचीन समयमें कौशिक नामक एक ब्राह्मण हुआ था, वह तपस्वी तो था परन्तु पण्डित न था। नदीके तटपर गांवके पास रहा करता था ॥ ४१ ॥

सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद्व्रतम्।
सत्यवादीति विख्यातः स तदासीद्धनंजय ॥ ४२ ॥

हे अर्जुन ! उसने यह प्रतिज्ञा कर ली थी, कि मैं सदा सत्य ही बोलूंगा, इसलिये उसका नाम सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया था ॥ ४२ ॥

अथ दस्युभयात्केचित्तदा तद्वनमाविशन्।
दस्यवोऽपि गताः क्रूरा व्यमार्गन्त प्रयत्नतः ॥ ४३ ॥

एक दिन कई मनुष्य डाकुओंके डरसे उस वनमें आ छिपे, परंतु वे क्रूर डाकू वहां भी यत्न करके उन्हें ढूंढने लगे ॥ ४३ ॥

अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्तं सत्यवादिनम्।
कतमेन पथा याता भगवन्बहवो जनाः।
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान्वेत्थ शंस नः ॥ ४४ ॥

अनन्तर उन चोरोंने सत्यवादी कौशिकके पास आकर पूछा कि, हे भगवन् ! अनेक लोग जो इधर आये हैं, किस रास्तेसे गये हैं ? मैं सत्यसे पूछता हूं, यदि आप सदा सत्य बोलते हैं और यदि आप उन्हें जानते हैं, तो कह दीजिये ॥ ४४ ॥

+

स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ।
बहुवृक्षलतागुल्ममेतद्वनमुपाश्रिताः ।
ततस्ते तान्समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः ॥ ४५ ॥

उनसे ऐसे पूछनेपर कौशिकने सत्य कह दिया कि इस अनेक लता झाडियां और वृक्षवाले वनकी ओर वे गये हैं । हमने सुना है कि तब उन क्रूर डाकुओंने उनका पता लगाकर उन सबको मार डाला ॥ ४५ ॥

तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ।
गतः सुकष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः ।
अप्रभूतश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥ ४६ ॥

अपनी वाणीका दुरुपयोग करनेके कारण कौशिकको महान् पाप लगा और उसे घोर नरकका कष्ट भोगना पडा, कारण वह धर्मके सूक्ष्म स्वरूपको नहीं जानता था । उसे शास्त्रोंका अत्यंत थोडा ज्ञान था और मूर्ख होनेके कारण धर्मके भेद नहीं जानता था ॥ ४६ ॥

वृद्धानपृष्ट्वा संदेहं महच्छ्वभ्रमितोऽर्हति ।
तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेव भविष्यति ॥ ४७ ॥

जो धर्म और अधर्मका विना निश्चय किये और बूढोंसे अपने संदेह विना पूछे, अयोग्य कर्म करता है, उस कारण वह महान् नरकके समान कष्ट भोगनेके योग्य होता है । यहां धर्माधर्मके उद्देशके कुछ लक्षण तुम्हें कहना है, वे ऐसे हैं ॥ ४७ ॥

दुष्करं परमज्ञानं तर्केणात्र व्यवस्यति ।
श्रुतिर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥ ४८ ॥

बहुत लोग कहते हैं, कि वेद धर्मका मूल हैं, कोई कोई कहते हैं, कि जो तर्कोंसे सिद्ध हो वही दुष्कर परम धर्म है, परन्तु हम जानते हैं, कि धर्मको जानना बहुत कठिन है ॥४८॥

न त्वेतत्प्रतिसूयामि न हि सर्वं विधीयते ।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ४९ ॥

हम ऊपर कहे किसी लक्षणका खण्डन नहीं करते हैं, परन्तु यह अवश्य कहते हैं, केवल वेदोंसे ही सब धर्म कर्मोंका विधान नहीं होता । प्राणियोंकी उन्नतिके लिये ही मुनियोंने समयके अनुसार धर्मके लक्षण बना लिये हैं ॥ ४९ ॥

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः ।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥ ५० ॥

धर्म प्रजाओंका धारण करता है, धारण करनेके कारण उसे धर्म कहते हैं, जो धारण–प्राण रक्षासे युक्त हो वही धर्म कहाता है । यही शास्त्रोंका निश्चयपूर्वक कहना है ॥ ५० ॥

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो जना इच्छन्ति कर्हिचित् ।
अकूजनेन चेन्मोक्षो नात्र कूजेत्कथंचन ॥ ५१ ॥

जो लोग अन्यायसे दूसरोंके धन आदिका हरण करना चाहते हैं, तो वहां उनके साथ कुछ बात भी नहीं करनी चाहिये, मौन धारण करना ही योग्य है ॥ ५१ ॥

अवश्यं कूजितव्यं वा शङ्केरन्वाप्यकूजतः ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम् ॥ ५२ ॥

जहां कुछ कहना आवश्यक हो जाय अथवा न बोलनेसे शंका उत्पन्न हो जाय, तो झूठ बोलना ही योग्य है । इस समयपर वह झूठ ही सत्यके समान समझना चाहिये ॥ ५२ ॥

प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिधनक्षये ।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा प्रवक्तव्यं मृषा भवेत् ।
अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः ॥ ५३ ॥

प्राणनाशके समय, विवाह वा सब जाति बांधवोंके धनका नाश होनेके समय, आपत्ति और हांसीके समयमें झूठ बोला गया तो वह झूठ नहीं माना जाता । धर्मतत्त्वको जाननेवाले इन स्थानोंपर असत्य बोलनेमें पाप नहीं मानते ॥ ५३ ॥

यः स्तेनैः सह संबन्धान्मुच्यते शपथैरपि ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ॥ ५४ ॥

यदि झूठी शपथ खानेपर भी कोई चोरोंके बन्धनसे छूटे, तो उसके लिये वहां असत्य बोलना ही योग्य है । उसे बहुत विचार किये विना ही सत्य समझना चाहिये ॥ ५४ ॥

न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन ।
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् ।
तस्माद्धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृतवाग्भवेत् ॥ ५५ ॥

जहांतक हो सके, किसी भी तरह चोरोंको धन नहीं देना चाहिये, क्योंकि पापियोंको दिया हुआ धन दाताको भी कष्ट देता है । इसलिये धर्मके लिये झूठ बोलनेसे मनुष्य झूठ बोलनेवाला नहीं होता ॥ ५५ ॥

एष ते लक्षणोद्देशः समुद्दिष्टो यथाविधि ।
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः ॥ ५६ ॥

ये विधिपूर्वक धर्माधर्मके लक्षण हमने तुमसे कहे । हे अर्जुन ! यह सुनकर भी तुम्हारी इच्छा युधिष्ठिरके मारनेकी रह गयी ? बोलो ॥ ५६ ॥

अर्जुन उवाच

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः।
हितं चैव यथास्माकं तथैतद्वचनं तव ॥ ५७ ॥

अर्जुन बोले– हे भगवन् ! कोई बडा बुद्धिमान् और बडा पण्डित जैसा उपदेश कर सकता है, और जिसके आचरण करनेसे हमारा कल्याण हो सकता है, वैसाही आपका यह कहना है ॥ ५७ ॥

भवान्मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च।
गतिश्च परमा कृष्ण तेन ते वाक्यमद्भुतम् ॥ ५८ ॥

श्रीकृष्ण ! आप हमारे माता और पिताके समान हैं। आपही परम गति हैं, इसीलिये हमारे कल्याणके अद्भुत वचन कहते हैं ॥ ५८ ॥

न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित्।
तस्माद्भवान्परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम् ॥ ५९ ॥

तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं जो आप नहीं जानते, इसलिये जगत्के परम धर्मको सम्पूर्णतया और यथार्थरूपसे आप जानते हैं ॥ ५९ ॥

अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
तस्मिन्समयसंयोगे ब्रूहि किंचिदनुग्रहम्।
इदं चापरमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥ ६० ॥

इसलिये अब हम पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर मारने योग्य नहीं मानते, परन्तु हमने जो प्रतिज्ञा की थी वह झूठ हो जाती है, इसलिये उसके उद्धारका कुछ यत्न बताइये। मेरे मनमें जो यहां इष्ट बात है, इसे फिर सुनिये ॥ ६० ॥

जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं यो मां ब्रूयात्कश्चन मानुषेषु।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ यस्त्वत्तोऽस्त्रैर्भविता वा विशिष्टः ॥ ६१ ॥

दाशार्ह ! आप हमारे सङ्कल्पको जानते हैं। मनुष्योंमेंसे जो हमसे कहेगा कि पार्थ, तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको देदो, जो अस्त्रोंके ज्ञानमें वा बलमें तुमसे बढकर हो ॥ ६१ ॥

हन्यामहं केशव तं प्रसह्य भीमो हन्यात्तूबरकेति चोक्तः।
तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं धनुर्देहीत्यसकृद्वृष्णिसिंह ॥ ६२ ॥

केशव ! मैं उसे बलपूर्वक मार डालूंगा। ऐसे ही भीमसेनकी यह प्रतिज्ञा है, कि जो उन्हें अधिक खानेवाला बतावेगा तो उसे वे मार डालेंगे, सो आपके आगे वृष्णिसिंह महाराज युधिष्ठिरने वारवार कहा कि तुम दूसरेको अपना धनुष देदो ॥ ६२ ॥

तं हत्वा चेत्केशव जीवलोके स्थाता कालंनाहमप्यल्पमात्रम् ।
सा च प्रतिज्ञा मम लोकप्रबुद्धा भवेत्सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत्पाण्डवोऽहं च कृष्ण तथा बुद्धिं दातुमप्यार्हसि त्वम् ॥ ६३ ॥

केशव ! यदि मैं युधिष्ठिरको मार डालूं तो इस जीवजगत्में क्षण भर भी नहीं जी सकूंगा । हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! जगत्के लोगोंकी समझमें जिसमें हमारी प्रतिज्ञा भी सत्य हो और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और हम दोनों भाई जीते भी रहे, ऐसी कोई बुद्धि हमें बताइये ॥ ६३ ॥

वासुदेव उवाच

राजा श्रान्तो जगतो विक्षतश्च कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः ।
तस्मात्पार्थ त्वां परुषाण्यवोचत्कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे वीर ! राजा युधिष्ठिर थक गये हैं । कर्णने युद्धमे इन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे क्षतविक्षत किया है । पार्थ ! इसलिये उन्होंने तुम्हारे लिये कठोर वचन कहे । आज युद्धमें हार जीतका जूआ कर्णपरही निर्भर है ॥ ६४ ॥

तस्मिन्हते कुरवो निर्जिताः स्युरेवंबुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रः ।
यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ६५ ॥

यदि कर्ण मारा जायगा, तो सब कौरव आपसे आप हार जावेंगे, धर्मपुत्र राजायुधिष्ठिरका यही बिचार था । जब मनुष्य महान् अपमान पाने लगता है, तब वह जीतेजी मरा हुआ कहा जाता है ॥ ६५ ॥

तन्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव त्वया सभीमेन तथा यमाभ्याम् ।
वृद्धैश्च लोके पुरुषप्रवीरैस्तस्यावमानं कलया त्वं प्रयुङ्क्ष्व ॥ ६६ ॥

भीमसेन सहित तुमने, नकुल–सहदेवने वृद्ध और श्रेष्ठ पुरुषोंने जगतमें राजा युधिष्ठिरका सदा सम्मानही किया है; परन्तु अब तुम इनका थोडा अपमान करो ॥ ६६ ॥

त्वमित्यत्रभवन्तं त्वं ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥ ६७ ॥

हे पार्थ ! तुम युधिष्ठिरको ' आप ' के स्थानपर ' तू ' कह दो । भारत यदि गुरुको ' तू ' कहा जाय तो इतनेहीसे उसका बध ही हो जाता है ॥ ६७ ॥

एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैवं कुरूद्वह ॥ ६८ ॥

हे कुरुकुल श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र ! तुम यही व्यवहार धर्मराज युधिष्ठिरके सङ्ग करो, उनके साथ अधर्मयुक्त वचनका उपयोग करो ॥ ६८ ॥

अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयःकामैर्नरैः सदा ॥ ६९ ॥

अथर्वा और अंङ्गिरा जिसके देवता हैं, ऐसी एक सब श्रुतियोंमें उत्तम श्रुति है। अपना कल्याण इच्छिनेवाले मनुष्योंको सदा विचार किये विना ही इस श्रुतिके अनुसार वर्तन करना चाहिये ॥ ६९ ॥

वधो ह्ययं पाण्डव धर्मराजस्त्वत्तो युक्तो वेत्स्यते चैवमेषः ।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चाच्छमं ब्रूयाः सान्त्वपूर्वं च पार्थम् ॥ ७० ॥

पाण्डव ! ये धर्मराज युधिष्ठिर तुमसे किये गये इस अयोग्य शब्द प्रयोगको सुनकर, अपना वध हुआ ही जानेंगे । अनन्तर इस प्रकारकी विषमताका परिहार करनेके लिये तुम्हें धर्मराजकी पादाभिवन्दन पूर्वक सांत्वना करनी चाहिये और क्षमा मांगनी चाहिये ॥७० ॥

भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु कुर्याद्राजा कंचन पाण्डवेयः ।
मुक्तोऽनृताद्भ्रातृवधाच्च पार्थ हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ७१ ॥

पार्थ ! क्योंकि ये तुम्हारे बडे भाई और धर्मके जाननेवाले और सब लोकके राजा हैं । वे तुम्हारे ऊपर कुछ भी क्रोध नहीं करेंगे । इस प्रकार तुम भी इस असत्य भाषण और भ्रातृवधके घोर पापसे छूट जाओगे, पीछे प्रसन्न चित्तसे सूतपुत्र कर्णको मारो ॥ ७१ ॥

सञ्जय उवाच

इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वधं तम् ।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराजमनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ ७२ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन और हितैषी मित्रके उस वधकी प्रशंसा करके, फिर धर्मराज युधिष्ठिरसे हठपूर्वक जो पहिले कभी नहीं कहे ऐसे कठोर वचन कहने लगे ॥ ७२ ॥

मा त्वं राजन्व्याहर व्याहरत्सु न तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणार्धे ।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय यो युध्यते सर्वयोधप्रवीरः ॥ ७३ ॥

हे राजन् ! तुम हमें ऐसा कठोर वचन मत कहो, क्योंकि तुम स्वयं युद्धसे भागकर एक कोस आकर दूरपर बैठे हैं । सब योद्धाओंमें प्रमुख वीर भीमसेन लड रहे हैं, वही हमारी निन्दा कर सकते हैं ॥ ७३ ॥

काले हि शत्रून्प्रतिपीड्य संख्ये हत्वा च शूरान्पृथिवीपतींस्तान् ।
यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं हत्वानदत्तुमुलं सिंहनादम् ॥ ७४ ॥

भीमसेन अपने पराक्रमसे शत्रुओंको पीडित करते हुए युद्धमें उन शूर राजाओंको मार रहे हैं । उन्होंने आज एक सहस्रसे ऊपर हाथियोंको मारा और वे भयंकर सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ७४ ॥

सुदुष्करं कर्म करोति वीरः कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित् ।
रथादवप्लुत्य गदां परामृशंस्तया निहन्त्यश्वनरद्विपान्रणे ॥ ७५ ॥

वीर भीमसेन ऐसा अत्यंत दुष्कर कर्म कर रहे हैं, जैसा तुम कभी नहीं कर सकते । रथसे उतर कर, अपनी गदा हाथमें लेकर उससे युद्धमें अनेक हाथी, घोडे और रथोंको नष्ट कर रहे हैं ॥ ७५ ॥

वरासिना वाजिरथाश्वकुञ्जरांस्तथा रथाङ्गैर्धनुषा च हन्त्यरीन् ।
प्रमृद्य पद्भ्यामहितान्निहन्ति यः पुनश्च दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ७६ ॥

इन्द्रके समान महापराक्रमी भीमसेन उत्तम खड्ग, चक्र और धनुषसे हाथी, घोडे, रथ और शत्रुओंको मार रहे हैं, और पैरोंसे कुचलकर दोनों हाथोंसे वैरियोंका नाश करते हैं ॥७६॥

महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः प्रसह्य हन्ता द्विषतां यथार्हम् ।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ॥ ७७ ॥

इस समयमें कुबेर और यमराजके समान पराक्रमी, शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ महाबली भीमसेन हमारी निन्दा कर सकते हैं, तुम नहीं । क्योंकि सदा मित्र लोग तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥ ७७ ॥

महारथान्नागवरान्हयांश्च पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य ।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ७८ ॥

अकेले शत्रुदमन भीमसेन शत्रुओंके महारथी, बडे हाथी, घोडे और प्रमुख पैदल वीरोंको मथकर, धृतराष्ट्रके पुत्रकी सेनासे लड रहे हैं, वही हमारी निन्दा कर सकते हैं ॥ ७८ ॥

कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्सदामदान्नीलबलाहकोपमान् ।
निहन्ति यः शत्रुगणाननेकशः स माभिवक्तुं प्रभवत्यनागसम् ॥ ७९ ॥

जो भीमसेन कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग, निषाद और मगध देशी सदा मत्त और काले मेघके समान दिखनेवाले शत्रुओंके अनेक हाथियोंको मार रहे हैं, वे मुझ अनघकी निन्दा कर सकते हैं ॥ ७९ ॥

सुयुक्तमास्थाय रथं हि काले धनुर्विकर्षञ्शरपूर्णमुष्टिः ।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥ ८० ॥

वीर भीमसेन समयपर जुते हुए उत्तम रथपर बैठकर धनुष खींचकर मुट्ठीभर बाण निकालकर, जैसे मेघ जलधारा गिराते हैं, वैसे महायुद्धमें बाण वर्षा रहे हैं ॥ ८० ॥

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति।
त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च त्वमेव मां वेत्सि यथाविधोऽहम् ॥ ८१ ॥
हे भारत! विद्वान् कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका बल उनके वाणीमें और क्षत्रियका बल हाथका होता है। तुम्हें केवल वचनहीका बल है। तुम बडे निष्ठुर हो और हमारा जैसा पराक्रम है, वैसा तुम जानते हो ॥ ८१ ॥

यतासि नित्यं तव कर्तुमिष्टं दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च।
एवं च मां वाग्विशिखैर्निहंसि त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किञ्चित् ॥ ८२ ॥
हम स्त्री, पुत्र, धन और अपने शरीरसे भी सदा तुम्हारा इष्ट कार्य करनेको प्रयत्न करते रहते हैं, तो भी तुम ऐसे तीक्ष्ण वचनरूपी बाणोंसे हमें मारते हो, अर्थात् तुम्हारे से हमको कुछ भी सुख नहीं मिला है ॥ ८२ ॥

अवामंस्था मां द्रौपदीतल्पसंस्थो महारथान्प्रतिहन्मि त्वदर्थे।
तेनातिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किञ्चित् ॥८३॥
हे भारत! तुम द्रौपदीकी शय्यापर बैठकर हमारा अपमान न करो। अब हम तुम्हारे लिये ही अनेक महारथियोंको मारते हैं। इस कारण शंकित होकर तुम बडे निष्ठुर हो गये हो। तुमसे कुछ भी सुख मिला है, यह हम नहीं जानते ॥ ८३ ॥

प्रोक्तः स्वयं सत्यसंधेन मृत्युस्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥ ८४ ॥
तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही सत्यवादी भीष्मने युद्धमें अपनी मृत्यु बता दी, फिर उनको मुझसे सुरक्षित होकर पराक्रमी महात्मा द्रुपदपुत्र शिखण्डीने मार डाला ॥ ८४ ॥

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्टमेभिर्युद्धे तर्तुमिच्छस्यरींस्तु ॥ ८५ ॥
हम तुम्हारे राज्यकी प्रसंसा भी नहीं करते, उस समय भी तुमने स्वयंका अहित करनेके लिये पापका मूल जुआ खेला। अब अपने आप ही दुष्ट लोगोंसे सेवित पापकर्म करके हम चारोंके द्वारा शत्रुसेनारूपी समुद्रको पार करना चाहते हो ॥ ८५ ॥

अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद्यान्।
तान्नैषि संतर्तुमसाधुजुष्टान्येन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ ८६ ॥
सहदेवने उस ही समय जुआ खेलनेके अनेक पापयुक्त दोष तुम्हें दिखलाये थे और तुमने सुने भी थे, परन्तु दुर्जन सेवित दोषोंका तुमने त्याग नहीं किया, उसीसे हम सब इस घोर आपत्तिमें पडे हैं ॥ ८६ ॥

त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाशस्त्वत्संभवं व्यसनं नो नरेन्द्र ।
मास्मान्क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुद त्वं भूयो राजन्कोपयन्नल्पभाग्यान् ॥ ८७ ॥

हे राजन् ! हे नरेन्द्र ! तुमने जुआ खेला, तुम्हारे ही कारण राज्यका नाश हुआ और हम चारोंको घोर आपत्ति भोगनी पडी, अब तुम हम लोगोंको कठोर वचन कह कर क्रोधित मत कराना; तुम बडे मन्दभाग्य हो, तुम्हारे ये वचन कोडाके समान लगते हैं ॥ ८७ ॥

एता वाचः परुषाः सव्यसाची स्थिरप्रज्ञं श्रावयित्वा ततश्च ।
तदानुतेपे सुरराजपुत्रो विनिःश्वसंश्चाप्यसिमुद्बबर्ह ॥ ८८ ॥

सव्यसाची अर्जुनने स्थितप्रज्ञ युधिष्ठिरको ये सब कठोर वचन कहे, अनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुनको बहुत पश्चात्ताप हुआ। अर्जुनने दीर्घ श्वास लेते हुए फिर अपना खड्ग खींचा ॥८८॥

तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान्विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिम् ।
प्रब्रूहि सत्यं पुनरुत्तरं विधेर्वचः प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये ॥ ८९ ॥

तब श्रीकृष्णने कहा– हे अर्जुन ! यह क्या ? अब तुम फिर आकाशके समान वर्णवाला अपना खड्ग म्यानसे बाहर क्यों निकाल रहे हो ? तुम मुझे सत्य कहो। तुम अपने मनका प्रयोजन कहो, तो हम फिर तुमको तुम्हारा इच्छित साध्य करनेके लिये योग्य मार्ग बतायेंगे ॥ ८९ ॥

इत्येव पृष्टः पुरुषोत्तमेन सुदुःखितः केशवमाह वाक्यम् ।
अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव प्रसह्य येनाहितमाचरं वै ॥ ९० ॥

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके ऐसे पूछनेपर अर्जुन दुःखित होकर उनसे बोले– अब मैं अपने शरीर-हीको नाश करूंगा । यही सब दुःखोंका मूल है। इसीने धर्मराज युधिष्ठिरको अनेक दुर्वाक्य कहे हैं ॥ ९० ॥

निशम्य तत्पार्थवचोऽब्रवीदिदं धनंजयं धर्मभृतां वरिष्ठः ।
प्रब्रूहि पार्थ स्वगुणानिहात्मनस्तथा स्वहार्दं भवतीह सद्यः ॥ ९१ ॥

अर्जुनका यह वचन सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण धनंजयको बोले– हे अर्जुन ! अब तुम अपने गुणोंका वर्णन करो और इससे अपने प्रति प्रेम भी व्यक्त होगा ॥ ९१ ॥

तथास्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य वाक्यं धनंजयः प्राह धनुर्विनाम्य ।
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं शृणुष्व राजन्निति शक्रसूनुः ॥ ९२ ॥

श्रीकृष्णके वचन सुन अर्जुनने उनका अभिनन्दन करके बहुत अच्छा ऐसा कहा और धनुषको नवाकर इन्द्रपुत्र अर्जुन धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बोले, हे महाराज ! सुनिये ॥ ९२ ॥

×

न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते धनुर्धरो देवमृते पिनाकिनम् ।
अहं हि तेनानुमतो महात्मना क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ॥ ९३ ॥

नरदेव ! हम आपसे सत्य कहते हैं, कि पिनाकधारी भगवान् शिवको छोडकर जगत्में हमारे समान धनुषधारी दूसरा कोई नहीं है । महात्मा महेश्वरने मुझे अनुमोदन दिया है । मैं क्षणभरमें चर और अचर जगत्को नाश कर सकता हूं ॥ ९३ ॥

मया हि राजन्सदिगीश्वरा दिशो विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे ।
स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः सभा च दिव्या भवतो ममौजसा ॥ ९४ ॥

राजन् ! हमने सब दिशा और दिक्पालोंके सहित समस्त पृथ्वी जीतकर आपके वशमें कर दी है । मेरे ही प्रतापसे आपने दक्षिणाओंके सहित राजसूय यज्ञ समाप्त किया, मैंने आपके लिये उत्तम दिव्य सभा बनाई ॥ ९४ ॥

पाणौ पृषत्का लिखिता ममेमे धनुश्च संख्ये विततं सबाणम् ।
पादौ च मे सशरौ सहध्वजौ न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ९५ ॥

आप हमें हाथमें तीक्ष्ण शर और युद्धमें बाण सहित विशाल धनुष धारण किये हुए देखिये । मेरे पैरमें बाण और ध्वजाके चिन्ह हैं, इसलिये मेरे समान मनुष्यको युद्धमें कोई नहीं जीत सकता ॥ ९५ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्याः प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ताः ।
संशप्तकानां किंचिदेवावशिष्टं सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्धम् ॥ ९६ ॥

मैंने उत्तर, पश्चिम, पूर्व, दक्षिण दिशाओंके सब क्षत्रियोंको नष्ट कर दिया है । हे राजन् ! मैंने कौरवोंकी आधी सेना मार डाली, संशप्तक भी थोडे ही शेष हैं ॥ ९६ ॥

शेते मया निहता भारती च चमू राजन्देवचमूप्रकाशा ।
ये नास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि शस्त्रैस्तस्माल्लोकं नेह करोमि भस्मसात् ॥ ९७ ॥

देवताओंकी सेनाके समान प्रकाशित भरतवंशियोंकी यह सेना मेरेसे ही मारी जाकर पृथ्वीमें सो रही है । जो अस्त्र जाननेवाले नहीं हैं, उनको मैं शस्त्रोंहीसे मारता हूं । इसलिये इस जगत्को मैं भस्म नहीं करता हूं ॥ ९७ ॥

इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
अद्यपुत्रा तेन राधा भविश्री कुन्ती मया वा तदृतं विद्धि राजन् ।
प्रसीद राजन्क्षम यन्मयोक्तं काले भवान्वेत्स्यति तन्नमस्ते ॥ ९८ ॥

ऐसा कह कर अर्जुन फिर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बोले– हे महाराज ! अब हम आपसे सत्य प्रतिज्ञा करते हैं कि, या तो आज कर्णकी माता राधा कर्णसे हीन अथवा कुन्ती मुझसे रहित हो जायगी, यह तुम समझ लो । हे महाराज ! आप हमसे प्रसन्न हो जाइये । आप मेरी इन सब बातोंको क्षमा कीजिये, समय आतेही आपको सब मालूम हो जायगा । इसलिये हम आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ९८ ॥

प्रसाद्य राजानममित्रसाहं स्थितोऽब्रवीच्चैनमभिप्रपन्नः ।
यास्येष भीमं समरात्प्रमोक्तुं सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम् ॥ ९९ ॥
इस प्रकार शत्रुओंसे लडनेमें समर्थ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके, अर्जुन खडे होकर फिर नम्रतासे बोले— हे राजन् ! अब मैं भीमसेनको युद्धसे छुडा दूंगा, और सर्व प्रकारसे आज कर्णका वध करनेके लिये जाता हूं ॥ ९९ ॥

तव प्रियार्थं मम जीवितं हि ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ।
इति प्रायादुपसंगृह्य पादौ समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी ।
नेदं चिरात्क्षिप्रमिदं भविष्यत्यावर्ततेऽसावभियामि चैनम् ॥ १०० ॥
मैं सत्य कहता हूं, कि आपकी प्रसन्नताके लिए ही मेरा जीवन है, आप इसको अच्छी तरह जान लीजिये । ऐसा कह कर तेजस्वी किरीटधारी अर्जुन जानेके लिये तैय्यार होकर राजाके चरणोंको छूकर प्रणाम करके खडे हो गये और बोले– अब कर्णके वधमें देर नहीं, यह शीघ्रही होगा । वह इधर आ रहा है, इसलिये मैं उसपर आक्रमण कर रहा हूं ॥ १०० ॥

एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो भ्रातुर्वाक्यं परुषं फल्गुनस्य ।
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः ॥ १०१ ॥
अपने भाई अर्जुनके ऐसे कठोर वचन सुन पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर दुःखसे व्याकुल चित्त होकर अपने पलङ्गसे उठे और खडे होकर अर्जुनसे कहने लगे ॥ १०१ ॥

कृतं मया पार्थ यथा न साधु येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ।
तस्माच्छिरश्छिन्द्धि ममेदमद्य कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ॥ १०२ ॥
हे कुन्तीपुत्र ! हमने अच्छा काम नहीं किया, कि जिससे तुम लोगोंको ये सब घोर दुःख भोगने पडे । इसलिये हम कुलको नाश करनेवाले और नराधम हैं । सो तुम हमारा यह शिर आज काट दो ॥ १०२ ॥

पापस्य पापव्यसनान्वितस्य विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ।
वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव किं ते चिरं मामनुवृत्य रूक्षम् ॥ १०३ ॥
हम पापी, पापमय दुर्व्यसनमें आसक्त, मूर्ख, आलसी और भीरु हैं । मैं बूढोंका अनादर करनेवाला और कठोर हूं, तुम्हें मेरी रुक्ष बातोंका दीर्घकालतक अनुसरण करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ १०३ ॥

गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः सुखं भवान्वर्ततां मद्विहीनः ।
योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम् ॥ १०४ ॥
हम पापी आजही वनको चले जाते हैं, तुम हमारे विना सुखसे रहना । महात्मा भीमसेन राजा होनेके योग्य हैं, मैं नपुंसक राज्य क्या करूंगा ? ॥ १०४ ॥

न चास्मि शक्तः परुषाणि सोढुं पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य ।
भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन किं कार्यमद्यावमतस्य वीर ॥ १०५ ॥
अब फिर हम तुम्हारे क्रोधपूर्वक कहे हुए इन कठोर वचनोंको नहीं सह सकते । वीर ! भीमसेन राजा हों, अब हम अपमानित होनेपर और जीना नहीं चाहते ॥ १०५ ॥

इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात राजा ततस्तच्छयनं विहाय ।
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ १०६ ॥
ऐसा कह कर राजा युधिष्ठिर सहसा पलंग छोडकर नीचे उतरे और वनको जानेके लिये उपस्थित हुए, तब श्रीकृष्णने दण्डवत् करके उनसे कहा ॥ १०६ ॥

राजन्विदितमेतत्ते यथा गाण्डीवधन्वनः ।
प्रतिज्ञा सत्यसंधस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता ॥ १०७ ॥
हे राजन् ! आप तो जानते ही हैं, कि गाण्डीवधारी सत्यवादी अर्जुनने गाण्डीवधनुषके विषयमें प्रतिज्ञा की थी । वह प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है ॥ १०७ ॥

ब्रूयाद्य एवं गाण्डीवं देह्यन्यस्मै त्वमित्युत ।
स वध्योऽस्य पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम् ॥ १०८ ॥
जो कोई अर्जुनसे कहे कि तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो, तो वे उस मनुष्यको इस जगत्में मार डालेंगे । आपने अर्जुनसे वैसा ही कहा ॥ १०८ ॥

अतः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन परिरक्षता ।
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते ।
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ॥ १०९ ॥
इसलिये, हे पृथ्वीपते ! अर्जुनने भी अपनी सत्य प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये मेरे ही हठसे आपका इतना अपमान किया । गुरुजनोंका अपमान करना ही उनका वध समझा जाता है ॥ १०९ ॥

तस्मात्त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः ।
व्यतिक्रममिमं राजन् संक्षमस्वार्जुनं प्रति ॥ ११० ॥
इसलिये, महाबाहो ! राजन् ! आप हमारा और अर्जुन दोनोंके अपराधको क्षमा कीजिये; अर्जुनके इस अपराधके लिये आप क्षमा कीजिये ॥ ११० ॥

शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि ।
क्षन्तुमर्हसि मे राजन्प्रणतस्याभियाचतः ॥ १११ ॥
हे महाराज ! अब हम दोनों आपकी शरणमें आये हैं और मैं अब प्रणाम करके आपसे यही याचना करता हूं, कि आप मेरे अपराधको क्षमा करें ॥ १११ ॥

राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजम् ।
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमेवाद्य जीवितम् ॥ ११२ ॥

आज भूमि पापी राधापुत्र कर्णका खून पियेगी । मैं आपसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि अब आप जानिये कि सूतपुत्र कर्ण आज मारा गया । आप मनसे जिसे मारना चाहते हैं, वह आज मर गया ॥ ११२ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
ससंभ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ॥ ११३ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन धर्मराज युधिष्ठिरने अपने चरणोंमें पडे हुए हृषीकेषको त्वरासे उठाया, और फिर हाथ जोडे हुए श्रीकृष्णको आदर सहित ऐसा बोले ॥ ११३ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम ।
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चाद्य माधव ।
मोक्षिता व्यसनाद्घोराद्वयमद्य त्वयाच्युत ॥ ११४ ॥

हे गोविन्द ! हे माधव ! तुम जैसा कहते हो, सो सब ठीक है; मुझसे यह अतिक्रमण हो गया है । आपने अनुनयसे मुझे प्रसन्न किया है और आज संकटमेंसे बचा लिया है । अच्युत ! तुमने हम लोगोंको घोर दुःखसे छुडाया है ॥ ११४ ॥

भवन्तं नाथमासाद्य आवां व्यसनसागरात् ।
घोराद्द्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ ॥ ११५ ॥

आज आपको हमारा रक्षक पाकर हम दोनों इस घोर दुःखके समुद्रसे पार हो गये हैं; हम दोनों मूर्खता और अज्ञानताके वशमें हो रहे थे ॥ ११५ ॥

त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद्वयम् ।
समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाच्युत ॥ ११६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ २८६७ ॥

परन्तु तुम्हारी बुद्धिरूपी नावकी सहायतासे दुःख शोकके समुद्रसे मन्त्रियों सहित पार हो गये । अच्युत ! अब हम आपसे ही सनाथ हुए ॥ ११६ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ २८६७ ॥

: ५० :

संजय उवाच

इति स्म कृष्णवचनात्प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम् ।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित्कृत्वेव पातकम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— पृथापुत्र अर्जुन श्रीकृष्णके वचनानुसार युधिष्ठिरको जो कठोर वचन बोले थे, कोई पाप किया है, ऐसा मानकर वे विमनस्क हो गये थे ॥ १ ॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम भवेदेतद्यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ।
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनको उदास देख हंसकर पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बोले, हे कुन्तीपुत्र ! यदि तुम धर्ममें स्थित धर्मपुत्र युधिष्ठिरको तेज धारवाले खड्गसे मार डालते, तो इस समय तुम्हारी क्या दशा होती ? ॥ २ ॥

त्वमित्युक्त्वैव राजानमेवं कश्मलमाविशः ।
हत्वा तु नृपतिं पार्थ अकरिष्यः किमुत्तरम् ।
एवं सुदुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ३ ॥

उन धर्मात्माको केवल ‘ तुम ’ कहनेसे ऐसे दुःखित हो रहे हो, जिन बडे भाईको ‘ तुम ’ कहकर तुम्हारी यह दशा हो रही है, तो राजाके मारनेसे तुम्हारी क्या दशा होती ? इस प्रकार धर्मका स्वरूप जानना अत्यंत दुर्बोध है । विशेषकर जिन लोगोंकी बुद्धि मन्द है उनके लिये धर्मकी सूक्ष्म गति जानना बहुत कठिन है ॥ ३ ॥

स भवान्धर्मभीरुत्वाद्ध्रुवमैष्यन्महत्तमः ।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥ ४ ॥

इस समय यदि तुम धर्मभीरुताके कारण अपने बडे भाईका वध करते, तो इसी पापसे तुम्हें तमोमय घोर नरकमें जाना पडता ॥ ४ ॥

स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम् ।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥ ५ ॥

हमारी सम्मतिमें तो तुम सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ धर्मरत कुरुकुलतिलक महाराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करो ॥ ५ ॥

प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीतं चैव युधिष्ठिरम् ।
प्रयामस्त्वरिता योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ६ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरको अपनी भक्तिसे प्रसन्न करो, वे प्रसन्न होनेपर हम और तुम शीघ्रही युद्ध करनेके लिये सूतपुत्र कर्णके रथपर आक्रमण करेंगे ॥ ६ ॥

हत्वा सुदुर्जयं कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः ।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ७ ॥

हे वीर ! आज तुम अपने तेज बाणोंसे इसी समय दुर्जय कर्णको मारकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बहुत प्रसन्न करना ॥ ७ ॥

एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम ।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति ॥ ८ ॥

हे महाबाहो ! अब समयके अनुसार यही करना योग्य है, ऐसी हमारी सम्मति है । ऐसा ही करनेसे तुम्हारा सब कार्य पूर्ण होगा ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः ।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपेदे शिरसानघ ॥ ९ ॥

हे महाराज धृतराष्ट्र ! तब अर्जुनने बहुत लज्जासे अपना शिर नीचा करके महाराज युधिष्ठिरके चरणोंमें रख दिया ॥ ९ ॥

उवाच भरतश्रेष्ठ प्रसीदेति पुनः पुनः ।
क्षमस्व राजन्यत्प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥ १० ॥

अनन्तर हाथ जोडकर बहुत नम्रतासे बारबार कहा कि, हे भरतश्रेष्ठ ! मैंने जो धर्मपालनकी इच्छासे डर कर आपसे जो कुवचन कहे, सो आप क्षमा कीजिये, प्रसन्न होइये ॥ १० ॥

पादयोः पतितं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
धनंजयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ । ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जब धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुनाशन अर्जुनको अपने पैरोंमें पडकर रोते हुए देखा ॥ ११ ॥

उत्थाप्य भ्रातरं राजा धर्मराजो धनंजयम् ।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः ॥ १२ ॥

तब उन्होंने बडे प्रेमसे अपने भाई धनंजयको उठाकर अपने हृदयमें लगा लिया और वे पृथ्वीपति भी रोने लगे ॥ १२ ॥

रुदित्वा तु चिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती ।
कृतशौचौ नरव्याघ्रौ प्रीतिमन्तौ बभूवतु: ॥ १३ ॥

बहुत समय तक दोनों महातेजस्वी भाई रोते रहे, इससे उनके मन शुद्ध हो गये । फिर वे दोनों नरव्याघ्र परस्पर प्रसन्न हो गये ॥ १३ ॥

तत आश्लिष्य स प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवम् ।
प्रीत्या परमया युक्तः प्रस्मयंश्चाब्रवीज्जयम् ॥ १४ ॥

तब धर्मराज युधिष्ठिरने अत्यंत प्रेमसे अर्जुनको हृदयसे लगाकर अत्यंत प्रसन्न होकर उनका माथा सूंघा और हंसकर विजयी अर्जुनको बोले ॥ १४ ॥

कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
कवचं च ध्वजश्चैव धनुः शक्तिर्हया गदा ।
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ॥ १५ ॥

हे महाबाहो! महाधनुर्धर! सब सेनाके देखते देखते कर्णने मेरा कवच, ध्वजा, धनुष, शक्ति, घोडे और गदाको अपने बाणोंसे काट दिये । मैंने युद्धमें अनेक यत्न भी किये परन्तु कुछ कर नहीं सका ॥ १५ ॥

सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फल्गुन ।
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम् ॥ १६ ॥

अर्जुन! मैं समरमें उसके घोर कर्मको देखकर और जानकर बहुत दुःखी हुआ हूं । मुझे अपना जीवन अच्छा नहीं लगता ॥ १६ ॥

तमद्य यदि वै वीर न हनिष्यसि सूतजम् ।
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम । ॥ १७ ॥

हे वीर! यदि आज तुम युद्धमें उस सूतपुत्रको नहीं मारोगे, तो मैं अपने प्राणोंको त्याग दूंगा । फिर मैं जीकर क्या करूंगा? ॥ १७ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ।
सत्येन ते शपे राजन्प्रसादेन तवैव च ।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ! उनके ऐसा बोलनेपर अर्जुन बोले– हे पृथ्वीनाथ! हम आपसे सत्यकी, आपके कृपाप्रसादकी और भीमसेन, नकुल और सहदेवकी शपथ ले कर कहते हैं कि ॥ १८ ॥

यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽथ वा ।
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ १९ ॥

आज युद्धमें आपकी कृपासे कर्णको मारूंगा अथवा मैं स्वयं मारा जाकर पृथ्वीमें गिर जाऊंगा, सत्य भावसे मैं शस्त्रको छूता हूं ॥ १९ ॥

एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः ।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ।
तदनुध्याहि भद्रं ते वधं तस्य दुरात्मनः ॥ २० ॥

राजासे ऐसे वचन कह श्रीकृष्णसे बोले, हे श्रीकृष्ण ! आज हम निःसन्देह कर्णको युद्धमें मारेंगे, तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारी कृपासे आज यह पापी मारा जायगा ॥ २० ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत्पार्थं केशवो राजसत्तम ।
शक्तोऽस्मि भरतश्रेष्ठ यत्नं कर्तुं यथाबलम् ॥ २१ ॥

राजश्रेष्ठ ! अर्जुनके वचन सुन श्रीकृष्ण उनसे बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! यथा शक्ति प्रयत्न करनेमें मैं समर्थ हूं ॥ २१ ॥

एवं चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ।
कथं भवान्रणे कर्णं निहन्यादिति मे मतिः ॥ २२ ॥

हे महारथी ! मेरी भी सदा यही इच्छा है, कि तुम कर्णको युद्धमें किसी तरह मार डालो । यही मेरा विचार है ॥ २२ ॥

भूयश्चोवाच मतिमान्माधवो धर्मनन्दनम् ।
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि ।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥ २३ ॥

फिर बुद्धिमान् श्रीकृष्णने धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहा– युधिष्ठिर ! आपको यही उचित है, कि आप अर्जुनको सान्त्वना दे और उस दुष्ट कर्णको मारनेके लिये आज्ञा दे ॥ २३ ॥

श्रुत्वा ह्ययमहं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् ।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविह पाण्डवनन्दन ॥ २४ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! आप कर्णके बाणोंसे पीडित हैं, यह सुनकर ही मैं और ये अर्जुन दोनों आपका समाचार जाननेके लिये यहां आये थे ॥ २४ ॥

दिष्ट्यासि राजन्निरुजो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः ।
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥ २५ ॥

हे पापरहित राजन् ! आप हमारे प्रारब्धहीसे उसके हाथसे नहीं मारे गये और न पकडे गये । अब आप अर्जुनको सान्त्वना दीजिये और विजयके लिये आशीर्वाद दीजिए ॥ २५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव ।
वक्तव्यमुक्तोऽस्म्यहितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर बोले–हे पार्थ ! अर्जुन ! तुम हमारे पास आवो, और मेरे हृदयसे लग जाओ ! तुमने मेरे प्रति जो कुछ कठोर वचन कहा था, हमने सब क्षमा किया ॥ २६ ॥

+

अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनंजय ।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥ २७ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! हे धनञ्जय ! हम तुम्हें आज्ञा देते हैं, अब तुम कर्णका वध करो । हमने जो कुछ कठोर वचन तुमसे कहा है, उसपर क्रोध भी मत करना ॥ २७ ॥

संजय उवाच

ततो धनंजयो राजञ्शिरसा प्रणतस्तदा ।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥ २८ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तब अर्जुनने अपना शिर झुकाकर महाराजको प्रणाम किया और दोनों हाथोंसे बडे भाईके चरण पकड लिये ॥ २८ ॥

समुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ २९ ॥

तब राजाने दुःखित अर्जुनको उठाकर छातीसे लगाकर, उनका माथा सूंघा और फिर ऐसे वचन कहे ॥ २९ ॥

धनंजय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया ।
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३० ॥

हे महाबाहो ! हे धनञ्जय ! तुमने हमारा बहुत सत्कार किया, अब युद्धमें जाकर अपना महात्म्य बढाओ और शाश्वत विजय प्राप्त करो ॥ ३० ॥

अर्जुन उवाच

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः ।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥ ३१ ॥

अर्जुन बोले– हे महाराज ! आज मैं उस पापी, अपने बलके अभिमानी दुष्ट राधापुत्रको समरमें मिलकर अपने बाणोंसे सहायकोंके सहित मारूंगा ॥ ३१ ॥

येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् ।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलं प्राप्स्यति दारुणम् ॥ ३२ ॥

उसने धनुषको दृढतापूर्वक खींचकर अनेक बाणोंसे आपको पीडा दी है, सो वह कर्ण आज अपने कर्मका दारुण फल पावेगा ॥ ३२ ॥

अद्य त्वामहमेष्यामि कर्णं हत्वा महीपते ।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३३ ॥

हे पृथ्वीपते ! अब आप कुछ सोच मत कीजिये, मैं आज उसको मारकर ही आपके दर्शन करूंगा और युद्धसे आपका अभिनन्दन करनेके लिये आऊंगा । मैं आपसे यह सत्य कहता हूं ॥ ३३ ॥

नाहत्वा विनिवर्तेऽहं कर्णमद्य रणाजिरात् ।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥ ३४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आज मैं कर्णको मारे विना युद्धसे नहीं लौटूंगा । इस सत्य प्रतिज्ञासे मैं आपके चरण छूता हूं ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ ३५ ॥

संजय बोले- हे राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिरको इस प्रकार प्रसन्न कर और सूतपुत्र कर्णके मारनेका निश्चय कर, अर्जुन प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णसे बोले ॥ ३५ ॥

कल्प्यतां च रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः ।
आयुधानि च सर्वाणि सज्ज्यन्तां वै महारथे ॥ ३६ ॥

अब हमारा रथ तैय्यार हो और उसमें उत्तम घोडे जोडे जायं, और उस महारथमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र रक्खे जावें ॥ ३६ ॥

उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्चाश्वसादिनः ।
रथोपकरणैः सर्वैरुपायान्तु त्वरान्विताः ॥ ३७ ॥

अनेक शिक्षित घुडसवार और उत्तम टहलाये गये घोडे, सब रथ सामग्री सहित हमारे सङ्ग चलनेको शीघ्र आवें ॥ ३७ ॥

एवमुक्ते महाराज फल्गुनेन महात्मना ।
उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत् ।
अर्जुनो भरतश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ३८ ॥

महाराज ! महात्मा अर्जुनके वचन सुन श्रीकृष्णने दारुकसे कहा, कुरुकुलश्रेष्ठ महा धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने जो कुछ कहा, सो सब तुम ठीक कर दो ॥ ३८ ॥

आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम ।
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥ ३९ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णकी आज्ञासे दारुकने व्याघ्रचर्म आच्छादित और शत्रुतापन रथको उत्तम घोडे जोडे और सब सामग्री ठीक कीं ॥ ३९ ॥

युक्तं तु रथमास्थाय दारुकेण महात्मना ।
आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
समङ्गलस्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम् ॥ ४० ॥

महात्मा दारुकने सुसज्ज किये हुए उस रथको लानेपर, अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पूर्वक आशीर्वाद ले, कल्याणमय उस शुभ उत्तम रथपर बैठे ॥ ४० ॥

तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
आशिषोऽयुङ्क्त परमा युक्ताः कर्णवधं प्रति ॥ ४१ ॥

अनन्तर महा बुद्धिमान् धर्मराज राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको अनेक आशीर्वाद दिये, फिर वे कर्णके वधके लिये चल दिये ॥ ४१ ॥

तं प्रयान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥ ४२ ॥

भारत! महा धनुषधारी अर्जुनको आते देख सब प्राणियोंने महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनसे कर्ण मारा जायगा ऐसा मान लिया ॥ ४२ ॥

बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन्समन्ततः।
चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर।
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम् ॥ ४३ ॥

राजन्! उन्हें चलते देख सब दिशाएं सब ओरसे विमल हो गयीं। चाष, शतपत्र और क्रौञ्चपक्षी, पाण्डुपुत्र अर्जुनकी दहिनी ओर मङ्गल शब्द बोलकर जाने लगे ॥ ४३ ॥

बहवः पक्षिणो राजन्पुंनामानः शुभाः शिवाः।
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे ॥ ४४ ॥

राजन्! अनेक पुरुष नामवाले शुभ कारक कल्याणमय पक्षी अर्जुनको युद्धके लिये शीघ्रता करते हुए बडे प्रसन्न होकर बोल रहे थे ॥ ४४ ॥

कङ्का गृध्रा वडाश्चैव वायसाश्च विशां पते।
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति भक्ष्यहेतोर्भयानकाः ॥ ४५ ॥

हे पृथ्वीनाथ! उस समय अर्जुनके रथके आगे मांस खानेके लिये कंक, गिद्ध, बाज और कौवे आदि भयानक पक्षी उडने लगे ॥ ४५ ॥

निमित्तानि च धन्यानि पार्थस्य प्रशशंसिरे।
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं तथा ॥ ४६ ॥

इस प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनको अनेक शुभ शकुन उनके शत्रुसैन्योंके विनाश और कर्णके वधकी सूचना देते थे ॥ ४६ ॥

प्रयातस्याथ पार्थस्य महान्स्वेदो व्यजायत।
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं न्वेतद् भविष्यति ॥ ४७ ॥

युद्धके लिये जाते समय अर्जुको बहुत पसीना आ गया और चित्तमें बहुत चिन्ता हुई कि आज किस प्रकार इस घोर प्रतिज्ञासे पार हूंगा? ॥ ४७ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः ।
दृष्ट्वा पार्थं तदायस्तं चिन्तापरिगतं तदा ॥ ४८ ॥

चलते समय श्रीकृष्णने अपने मनमें जान लिया कि इस समय गाण्डीवधारी अर्जुन बहुत चिंतामें पडे हैं। तब अर्जुनको चिंतामग्न देख श्रीकृष्ण बोले- ॥ ४८ ॥

गाण्डीवधन्वन्संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः ।
न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते ॥ ४९ ॥

हे गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन ! तुमने युद्धमें अपने धनुषसे जिन वीरोंको जीता है, उनको जीतनेवाला तुम्हारे सिवाय इस जगतमें दूसरा कोई मनुष्य नहीं है ॥ ४९ ॥

दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ।
त्वां प्राप्य समरे वीरं ते गताः परमां गतिम् ॥ ५० ॥

हमने इन्द्रके समान पराक्रमी अनेक शूर वीरोंको युद्धमें देखा परन्तु वे सब तुम जैसे वीरसे युद्ध करते ही परम गतिको गये ॥ ५० ॥

को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ५१ ॥

मारिष ! भला तुम्हारे सिवाय द्रोणाचार्य, भीष्म, भगदत्त, अवन्तीके विन्द और अनुविन्द, काम्बोज देशी सुदक्षिण, ॥ ५१ ॥

श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च ।
प्रत्युद्गम्य भवेत्क्षेमी यो न स्यात्त्वमिव क्षमी ॥ ५२ ॥

महाबली श्रुतायुष और अच्युतायुष, इन वीरोंके आगे जाकर कौन सकुशल जीता बच सकता है ? ॥ ५२ ॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च ।
वेधः पातश्च लक्षश्च योगश्चैव तवार्जुन ।
असंमोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संनतिः ॥ ५३ ॥

तुम्हारे शस्त्र बहुत तेज और दिव्य हैं, तुममें बल और फुर्ती हैं। अर्जुन ! तुम लक्ष्यको शीघ्र वेधना, गिराना और लक्ष्यको शीघ्रतासे देखना जानते हो। तुम एकाग्रचित्त हैं। युद्धके समय तुम मोहित नहीं होते और अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हैं ॥ ५३ ॥

भवान्देवासुरान्सर्वान्हन्यात्सहचराचरान् ।
पृथिव्यां हि रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान् ॥ ५४ ॥

हे अर्जुन ! तुम अपने बलसे सब देवता, असुर और मनुष्योंके सहित चराचरका नाश कर सकते हो। पार्थ ! इस जगत्में तुम्हारे समान योद्धा दूसरा कोई पुरुष नहीं है ॥ ५४ ॥

धनुर्ग्रहा हि ये केचित्क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।
आ देवात्त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि वा ॥ ५५ ॥

यहांसे देवलोकतक धनुर्धारी जो कोई युद्ध दुर्मद क्षत्रिय हैं, उनमें किसीको भी हमने तुम्हारे समान वीर न देखा और न सुना ॥ ५५ ॥

ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गाण्डीवं च महाद्भुतम् ।
येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः ॥ ५६ ॥

पार्थ ! ब्रह्माने सब प्रजाओंका निर्माण किया और इस अद्भुत दिव्य गाण्डीवसे तुम युद्ध करते हो, इसलिये तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं है ॥ ५६ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं यत्पथ्यं तव पाण्डव ।
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ५७ ॥

पाण्डव ! जो तुम्हारे लिये हितकर है, वह करना मैं उचित समझता हूं । महाबाहो ! तुम युद्धमें शोभित होनेवाले कर्णका अवमान भी मत करो ॥ ५७ ॥

कर्णो हि बलवान्धृष्टः कृतास्त्रश्च महारथः ।
कृती च चित्रयोधी च देशे काले च कोविदः ॥ ५८ ॥

क्योंकि कर्ण बलवान्, अभिमानी, शस्त्रविद्या जाननेवाले, महारथी युद्धकुशल, विचित्र योद्धा और देशकालके जाननेवाले हैं ॥ ५८ ॥

तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥ ५९ ॥

कर्ण तेजमें अग्नि, वेगमें वायु और क्रोधमें यमराजके समान हैं । सुदृढतामें सिंहके समान और बलवान् हैं ॥ ५९ ॥

अष्टारत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः ।
अतिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः ॥ ६० ॥

कर्ण अच्छी ऊंचाईवाले, महाबाहु, चौडी छातीवाले, जीतनेमें अत्यंत कठिन, बडे अभिमानी, शूर श्रेष्ठवीर और सुन्दर हैं ॥ ६० ॥

सर्वैर्योधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः ।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ६१ ॥

इनमें योद्धा वीरके सब गुण भरे हैं । वही कर्ण सदासे पाण्डवोंके द्वेषी, मित्रोंको अभय देनेवाले हैं और धृतराष्ट्रके पुत्रोंके शुभचिन्तक हैं ॥ ६१ ॥

सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः ।
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्त्वमद्य जहि सूतजम् ॥ ६२ ॥

हमारी बुद्धिमें राधापुत्र कर्णको तुम्हारे सिवाय इन्द्र सहित देवताओंकी भी मारनेकी शक्ति नहीं है । इसलिये तुम आज सूतपुत्रको मार डालो ॥ ६२ ॥

देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम् ।
अशक्यः समरे जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥ ६३ ॥

यदि सब देवता युद्धकी अभिलाषासे मांस रुधिरमें भीगकर भी विजयके लिये युद्ध करें, तो भी रथसहित कर्णको समरमें नहीं जीत सकते ॥ ६३ ॥

दुरात्मानं पापमतिं नृशंसं दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे हत्वा कर्णं धिष्ठितार्थो भवाद्य ॥ ६४ ॥

आज तुम उस दुरात्मा, पापी बुद्धिवाले, क्रूर, पाण्डवोंके प्रति सदा दुष्ट बुद्धि रखनेवाले और पाण्डवोंके विरोधमें किसी भी स्वार्थके विना तत्पर हुए कर्णको मारकर सफल मनोरथ और निश्चिन्त हो जाओ ॥ ६४ ॥

वीरं मन्यत आत्मानं येन पापः सुयोधनः ।
तमद्य मूलं पापानां जय सौतिं धनंजय ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ २९३२ ॥

हे धनञ्जय ! जिसकी सहाय्यताके कारण पापी दुर्योधन स्वयंको वीर मानता है, वह सूतपुत्र कर्णही सब पापोंका मूल है; इसलिये आज तुम इसको मार डालो ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ २९३२ ॥

ः ५१ ः

संजय उवाच

ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
कृतसंकल्पमायस्तं वधे कर्णस्य सर्वशः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! तब अर्जुनके मनमें सब प्रकारसे कर्णके मारनेका दृढ सङ्कल्प जान कर अमेयात्मा श्रीकृष्ण फिर उनसे बोले ॥ १ ॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! हाथी, घोडे और मनुष्योंका जो यह अत्यंत घोर नाश हो रहा है, इसे आज सत्तरह दिन हो गये ॥ २ ॥

भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह ।
अन्योन्यं समरे प्राप्य किंचिच्छेषा विशां पते ॥ ३ ॥

पृथ्वीपते ! शत्रुओंके साथ तुम लोगोंके पास भी बडी सेना एकत्र हो गयी थी, परंतु अब परस्पर युद्ध करके बहुत थोडी बची है ॥ ३ ॥

भूत्वा हि कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः ।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥ ४ ॥

पार्थ ! पहले कौरवोंके सङ्ग बहुत हाथी, घोडे और रथ थे, परन्तु अब तुम्हारे जैसे शूर शत्रुका युद्धके अग्र भागपर सामना करके वे नष्ट हो गये हैं ॥ ४ ॥

एते च सर्वे पाञ्चालाः सृञ्जयाश्च सहान्वयाः ।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥

ये सब पाञ्चाल, सृञ्जय आदि अनेक राजा अपने अनुयायियोंके सहित तुम्हारी ओरसे युद्ध करनेको आये हैं, और तुम जैसे दुर्धर्ष वीरके आश्रयसे ही ये और सब पाण्डव युद्ध कर रहे हैं ॥ ५ ॥

पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिकेकयैः ।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्न कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६ ॥

हे शत्रुनाशन ! तुमसे सुरक्षित होकर इन पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, कारुप, चेदि और केकय वीरोंने अपने शत्रुओंका नाश किया है ॥ ६ ॥

को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संगतान् ।
अन्यत्र पाण्डवान्युद्धे त्वया गुप्तान्महारथान् ॥ ७ ॥

हे तात अर्जुन ! तुमसे रक्षित महारथी पाण्डवोंके सिवाय दूसरा कौन संगठित हुए कौरवोंको युद्धमें जीत सकता है ? ॥ ७ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान् ।
त्रीँल्लोकान्समनुद्युक्तान्किं पुनः कौरवं बलम् ॥ ८ ॥

तुम अपने बलसे युद्धके लिये तैयार होकर आये हुए देवता, राक्षस और मनुष्योंके सहित तीनों लोकोंको युद्धमें जीत सकते हो, तब कौरवोंकी सेनाकी तो कथा ही क्या है ? ॥ ८ ॥

भगदत्तं हि राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद्वासवोपमः ॥ ९ ॥

हे पुरुषशार्दूल ! किस इन्द्रके समान पराक्रमी वीरकी शक्ति थी कि जो राजा भगदत्तके जीतनेमें तुम्हारे सिवाय समर्थ हो सकता था ? ॥ ९ ॥

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरभिवीक्षितुम् ॥ १० ॥

हे अनघ पार्थ ! तुमसे रक्षित इस बडी सेनाकी ओर सब राजा आंख उठाकर नहीं देख भी सकते ॥ १० ॥

तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ११ ॥

पार्थ ! वैसे ही तुमसे ही सदा रक्षित होकर धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने भीष्म और द्रोणाचार्यको मार डाला ॥ ११ ॥

को हि शक्तो रणे पार्थ पाञ्चालानां महारथौ।
भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥

पार्थ ! पाञ्चालोंकी सेनाके महारथी इन्द्रके समान पराक्रमी भीष्म और द्रोणाचार्यसे कौन युद्ध करके जीत सकता था ? ॥ १२ ॥

को हि शांतनवं संख्ये द्रोणं वैकर्तनं कृपम्।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च।
सैन्धवं मद्रराजं च राजानं च सुयोधनम् ॥ १३ ॥

समरमें शान्तनुपुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, वैकर्तन कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, सिन्धुदेशी राजा जयद्रथ, मद्रराज शल्य, और राजा दुर्योधन ॥ १३ ॥

वीरान्कृतास्त्रान्समरे सर्वानेवानुवर्तिनः।
अक्षौहिणीपतीनुग्रान्संरब्धान्युद्धदुर्मदान् ॥ १४ ॥

इन सब वीर, अस्त्र जाननेवाले, युद्धसे न लौटनेवाले, अक्षौहिणीपति, घोर पराक्रमी, क्रुद्ध और युद्धदुर्मद शूरोंसे तुम्हारे सिवाय कौन युद्ध कर सकता था ? ॥ १४ ॥

श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १५ ॥

तुमने अनेक जनपदनिवासी अमर्षशील और उग्र योद्धा क्षत्रियोंके दल उनके हाथी, घोडे और रथोंसहित नष्ट कर दिये ॥ १५ ॥

×

गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत ।
व्रात्यानां वाटधानानां भोजानां चापि मानिनाम् ॥ १६ ॥

भारत ! गोवास, दासमीय, वसाति, व्रात्य, वाटधान और अभिमानी और ब्राह्मण–क्षत्रियोंकी भोजवंशी वीरोंकी ॥ १६ ॥

उदीर्णाश्च महासेना ब्रह्मक्षत्रस्य भारत ।
त्वां समासाद्य निधनं गताः साश्वरथद्विपाः ॥ १७ ॥

हाथी, घोडे और रथोंसे भरी महा सेना तुम्हारे पास आकर नष्ट हो गयी ॥ १७ ॥

उग्राश्च क्रूरकर्माणस्तुखारा यवनाः खशाः ।
दार्वाभिसारा दरदाः शका रमठतङ्गणाः ॥ १८ ॥

उग्र और क्रूरकर्मी तुखार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, रमठ, तङ्गण ॥ १८ ॥

अन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः ।
म्लेच्छाश्च पार्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ।
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दृढपाणयः ॥ १९ ॥

अंध्रक, पुलिन्द, पराक्रमी किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय और समुद्र तटके सब योद्धा जो सब क्रोधी, घोर कर्म करनेवाले, बलवान् और दण्डधारी हैं ॥ १९ ॥

एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह ।
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परंतप ॥ २० ॥

हे शत्रुनाशन ! ये सब क्रोधित होकर कौरवसैनिकोंके साथ दुर्योधनकी सहायताके लिये आये थे; तुम्हारे सिवाय इन सबको और कोई युद्धमें नहीं जीत सकता था ॥ २० ॥

धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महाबलम् ।
यस्य त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात्को नु मानवः ॥ २१ ॥

उस व्यूहमें खडी हुई धृतराष्ट्र पुत्रोंकी प्रबल और महासेनाको सामने देखकर तुम रक्षक न होते तो कौन मनुष्य उसपर आक्रमण कर सकता था ? ॥ २१ ॥

तत्सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम् ।
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! समुद्रके समान भारी और धूलसे छा गई हुई कौरव सेनाको तुमसे सुरक्षित होकर ही क्रुद्ध हुए पाण्डव वीरोंने छिन्न भिन्न करके नष्ट कर दिया ॥ २२ ॥

मागधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः ।
अद्य सप्तैव चाहानि हतः संख्येऽभिमन्युना ॥ २३ ॥

तुम्हारी ही सहायतासे कौरवोंकी सेनाको व्याकुल करके, मगध देशके महाबलवान् राजा जयत्सेनको आज सात दिन हुए कि अभिमन्युने युद्धमें मारा था ॥ २३ ॥

तत्तो दश सहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम् ।
जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम् ।
ततोऽन्येऽपि हता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥ २४ ॥

अनन्तर भीमसेनने राजा जयत्सेनके भयानक कर्म करनेवाले दस हजार हाथियोंको, जो उन्हें सब ओरसे घिर कर खडे थे, अपनी गदासे मारे । फिर उस राजाके अनेक दूसरे भी हाथी और सैकडों रथ उन्होंने बलपूर्वक नष्ट किये ॥ २४ ॥

तदेवं समरे तात वर्तमाने महाभये ।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ।
सवाजिरथनागाश्च मृत्युलोकमितो गताः ॥ २५ ॥

हे तात ! पाण्डव ! इस प्रकार घोर युद्ध शुरू होनेपर तुम्हारे और भीमसेनके सामने आकर, अनेक कौरव सैनिक घोडे, रथ और हाथियों सहित मृत्युलोकको पहुंच गये ॥ २५ ॥

तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ।
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥ २६ ॥

हे पार्थ ! मारिष ! इस प्रकार जब पाण्डवोंके वीरोंने सब कौरवोंकी सेनाके अग्रभागका नाश किया, तब भीष्मने भयंकर बाणोंकी वर्षा की ॥ २६ ॥

स चेदिकाशिपाञ्चालान्करूषान्मत्स्यकेकयान् ।
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत्परुषास्त्रवित् ॥ २७ ॥

उन्होंने चेदि, काशी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और कैकय देशसे आई हुई तुम्हारी सेनाको अपनी बाण वर्षासे आच्छादित किया और अस्त्रविद्या जाननेवाले भीष्मके बाणोंसे तुम्हारी सेनाका नाश हो गया ॥ २७ ॥

तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ।
पूर्णमाकाशमभवद्रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ॥ २८ ॥

उनके धनुषसे छूटे हुए उन सोनेके पङ्खवाले, शीघ्रगामी, शत्रु–देह विदारक बाणोंसे सब आकाश पूरित हो गया ॥ २८ ॥

गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ।
हित्वा नव गतीर्दुष्टाः स बाणान्व्यायतोऽमुचत् ॥ २९ ॥

भीष्म दोषयुक्त नौ गतियोंको छोडकर, दसवीं गतिसे ही बाण छोडते थे, उन्होंने उन बाणोंसे अनेक घोडे, हाथी और रथोंको काट दिया ॥ २९ ॥

दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ।
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्च गजवाजिनः ॥ ३० ॥

भीष्मने दस दिन तक तुम्हारी सेनाका नाश करके, अनेक रथोंकी बैठकें वीरोंसे शून्य कर दीं और हाथी, घोडोंको मार डाला ॥ ३० ॥

दर्शयित्वात्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ।
पाण्डवानामनीकानि प्रविगाह्य व्यशातयत् ॥ ३१ ॥

भीष्मने युद्धमें शिव और विष्णुके समान अपना रूप दिखलाकर पाण्डवोंकी सेनाओंका अत्यंत संहार किया ॥ ३१ ॥

विनिघ्नन्पृथिवीपालांश्चेदिपाञ्चालकेकयान् ।
व्यदहत्पाण्डवीं सेनां नराश्वगजसंकुलाम् ॥ ३२ ॥

भीष्मने अपने बलसे चेदि, पाञ्चाल और केकय देशके अनेक राजाओंको मारा ! रथ, घोडे और हाथीयोंसे भरी हुई पाण्डवसेनाको दग्ध कर दिया ॥ ३२ ॥

मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम् ।
तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।
न शेकुः सृञ्जया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ॥ ३३ ॥

विपत्तिके सागरमें डूबते हुए मूर्ख दुर्योधनका उद्धार करनेकी इच्छासे भीष्मने अपने बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर दिया । सूर्यके समान ताप देते सेनामें घूमते हुए उनको सृञ्जय और दूसरे राजा देख नहीं सके ॥ ३३ ॥

विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ।
सर्वोद्योगेन सहसा पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥

समरमें विचरते और विजयसे प्रकाशित होते हुए भीष्मपर सब पाण्डव वीर सहसा अपने सब सामर्थ्यसे टूट पडे ॥ ३४ ॥

स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान्सृञ्जयानपि ।
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ॥ ३५ ॥

परंतु युद्धमें अकेले विजयी भीष्मने पाण्डव और सृञ्जयोंको भगाकर उस समय सेनामें केवल अद्वितीय वीर श्रेष्ठ करके प्रसिद्ध हुए ॥३५॥

तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महारथम् ।
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३६ ॥

तब तुमसे रक्षित होकर उनसे सामना करके शिखण्डीने अपने तेज बाणोंसे उन पुरुषसिंह महारथीको मार डाला ॥ ३६ ॥

स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ।
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्र गृध्रः प्राप्येव वायसम् ॥ ३७ ॥

पुरुषसिंह ! वे ही ये पितामह भीष्म तुमको पाकर धाराशायी हो अभी शरशय्यापर सोते हैं, जैसे कौएको पाकर गृद्ध ॥ ३७ ॥

द्रोणः पञ्च दिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीः ।
कृत्वा व्यूहं महायुद्धे पातयित्वा महारथान् ॥ ३८ ॥

इसी प्रकार महापराक्रमी द्रोणाचार्यने भी पांच दिनों तक तुम्हारी सेनाका नाश किया, महायुद्धमें व्यूह बनाकर महारथियोंको मार कर ॥ ३८ ॥

जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ।
अन्तकप्रतिमश्चोग्रां रात्रिं युद्ध्वादहत्प्रजाः ॥ ३९ ॥

और समरमें जयद्रथकी रक्षा करके, रात्रिके घोर युद्धमें यमराजके समान वे उग्र महारथि प्रजाको भस्म करने लगे ॥ ३९ ॥

अद्येति द्वे दिने वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ॥ ४० ॥

आज दो दिन हो गये, प्रतापी भरद्वाजपुत्र वीर द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नसे भिडकर परम गतिको प्राप्त हो गये ॥ ४० ॥

यदि चैव परान्युद्धे सूतपुत्रमुखान्रथान् ।
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनङ्क्ष्यत ॥ ४१ ॥

यदि तुम युद्धमें सूतपुत्र कर्ण आदि शत्रुओंके महारथियोंको नहीं रोकते, तो निश्चय ही संग्राममें द्रोणाचार्य नहीं मारे जाते ॥ ४१ ॥

भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ।
ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनंजय ॥ ४२ ॥

धनंजय ! तुमने दुर्योधनकी सब सेनाको रोक दिया था, इसीलिये धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको मार सके ॥ ४२ ॥

क इवान्यो रणे कुर्यात्त्वदन्यः क्षत्रियो युधि ।
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ॥ ४३ ॥

पार्थ ! तुमने जयद्रथका वध करते समय युद्धमें जो पराक्रम किया था, वैसा तुम्हारे सिवाय और कौन क्षत्रिय कर सकता है ? ॥ ४३ ॥

निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् ।
निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ॥ ४४ ॥

तुमने दुर्योधनकी बडी सेनाको रोककर, अनेक शूरवीर राजाओंको मारा था, और अपने अस्त्रोंके बल और तेजसे सिन्धुराज जयद्रथको मारा ॥ ४४ ॥

आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः ।
अनाश्चर्यं हि तत्त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ॥ ४५ ॥

पार्थ ! सिन्धुराज जयद्रथका वध एक आश्चर्यमयी घटना है, यह सब क्षत्रिय जानते हैं । तुमने यह किया, इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि तुम महारथी हो ॥ ४५ ॥

त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाह्नादिति भारत ।
तप्यमानमसंयुक्तं न भवेदिति मे मतिः ॥ ४६ ॥

हमें निश्चय है कि तुम्हें पाकर एक दिनमें सब क्षत्रियोंका नाश हो सकता है । ऐसा कहना अयोग्य नहीं है, ऐसा मैं मानता हूं ॥ ४६ ॥

सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
हता सर्वसर्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ ॥ ४७ ॥

हे पार्थ ! हम यह जानते हैं कि आज कौरवोंकी यह सब भयंकर सेना युद्धमें नष्ट होगी । जिस समय भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये तब ही हमने जान लिया था, कि सेनाका सर्वस्व नष्ट होगया, इनके सब वीर मारे गये ॥ ४७ ॥

शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिनरद्विपा ।
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ॥ ४८ ॥

और अब तो अनेक मुख्य योद्धा नष्ट हो गये और हाथी, घोडे और रथोंका नाश होगया । इस समय यह कौरवोंकी सेना ऐसी शोभारहित होगयी है, जैसे सूर्य, चन्द्रमा और तारोंसे रहित आकाश ॥ ४८ ॥

विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रमात् ।
आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ॥ ४९ ॥

जैसे पहले इन्द्रने अपने पराक्रमसे दानवोंकी सेनाका नाश कर दिया था, ऐसे ही तुमने इस सेनाका समरमें भयंकर पराक्रमसे नाश किया ॥ ४९ ॥

तेषां हतावशिष्टास्तु पञ्च सन्ति महारथाः ।
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ॥ ५० ॥

अब इनमेंसे केवल पांच महारथी मरनेसे शेष रहे हैं ॥ अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, मद्रराज शल्य और कृपाचार्य बचे हैं ॥ ५० ॥

तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ।
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञः सद्वीपपत्तनाम् ॥ ५१ ॥

नरसिंह ! आज इन पांचों महारथियोंको मारकर राजा युधिष्ठिरको नगर और द्वीपोंके सहित सारी पृथ्वी दो और शत्रुहीन हो जावो ॥ ५१ ॥

साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ।
प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुंधराम् ॥ ५२ ॥

अमित पराक्रमी और श्री युक्त कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर आज आकाश, जल, पाताल, पर्वत और महावनों सहित इस पृथ्वीको प्राप्त करें ॥ ५२ ॥

एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ।
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव यथा हरिः ॥ ५३ ॥

जैसे पहले समयमें विष्णुने दैत्य और दानवोंको मारकर इन्द्रको स्वर्गका राज दिया था, ऐसे ही आज तुम इन सबको मारकर राजा युधिष्ठिरको पृथ्वीका राज्य दो ॥ ५३ ॥

अद्य मोदन्तु पाञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ।
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥ ५४ ॥

जैसे विष्णुके द्वारा दानवोंके मारे जानेसे देवता प्रसन्न हुए थे, वैसे ही तुमसे आज शत्रुओंके मारे जानेसे पाञ्चाल प्रसन्न होवें ॥ ५४ ॥

यदि वा द्विपदां श्रेष्ठ द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे चाचार्यगौरवात् ॥ ५५ ॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! यदि द्रोणाचार्य गुरु होनेके कारण उनका आदर करते हुए गुरुपुत्र अश्वत्थामाके प्रति और आचार्य योग्य गौरवके कारण कृपाचार्यके प्रति तुम्हारे मनमें कृपा और दया है ॥ ५५ ॥

अत्यन्तोपचितान्वा त्वं मानयन्भ्रातृबान्धवान् ।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥ ५६ ॥

अथवा यदि तुम सब अत्यंत आदरणीय बन्धु बान्धवोंके प्रति आदरका भाव रखकर कृतवर्मासे सामना करके उसे यमलोक नहीं भेजेंगे ॥ ५६ ॥

भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान्न जिघांससि ॥ ५७ ॥

हे कमलनेत्र ! यदि तुम माता माद्रीके भाई, मद्रदेशके लोगोंके अधिपति राजा शल्यको दयावान् होनेके कारण नहीं मारेंगे ॥ ५७ ॥

इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान्प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याशु निशितैः शरैः ॥ ५८ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! तो भी इस सदासे पाण्डवोंके प्रति पाप बुद्धि रखनेवाले, अत्यन्त दुष्ट कर्णको आज त्वरित अपने तेज बाणोंसे अवश्य मारो ॥ ५८ ॥

एतत्ते सुकृतं कर्म नात्र किंचिन्न युज्यते ।
वयमप्यत्र जानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ५९ ॥

इस समय यही काम करना तुम्हें पुण्यप्रद है । इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं । हम भी यही जानते हैं कि कर्णके मारनेमें तुमको कुछ दोष न लगेगा ॥ ५९ ॥

दहने यत्सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः ।
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णो मूलमिहार्जुन ॥ ६० ॥

हे अनघ अर्जुन ! देखो, दुष्ट दुर्योधनने रात्रिके समयमें पुत्रोंके सहित तुम्हारी माताको जलानेका प्रबन्ध किया था, जूआ खेलनेके लिये बुलाकर, तुम लोगोंसे कैसा अधर्म किया था ! तुम्हारे इन सब दुःखोंका मूल केवल यह पापी कर्ण ही है ॥ ६० ॥

कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः ।
ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ॥ ६१ ॥

दुर्योधन सदैव मानता है कि कर्ण ही उसकी रक्षा करेगा; इसीलिये जब मैं धर्मराजका दूत बनकर उसके घर गया था, तब वह क्षुब्ध होकर मुझे पकडनेका भी ठीक प्रबन्ध कर रहा था ॥ ६१ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ।
कर्णः पार्थान्रणे सर्वान्विजेष्यति न संशयः ॥ ६२ ॥

मानद ! धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधनका यह पूर्ण विश्वास है कि अकेले कर्ण ही निःसन्देह सब कुन्ती पुत्रोंको युद्धमें जीतेंगे ॥ ६२ ॥

कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ।
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ॥ ६३ ॥

कौन्तेय ! कर्णहीका आश्रय लेकर दुर्योधनने यह युद्ध किया है । दुर्योधन तुम्हारे बलको जानता था, तो भी उसने केवल कर्णके भरोसे तुम्हारे साथ यह युद्ध करना पसंद किया है ॥ ६३ ॥

कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान्समागतान् ।
वासुदेवं सराजानं विजेष्यामि महारणे ॥ ६४ ॥

कर्ण सदा ही कहा करता है, कि हम महा युद्धमें एक साथ आये हुए सब पाण्डवोंको राजा युधिष्ठिरके सहित श्रीकृष्णको जीतेंगे ॥ ६४ ॥

प्रोत्साहयन्दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिः ।
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ॥ ६५ ॥

दुरात्मा दुर्योधनको प्रोत्साहित करनेवाला दुष्ट बुद्धि कर्ण सदा राजसभामें इन बातोंको कहकर गर्जता रहता था, उसे आज तुम मार डालो ॥ ६५ ॥

यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ।
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ॥ ६६ ॥

दुर्योधनने तुम्हारे सङ्ग जो पापयुक्त वर्तन किया है, उन सबका मूल पापबुद्धि दुष्टात्मा कर्ण ही है ॥ ६६ ॥

यच्च तद्धार्तराष्ट्राणां क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ।
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ॥ ६७ ॥

सांडके समान विशाल नेत्रवाला वीर सुभद्रापुत्र अभिमन्युको जो धृतराष्ट्र पुत्रोंके छः क्रूर महारथियोंने मार डाला ॥ ६७ ॥

द्रोणद्रौणिकृपान्वीरान्कम्पयन्तो महारथान् ।
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान्विरथांश्च महारथान् ॥ ६८ ॥

वह द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि महारथियोंको अपने पराक्रमसे कंपित करता था । हाथियोंको महावतों तथा सवारोंसे महारथियोंको रथोंसे शून्य करते ॥ ६८ ॥

व्यश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तीन्व्यायुधजीवितान् ।
कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरुवृष्णियशस्करम् ॥ ६९ ॥

तथा घोडोंको सवारोंसे, और पैदल सैनिकोंको आयुध और जीवनसे रहित वह सांडके कन्धेके समान दृढ कन्धेवाला, और कुरुकुल और यदुकुलके यशको बढानेवाला, अभिमन्यु करता था ॥ ६९ ॥

विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ।
मनुष्यवाजिमातङ्गान्प्रहिण्वन्तं यमक्षयम् ॥ ७० ॥

सेनाओंका नाश और महारथियोंको पीडा करते हुए वह मनुष्य, घोडे और हाथियोंको मार कर यमपुरीमें भेजता था ॥ ७० ॥

शरैः सौभद्रमायस्तं दहन्तमिव वाहिनीम् ।
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ॥ ७१ ॥

अपने बाणोंकी वर्षासे शत्रुसेनाको दग्ध करते आते हुए सुभद्रा कुमारको उन्होंने मार डाला, यह देखकर, हे मित्र ! मेरे सब अंग जलते रहे हैं । हम सत्यकी शपथ खाकर तुमसे यह कहते हैं ॥ ७१ ॥

यत्तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो ।
अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ॥ ७२ ॥

हे प्रभो ! उसमें भी दुष्टात्मा कर्णका द्वेष कार्य करता था । युद्धमें अभिमन्युके आगे खडे होनेकी शक्ति कर्णमें नहीं थी ॥ ७२ ॥

सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः ।
निःश्वसन्क्रोधसंदीप्तो विमुखः सायकार्दितः ॥ ७३ ॥

सुभद्रापुत्र अभिमन्युके बाणोंसे छिन्नभिन्न हो उसके शरीरसे रुधिर बहने लगा और वह मूर्च्छित सा हो गया । तब क्रोधसे लंबी सांस लेता हुआ बाणोंसे पीडित हो युद्ध छोडकर पराङ्मुख होकर चला गया ॥ ७३ ॥

अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते ।
तस्थौ सुविह्वलः संख्ये प्रहारजनितश्रमः ॥ ७४ ॥

वह भाग जानेका उत्साही था और अपने जीवनसे निराश हो गया था । युद्धमें बाणोंके प्रहारोंसे थका हुआ वह व्याकुल होकर खडा हो गया ॥ ७४ ॥

अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ।
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ७५ ॥

तब समरमें द्रोणाचार्यके समयके अनुसार कठोर वचन सुनकर कर्णने अभिमन्युका धनुष काट दिया ॥ ७५ ॥

ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ।
स चैव निकृतिप्रज्ञः प्रावधीच्छरवृष्टिभिः ॥ ७६ ॥

उसके द्वारा धनुष कट जानेपर समरमें पांच महारथी और छलपूर्वक बर्ताव करनेवाला वह इन सबने बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको मार डाला ॥ ७६ ॥

यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ।
प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ॥ ७७ ॥

देखो, सभामें कर्णने सब पाण्डवों और कौरवोंके सामने एक दुष्ट मनुष्यके समान द्रौपदीको ये कठोर वचन कहे थे ॥ ७७ ॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ।
पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मितभाषिणि ॥ ७८ ॥

हे कृष्णे ! पाण्डवोंका नाश हो गया और ये शाश्वत नरकमें गये । हे उत्तम कमर और मृदु वचनवाली ! अब तू किसी दूसरेको अपना पति बना ले ॥ ७८ ॥

लेखाभ्रु धृतराष्ट्रस्य दासी भूत्वा निवेशनम् ।
प्रविशारालपक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ॥ ७९ ॥

हे कमल नयनी ! अब तू धृतराष्ट्रकी दासी होकर राजमहलमें प्रवेश कर । पाण्डव अब तेरे पति नहीं रहे ॥ ७९ ॥

इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ।
पापः पापं वचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत ॥ ८० ॥

भारत ! उस समय धर्महीन अत्यंत दुष्ट पापी कर्णने तुम्हारे सुनते हुए ऐसे नीच वचन कहे थे ॥ ८० ॥

तस्य पापस्य तद्वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ।
शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः ॥ ८१ ॥

पापी कर्णके उन सब वचनोंका उत्तर आज तुम्हारे सोनेके पङ्खवाले, शिलापर घिसे धनुषसे छूटे प्राणनाशक घोर बाण देंगे, वे उस पापीको सदाके लिये शान्त कर दें ॥ ८१ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि ।
तान्यद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव ॥ ८२ ॥

दुष्टात्मा कर्णने तुम्हारे प्रति और भी जो दुष्टतासे भरे हुए कृत्य किये हैं, उनको और इसके जीवनको आज तुम्हारे बाण विनष्ट कर दें ॥ ८२ ॥

गाण्डीवप्रहितान्घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्शरान् ।
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः ॥ ८३ ॥

आज तुम्हारे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंके घाव अपने अंगोंपर सहता हुआ दुष्टात्मा कर्ण द्रोणाचार्य और भीष्मके वचनोंको स्मरण करें ॥ ८३ ॥

सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः ।
त्वयास्तास्तस्य मर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम् ॥ ८४ ॥

तुम्हारे सोनेके पङ्खवाले, बिजलीके समान प्रकाशित, शत्रुनाशक नाराच बाण आज तुम्हारे धनुषसे छूटकर कर्णका कवच तोडकर रुधिर पियेंगे ॥ ८४ ॥

उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा शिताः शराः ।
अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम् ॥ ८५ ॥
आज तुम्हारे हाथोंसे छूटे हुए अत्यंत वेगवान् और घोर तीक्ष्ण बाण कर्णका मर्मस्थान विदीर्ण करके उसे यमराजके घर पहुंचावेंगे ॥ ८५ ॥

अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः ।
प्रपतन्तं रथात्कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः ॥ ८६ ॥
अब तुम्हारे बाणोंसे व्याकुल हुए पृथ्वीपति दीन और विषण्ण होकर शोर मचाते हुए कर्णको रथसे नीचे गिराता हुआ देखेंगे ॥ ८६ ॥

अद्य स्वशोणिते मग्नं शयानं पतितं भुवि ।
अपविद्धायुधं कर्णं पश्यन्तु सुहृदो निजाः ॥ ८७ ॥
आज कर्ण स्वयंके रुधिरमें भीगकर पृथ्वीपर गिरकर सो रहा हो और उसके अस्त्र-शस्त्र इधर उधर बिखरे पडे हो, इसी अवस्थामें उसके मित्र उसे देखें ॥ ८७ ॥

हस्तिकक्ष्यो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया ।
प्रकम्पमानः पततु भूमावाधिरथेर्ध्वजः ॥ ८८ ॥
आज अधिरथ पुत्र कर्णका हस्तिकक्षावाला महा ध्वज भी तुम्हारे भल्ल बाणोंसे कट जानेसे कांपता हुआ पृथ्वीमें गिरे ॥ ८८ ॥

त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम् ।
हतयोधं समुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम् ॥ ८९ ॥
तुम्हारे सैंकडों बाणोंसे कटे हुए उस सुवर्णभूषित रथको, जिसका रथी मारा गया है यह देख, राजा शल्य भी छोडकर भाग जाये ॥ ८९ ॥

ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया ।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव धनंजय ॥ ९० ॥
धनंजय ! फिर अधिरथ पुत्र कर्णको तुम्हारे बाणोंसे मारा हुआ देख, दुर्योधन राज्यसे और जीवितसे निराश हो जायगा ॥ ९० ॥

एते द्रवन्ति पाञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥ ९१ ॥
हे भरतकुलश्रेष्ठ ! ये देखो, कर्णके तेज बाणोंसे व्याकुल होकर भी पाण्डव सैनिकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे ये पाञ्चाल वीर दौडे जा रहे हैं ॥ ९१ ॥

पाञ्चालान्द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥ ९२ ॥

पाञ्चाल, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्र, नकुल पुत्र शतानीक ॥ ९२ ॥

नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।
सुवर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशं गतान् ॥ ९३ ॥

नकुल, सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुवर्मा और सात्यकि ये सब कर्णके वशमें पड गये हैं ॥ ९३ ॥

अभ्याहतानां कर्णेन पाञ्चालानां महारणे ।
श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परंतप ॥ ९४ ॥

हे शत्रुनाशन ! ये देखो, कर्णके बाणोंसे व्याकुल हुए तुम्हारे संबन्धी पाञ्चालोंका घोर आर्तनाद महा युद्धमें सुनाई दे रहा है ॥ ९४ ॥

न त्वेव भीताः पाञ्चालाः कथंचित्स्युः पराङ्मुखाः ।
न हि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारथाः ॥ ९५ ॥

पाञ्चाल वीर कभी भी डरकर युद्धसे पराङ्मुख नहीं होते । ये महा धनुषधारी पाञ्चाल बडे योद्धा हैं । वे मृत्युसे भी नहीं डरते ॥ ९५ ॥

य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् ।
तं समासाद्य पाञ्चाला भीष्मं नासन्पराङ्मुखाः ॥ ९६ ॥

जिस अकेलेने अपने बाणोंकी वृष्टिसे पाण्डवोंकी सब सेनाको व्याकुल कर दिया था उस भीष्मसे सामना करके भी पाञ्चाल युद्धसे पराङ्मुख नहीं हुए थे ॥ ९६ ॥

तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् ।
निर्दहन्तं समारोहन्दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ॥ ९७ ॥

अस्त्रोंकी अग्निसे प्रज्वलित, इस सब जगत्के धनुषधारियोंके गुरु और शत्रुसेनाको दग्ध करनेवाले दुर्धर्ष द्रोणाचार्यके ऊपर भी उन्होंने अपने बलसे आक्रमण किया ॥ ९७ ॥

ते नित्यमुदिता जेतुं युद्धे शत्रूनरिंदमाः ।
न जात्वाधिरथेर्भीताः पाञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः ॥ ९८ ॥

ये शत्रुदमन पाञ्चाल वीर सदा शत्रुओंको जीतनेके लिये तैय्यार रहते हैं । वे अधिरथ पुत्र कर्णसे डरकर कभी युद्धसे पराङ्मुख नहीं होंगे ॥ ९८ ॥

तेषामापततां शूरः पाञ्चालानां तरस्विनाम् ।
आदत्तेऽसून्शरैः कर्णः पतंगानामिवानलः ॥ ९९ ॥

शूर कर्ण अपने ऊपर धावा करनेवाले वेगवान् पाञ्चालोंके प्राण अपने बाणोंसे हरज कर रहा है, जैसे अग्नि पतंगोंके ॥ ९९ ॥

तांस्तथाभिमुखान्वीरान्मित्रार्थे त्यक्तजीवितान्।
क्षयं नयति राधेयः पाञ्चालाञ्शतशो रणे ॥ १०० ॥

पाञ्चाल लोग अपने मित्रकी विजयके लिये प्राणोंका मोह छोडकर शत्रुके आगे खडे होकर युद्ध कर रहे हैं, परन्तु राधापुत्र कर्ण उन सैंकडों पाञ्चालोंका युद्धमें नाश कर देता है ॥ १०० ॥

अस्त्रं हि रामात्कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात्।
यदुपात्तं पुरा घोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥ १०१ ॥

पहले कर्णने जो ऋषिश्रेष्ठ जमदग्निपुत्र परशुरामसे घोर अस्त्र प्राप्त किया है, उसीका रूप इस समय दीख रहा है ॥ १०१ ॥

तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम्।
समावृत्य महासेनां ज्वलति स्वेन तेजसा ॥ १०२ ॥

यह अत्यंत दारुण और घोर अस्त्र अपने तेजसे प्रकाशित होकर, सब सेनाको आवृत करके व्याकुल और नाश कर रहा है ॥ १०२ ॥

एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्तः स्म तावकान् ॥ १०३ ॥

युद्धमें ये कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाण तुम्हारी सेनाको दुःख देते हुए, वनमें भौरोंके झुण्डके समान घूम रहे हैं ॥ १०३ ॥

एते चरन्ति पाञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत।
कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवारमनात्मभिः ॥ १०४ ॥

हे भारत! ये पाञ्चाल समरमें कर्णके अस्त्रसे व्याकुल होकर चारों दिशाओंको भागे जाते हैं। इस अस्त्रको साधारण मनुष्य निवारण नहीं कर सकता ॥ १०४ ॥

एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः।
सृञ्जयैर्योधयन्कर्णं पीड्यते स्म शितैः शरैः ॥ १०५ ॥

पार्थ! ये महा क्रोधी भीमसेन सब ओरसे सृञ्जयोंसे घिरे हुए कर्णके साथ युद्ध कर रहे हैं, परंतु उसके तीक्ष्ण बाणोंसे व्याकुल हो रहे हैं ॥ १०५ ॥

पाण्डवान्सृञ्जयांश्चैव पाञ्चालांश्चैव भारत।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवाततः ॥ १०६ ॥

जैसे प्राप्त हुए रोगकी उपेक्षा करनेपर वह शरीरका नाश कर देता है, ऐसे ही इस समय कर्णकी अपेक्षा की जाय तो वह सृञ्जय, पाञ्चाल और पाण्डवोंका नाश कर देगा ॥ १०६ ॥

नान्यं त्वत्तोऽभिपश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले।
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहम् ॥ १०७॥
हम युधिष्ठिरकी सेनामें तुम्हारे सिवाय और किसीको ऐसा वीर नहीं देखते, जो राधापुत्र कर्णसे युद्ध करके कुशलपूर्वक अपने घरको चला जाय ॥ १०७॥

तमद्य निशितैर्बाणैर्निहत्य भरतर्षभ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥ १०८॥
हे भरतर्षभ ! पार्थ ! आज उस कर्णको तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपने तेज बाणोंसे मारकर, कीर्ति प्राप्त करो ॥ १०८॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान्।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १०९॥
योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! क्योंकि, युद्धमें तुम ही एक कर्णसहित सब कौरवोंके जीतनेमें समर्थ हो दूसरा कोई नहीं। यह हम तुमसे सत्य कहते हैं ॥ १०९॥

एतत्कृत्वा महत्कर्म हत्वा कर्णं महारथम्।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥ ११०॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ३०४२ ॥

हे नरोत्तम पार्थ ! महारथी कर्णको मारकर इस महा कर्मको पूर्ण करके तुम कृतार्थ, सफल और सुखी हो जावो ॥ ११०॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ ३०४२ ॥

: ५२ :

संजय उवाच

स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम्।
विशोकः संप्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १॥
सञ्जय बोले– हे भारत ! श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन अर्जुन क्षणभरमें शोक रहित और हर्षित हो गये ॥ १॥

ततो ज्यामनुमृज्याशु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः।
दध्रे कर्णविनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥ २॥
अनन्तर कर्णके मारनेके लिये दृढ निश्चय करके धनुषपर रोदा चढाया और शीघ्र गाण्डीव धनुषकी टंकार की। फिर श्रीकृष्णसे बोले ॥ २॥

त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एष जयो मम ।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! आप हमारे नाथ हैं । आपको नाथ पाकर निश्चित ही हमारी विजय है, आप जगत्के भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी हैं । आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मेरी विजयमें आज क्या संदेह है ? ॥ ३ ॥

त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रींल्लोकान्वै समागतान् ।
प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महारणे ॥ ४ ॥

हे श्रीकृष्ण ! आपकी सहायतासे हम सामने आये हुए तीनों लोकोंको भी परलोकको भेज दूंगा, फिर इस महा युद्धमें कर्णकी तो कथा ही क्या है ? ॥ ४ ॥

पश्यामि द्रवतीं सेनां पाञ्चालानां जनार्दन ।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥ ५ ॥

जनार्दन ! कर्ण वेडर होकर समरमें घूम रहा है और पाञ्चाल सेना भागी जाती है, यह मैं देख रहा हूं ॥ ५ ॥

भार्गवास्त्रं च पश्यामि विचरन्तं समन्ततः ।
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव महाशनिम् ॥ ६ ॥

हे वार्ष्णेय ! इस समय सब ओर, इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रके समान कर्णका छोडा भार्गवास्त्र ही घूमते हुए दिखाई देता है ॥ ६ ॥

अयं खलु स संग्रामो यत्र कृष्ण मया कृतम् ।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण ! निश्चय ही यह वह संग्राम है, जहां मैंने यह कर्म किया है और जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक सब प्राणी इसका वर्णन करेंगे ॥ ७ ॥

अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे ।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८ ॥

हे श्रीकृष्ण ! आज हमारे हाथसे प्रेरित विकर्ण बाण गाण्डीव धनुषसे छूटकर कर्णको छिन्न-भिन्न करके उसको मार डालेंगे ॥ ८ ॥

अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते ।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥

आज राजा धृतराष्ट्र अपनी उस बुद्धिकी निन्दा करेंगे, कि जिससे उन्होंने अयोग्य दुर्योधनको राजाके पदपर अभिषिक्त किया था ॥ ९ ॥

अद्य राज्यात्सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात्तथा पुरात् ।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो वियोक्ष्यते ॥ १० ॥

महाबाहो ! आज राजा धृतराष्ट्र राज्य, सुख, लक्ष्मी, राष्ट्र, नगर और पुत्रोंसे छूट जायंगे ॥ १० ॥

अद्य दुर्योधनो राजा जीविताच्च निराशकः ।
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥

हे श्रीकृष्ण ! हम आपसे सत्य कहते हैं, कि आज कर्णके मारे जानेसे राज्य और जीवनसे दुर्योधन निराश हो जायेंगे ॥ ११ ॥

अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वरः ॥ १२ ॥

आज कर्णको मेरे बाणोंसे कटा हुआ देख, राजा दुर्योधन तुम्हारे शांतिके लिये कहे हुए वचनोंको स्मरण करें ॥ १२ ॥

अद्यासौ सौबलः कृष्ण ग्लहं जानातु वै शरान् ।
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं मम ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ! आज सुबलपुत्र शकुनि, मेरा रथमण्डल और गाण्डीव धनुष पासा और उससे छूटे हुए बाणोंको दांव है ऐसा जाने ॥ १३ ॥

योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामभिमन्यते ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥ १४ ॥

जो जगत्में अपने समान योद्धा दूसरे किसी पुरुषको युद्धमें नहीं समझता, आज भूमि उसी सूतपुत्र कर्णका रुधिर पीयेगी । मेरे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णको परमगति देंगे ॥ १४ ॥

अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत् ।
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन्पाण्डवान्प्रति ॥ १५ ॥

राधापुत्र कर्णने सभामें जो पाण्डवोंकी निन्दा करके द्रौपदीको जो क्रूर वचन कहे थे, आज उनको स्मरण करके उसको बहुत ही पश्चात्ताप होगा ॥ १५ ॥

ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः ।
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥ १६ ॥

जो पाण्डव उस समय थोथे तिलोंके समान नपुंसक कहे गये थे, वही आज दुरात्मा सूतपुत्र वैकर्तन कर्णके मारे जानेसे अच्छे तिल हो जांयगे ॥ १६ ॥

+

अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत् ।
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ॥ १७ ॥
कर्णने उस समय जो कहा था कि हम पाण्डवोंसे तुम्हारी रक्षा करेंगे, सो उस वचनको मेरे तेज बाण मिथ्या कर देंगे ॥ १७ ॥

हन्ताहं पाण्डवान्सर्वान्सपुत्रानिति योऽब्रवीत् ।
तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ १८ ॥
जिस कर्णने यह कहा था, कि हम अकेले ही पुत्रोंसहित सब पाण्डवोंको मार डालेंगे, आज उस कर्णको सब धनुषधारियोंके देखते देखते हम मारेंगे ॥ १८ ॥

यस्य वीर्ये समाश्वस्य धार्तराष्ट्रो बृहन्मनाः ।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान्दुरात्मवान् ।
तमद्य कर्णं राधेयं हन्तास्मि मधुसूदन ॥ १९ ॥
मधुसूदन ! जिसके बलके आश्रयसे महामनस्वी, दुर्बुद्धि और दुरात्मा धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन सदा हम लोगोंका निरादर करता था, आज उस राधापुत्र कर्णको हम मारेंगे ॥ १९ ॥

अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः ।
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ॥ २० ॥
श्रीकृष्ण ! आज कर्ण मारे जानेसे राजा सहित धृतराष्ट्रके सब पुत्र भयभीत होकर इधर उधरको ऐसे भागेंगे, जैसे सिंहके डरसे मृग ॥ २० ॥

अद्य दुर्योधनो राजा पृथिवीमन्ववेक्षताम् ।
हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने ॥ २१ ॥
आज राजा दुर्योधन युद्धमें पुत्र और बन्धु-बान्धव-मित्रों सहित कर्णको मुझसे मारे जानेपर कर्ण विरहित पृथ्वीको देखेंगे ॥ २१ ॥

अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ।
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ २२ ॥
आज अमर्षणशील दुर्योधन कर्णको मारा गया देखकर जानेंगे, कि अर्जुनके समान जगत्में दूसरा कोई श्रेष्ठ धनुषधारी नहीं है ॥ २२ ॥

अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ।
क्रोधस्य च कुरूणां च शराणां च गाण्डिवस्य च ॥ २३ ॥
हे केशव ! आज मैं धनुषधारियोंके, क्रोधके, कौरवोंके, बाणोंके और गाण्डीव धनुषके ऋणसे मुक्त हो जाऊंगा ॥ २३ ॥

अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ।
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण ! आज मैं जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको मारा था, वैसे ही मैं युद्धमें कर्णको मारकर, आज तेरह बरष इकठ्ठा हुआ जो दुःख है, उससे छूटूंगा ॥ २४ ॥

अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ॥ २५ ॥

आज युद्धमें कर्णके मारे जानेपर मित्रोंके कार्यकी सिद्धि इच्छनेवाले सोमकवंशी महारथी प्रसन्न होकर स्वयंको कृतकार्य समझें ॥ २५ ॥

न जाने च कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ।
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ॥ २६ ॥

माधव ! आज कर्णके मारे जानेपर और विजयके कारण मेरी कीर्ति बढनेपर शिनिपौत्र सात्यकिको कितना आनन्द होगा, यह मैं नहीं जान सकता ॥ २६ ॥

अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ।
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकेरपि ॥ २७ ॥

आज मैं समरमें कर्ण और उसके महारथी पुत्रको भी मारकर भीमसेन, नकुल, सहदेव, और सात्यकिको भी आनन्दित करूंगा ॥ २७ ॥

धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पाञ्चालानां च माधव ।
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महारणे ॥ २८ ॥

माधव ! आज महायुद्धमें कर्णको मारकर मैं धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सब पाञ्चाल देशीय वीरोंके ऋणोंसे छूटूंगा ॥ २८ ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम् ।
युध्यन्तं कौरवान्संख्ये पातयन्तं च सूतजम् ।
भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥ २९ ॥

आज सब योद्धा देखें कि युद्धमें अमर्षण धनंजय कैसे कौरवोंसे युद्ध करता है और सूतपुत्र कर्णको मार गिराता है । हम आपके आगे फिर अपनी प्रशंसाभरी बातें करते हैं ॥ २९ ॥

धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमायां तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥ ३० ॥

मेरे समान धनुर्वेदका जाननेवाला इस जगत्में दूसरा कोई नहीं है मेरे समान पराक्रममें कौन है ? मेरे समान क्षमावान् भी दूसरा कौन है ? और मेरे समान क्रोधी भी दूसरा कोई नहीं है ॥ ३० ॥

अहं धनुष्मानसुरान्सुरांश्च सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि ।
स्वबाहुवीर्यादभये पराभवं मत्पौरुषं विद्धि परः परेभ्यः ॥ ३१ ॥

मैं अपने बाहुबलसे धनुष धारण करके, देवता, राक्षस एक साथ मिलकर आये हुए और सब प्राणियोंको पराभूत कर सकता हूं । मेरे पराक्रमको सबसे श्रेष्ठ समझो ॥ ३१ ॥

शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः सर्वान्कुरून्बाह्लिकांश्चाभिपत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्निस्तथा दहेयं सगणान्प्रसह्य ॥ ३२ ॥

जैसे गर्मीके दिनोंमें अग्नि काष्टको जलाती है, ऐसे ही मैं अकेला ही गाण्डीवधनुपसे छूटे वाणोंकी ज्वालासे सब कौरव और बाह्लिकोंको गणों सहित मारकर जोरसे दग्ध करूंगा ॥३२॥

पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते धनुश्च सव्ये निहितं सबाणम् ।
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ३०७५ ॥

मेरे एक हाथमें वाणके चिन्ह हैं और बायेंमें वाण सहित धनुपका है । मेरे पैरोंमें भी रथ और ध्वजाके चिह्न हैं । मेरे समान योद्धाको युद्धमें कोई नहीं जीत सकते ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ ३०७५ ॥

: ५३ :

सञ्जय उवाच

तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि रणे समृद्धानि समागतानि ।
गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि मेघैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! वे समरमें इकठी हुई दोनों पक्षोंकी सेनाएं उस समय अनेक ध्वजाओंसे शोभित थीं और उनके सब सैनिक आयुधोंसे युक्त थे । ग्रीष्म ऋतुके बाद गर्जना करनेवाले मेघोंके समान अनेक भेर और नगारे वज रहे थे और उनको युद्धके लिये आव्हान करते थे ॥ १ ॥

महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं वादित्रनेमीतलशब्दवच्च ।
हिरण्यचित्रायुधवैद्युतं च महारथैरावृतशब्दवच्च । ॥ २ ॥

उस सेनामें वडे हाथी मेघ अस्त्र पानीकी धार; वाद्य और पहियोंकी आवाज मेघ गर्जन; सुवर्णभूषित विचित्र शस्त्र और आयुध विजलीके समान दीख पडते थे, वह भूमि महारथियोंके आवाजसे भरी हुई थी ॥ २ ॥

तद्भीमवेगं रुधिरौघवाहि खड्गाकुलं क्षत्रियजीववाहि ।
अनार्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं बभूव तत्संहरणं प्रजानाम् ॥ ३ ॥

वह युद्ध अत्यंत वेगशाली, रुधिरका स्रोत बहानेवाला, चमकते हुए खड्गोंसे युक्त, क्षत्रियोंके प्राणोंका नाश करनेवाला, क्रूर और बिना ऋतुकी अनिष्टकारी वर्षाके समान प्रजाओंका नाश करने लगा ॥ ३ ॥

रथान्ससूतान्सहयान्गजांश्च सर्वानरीन्मृत्युवशं शरौघैः ।
निन्ये हयांश्चैव तथा ससादीन्पदातिसंघांश्च तथैव पार्थः ॥ ४ ॥

अर्जुनने अपने बाणोंसे सारथि सहित रथों, घोडों सहित हाथियों, सब शत्रुओं, घोडोंपर चढे वीरों सहित घोडों और पैदलोंके समूहोंको मार डाला ॥ ४ ॥

कृपः शिखण्डी च रणे समेतौ दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् ।
श्रुतश्रवा द्रोणसुतेन सार्धं युधामन्युश्चित्रसेनेन चापि ॥ ५ ॥

उस युद्धमें कृपाचार्य और शिखण्डी परस्पर लडते थे, सात्यकिने दुर्योधनपर आक्रमण किया, श्रुतश्रवा द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे और युधामन्यु चित्रसेनसे लडते थे ॥ ५ ॥

कर्णस्य पुत्रस्तु रथी सुषेणं समागतः सृञ्जयांश्चोत्तमौजाः ।
गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्तो महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत् ॥ ६ ॥

आगे आये हुए महारथी कर्णपुत्र सुषेणसे सृञ्जयवंशी उत्तमौजा युद्ध करने लगा और जैसे भूखसे पीडित सिंह किसी बैलकी ओर दौडता है, ऐसे ही गान्धार राजा शकुनिसे युद्ध करनेको सहदेव चले ॥ ६ ॥

शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः ।
समार्दयत्कर्णसुतश्च वीरः पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥ ७ ॥

नकुलके पुत्र तरुण शतानीकने कर्णपुत्र नवयुवक वृषसेनपर अपने बाणोंकी वर्षा की, तब कर्णके वीर पुत्रने पाञ्चाली पुत्र शतानीकको अनेक बाणोंकी वर्षासे घायल किया ॥ ७ ॥

रथर्षभः कृतवर्माणमार्च्छन्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी ।
पाञ्चालानामधिपो याज्ञसेनिः सेनापतिं कर्णमार्च्छत्ससैन्यम् ॥ ८ ॥

महा पराक्रमी रथियोंमें श्रेष्ठ विचित्र योद्धा माद्रीपुत्र नकुलने कृतवर्माकी ओर बाण चलाये, पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न सेनाके सहित सेनापति कर्णसे युद्ध करने लगे ॥८॥

दुःशासनो भारत भारती च संशप्तकानां पृतना समृद्धा ।
भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं तदा समार्च्छत्तमसह्यवेगम् ॥ ९ ॥

हे भारत ! तुम्हारी और संशप्तकोंकी समृद्ध सेनाके सहित दुःशासनने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, असह्य वेगवाले भीमसेनपर युद्धमें धावा किया ॥ ९ ॥

कर्णात्मजं तत्र जघान शूरस्तथाच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य।
तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ निनादयद्द्यां निनदेन खं च ॥ १० ॥

शूर उत्तमौजाने बलपूर्वक वहां कर्णके पुत्रपर प्रहार किया, और उसका शिर काट दिया। सुषेणका वह शिर आर्त शब्दसे आकाश और भूमिको पूरित करता हुआ पृथ्वीमें गिर पडा ॥ १० ॥

सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां विलोक्य कर्णोऽथ तदार्तरूपः।
क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजं च बाणैः सुधारैर्निशितैर्न्यकृन्तत् ॥ ११ ॥

सुषेणके शिरको पृथ्वीपर पडा देख, कर्ण शोकसे विह्वल हो गया और उसने क्रोध करके उत्तम धारवाले तीक्ष्ण बाणोंसे उत्तमौजाके रथ, घोडे और ध्वजाको काट दिया ॥ ११ ॥

स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कैर्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण।
पार्ष्णिं हयांश्चैव कृपस्य हत्वा शिखण्डिवाहं स ततोऽभ्यरोहत् ॥ १२ ॥

तब महापराक्रमी उत्तमौजाने भी कर्णको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया और तेजस्वी खड्गसे कृपाचार्यके रथके पहियोंकी रक्षा करनेवालोंको और घोडोंको मारकर शिखण्डीके रथपर चढ गये ॥ १२ ॥

कृपं तु दृष्ट्वा विरथं रथस्थो नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी।
तं द्रौणिरावार्य रथं कृपं स्म समुज्जह्रे पङ्कगतां यथा गाम् ॥ १३ ॥

रथपर बैठे हुए शिखण्डीने कृपाचार्यको विरथ देखकर उनको बाणोंसे ताडित करनेकी इच्छा नहीं की, तब अश्वत्थामाने शिखण्डीको रोककर कृपाचार्यके रथका इस प्रकार उद्धार किया, जैसे कीचडमें फंसी गायको कोई बचावे ॥ १३ ॥

हिरण्यवर्मा निशितैः पृषत्कैस्तवात्मजानामनिलात्मजो वै।
अतापयत्सैन्यमतीव भीमः काले शुचौ मध्यगतो यथार्कः ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ३०८९ ॥

जैसे गर्मीके समयमें दो पहरका सूर्य प्रजाको अत्यंत तपाता है, ऐसे ही सुवर्ण कवचधारी वायुपुत्र भीमसेन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे आपके पुत्रोंकी सेनाको दुःख देने लगे ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तीरपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ ३०८९ ॥

: ५४ :

संजय उवाच

अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः ।
महाभये सारथिमित्युवाच भीमश्चमूं वारयन्धार्तराष्ट्रीम् ।
त्वं सारथे याहि जवेन वाहैर्नयाम्येतान्धार्तराष्ट्रान्यमाय ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! इस घोर महा भयानक युद्धमें अनेक शत्रु वीरोंसे अकेले घिरे हुए भीमसेनने धृतराष्ट्र पुत्रोंकी सेनाको निवारण करके अपने सारथिसे कहा, हे सारथि ! तुम अपने वाहनोंसे बहुत वेगसे इस धृतराष्ट्रके पुत्रकी सेनाकी ओर चलो हम अपने बाणोंसे इन सब धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश करेंगे ॥ १ ॥

संचोदितो भीमसेनेन चैवं स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् ।
प्रायात्ततः सारथिरुग्रवेगो यतो भीमस्तद्बलं गन्तुमैच्छत् ॥ २ ॥

भीमसेनके ऐसे वचन सुन उनका सारथि तुम्हारे पुत्रकी सेनाकी ओर चला जहां भीमसेनकी जानेकी इच्छा थी, वहीं सारथि बहुत शीघ्रता सहित भयंकर वेगसे ले गया ॥ २ ॥

ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः प्रत्युद्ययुः कुरवस्तं समन्तात् ।
भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः ॥ ३ ॥

तब दूसरे कौरवोंने भी अनेक हाथी, रथ, घोडे और पदातियों सहित सब ओरसे भीमसेनपर आक्रमण किया। उन्होंने भीमसेनके महा वेगवान् उत्तम रथकी ओर चारों ओरसे सहस्रों बाण चलाये ॥ ३ ॥

ततः शरानापततो महात्मा चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ।
ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ॥ ४ ॥

महात्मा भीमसेनने उन बाणोंको अपने ऊपर आते देख, उनको अपने सुवर्ण भूषित पंखयुक्त बाणोंसे काट दिया। हे राजेन्द्र ! वे सोनेके पङ्खवाले बाण भीमसेनके बाणोंसे प्रत्येकके दो दो, तीन तीन टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ४ ॥

ततो राजन्नागरथाश्वयूनां भीमाहतानां तव राजमध्ये ।
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र वज्राहतानामिव पर्वतानाम् ॥ ५ ॥

राजन् ! नरेन्द्र ! इतने ही समयमें भीमसेनने तुम्हारे राजाओंके समूहमें हाथियों, रथों, घोडों और पैदल तरुणोंको मार डाला। उस समय भीमसेनके बाणोंसे कटकर गिरते हुए उन सबोंका ऐसा भयंकर शब्द होता था, जैसे वज्रसे कटते हुए पर्वतोंका ॥ ५ ॥

ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या निर्भिन्ना वै भीमसेनप्रवेकैः ।
भीमं समन्तात्समरेऽध्यरोहन्वृक्षं शकुन्ता इव पुष्पहेतोः ॥ ६ ॥

जैसे फूलयुक्त वृक्षपर अनेक पक्षी सब ओरसे चढ बैठते हैं, ऐसे ही तुम्हारी सेनाके मुख्य वीर नरेन्द्र भीमसेनके बाणोंसे घायल और छिन्नभिन्न होनेपर भी चारों ओरसे भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ६ ॥

ततोऽभिपातं तव सैन्यमध्ये प्रादुश्चक्रे वेगमिवात्तवेगः ।
यथान्तकाले क्षपयन्दिधक्षुर्भूतान्तकृत्काल इवात्तदण्डः ॥ ७ ॥

आपकी सेनाके आक्रमण करनेपर वेगवान् भीमसेनने अपने घोर पराक्रमको प्रकट किया । जैसे प्रलयकालमें दण्ड धारण करके यमराज सब प्रजाओंका नाश और दग्ध करनेकी इच्छासे दौडते हैं, ऐसे ही भीमसेन तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ ७ ॥

तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं नाशक्नुवन्धारयितुं त्वदीयाः ।
व्यात्ताननस्यापततो यथैव कालस्य काले हरतः प्रजा वै ॥ ८ ॥

उस समय महा पराक्रमी वेगशाली भीमसेनके महान् वेगको आपके सैनिक युद्धमें न सह सके । जैसे प्रलयकालमें मुख बाये आक्रमण करनेवाले प्रजाओंका नाश करनेवाले यमराजके वेगको कोई नहीं सह सकता, ऐसे ही कोई योद्धा भीमसेनके वेगको न सह सका ॥ ८ ॥

ततो बलं भारत भारतानां प्रदह्यमानं समरे महात्मन् ।
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं महानिलेनाभ्रगणो यथैव ॥ ९ ॥

हे भारत ! अनन्तर समरमें भीमसेनसे दग्ध होती हुई तुम्हारी सेना भयभीत होकर चारों ओरको भागने लगी, जैसें आंधी मेघोंको छिन्नभिन्न करती है, वैसे ही भीमसेनने तुम्हारी सेनाको भगाया ॥ ९ ॥

ततो धीमान्सारथिमब्रवीद्बली स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः ।
सूताभिजानीहि परान्स्वकान्वा रथान्ध्वजांश्चापततः समेतान् ।
युध्यन्नहं नाभिजानामि किंचिन्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः ॥ १० ॥

तब महा बुद्धिमान् और बलवान् भीमसेनने प्रसन्न होकर अपने सारथिसे फिर कहा, हे सूत ! अनेक रथ और ध्वज मिलकर इधर आ रहे हैं, उन्हें पहचानो । ये किस पक्षके हैं– अपने या शत्रुओंके ? क्योंकि हम इस समय युद्ध कर रहे हैं । इसलिये हमें अपनी और कौरवोंकी सेना नहीं पहचानी जाती है । इसलिये तुम हम अपनी ही सेनाको बाणोंसे आच्छादित नहीं करें, यह देखो ॥ १० ॥

अरीन्विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो मनस्तु चिन्ता प्रदुनोति मे भृशम् ।
राजातुरो नागमयत्किरीटी बहूनि दुःखान्यभिजातोऽस्मि सूत ॥ ११ ॥

हे सूत ! विशोक ! सब ओर शत्रुओंको देखकर मेरे मनकी एक चिन्ता बहुत दुःख दे रही है; महाराज युधिष्ठिर बहुत पीडित हैं। किरीटधारी अर्जुन उन्हें देखकर अभीतक नहीं लौटे इसीसे हमारा हृदय इस समय दुःखसे व्याकुल हो रहा है ॥ ११ ॥

एतद्दुःखं सारथे धर्मराजो यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये ।
नैनं जीवन्नापि जानाम्यजीवन्बीभत्सुं वा तन्ममाद्यातिदुःखम् ॥ १२ ॥

सारथे ! हमें यह विचार कर बहुत दुःख होता है, कि धर्मराज हमें छोडकर अकेले ही स्वयं शत्रुओंके वीचमें चले गये, न जाने वे जीवित हैं या नहीं ? अर्जुन भी अभीतक लौटकर नहीं आये; इस कारण हमें बहुत दुःख है ॥ १२ ॥

सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं विनाशयिष्ये परमप्रतीतः ।
एतान्निहत्याजिमध्ये समेतान्प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य ॥ १३ ॥

जो हो, अब हम निश्चय करके इस घोर शत्रु सेनाका नाश करेंगे, इस सबको युद्धमें मारकर हम तुम्हारे सहित आज प्रसन्न होंगे ॥ १३ ॥

सर्वांस्तूणीरान्मार्गणान्वान्ववेक्ष्य किं शिष्टं स्यात्सायकानां रथे मे ।
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां ज्ञात्वा व्यक्तं तन्ममाचक्ष्व सूत ॥ १४॥

हे सारथे ! तुम शीघ्र हमारे रथमें रक्खे वाणोंके सब तूणीर देखो और बताओ कि कितने वाण तूणीरमें शेष वचे हैं ? किस जातीके वाण वचे हैं और उनकी संख्या कितनी है ? ॥१४॥

विशोक उवाच

षण्मार्गणानामयुतानि वीर क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः ।
नाराचानां द्वे सहस्रे तु वीर त्रीण्येव च प्रदराणां च पार्थ ॥ १५ ॥

विशोक वोला– हे कुन्तीपुत्र वीर ! इस समय आपके रथमें साठ हजार मार्गण, क्षुरप्र और भल्ल दस दस हजार, दो सहस्र नाराच, तीन सहस्र प्रदर शेष हैं ॥ १५ ॥

अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं न यद्वहेच्छकटं षड्गवीयम् ।
एतद्विद्वन्मुञ्च सहस्रशोऽपि गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥ १६ ॥

इतने शस्त्र शेष है कि इनको छः बैलवाले छकडा भी नहीं ले जा सकता । हे विद्वन् ! आप इन सहस्रों शस्त्रोंको चलाइये; पश्चात् आपके पास गदा, खड्ग और वाहुबल तो हैं ही ॥१६॥

×

भीम उवाच

सूताद्येमं पश्य भीमप्रमुक्तैः संभिन्दद्भिः पार्थिवानाशुवेगैः ।
उग्रैर्बाणैराहवं घोररूपं नष्टादित्यं मृत्युलोकेन तुल्यम् ॥ १७ ॥

तुम अपने शस्त्रोंको थोडा जानकर घबडाओ मत, भीमसेन बोले– हे सूत ! आज तुम इस युद्ध क्षेत्रको देखो ! भीमके छोडे हुए अत्यंत वेगवाले तेज बाणोंने राजाओंको मारते हुए सब रणक्षेत्र भयंकर दीखने लगा है । सूर्य भी अदृष्ट हो गये हैं और यह भूमि यमराजकी पुरीके समान हो गयी है ॥ १७ ॥

अद्यैव तद्विदितं पार्थिवानां भविष्यति आकुमारं च सूत ।
निमग्नो वा समरे भीमसेन एकः कुरून्वा समरे विजेता ॥ १८ ॥

आज आबाल वृद्ध सब राजाओंको यह बात विदित हो जायगी कि भीमसेन युद्धमें डूब गये अथवा उन्होंने अकेले ही सब कौरवोंको युद्धमें जीत लिया ॥ १८ ॥

सर्वे संख्ये कुरवो निष्पतन्तु मां वा लोकाः कीर्तयन्त्वाकुमारम् ।
सर्वानेकस्तानहं पातयिष्ये ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु ॥ १९ ॥

आज युद्धमें ये सब कौरव मरकर पृथ्वीमें गिरें या आबालवृद्ध सब लोग मुझ भीमसेनको गिरा हुआ कहें मैं अकेला उन सबको मार गिराऊंगा अथवा वे सब मुझ भीमसेनको व्याकुल करें ॥ १९ ॥

आशास्तारः कर्म चाप्युत्तमं वा तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु ।
आयात्विहाद्यार्जुनः शत्रुघाती शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥ २० ॥

उत्तम कर्मोंकी शिक्षा देनेवाले देवता मेरा यह एक ही कार्य पूर्ण करें । जैसे यज्ञमें आवाहन करनेपर इन्द्र शीघ्र जाते हैं, वैसे ही इस समय शत्रुनाशन अर्जुन यहां शीघ्र ही पहुंच जायं ॥ २० ॥

ईक्षस्वैतां भारतीं दीर्यमाणामेते कस्माद्विद्रवन्ते नरेन्द्राः ।
व्यक्तं धीमान्सव्यसाची नराग्र्यः सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः ॥ २१ ॥

दरार पडी हुई ये कौरवोंकी सेना देखो । ये राजा लोग क्यों भागे जाते हैं ? निश्चय ही लगता है कि बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ अर्जुन आ गये और इसी सेनाको शीघ्र ही अपने बाणोंसे छा रहे हैं ॥ २१ ॥

पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक नागान्हयान्पत्तिसङ्घांश्च संख्ये ।
रथान्विशीर्णाञ्शरशक्तिताडितान्पश्यस्वैतान्रथिनश्चैव सूत ॥ २२ ॥

हे विशोक ! ये देखो, युद्धमें भागते हुए रथोंकी ध्वजाओं, हाथी, घोडे और पैदल समूह । सूत ! ये अनेक बाण और शक्तियोंसे व्याकुल होकर बिखरे पडे हुए इन रथों और अनेक रथी वीरोंको भी देखो ॥ २२ ॥

आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना ।
धनंजयस्याशनितुल्यवेगैर्ग्रस्ता शरैर्बर्हिसुवर्णवाजैः ॥ २३ ॥

ये अर्जुनके सुवर्ण पङ्खवाले, वज्र तुल्य वेगवान् बाणोंसे पीडित कौरवोंकी यह सेना अत्यंत व्याकुल होकर आर्तनाद कर रही है ॥ २३ ॥

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः पदातिसङ्घानवमर्दयन्तः ।
संमुह्यमानाः कौरवाः सर्व एव द्रवन्ति नागा इव दावभीताः ।
हाहाकृताश्चैव रणे विशोक मुञ्चन्ति नादान्विपुलान्गजेन्द्राः ॥ २४ ॥

ये रथ, घोडे और हाथी पैदलोंको कुचलते हुए भागे जा रहे हैं। जैसे वनमें आग लगनेसे हाथी भागते हैं वैसे ही सब कौरव मूर्च्छितसे होकर भागे जाते हैं । हे विशोक ! समरमें चारों ओर हाहाकार हो रहा है और अनेक हाथी बहुत जोरसे चीत्कार करते हुए इधर उधरको भाग रहे हैं ॥ २४ ॥

विशोक उवाच

सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः कपिध्वजो दृश्यते हस्तिसैन्ये ।
नीलाद्धनाद्विद्युतमुच्चरन्तीं तथापश्यं विस्फुरद्वै धनुस्तत् ॥ २५ ॥

विशोक बोला– हे पाण्डव ! अब आपके सब काम सिद्ध हो गये, इस हाथियोंकी सेनामें अर्जुनके रथकी वानरयुक्त ध्वजा दीख रही है, वर्षामें काले मेघोंसे प्रकट होनेवाली बिजलीके समान ये अर्जुनका घूमता हुआ धनुष भी देख पडता है ॥ २५ ॥

कपिर्ह्यसौ वीक्ष्यते सर्वतो वै ध्वजाग्रमारुह्य धनंजयस्य ।
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥ २६ ॥

ये अर्जुनकी ध्वजके अग्रभागपर बैठा हुआ वानर चारों ओर देखता है, इस मुकुटके बीचमें लगी हुई यह दिव्य मणि सूर्यके समान चमक रही है ॥ २६ ॥

पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं पश्येमं देवदत्तं सुघोषम् ।
अभीशुहस्तस्य जनार्दनस्य विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥ २७ ॥

ये देखो, इनके पार्श्वभागमें उत्तम शब्दवाला श्वेत अभ्रके समान प्रकाशित होनेवाला यह देवदत्त शङ्ख रक्खा है, ये श्रीकृष्ण हाथोंमें घोडोंकी रास लिये शत्रुओंकी सेनामें रथको घुमा रहे हैं ॥ २७ ॥

रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य ।
चक्रं यशो वर्धयत्केशवस्य सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर ॥ २८ ॥

हे वीर ! देखो श्रीकृष्णके पास सूर्यके समान प्रकाशमान् चक्र है– जिसकी नाभिमें वज्र और किनारेके भागोंमें छूरे लगे हुए हैं । श्रीकृष्णका यह चक्र उनका यश बढानेवाला और यादवोंसे सदा पूजित है ॥ २८ ॥

भीम उवाच

ददामि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः ।
दासीशतं चापि रथांश्च विंशतिं यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ३११८ ॥

भीमसेन बोले– हे विशोक ! तुमने जो हमें अर्जुनके आनेका समाचार सुनाया, सारथे ! इस प्रिय वृत्तान्तसे हम प्रसन्न होकर, तुम्हें चौदह बडे बडे गांव, सौ दासियां और बीस रथ देते हैं ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ ३११८ ॥

: ५५ :

संजय उवाच

श्रुत्वा च रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे ।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं चोदय वाजिनः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! युद्धमें सिंहनाद और रथका शब्द सुनकर अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, घोडोंको शीघ्र ही हांको ॥ १ ॥

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत् ।
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

अर्जुनके वचन सुन श्रीकृष्ण उनसे बोले, अब हम जहां भीमसेन खडे हैं, वहां शीघ्र ही जाते हैं ॥ २ ॥

आयान्तमश्वैर्हिमशङ्खवर्णैः सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः ।
जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम् ॥ ३ ॥

अनन्तर सुवर्ण, मणि और मोतियोंके जालसे भूषित, हिम और शङ्खके समान वर्णवाले घोडोंसे अर्जुन जा रहे थे । उस समय शत्रुओंको जीतनेके लिये अत्यंत क्रोधित होकर अर्जुन इस प्रकार युद्ध करनेको चले, जैसे जम्भासुरको मारनेके लिये देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर अत्यंत क्रोधमें भरकर चले थे ॥ ३ ॥

रथाश्वमातङ्गपदातिसंघा बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च ।
संनादयन्तो वसुधां दिशश्च क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ॥ ४ ॥

शत्रुओंके नरसिंह योद्धा क्रोध करके जयके लिये चले, उनके साथ अनेक रथ, घोडे, हाथी और पैदलोंके समूह भी चले, वे अपने बाणोंके शब्द, घोडोंके खुर और रथोंके पहियोंकी आवाजसे चारों दिशा और पृथ्वीको पूरित करते हुए अर्जुनपर आक्रमण करने लगे ॥४॥

तेषां च पार्थस्य महत्तदासीद्देहासुपाप्मक्षपणं सुयुद्धम् ।
त्रैलोक्यहेतोरसुरैर्यथासीद्देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ॥ ५ ॥
जैसे विजयी विष्णुका तीन लोकके राज्यके लिये दानवोंके साथ युद्ध हुआ था, ऐसे ही विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनका उनके साथ उन योद्धाओंके देह, प्राण और पापोंका क्षय करनेवाला महा घोर युद्ध हुआ ॥ ५ ॥

तैरस्तमुच्चावचमायुधौघमेकः प्रचिच्छेद किरीटमाली ।
क्षुरार्धचन्द्रैर्निशितैश्च बाणैः शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून् ॥ ६ ॥
अकेले किरीटमाली अर्जुनने उन्होंने चलाये हुए अस्त्र–शस्त्रोंकी वर्षाधाराको काट डाला और उनके हाथ और शिर अनेक अर्द्धचन्द्र, क्षुर और तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिये ॥ ६ ॥

छत्राणि वालव्यजनानि केतूनश्वान्रथान्पत्तिगणान्द्विपांश्च ।
ते पेतुरुर्व्यां बहुधा विरूपा वातप्रभग्नानि यथा वनानि ॥ ७ ॥
जैसे आंधी चलनेसे वनके वृक्ष गिर जाते हैं, वैसे ही अर्जुनके बाण लगनेसे छत्र, चमर, केतु, अश्व, रथ, पैदल योद्धा और हाथी छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ७ ॥

सुवर्णजालावतता महागजाः सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः समाचिताश्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाचलाः ॥ ८ ॥
जैसे जलते हुए पर्वत शोभित होते हैं, ऐसे ही स्वर्णकी जालियोंसे आवृत, वैजयन्ती ध्वजायुक्त और वीरोंसे सजाये हुए बडे हाथी सुवर्णभूषित पंखवाले बाण लगनेसे शोभित हुए ॥ ८ ॥

विदार्य नागांश्च रथांश्च वाजिनः शरोत्तमैर्वासववज्रसंनिभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा यथा मरुत्वान्बलभेदने पुरा ॥ ९ ॥
जैसे पहले समयमें इन्द्र बल नामक राक्षसको मारनेके लिये गये थे, ऐसे ही अर्जुन भी अपने इन्द्रके वज्रके समान उत्तम बाणोंसे हाथी, घोडे और रथोंको नष्ट करते हुए शीघ्रतासे कर्णको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढे ॥ ९ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः सूतसैन्यमरिंदम ।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा ॥ १० ॥
हे शत्रुदमन ! अनन्तर जैसे मगर समुद्रमें घुस जाता है, ऐसे ही महाबाहु पुरुषसिंह अर्जुनने भी तुम्हारी सेनामें प्रवेश किया ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा तावका राजन्रथपत्तिसमन्विताः ।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥ ११ ॥
हे राजन् ! तुम्हारी ओरसे भी अनेक योद्धा, हाथी तथा घुडसवार, रथ और पदातियोंके सहित पाण्डुपुत्र अर्जुनको देखकर उनसे युद्ध [illegible] को चले ॥ ११ ॥

तत्राभिद्रवतां पार्थमारावः सुमहानभूत् ।
सागरस्येव मत्तस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः ॥ १२ ॥
जैसे प्रक्षुब्ध समुद्रके जलका शब्द होता है, ऐसे ही अर्जुनपर धावा करनेवाले तुम्हारे सैनिकोंकी घोर ध्वनि हुई ॥ १२ ॥

ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम् ॥ १३ ॥
वे वीर महारथी युद्धमें मरनेका भय छोडकर बाघके समान पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर दौडे, ॥ १३ ॥

तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
अर्जुनो व्यधमत्सैन्यं महावातो घनानिव ॥ १४ ॥
जैसे आंधी मेघोंको टूटा फूटा कर देती है, ऐसे ही उन बाणोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण करनेवाली सेनाको अर्जुनने नष्ट कर दिया ॥ १४ ॥

तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिण ।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १५ ॥
अनन्तर वे सब महा धनुर्धर वीर इकट्ठे हो रथसहित आक्रमण करके अर्जुनको तीक्ष्ण बाणोंसे व्यथित करने लगे ॥ १५ ॥

ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥ १६ ॥
तब अर्जुनने अपने बाणोंसे शत्रुओंके सहस्रों रथ, हाथी और घोडोंको मार डाला और यमलोक भेज दिया ॥ १६ ॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः ।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः ॥ १७ ॥
अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे युद्धमें मारे जाते हुए वे सब महारथी वीर भयभीत होकर इधर उधर छिपने लगे ॥ १७ ॥

तेषां चतुःशतान्वीरान्यतमानान्महारथान् ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥ १८ ॥
अर्जुनने उस समय अत्यन्त यत्न करके लडते हुए चार सौ महारथी वीरोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यमलोक पहुंचा दिया ॥ १८ ॥

ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो भयात् ॥ १९ ॥
अनन्तर अर्जुनके उन अनेक चिन्होंसे युक्त बाणोंसे व्याकुल होकर वे सब वीर अर्जुनको छोडकर भयभीत होकर इधर उधरको भागने लगे ॥ १९ ॥

तेषां शब्दो महानासीद्द्रवतां वाहिनीमुखे ।
महौघस्येव भद्रं ते गिरिमासाद्य दीर्यतः ॥ २० ॥

जैसे महान् जल प्रवाहके श्रेष्ठ पर्वतसे लगनेपर शब्द होता है, ऐसे ही उस युद्धके अग्रभागसे भागती हुई सेनाका शब्द होने लगा ॥ २० ॥

तां तु सेनां भृशं विद्ध्वा द्रावयित्वार्जुनः शरैः ।
प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकानि मारिष ॥ २१ ॥

मारिष ! उस सेनाको अपने बाणोंसे अत्यंत व्याकुल करके भगा देनेके बाद अर्जुन कर्णकी सेनाकी ओर चले ॥ २१ ॥

तस्य शब्दो महानासीत्परानभिमुखस्य वै ।
गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥ २२ ॥

जैसे पहले किसी सांपको पकडनेके लिये आते हुए गरुडका शब्द हुआ था, ऐसे ही शत्रु सेनामें जाते हुए अर्जुनका घोर शब्द होने लगा ॥ २२ ॥

तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः ।
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥ २३ ॥

उस शब्दको सुनकर महाबलवान् भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुनको देखनेकी इच्छा की ॥ २३ ॥

श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान् ।
त्यक्त्वा प्राणान्महाराज सेनां तव ममर्द ह ॥ २४ ॥

महाराज ! अर्जुनको आते सुन महा प्रतापी भीमसेन प्राणोंका भय छोडकर तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ २४ ॥

स वायुवेगप्रतिमो वायुवेगसमो जवे ।
वायुवद्व्यचरद्भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥

वह वायुके समान पराक्रमी, वायुके समान चलनेवाला, प्रतापी वायुपुत्र भीमसेन तुम्हारी सेनामें वायुके समान घूमने लगे ॥ २५ ॥

तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशां पते ।
व्यभ्राम्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥ २६ ॥

हे महाराज पृथ्वीपते ! तुम्हारी सेना भीमसेनके बाणोंसे ऐसे पीडित हो गयी, जैसे टूटी हुई नाव समुद्रमें व्याकुल हो जाती है ॥ २६ ॥

तां तु सेनां तदा भीमो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शरैरवचकर्तोग्रैः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥ २७ ॥

भीमसेन उस समय अपने हाथोंकी शीघ्रता दिखाते हुए अपने घोर बाणोंसे तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ २७ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम् ।
व्यत्रस्यन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये ॥ २८ ॥

जैसे प्रलयकालमें यमराजका रूप देखकर प्रजा घबराती है, ऐसे ही इस समय भीमसेनके अलौकिक बलको देखकर तुम्हारी सेनाके वीर डरने लगे ॥ २८ ॥

तथार्दितान्भीमबलान्भीमसेनेन भारत ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥

भारत ! अपने महा बलवान् वीरोंको भीमसेनके बलसे व्याकुल देखकर राजा दुर्योधन ऐसे वचन बोले ॥ २९ ॥

सैनिकान्स महेष्वासो योधांश्च भरतर्षभ ।
समादिशद्रणे सर्वान्हत भीममिति स्म ह ।
तस्मिन्हते हतं मन्ये सर्वसैन्यमशेषतः ॥ ३० ॥

अपने सब सैनिकों और योद्धाओंको समरमें उस महा धनुर्धर राजाने आदेश दिया कि भीमसेनको मारो । इनके मारे जानेसे पाण्डवोंकी सब सेना आपसे आप मर जायगी, ऐसा मैं समझता हूं ॥ ३० ॥

प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः ।
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ३१ ॥

तुम्हारे पुत्रकी इस आज्ञाको मानकर सब राजाओंने भीमसेनको चारों ओरसे बाणोंसे छा दिया ॥ ३१ ॥

गजाश्च बहुला राजन्नराश्च जयगृद्धिनः ।
रथा हयाश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम् ॥ ३२ ॥

राजेन्द्र ! अनेक हाथी जयाभिलाषी मनुष्य, रथि वीर और घोडोंने भीमसेनको घेर लिया ॥ ३२ ॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन्समन्ततः ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ ३३ ॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ शूर भीमसेन इन सब शूर वीरोंसे सब ओरसे घिरकर, इस प्रकार शोभित हुए, जैसे नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमा ॥ ३३ ॥

स रराज तथा सङ्ख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः ।
निर्विशेषं महाराज यथा हि विजयस्तथा ॥ ३४ ॥

महाराज ! युद्धमें उस समय दर्शनीय पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन साक्षात् अर्जुनके समान दीखने लगे । उनमें और अर्जुनमें कोई अन्तर नहीं था ॥ ३४ ॥

तत्र ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टीः समासृजन् ।
क्रोधरक्तेक्षणाः क्रूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥ ३५ ॥

वहां वे सब क्रूर राजा भी क्रोधसे लालनेत्र करके भीमसेनको मारनेके लिये अनेक प्रकारके बाण वर्षाने लगे ॥ ३५ ॥

स विदार्य महासेनां शरैः संनतपर्वभिः ।
निश्चक्राम रणाद्भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि ॥ ३६ ॥

जैसे मछली पानीमें डाले हुए जालसे निकल जलमें घूसने लगती है, ऐसे ही भीमसेन उस महा सेनाको तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर बाहर निकले ॥ ३६ ॥

हत्वा दश सहस्राणि गजानामनिवर्तिनाम् ।
नृणां शतसहस्रे द्वे द्वे शते चैव भारत ॥ ३७ ॥

भारत ! भीमसेनने उस समय युद्धसे न लौटनेवाले दस सहस्र हाथी मारे और दो लाख दो सौ पैदल मनुष्य मारे ॥ ३७ ॥

पञ्च चाश्वसहस्राणि रथानां शतमेव च ।
हत्वा प्रास्यन्दयद्भीमो नदीं शोणितकर्दमाम् ॥ ३८ ॥

पांच सहस्र घोडे और सौ रथ काट डाले, उससे उस स्थानमें रुधिरके कीचडकी नदी बहने लगी ॥ ३८ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
नरमीनामश्वनक्रां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ३९ ॥

उस नदीमें रुधिर जल, रथ भंवर, हाथी ग्राह, मनुष्य मछली, घोडे नक्र और वाल सिवार और घासके समान दीखने लगे ॥ ३९ ॥

संछिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नापहारिणीम् ।
ऊरुग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमाकुलाम् ॥ ४० ॥

अनेक रत्नमणियुक्त कटे हुए हाथ बडे बडे सांप, जांघ ग्राह, चर्वी कीचड और शिर पत्थरके टुकडोंके समान दीखते थे ॥ ४० ॥

×

धनुष्काशां शरावापां गदापरिघकेतनाम् ।
योधव्रातवतीं सङ्ख्ये वहन्तीं यमसादनम् ॥ ४१ ॥
क्षणेन पुरुषव्याघ्रः प्रावर्तयत निम्नगाम् ।
यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ४२ ॥

धनुष कांश, बाण घासके समान दीखने लगे । गिरे हुए गदा और परिघ दोनों तटके समान प्रतीत होते थे । वह वीररूपी ग्राहोंसे भरी नदी उस युद्धसे बहकर यमलोकको जा रही थी । पुरुषसिंह भीमने क्षणभरमें वैतरणीके समान भयंकर, अकृतात्मा लोगोंके लिये दुस्तर रक्तकी नदी बहा दी ॥ ४१–४२ ॥

यतो यतः पाण्डवेयः प्रवृत्तो रथसत्तमः ।
ततस्ततोऽपातयत योधाञ्शतसहस्रशः ॥ ४३ ॥

जैसे वैतरनीको देखकर पापी डरते हैं । जहां जहां रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन जाते थे, वहीं सैकडों और सहस्रों वीरोंका नाश करते थे ॥ ४३ ॥

एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४४ ॥

महाराज ! दुर्योधन युद्धमें भीमसेनके इस घोर कर्मको देख शकुनिसे बोले ॥ ४४ ॥

जय मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम् ॥ ४५ ॥

हे मामा ! इस महा बलवान् भीमसेनको युद्धमें जीतो । इसके जीतनेसे पाण्डवोंकी सब महान् सेना जीत ली गयी, ऐसा मैं समझूंगा ॥ ४५ ॥

ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान् ।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ४६ ॥

महाराज ! तब महा पराक्रमी सुबलपुत्र शकुनि अपने भाइयोंके सहित भीमसेनसे घोर युद्ध करनेको चले ॥ ४६ ॥

स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् ।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ।
स न्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः ॥ ४७ ॥

जैसे तटवती भूमि समुद्रका वेग रोक देती है, ऐसे ही युद्धमें भयंकर पराक्रमी भीमसेनसे मिलकर वीर शकुनिने भीमसेनको रोक दिया । तब शकुनिके तीक्ष्ण बाणोंसे रोके जाते हुए भीमसेन भी शकुनिसे युद्ध करनेको लौटे ॥ ४७ ॥

शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामे पार्श्वे स्तनान्तरे ।
प्रेषयामास नाराचान्रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ॥ ४८ ॥

उस समय शकुनिने भीमके बाएं हाथकी सन्धिमें और छातीमें सोनेके पङ्खवाले और पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण किये हुए अनेक नाराच बाण मारे ॥ ४८ ॥

वर्म भित्त्वा तु सौवर्णं बाणास्तस्य महात्मनः ।
न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः ॥ ४९ ॥

वे मयूर और कंकके पंखवाले सुवर्णभूषित बाण महात्मा भीमसेनके कवचको काटकर शरीरमें घुस गये ॥ ४९ ॥

सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं हेमविभूषितम् ।
प्रेषयामास सहसा सौबलं प्रति भारत ॥ ५० ॥

भारत ! उन युद्धमें अत्यंत विद्ध हुए भीमसेनने क्रोध करके एक सोनेके पङ्खवाला तेज बाण शकुनिकी ओर सहसा चलाया ॥ ५० ॥

तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः ।
चिच्छेद शतधा राजन्कृतहस्तो महाबलः ॥ ५१ ॥

राजन् ! उस घोर बाणको आता देख शत्रुतापन सिद्धहस्त शकुनिने शीघ्रतासे अपने बाणोंसे उसके सैकडों खण्ड करके गिरा दिया ॥ ५१ ॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशां पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ५२ ॥

हे राजन् ! उसके भूमिपर गिरनेसे भीमसेनको महा क्रोध हुआ, फिर उन्होंने हंसकर एक भल्ल बाणसे शकुनिका धनुष काट दिया ॥ ५२ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ॥ ५३ ॥

प्रतापी सुबलपुत्र शकुनिने भी उस कटे हुए धनुषको फेंककर शीघ्रता सहित दूसरा धनुष लेकर सोलह भल्ल बाण चलाये ॥ ५३ ॥

तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः संनतपर्वभिः ।
चतुर्भिः सारथिं ह्याच्छेद्भीमं पञ्चभिरेव च ॥ ५४ ॥

महाराज ! उन तीक्ष्ण भल्लोंमेंसे चारसे भीमसेनके सारथिको और पांचसे भीमसेनको भी व्याकुल कर दिया ॥ ५४ ॥

ध्वजमेकेन चिच्छेद छत्रं द्वाभ्यां विशां पते।
चतुर्भिश्चतुरो वाहान्विव्याध सुबलात्मजः ॥ ५५ ॥
पृथ्वीपते ! फिर सुवलपुत्रने एकसे ध्वजको, दोसे छत्रको काट दिया और चार वाणोंसे उनके चारों घोडोंको घायल किया ॥ ५५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान्।
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ॥ ५६ ॥
महाराज ! तब प्रतापी भीमसेनने महा क्रोध किया और युद्धमें एक सोनेकी दण्डवाली लोहेकी शक्ति शकुनिकी ओर चलायी ॥ ५६ ॥

सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला।
निपपात रथे तूर्णं सौवलस्य महात्मनः ॥ ५७ ॥
भीमसेनके हाथसे छूटकर सांपकी जीभके समान लहराती हुई वह चञ्चल शक्ति युद्धमें शीघ्र ही महात्मा शकुनिपर जा पडी ॥ ५७ ॥

ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम्।
भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशां पते ॥ ५८ ॥
राजन् ! तब शकुनिने उस सुवर्णमयी शक्तिको हाथसे पकडकर क्रोध कर भीमसेनपर चलायी ॥ ५८ ॥

सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः।
पपात च ततो भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता ॥ ५९ ॥
वह महात्मा भीमसेनके वायें हाथको छेदकर आकाशसे गिरी हुई बिजलीके समान पृथ्वीमें गिर गई ॥ ५९ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्तराष्ट्रैः समन्ततः।
न तु तं मम्रुषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम् ॥ ६० ॥
उस समय आपकी सेना प्रसन्न होकर चारों ओरसे गर्जने लगी; परन्तु भीमसेन वेगवान् वीरोंका वह सिंहनाद सहन नहीं कर सके ॥ ६० ॥

स संगृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महारथः।
मुहूर्तादिव राजेन्द्र छादयामास सायकैः।
सौवलस्य बलं संख्ये त्यक्त्वात्मानं महाबलः ॥ ६१ ॥
राजेन्द्र ! महारथी भीमने शीघ्रतासे फिर धनुष लेकर उसपर रोदा चढाकर और युद्धमें अपने मृत्युके भयको छोडकर, शकुनिकी सब सेनाको क्षण मात्रमें बाणोंसे छा दिया ॥ ६१ ॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशां पते।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ६२ ॥

पृथ्वीपते! अनन्तर पराक्रमी भीमने बहुत शीघ्रता सहित शकुनिके चारों घोडे और सारथिको मारके एक भल्लसे उसकी ध्वजा काट दी ॥ ६२ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्।
शरैश्च बहुधा राजन्भीममार्छत्समन्ततः ॥ ६३ ॥

तब नरश्रेष्ठ शकुनि उस अश्वरहित रथसे उतरे और क्रोधसे लाल नेत्र करके, दीर्घ श्वास लेकर धनुषको टङ्कारने लगे और वहींसे भीनसेनपर सब ओरसे अनेक बाण चलाने लगे ॥ ६३ ॥

प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान्।
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः ॥ ६४ ॥

परन्तु प्रतापी भीमसेनने बडे वेगसे इनके सब बाणोंको काट दिया और क्रुद्ध होकर उसका धनुष काटकर, उसको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ६४ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः।
निपपात ततो भूमौ किंचित्प्राणो नराधिप ॥ ६५ ॥

शत्रुनाशन नरेश शकुनि बलवान् शत्रुके बाणोंसे अत्यंत पीडित होकर मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिर पडे। उसमें उस समय जीवनका कुछ लक्षण दीखता था ॥ ६५ ॥

ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशां पते।
अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ६६ ॥

हे पृथ्वीनाथ! उन्हें व्याकुल देख तुम्हारा पुत्र युद्धमें अपने रथपर चढाकर भीमसेनके देखते दूर हटा ले गया ॥ ६६ ॥

रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये। ॥ ६७ ॥

नरव्याघ्र भीमसेन रथमें ही बैठे थे। धृतराष्ट्रके पुत्र, भीमसेनसे महा भय प्राप्त होनेके कारण युद्धसे पराङ्मुख होकर, डरकर सब दिशाओंमें भाग गये ॥ ६७ ॥

सौबले निर्जिते राजन्भीमसेन धन्विना ।
भयेन महता भग्नः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षे मातुलं प्रति ॥ ६८ ॥

धनुषधारी भीमसेनसे शकुनिके जीत जानेपर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको बडा डर हुआ। वह अपने मामा शकुनिके जीवनकी रक्षा इच्छिता हुआ वेगवान् घोडोंसे वहांसे भाग गया ॥ ६८ ॥

पराङ्मुखं तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत ।
विप्रजग्मुः समुत्सृज्य द्वैरथानि समन्ततः ॥ ६९ ॥

भारत ! स्वयं राजा दुर्योधनहीको युद्धसे पराङ्मुख हो भागते देख तुम्हारी सेना सब ओरसे द्वैरथ युद्ध छोडकर भागने लगी ॥ ६९ ॥

तान्दृष्ट्वातिरथान्सर्वान्धार्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् ।
जवेनाभ्यपतद्भीमः किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ७० ॥

उन सब अतिरथी धृतराष्ट्र पुत्रोंको युद्धसे पराङ्मुख होकर भागते देख, अनेक बाण छोडते हुए भीमसेन वेगसे उनके पीछे दौडे ॥ ७० ॥

ते वध्यमाना भीमेन धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ।
कर्णमासाद्य समरे स्थिता राजन्समन्ततः ।
स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽभूत्सुमहाबलः ॥ ७१ ॥

हे राजन् ! तब भीमसेनके बाणोंसे व्याकुल होकर युद्धसे पराङ्मुख हुए वे सब धृतराष्ट्रके पुत्र कर्णके पास जाकर खडे हुए। महापराक्रमी महाबलवान् उनके लिये द्वीपके समान आश्रयस्थान हुआ ॥ ७१ ॥

भिन्ननौका यथा राजन्द्वीपमासाद्य निर्वृताः
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ॥ ७२ ॥

पुरुषव्याघ्र ! जैसे टूटी हुई नौकाके मनुष्य कुछ कालके बाद किसी द्वीप पहुंचकर सुख पाते हैं ॥ ७२ ॥

तथा कर्णं समासाद्य तावका भरतर्षभ ।
समाश्वस्ताः स्थिता राजन्संप्रहृष्टाः परस्परम् ।
समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ३१९१ ॥

भरत श्रेष्ठ ! ऐसे ही तुम्हारे सब सैनिक कर्णके पास जाकर परस्पर आश्वासन पाकर प्रसन्नचित्त होकर खडे हुए। थोडे समयके पश्चात् फिर मृत्यु ही युद्धसे निवृत्त करेगी, यह निश्चय करके युद्ध करनेको चले ॥ ७३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ ॥ ३१९१ ॥

: ५६ :

धृतराष्ट्र उवाच

ततो भग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्किं नु सौबलो वापि संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जब समरमें भीमसेनने हमारी सेनाओंको भगा दिया, तब दुर्योधन और शकुनिने क्या कहा ? ॥ १ ॥

कर्णो वा जयतां श्रेष्ठो योधा वा मामका युधि ।
कृपो वा कृतवर्मा च द्रौणिर्दुःशासनोऽपि वा ॥ २ ॥

विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ कर्ण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा अथवा दुःशासन आदि हमारे वीरोंने क्या कहा ? ॥ २ ॥

अत्यद्भुतमिदं मन्ये पाण्डवेयस्य विक्रमम् ।
यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि ॥ ३ ॥

हम भीमसेनका यह पराक्रम बहुत ही अद्‌भुत समझते हैं, राधापुत्र कर्णने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार योद्धाओंका सब कार्य किया ॥ ३ ॥

कुरूणामपि सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः ।
शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च संजय ॥ ४ ॥

उस समय शत्रुनाशन कर्ण ही हमारे सब कौरव योद्धाओंका प्राण, कवचके समान संरक्षक, प्रतिष्ठा और जीवनकी आशा थी ॥ ४ ॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा ।
राधेयानामधिरथः कर्णः किमकरोद्युधि ॥ ५ ॥

अमित तेजस्वी कुन्तीपुत्रसे अपनी सेनाको भगायी गयी देख, राधा और अधिरथ पुत्र कर्णने युद्धमें क्या किया ? ॥ ५ ॥

पुत्रा वा मम दुर्धर्षा राजानो वा महारथाः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ६ ॥

अथवा हमारे महापराक्रमी पुत्र और महारथी राजाओंने क्या किया ? संजय ! सो तुम सब हमसे कहो, क्योंकि तुम निवेदन करनेमें कुशल हो ॥ ६ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
जघान सोमकान्सर्वान्भीमसेनस्य पश्यतः ।
भीमोऽप्यतिबलः सैन्यं धार्तराष्ट्रं व्यपोथयत् ॥ ७ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! दोपहरमें भीमसेनके देखते प्रतापी सूतपुत्र कर्णने सब सोमकवंशियोंका नाश किया ॥ ७ ॥

द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।
यन्तारमब्रवीत्कर्णः पाञ्चालानेव मा वह ॥ ८ ॥

महाबली भीमसेनने भी कौरवोंकी सेनाका नाश किया । बुद्धिमान भीमसेनसे अपनी कौरव सेनाको भगायी जाती देख, कर्ण सारथि शल्यसे बोले— मुझे पाञ्चाल सेनाकी ओर ही ले चले ॥ ८ ॥

मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान्महाजवान् ।
प्राहिणोच्चेदिपाञ्चालान्करूषांश्च महाबलः ॥ ९ ॥

तब महा बलवान् मद्रराज शल्यने कर्णके वचन सुन अत्यन्त शीघ्र चलनेवाले सफेद घोडोंको चेदि, पाञ्चाल और करुष देशीय सेनाकी ओर हांका ॥ ९ ॥

प्रविश्य च स तां सेनां शल्यः परबलार्दनः ।
न्ययच्छत्तुरगान्हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ॥ १० ॥

शत्रुसेनाको पीडित करनेवाले शल्यने उस सेनामें प्रवेश करके, प्रसन्न चित्तसे जहां सेनापतिने इच्छा की, वहां घोडोंको चलाया ॥ १० ॥

तं रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
संदृश्य पाण्डुपाञ्चालास्त्रस्ता आसन्विशां पते ॥ ११ ॥

प्रजापते ! उस बाघके चमडेसे मढे हुए और मेघके समान शब्दवाले उस रथको देखकर पाञ्चाल और पाण्डवोंकी सेना त्रस्त हो गयी ॥ ११ ॥

ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १२ ॥

उस समय महा युद्धमें उस रथका ऐसा शब्द हुआ, जैसे मेघ गर्जता है, अथवा पर्वत फटता है ॥ १२ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्णोऽप्याकर्णनिःसृतैः ।
जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १३ ॥

अनन्तर ! कर्णने अपने कानतक खींचकर छोडे गये सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवोंके सैंकडो और सहस्रों योद्धाओंको मार डाला ॥ १३ ॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥

युद्धमें इस प्रकार अतिमानुष कर्म करनेवाले उसको पाण्डवोंके महाधनुर्धर महारथियोंने घेर लिया ॥ १४ ॥

तं शिखण्डी च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाःससात्यकाः ।
परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः ॥ १५ ॥

शिखण्डी, भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र और सात्यकि ये सब इकट्ठे होकर राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उसे घेरकर उसपर बाण वर्षाने लगे ॥ १५ ॥

सात्यकिस्तु ततः कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः ।
अताडयद्रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ॥ १६ ॥

फिर शूर नरश्रेष्ठ सात्यकिने रणभूमिमें बीस तीक्ष्ण बाण कर्णके कण्ठभागमें मारे ॥ १६ ॥

शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च पञ्चभिः ।
द्रौपदेयाश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ।
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥ १७ ॥

शिखण्डीने पच्चीस, धृष्टद्युम्नने सात, द्रौपदीके पुत्रोंने चौंसठ, सहदेवने सात और नकुलने सौ तेज बाण कर्णके शरीरमें मारे और उसको विद्ध किया ॥ १७ ॥

भीमसेनस्तु राधेयं नवत्या नतपर्वणाम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबलः ॥ १८ ॥

उसी समय महा बलवान् भीमसेनने क्रोध करके युद्धमें कर्णके कण्ठभागमें नब्बे तेज बाण मारे ॥ १८ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिर्विक्षिपन्धनुरुत्तमम् ।
मुमोच निशितान्बाणान्पीडयन्सुमहाबलः ।
तान्प्रत्यविध्यद्राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १९ ॥

तब अधिरथपुत्र महा बलवान् कर्णने हंसकर अपना उत्तम धनुष घुमाया और उन सबको पीडित करते हुए उनपर अनेक तीक्ष्ण बाण छोडे । कर्णने सब वीरोंको पांच पांच बाण मारकर व्यथित किया ॥ १९ ॥

+

सात्यकेस्तु धनुश्छित्त्वा ध्वजं च पुरुषर्षभः ।
अथैनं नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २० ॥

पुरुषश्रेष्ठ कर्णने सात्यकिका धनुष और ध्वजा काट दी, और नौ बाण सात्यकिके हृदयमें मारे ॥ २० ॥

भीमसेनस्तु तं क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परन्तपः ॥ २१ ॥

फिर क्रोध करके भीमसेनने उसको तीस बाणोंसे घायल किया । मारिष ! कर्णने एक भल्ल बाणसे सहदेवकी ध्वजा काट दी और शत्रुतापन कर्णने तीन बाणोंसे उनके सारथिको मार डाला ॥ २१ ॥

विरथान्द्रौपदेयांश्च चकार पुरुषर्षभः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २२ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! निमिषार्धमें ही द्रौपदीके पुत्रोंको रथहीन कर दिया । यह अद्भुत ही कार्य हुआ ॥ २२ ॥

विमुखीकृत्य तान्सर्वाञ्शरैः संनतपर्वभिः ।
पाञ्चालानहनच्छूरश्चेदीनां च महारथान् ॥ २३ ॥

शूर कर्णने अपने तेज बाणोंसे इन सबको इस प्रकार युद्धमें विमुख करके, चेदी और पाञ्चाल देशीय महारथियोंको मारना शुरू किया ॥ २३ ॥

ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशां पते ।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्दयन् ।
ताञ्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः ॥ २४ ॥

पृथ्वीपते ! चेदि और मत्स्य देशके सब वीर कर्णके बाणोंसे समरमें व्याकुल होते हुए भी अकेले कर्णपर धावा करके उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । महारथी सूत पुत्रने उनको तीक्ष्ण बाणोंसे घायल किया ॥ २४ ॥

एतदत्यद्भुतं कर्णे दृष्टवानस्मि भारत ।
यदेकः समरे शूरान्सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥
यतमानान्परं शक्त्यायोधयत्तांश्च धन्विनः ।
पाण्डवेयान्महाराज शरैर्वारितवान्रणे । ॥ २६ ॥

भारत ! उस समय हमने यह कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा कि अकेले प्रतापी सूतपुत्र कर्ण युद्धमें पूरी शक्तिमें अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक युद्ध करते हुए, पाण्डवोंके अनेक धनुषधारियोंसे युद्ध करते रहे । हे महाराज ! अकेले कर्णने रणमें पाण्डवोंके अनेक वीरोंको अपने बाणोंसे निवारण कर दिया ॥ २५–२६ ॥

तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः ।
तुतुषुर्देवताः सर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ २७ ॥

भारत ! महात्मा कर्णकी शीघ्रतासे सब देवता, सिद्ध और श्रेष्ठ ऋषि बहुत प्रसन्न हुए ॥२७॥

अपूजयन्महेष्वासा धार्तराष्ट्रा नरोत्तमम् ।
कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम् ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्रके महाधनुर्धर पुत्रोंने भी सब धनुषधारियोंमें और रथियोंमें श्रेष्ठ नरोत्तम कर्णका बहुत सत्कार किया ॥ २८ ॥

ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम् ।
कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान् ॥ २९ ॥

महाराज ! कर्ण शत्रुओंकी सेनाको दग्ध करने लगा, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें प्रज्वलित आग सूखे काष्ठ और घासको जलाती है ॥ २९ ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः ।
प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महाबलम् ॥ ३० ॥

कर्णके बाणोंसे मारे जाते हुए पाण्डव सैनिक युद्धमें महा बलवान् कर्णको देखकर डरकर इधर उधर भागने लगे ॥ ३० ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्पाञ्चालानां महारणे ।
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः ॥ ३१ ॥

उस समय कर्णके उत्तम धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे, मारे जानेवाले पाञ्चाल सैनिकोंका महा युद्धमें महान् करुण शब्द होने लगा ॥ ३१ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः ।
कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः ॥ ३२ ॥

उस दारुण शब्दको सुनकर पाण्डवोंकी बडी सेना डरसे व्याकुल हो गयी, सब शत्रु सैनिक समरमें अकेले कर्णको ही श्रेष्ठ योद्धा मानने लगे ॥ ३२ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे राधेयः शत्रुकर्शनः ।
यदेकं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम् ॥ ३३ ॥

शत्रुनाशन राधापुत्र कर्णने फिर वहां अद्भुत कर्म करना आरम्भ किया, जिस कारण सब पाण्डव वीर उस समय कर्णकी ओर देख न सके ॥ ३३ ॥

यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते ।
तथा तत्पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते ॥ ३४ ॥

जैसे पानी पर्वतमें लगनेसे इधर उधरको फैल जाता है, ऐसे ही पाण्डवोंकी सेना कर्णके पास पहुंचकर इधर उधर भाग जाती थी ॥ ३४ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
दहंस्तस्थौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम् ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! धुंआ रहित जलती अग्निके समान प्रज्वलित महाबाहु कर्ण भी समरमें पाण्डवोंकी बडी सेनाको दग्ध करता हुआ खडा था ॥ ३५ ॥

शिरांसि च महाराज कर्णांश्चश्चलकुण्डलान् ।
बाहूंश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः ॥ ३६ ॥

महाराज ! वीर कर्णने अपने बाणोंसे वीरोंके शिर, डोलनेवाले कुण्डल सहित कान और हाथ शीघ्रतासे काट दिये ॥ ३६ ॥

हस्तिदन्तान्त्सरून्खड्गान्ध्वजाञ्शक्तीर्हयान्गजान् ।
रथांश्च विविधान्राजन्पताका व्यजनानि च ॥ ३७ ॥

राजन् ! हाथीदांतके मूंठवाले खड्ग, ध्वजा, शक्ति, घोडे, हाथी, अनेक प्रकारके पताका और व्यजनोंको भी काट दिया ॥ ३७ ॥

अक्षेषायुगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च ।
चिच्छेद शतधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः ॥ ३८ ॥

विविध पहिये और पहियोंकी नाभी, धुरी, घोडोंकी लगाम योद्धाओंके व्रतका पालन करनेवाले कर्णने शतशः काट दिये ॥ ३८ ॥

तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ ३९ ॥

भारत ! कर्णके बाणोंसे मारे गये घोडे और हाथीयोंकी लाशोंसे पृथ्वीपर चलना दुर्गम हो गया । पृथ्वीमें मांस और रुधिरकी कीचड हो गयी ॥ ३९ ॥

विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः ।
रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४० ॥

मरे हुए घोडे, पैदल, रथ और हाथियोंसे भर जानेके कारण वहांकी पृथ्वी ऊंची नीचि हो गयी । उधरके भूमिका कुछ पता नहीं जाना जाता था ॥ ४० ॥

नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम् ।
घोरे शरान्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृम्भिते ॥ ४१ ॥

कर्णका अस्त्र जब वेगसे बढने लगा तो बाणोंसे चारों ओर घोर अन्धकार हो रहा था, उसमें योद्धा परस्पर अपने और परायेको नहीं पहचानते थे ॥ ४१ ॥

राधेयचापनिर्मुक्तैः शरैः काञ्चनभूषितैः ।
संछादिता महाराज यतमाना महारथाः ॥ ४२ ॥

हे महाराज ! राधापुत्रके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाणोंसे सब पाण्डव महारथी छा गये ॥ ४२ ॥

ते पाण्डवेयाः समरे कर्णेन स्म पुनः पुनः ।
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः ॥ ४३ ॥

कर्णने बार बार अपने बाणोंसे समर भूमिमें प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले पाण्डवोंके महारथोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४३ ॥

मृगसंघान्यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने ।
कर्णस्तु समरे योधांस्तत्र तत्र महायशाः ।
कालयामास तत्सैन्यं यथा पशुगणान्वृकः ॥ ४४ ॥

जैसे वनमें क्रोधित सिंह मृग समूहोंको भगाता है, उसी प्रकार महा यशस्वी कर्णने उन योद्धाओंको इधर उधर डराकर भगा दिया । जैसे भेडिया पशु समूहोंको भयभीत करके भगाता है, ऐसे ही कर्णने पाण्डवोंकी सेनाको भगाया ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखीम् ।
अभिजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान्रवान् ॥ ४५ ॥

पाण्डवोंकी सेनाको युद्धसे भागते देख, तुम्हारे महा धनुषधारी पुत्र भयंकर गर्जना करते हुए आये ॥ ४५ ॥

दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः ।
वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! तब दुर्योधन अत्यंत प्रसन्न हो गया और वह आनन्दित होकर चारों ओर अनेक प्रकारके बाजे बजवाने लगा ॥ ४६ ॥

पाञ्चालापि महेष्वासा भग्ना भग्ना नरोत्तमाः ।
न्यवर्तन्त यथा शूरा मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ४७ ॥

तब युद्ध छोडकर भागे गये महा धनुषधारी नरश्रेष्ठ पाञ्चाल भी फिर शूर योद्धाओंके समान मृत्युका निश्चय करके लौटे ॥ ४७ ॥

तान्निवृत्तान्रणे शूरान्राधेयः शत्रुतापनः ।
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः ॥ ४८ ॥

पुरुषश्रेष्ठ शत्रुतापन कर्ण उन लौटे हुए वीरोंको युद्धमें अनेकशः भग्न कर देता था ॥ ४८ ॥

तत्र भारत कर्णेन पाञ्चाला विंशती रथाः ।
निहताः सादयः क्रोधाच्चेदयश्च परःशताः ॥ ४९ ॥

भारत ! कर्णने बाणोंसे वहां बीस पाञ्चाल रथियोंको और सौसे अधिक चेदि देशके वीरोंको मार डाला ॥ ४९ ॥

कृत्वा शून्यान्रथोपस्थान्वाजिपृष्ठांश्च भारत ।
निर्मनुष्यान्गजस्कन्धान्पादातांश्चैव विद्रुतान् ॥ ५० ॥

भारत ! रथकी बैठकें और घोडोंकी पीठें सूनी कर दीं, हाथियोंके कंधोपर कोई मनुष्य नहीं रखा और पैदलोंको भी भगाया ॥ ५० ॥

आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यः परन्तपः ।
कालान्तकवपुः क्रूरः सूतपुत्रश्चचार ह ॥ ५१ ॥

उस समय शत्रुतापन कर्णका तेज दोपहरके सूर्यके समान दीखता था । उसकी ओर देखना कठिन था । उस समय यमराजके समान शरीरवाला क्रूर सूतपुत्र कर्ण सब ओर घूमता था ॥ ५१ ॥

एवमेतान्महाराज नरवाजिरथद्विपान् ।
हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसूदनः ॥ ५२ ॥

महाराज ! इस प्रकार शत्रुनाशन महा धनुर्धर कर्ण शत्रुओंके मनुष्य, घोडे, रथ और हाथियोंका वध करके खडा रह गया ॥ ५२ ॥

यथा भूतगणान्हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः ।
तथा स सोमकान्हत्वा तस्थावेको महारथः ॥ ५३ ॥

जैसे महा बलवान् यमराज प्रजाओंका नाश करके खडे होते हैं, ऐसे ही महारथी कर्ण सोमकोंका संहार करके अकेला ही खडा रह गया ॥ ५३ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम पाञ्चालानां पराक्रमम् ।
वध्यमानापि कर्णेन नाजह्नू रणमूर्धनि ॥ ५४ ॥

हमने उस समय कर्णसे युद्ध करते पाञ्चालोंका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि उन्होंने कर्णसे मारे जानेपर भी युद्धके अग्र भागको नहीं छोडा ॥ ५४ ॥

राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा ।
अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्चापि सौबलः ।
न्यहनन्पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५ ॥

राजा दुर्योधन, दुःशासन, शरद्वनके पुत्र कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और सुबलपुत्र शकुनिने भी पाण्डवोंके सैकडों–सहस्रों वीरोंका नाश कर डाला ॥ ५५ ॥

कर्णपुत्रौ च राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ ।
अनाशयेतां बलिनः पाञ्चालान्वै ततस्ततः ।
तत्र युद्धं तदा ह्यासीत्क्रूरं विशसनं महत् ॥ ५६ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके सत्य विक्रमी पुत्र दोनों बलवान् भाई भी पाञ्चालोंकी सेनाका सब तरहसे नाश करने लगे । इसी प्रकार वहां महान् संहारकारी और क्रूर महान् युद्ध हुआ ॥ ५६ ॥

तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम् ॥ ५७ ॥

इसी प्रकार पाण्डवोंकी ओरसे वीर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पांचों पुत्र आदि क्रोध करके तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ ५७ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानां ततस्ततः ।
तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ३२४९ ॥

इस प्रकार पाण्डववीरोंका सब ओरसे नाश हुआ । महा बलवान् भीमसेनसे मिलकर युद्धमें तुम्हारे वीरोंका भी बहुत संहार हुआ ॥ ५८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ ३२४९ ॥

: ५७ :

सञ्जय उवाच

अर्जुनस्तु महाराज कृत्वा सैन्यं पृथग्विधम् ।
सूतपुत्रं सुसंरब्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले- हे राजन् ! उस महा युद्धमें अर्जुनने भी अत्यंत क्रोधमें भरे हुए कर्णको देखकर सेनाका अनेक प्रकारसे नाश किया ॥ १ ॥

शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिवाहिनीम् ।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभ ॥ २ ॥

मांस, चर्बी और हड्डियोंसे पूर्ण रुधिररूपी जलकी नदी इस पृथ्वीपर बहा दी । हे पुरुष-श्रेष्ठ ! इस प्रकार इस घोर नदीको बहाकर अर्जुन श्रीकृष्णसे ऐसे बोले- ॥ २ ॥

एत केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते ।
भीमसेनादयश्चैते योधयन्ति महारथान् ।
एते द्रवन्ति पाञ्चालाः कर्णात्रस्ता जनार्दन ॥ ३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! युद्धमें यही ध्वजा सूतपुत्रकी दीख पडती है । ये भीमसेन आदि योद्धा महा-रथियोंसे युद्ध कर रहे हैं । हे जनार्दन ! कर्णके डरसे ये पाञ्चाल वीर भागे जाते हैं ॥ ३ ॥

एष दुर्योधनो राजा श्वेतच्छत्रेण भास्वता ।
कर्णेन भग्नान्पाञ्चालान्द्रावयन्बहु शोभते ॥ ४ ॥

ये तेजस्वी सफेद छत्रधारी राजा दुर्योधन, कर्णसे भग्न हुए पाञ्चालोंको भगाते हुए बहुत शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महाबलः ।
एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः ।
अवध्यमानास्तेऽस्माभिर्घातयिष्यन्ति सोमकान् ॥ ५ ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा और महा बलवान् अश्वत्थामा ये सब वीर सूतपुत्र कर्णसे रक्षित होकर राजा दुर्योधनकी रक्षा करते हैं । यदि अब हम उन्हें न मारेंगे, तो ये सोमक सेनाका नाश कर डालेंगे ॥ ५ ॥

एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः ।
सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन्बहु शोभते ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण ! ये घोडोंकी विद्या जाननेवाले शल्य रथपर बैठकर सूतपुत्रका रथ हांकते हुए बहुत शोभित हो रहे हैं ॥ ६ ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम् ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन ॥ ७ ॥

आज मैंने युद्धमें कर्णको विना मारे किसी प्रकार पीछे नहीं लौटूंगा । इसलिये अब मेरी सम्मतिमें मेरे इस भग्न रथको उसीकी ओर हांकिये ॥ ७ ॥

राधेयोऽप्यन्यथा पार्थान्सृञ्जयांश्च महारथान् ।
निःशेषान्समरे कुर्यात्पश्यतोनौ जनार्दन ॥ ८ ॥

हे जनार्दन ! अन्यथा राधापुत्र कर्ण हमारे देखते देखते पाण्डव और सृञ्जय महारथियोंका समरमें संपूर्ण नाश कर देगा ॥ ८ ॥

ततः प्रायाद्रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम् ।
कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ ९ ॥

अनन्तर अर्जुनके ऐसे वचन सुन श्रीकृष्ण रथसे सव्यसाची अर्जुनके साथ कर्णका द्वैरथ युद्ध करानेके लिये शीघ्रतासे तुम्हारी सेनामें महाधनुर्धर कर्णकी ओर चले ॥ ९ ॥

प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः ।
आश्वासयन्रथेनैव पाण्डुसैन्यानि सर्वशः ॥ १० ॥

महाबाहु श्रीकृष्ण अर्जुनकी सम्मतिसे पाण्डव सेनाको सब प्रकारसे प्रसन्न करते हुए रथसे युद्ध करनेको चले ॥ १० ॥

रथघोषः स संग्रामे पाण्डवेयस्य संबभौ ।
वासवाशनितुल्यस्य महौघस्येव मारिष ॥ ११ ॥

मारिष ! उस समय युद्धमें अर्जुनके रथका शब्द इन्द्रके वज्रकी गडगडाहट और महान् जल-प्रवाहके समान लगता था ॥ ११ ॥

महता रथघोषेण पाण्डवः सत्यविक्रमः ।
अभ्ययादप्रमेयात्मा विजयस्तव वाहिनीम् ॥ १२ ॥

सत्य पराक्रमी अमयात्मा अर्जुन अपने रथके महान् शब्दसे तुम्हारी सेनाको पराजित करते हुए कर्णसे युद्ध करनेको चले ॥ १२ ॥

तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
मद्रराजोऽब्रवीत्कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः ॥ १३ ॥

उस समय श्रीकृष्ण सारथि और सफेद घोडोंसे युक्त अर्जुनको आते और उन महात्माकी ध्वजाको देख, मद्रराज शल्य कर्णसे बोले ॥ १३ ॥

अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्समरे यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ १४ ॥

हे कर्ण ! जिसको तुम पूछते थे, यह सफेद घोडे और श्रीकृष्ण सारथि सहित समरमें शत्रु-ओंका नाश करते हुए उसी अर्जुनका रथ चला आता है ॥ १४ ॥

एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन्गाण्डिवं धनुः ।
तं हनिष्यसि चेदद्य तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ १५ ॥

वे देखो, गाण्डीव धनुष धारण किये अर्जुन खडे हैं । यदि तुम उनको आज युद्धमें मार डालोगे, तो हमारा सबका कल्याण होगा ॥ १५ ॥

एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥ १६ ॥

अर्जुन शीघ्रतासे अनेक शत्रुओंका वध करते हैं, इसलिये उनके भयसे दुर्योधनकी यह सेना चारों ओर भग्न होकर भागी जाती है ॥ १६ ॥

वर्जयन्सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनञ्जयः ।
त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥ १७ ॥

अर्जुनका शरीर जैसा प्रोत्साहित हो रहा है, उससे मैं मानता हूं कि सब सेनाओंको छोडकर केवल तुम्हारी ही ओर त्वरासे चल आते हैं ॥ १७ ॥

×

न ह्यवस्थाप्यते पार्थो युयुत्सुः केनचित्सह ।
त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ॥ १८ ॥
इस समय भीमसेनको व्याकुल देख अर्जुनको बहुत क्रोध हुआ है, इससे हमें निश्चय होता है कि ये तुम्हारे सिवाय और किसीसे नहीं लडेंगे ॥ १८ ॥

विरथं धर्मराजं च दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम् ।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ १९ ॥
आज महाराज धर्मराजको रथहीन और घावोंसे बहुत व्याकुल देखकर, शिखण्डी, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, सात्यकि ॥ १९ ॥

द्रौपदेयान्युधामन्युमुत्तमौजसमेव च ।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ॥ २० ॥
द्रौपदीके पुत्र, युधामन्यु, उत्तमौजा, नकुल, सहदेव दोनों भाई– इन सबको व्याकुल देखकर ॥ २० ॥

सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परन्तप ।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वधन्विनाम् ॥ २१ ॥
ये क्रोधसे नेत्र लाल किये, सब धनुषधारियोंको मारनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर अर्जुन केवल एक रथसे सहसा तुम्हारी ही ओर आक्रमणके लिये चले आते हैं ॥ २१ ॥

त्वरितोऽभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम् ।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः ॥ २२ ॥
अर्जुन सब सेनाओंको छोडकर अत्यंत शीघ्रतासे हमारे ऊपर धावा कर रहे हैं, इसमें संशय नहीं है, इसलिये हे कर्ण ! तुम अर्जुनहीसे युद्ध करनेको चलो, क्योंकि तुम्हारे सिवाय और किसी धनुषधारीको उनसे युद्ध करनेकी शक्ति नहीं है ॥ २२ ॥

न तं पश्यामि लोकेऽस्मिंस्त्वत्तोऽप्यन्यं धनुर्धरम् ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं यो वेलामिव धारयेत् ॥ २३ ॥
हम तुम्हारे सिवाय इस जगत्में दूसरे धनुर्धर वीरको ऐसा नहीं देखते, जो समुद्रमें उठे हुए ज्वारके समान समरमें क्रोध भरे अर्जुनको रोक सके ॥ २३ ॥

न चास्य रक्षां पश्यामि पृष्ठतो न च पार्श्वतः ।
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः ॥ २४ ॥
मैं देखता हूं कि अर्जुनके पीछे या अगलबगलसे कोई रक्षा करनेवाला नहीं है, वे अकेले ही तुमसे लडनेको चले आते हैं । इसलिये देखो तुम्हें अपनी सफलताके लिये प्रारब्धने कैसा सुन्दर समय दिया है ? ॥ २४ ॥

त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे ।
तवैष भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ॥ २५ ॥

हे राधापुत्र ! तुम ही श्रीकृष्ण और अर्जुनको युद्धमें जीत सकते हो । यह भार तुम्हारे ही शिर है, इसलिये तुम ही इससे लडनेको जाओ ॥ २५ ॥

त्वं कृतो ह्येव भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपैरपि ।
सव्यसाचिप्रतिरथस्तं निवर्तय पाण्डवम् ॥ २६ ॥

तुमने भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्यके समान पराक्रम किया है, इसलिये तुम जो सव्यसाची अर्जुनके समान रथि हैं, तो उन पाण्डुपुत्रको रोको ॥ २६ ॥

लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा ।
लयस्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनञ्जयम् ॥ २७ ॥

हे कर्ण ! लहराते हुए सांप, गर्जते हुए सांड और बलवान् सिंहके समान भयंकर अर्जुनको तुम मार डालो ॥ २७ ॥

एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः ॥ २८ ॥

युद्धमें दुर्योधनकी सेनाके ये महारथी नरेन्द्र अर्जुनके भयसे युद्धकी इच्छा छोडकर शीघ्रतासे भागे जाते हैं ॥ २८ ॥

द्रवतामथ तेषां तु युधि नान्योऽस्ति मानवः ।
भयहा यो भवेद्वीर त्वामृते सूतनन्दन ॥ २९ ॥

हे वीर सूतपुत्र ! अब इन भागते हुए वीरोंका भय नाश करनेमें तुम्हारे सिवाय और कोई दूसरा मनुष्य युद्धमें समर्थ नहीं हैं ॥ २९ ॥

एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ।
विष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकाङ्क्षिणः ॥ ३० ॥

हे पुरुषव्याघ्र ! इस युद्धमें तुम द्वीपके समान हो । तुमसे शरण पानेकी इच्छा करनेवाले ये सब कौरव तुम्हारे ही आश्रयमें हैं ॥ ३० ॥

वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया ।
गान्धाराश्च यया धृत्या जिताः संख्ये सुदुर्जयाः ॥ ३१ ॥

हे पुरुषसिंह ! विदेह, अंबष्ठ, काम्बोज, नग्नजित् और गान्धार देशके अत्यंत दुर्जय सब क्षत्रियोंको जिस धैर्यसे और बलसे तुमने जीता था ॥ ३१ ॥

तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना ॥ ३२ ॥

आज उसी बलको अपनाओ और अर्जुनके सङ्गमें युद्ध करो और अर्जुनसे सदा प्रसन्न, वृष्णि-वंशी वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णका भी सामना करो ॥ ३२ ॥

कर्ण उवाच

प्रकृतिस्थो हि मे शल्य इदानीं संमतस्तथा ।
प्रतिभासि महाबाहो विभीश्चैव धनञ्जयात् ॥ ३३ ॥

कर्ण बोले— हे महाबाहो शल्य ! इस समय तुम अपने मूल स्वरूपमें दिखाई देते हो और मुझसे सहमत हो । तुम अर्जुनसे डर रहे हो ऐसा जान पडता है ॥ ३३ ॥

पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे ।
एकोऽद्य निहनिष्यामि पाण्डवानां महाचमूम् ॥ ३४ ॥

आज तुम हमारे बाहु और शिक्षाका बल देखो । आज मैं अकेला ही पाण्डवोंकी बडी सेनाका नाश करूंगा ॥ ३४ ॥

कृष्णौ च पुरुषव्याघ्रौ तच्च सत्यं ब्रवीमि ते ।
नाहत्वा युधि तौ वीरावपयास्ये कथंचन ॥ ३५ ॥

हे पुरुषसिंह ! आज तुमसे मैं सत्य कहता हूं कि युद्धमें उन दोनों वीर पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध किये विना मैं किसी तरह युद्धसे नहीं लौटूंगा ॥ ३५ ॥

स्वप्स्ये वा निहतस्ताभ्यामसत्यो हि रणे जयः ।
कृतार्थो वा भविष्यामि हत्वा तावथ वा हतः ॥ ३६ ॥

अथवा वे ही दोनों मुझे मार डालेंगे और मैं सदाके लिये सो जाऊंगा; क्योंकि युद्धमें जयका कुछ निश्चय नहीं रहता । आज उन दोनोंको मारकर अथवा उनसे मारा जाकर कृतार्थ हो जाऊंगा ॥ ३६ ॥

नैतादृशो जातु बभूव लोके रथोत्तमो यावद् अनुश्रुतं नः ।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं महाहवे पश्य च पौरुषं मे ॥ ३७ ॥

हे शल्य ! हमने जहांतक सुना है, वहांतक जगत्में अर्जुनके समान श्रेष्ठ महान् योद्धा कभी उत्पन्न हुआ नहीं, सो हम आज उसीसे महासमरमें युद्ध करेंगे, तुम हमारे पराक्रमको देखो ॥ ३७ ॥

रथे चरत्येष रथप्रवीरः शीघ्रैर्हयैः कौरवराजपुत्रः ।
स वाद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेतत्कर्णस्यान्तादेतदन्ताः स्थ सर्वे ॥ ३८ ॥

ये कौरव राजपुत्र महारथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन शीघ्रगामी घोडोंके रथपर चढे हुए सेनामें घूम रहे हैं, सो ये आज हमें मृत्युके संकटमें डाल देंगे और मुझ कर्णका अन्त होते ही सब कौरव सेनाका नाश निश्चित ही है ॥ ३८ ॥

अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्ताववेपिनौ जातकिणौ बृहन्तौ ।
दृढायुधः कृतिमान्क्षिप्रहस्तो न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः ॥ ३९ ॥

इन राजपुत्रके बडे हाथोंमें कभी पसीना नहीं आता है, उनमें धनुषकी ठेठ पड गई हैं और वे कांपते नहीं । इनके आयुध सुदृढ हैं, ये युद्धकलानिपुण और शीघ्र शस्त्र चलानेवाले हैं । पाण्डुपुत्र अर्जुनके समान योद्धा जगत्में दूसरा कोई नहीं है ॥ ३९ ॥

गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रानेकं यथा तान्क्षितिपान्प्रमथ्य ।
ते क्रोशमात्रं निपतन्त्यमोघाः कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम् ॥४०॥

ये कंकपुत्रयुक्त अनेक बाण हाथमें लेकर, एक बाणके समान शीघ्रता सहित छोडते हैं, और राजाओंको मारते हैं; वे सब अमोघ बाण एक कोसतक जाकर गिरते हैं । इस पृथ्वीपर उनके समान कौन दूसरा योद्धा है ? ॥ ४० ॥

अतोषयत्पाण्डवेयो हुताशं कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी ।
लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची ॥४१॥

इन्हीं महारथी और महातेजस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था । वहींसे महात्मा श्रीकृष्णको चक्र और सव्यसाची अर्जुनको गांडीव धनुष मिला था ॥ ४१ ॥

श्वेताश्वयुक्तं च सुघोषमग्र्यं रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः ।
महेषुधी चाक्षयौ दिव्यरूपौ शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात् ॥४२॥

वहीं यह उत्तम शब्दवाला, सफेद घोडोंके सहित रथ, दो दिव्य अक्षय बडे तूणीर और अनेक दिव्य शस्त्र उदार महाबाहु अर्जुनको अग्निसे मिले थे ॥ ४२ ॥

तथेन्द्रलोके निजघान दैत्यानसंख्येयान्कालकेयांश्च सर्वान् ।
लेभे शङ्खं देवदत्तं स्म तत्र को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम् ॥४३॥

इन्होंने इन्द्रलोकमें जाकर असंख्य कालकेय नामक दानवोंको मारा था । तब वहां देवदत्त शङ्ख पाया था, उन अर्जुनसे इस पृथ्वीपर कौन श्रेष्ठ है ? ॥ ४३ ॥

महादेवं तोषयामास चैव साक्षात्सुयुद्धेन महानुभावः ।
लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम् ॥ ४४ ॥

जिन महानुभावने उत्तम युद्ध करके साक्षात् महादेवको प्रसन्न किया और शिवसे तीन लोकोंको नाश करनेमें समर्थ, महा घोर पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्राप्त किया ॥ ४४ ॥

पृथक्पृथग्लोकपालाः समेता ददुर्ह्यस्त्राण्यप्रमेयाणि यस्य ।
यैस्ताञ्जघानाशु रणे नृसिंहान्स कालखञ्जानसुरान्समेतान् ॥ ४५ ॥

जिनको भिन्न भिन्न लोकपालोंने मिलकर अप्रमेय अस्त्र दिये हैं; जिन नरसिंहने उन्हीं अस्त्रोंसे समस्त कालखञ्ज दानवोंका युद्धमें शीघ्र ही नाश किया ॥ ४५ ॥

तथा विराटस्य पुरे समेतान्सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा ।
जहार तद्गोधनमाजिमध्ये वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः ॥ ४६ ॥

जिन्होंने एकत्र हुए हम सबको विराट नगरमें एक ही रथसे युद्धमें जीतकर, विराटका गौधन लौटा दिया और सब महारथियोंके वस्त्र भी उतार लिये थे ॥ ४६ ॥

तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं कृष्णाद्वितीयं वरये रणाय ।
अनन्तवीर्येण च केशवेन नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तम् ॥ ४७ ॥

आज हम इस प्रकार सब वीर गुणोंसे भरे, श्रीकृष्णकी सहायतासे युक्त अर्जुनको युद्धके लिये पसंद करते हैं। सो अर्जुन आज अनन्त पराक्रमी, अप्रतिम, सब लोकोंके स्वामी साक्षात् नारायण श्रीकृष्णसे रक्षित हैं ॥ ४७ ॥

वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः ।
महात्मनः शङ्खचक्रासिपाणेर्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य ।
भयं मे वै जायते साध्वसं च दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ४८ ॥

अब शङ्ख, चक्र और खड्ग धारण करनेवाले विष्णुरूप, जगत्को जीतनेवाले, महात्मा वसुदेव पुत्र श्रीकृष्णके गुण तीनों लोकोंके लोग इकट्ठे होकर दस सहस्र वर्षतक कहे, तो भी पार नहीं पा सकते। हाथोंमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देख, मुझे बडा भय लगता है ॥ ४८ ॥

उभौ हि शूरौ कृतिनौ दृढास्त्रौ महारथौ संहननोपपन्नौ ।
एतादृशौ फल्गुनवासुदेवौ कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते नु शल्य ॥ ४९ ॥

हे शल्य ! ये दोनों शूर, युद्ध कुशल, दृढ अस्त्रधारी, महारथी सुदृढ शरीरवाले और बलवान् हैं। ऐसे अर्जुन और श्रीकृष्णसे मेरे सिवाय दूसरा और कौन युद्धके लिये जा सकता है ? ॥ ४९ ॥

एतावाहं युधि वा पातयिष्ये मां वा कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य ।
इति ब्रुवञ्शल्यममित्रहन्ता कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद ॥ ५० ॥
हे महाराज ! बहुत दिनसे महा पराक्रमी अर्जुनसे जो मेरी इच्छा है, सो आजतक पूरी न हुई इससे अधिक और क्या आश्चर्य होगा ? आज युद्धमें मैं इन दोनोंको मारूंगा, या मुझे वे दोनों ही कृष्ण मार डालेंगे, शत्रुनाशन कर्ण शल्यसे ऐसा कहकर समरमें मेघके समान गर्जने लगा ॥ ५० ॥

अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरान् ।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ तथैव गान्धारनृपं सहानुजम् ।
गुरोः सुतं चावरजं तथात्मनः पदातिनोऽथ द्विपसादिनोऽन्यान् ॥ ५१ ॥
तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने समीप आकर उसका अभिनन्दन किया, उससे मिलकर कर्णने कुरुओंमें श्रेष्ठ वीरोंसे, महाबाहु कृपाचार्य और कृतवर्मासे, भाइयोंके सहित गान्धारराज शकुनिसे गुरुपुत्र अश्वत्थामासे अपने छोटे भाईसे तथा और भी सब पैदल, हाथी और घोडेपर चढे वीरोंसे कहा– ॥ ५१ ॥

निरुन्धताभिद्रवताच्युतार्जुनौ श्रमेण संयोजयताशु सर्वतः ।
यथा भवद्भिर्भृशविक्षतावुभौ सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः ॥ ५२ ॥
हे वीरो ! श्रीकृष्ण और अर्जुनपर आक्रमण करो, उन्हें रोको और इन दोनोंको सब प्रयत्न करके शीघ्र ही श्रमसे थका दो । हे नरेन्द्र ! तुम लोग उन दोनोंको घावोंसे अत्यंत व्याकुल कर दो, तब मैं सुखसे क्षतविक्षत हुए इन्हें मार डालूंगा ॥ ५२ ॥

तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं जिघांसवो वीरतमाः समभ्ययुः ।
नदीनदान्भूरिजलो महार्णवो यथा तथा तान्समरेऽर्जुनोऽग्रसत् ॥ ५३ ॥
' ऐसा ही होगा ' ऐसा कहकर वे वीर श्रेष्ठ अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे शीघ्रतासे सब मिलकर आगे गये । जैसे बहुत जलसे भरा हुआ समुद्र सब नदियों और नदोंको शान्त कर देता है, वैसे ही अर्जुनने भी उन सब वीरोंको समरमें ग्रस लिया ॥ ५३ ॥

न सन्दधानो न तथा शरोत्तमान्प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते ।
धनञ्जयस्तस्य शरैश्च दारिता हताश्च पेतुर्नरवाजिकुञ्जराः ॥ ५४ ॥
अर्जुन किस समय उत्तम बाण लेते हैं, किस समय धनुषपर चढाते हैं और किस समय उन्हें छोडते हैं, सो शत्रुओंको नहीं दिखाई देता था; केवल अर्जुनके बाणोंसे विदिर्ण होकर मरकर गिरते हुए मनुष्य, हाथी और [illegible] ॥ ५४ ॥

शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम् ।
न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः ॥ ५५ ॥
जैसे रोगयुक्त नेत्रवाले मनुष्य सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, वैसे ही बाणरूपी किरण और गाण्डीव धनुषरूपी सुंदर मण्डलवाले, प्रलयकालके सूर्यके समान तेजस्वी अर्जुनको कोई कौरव शत्रु नहीं देख सकते थे ॥ ५५ ॥

तमभ्यधावद्विसृजञ्शरान्कृपस्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम् ।
जिघांसुभिस्तान्कुशलैः शरोत्तमान्महाहवे संजवितान्प्रयत्नतः ।
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन्पराभिनद्वक्षसि च त्रिभिस्त्रिभिः ॥५६॥
कृपाचार्य उनपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौडे, वैसे ही कृतवर्मा और तुम्हारे पुत्र स्वयं राजा दुर्योधन अर्जुनके ऊपर बाण वर्षाने लगे। मार डालनेकी इच्छा करनेवाले उन कुशल योद्धाओंसे प्रयत्नपूर्वक चलाये गये उन उत्तम वेगवान् बाणोंको महायुद्धमें अर्जुनने शीघ्र ही अपने बाणोंसे काटकर, सबके हृदयमें तीन तीन बाण मारे ॥ ५६ ॥

स गाण्डिवाभ्यायतपूर्णमण्डलस्तपन्रिपूनर्जुनभास्करो बभौ ।
शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो यथैव सूर्यः परिवेषगस्तथा ॥ ५७ ॥
जैसे वैशाख-ज्येष्ठका घेरा पडा हुआ सूर्य जगत्‌को तपाता है, ऐसे ही बाणरूपी अग्र किरणोंसे युक्त और खींचे हुए गाण्डीव धनुषरूपी मण्डलवाले, अर्जुनरूपी सूर्य तुम्हारी सेनाको तपाते हुए शोभित हो रहे थे ॥ ५७ ॥

अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनञ्जयं पराभिनद्द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः ।
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिं तथा शरैः स नाराचवरैरवाकिरत् ॥ ५८ ॥
अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने दस बाणोंसे अर्जुनको तीनसे श्रीकृष्णको और चारसे चारों घोडोंको मारे फिर वह ध्वजापर बैठे हुए वानरके ऊपर उत्तम नाराच बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५८ ॥

तथा तु तत्तत्स्फुरदात्तकार्मुकं त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण ।
हयांश्चतुर्भिश्चतुरस्त्रिभिर्ध्वजं धनञ्जयो द्रौणिरथान्न्यपातयत् ॥ ५९ ॥
तब अर्जुनने तीन बाणोंसे उसके चमकते हुए धनुषको, एक क्षुरसे सारथिके शिरको चारसे चारों घोडोंको और तीनसे ध्वजाको अश्वत्थामाके रथसे नीचे गिराया ॥ ५९ ॥

स रोषपूर्णोऽशनिवज्रहाटकैरलंकृतं तक्षकभोगवर्चसम् ।
सुबन्धनं कार्मुकमन्यदाददे यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तथा ॥ ६० ॥
अनन्तर अश्वत्थामाने क्रोध करके शनि, हीरा और सुवर्णभूषित और तक्षकके समान वर्णवाले दूसरे सुदृढ धनुषको हाथमें लिया, मानो पर्वतमेंसे महा सांपको ॥ ६० ॥

स्वमायुधं चोपविकीर्य भूतले धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः ।
समानयानावजितौ नरोत्तमौ शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ॥ ६१ ॥
अपने कटे हुए धनुषको पृथ्वीपर फेंककर गुणवान् अश्वत्थामाने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढायी और दोनों अजेय नरश्रेष्ठोंको उत्तम बाणोंसे निकटसे विद्ध किया ॥ ६१ ॥

कृपश्च भोजश्च तथात्मजश्च ते तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ।
कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं हयान्ध्वजं सारथिमेव पत्रिभिः ॥ ६२ ॥
जैसे सूर्यकी ओर अनेक मेघ दौडते हैं, ऐसे ही युद्धमें खडे पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुनकी ओर मेघके समान बाण वर्षाते हुए, कृपाचार्य, कृतवर्मा और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन दौडे। अर्जुनने अपने बाणोंसे कृपाचार्यके घोडे, सारथि, ध्वज और बाणोंके सहित धनुष काट दिये ॥ ६२ ॥

शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः ।
जघान चाश्वान्कृतवर्मणः शुभान्ध्वजं च चिच्छेद ततः प्रतापवान् ॥ ६३ ॥
इसी प्रकार प्रतापी अर्जुनने गर्जनेवाले तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके ध्वज और धनुषको अपने बाणोंसे काट दिया, फिर कृतवर्माके उत्तम घोडोंको मार डाला और ध्वजाको काट दिया ॥ ६३ ॥

सवाजिसूतेष्वसनान्सकेतनाञ्जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः ।
ततः प्रकीर्णं सुमहद्बलं तव प्रदारितं सेतुरिवाम्भसा यथा
ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशवश्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान् ॥ ६४ ॥
फिर शीघ्रतासे घोडे, सारथि, धनुष और ध्वजाओं सहित रथ, हाथी और घोडोंको मारना शुरू किया। फिर पानीसे टूटे हुए बांधके समान तुम्हारी बडी सेना इधर उधर बिखर गई। तब श्रीकृष्णने बहुत शीघ्रतासे अर्जुनके रथको सब व्याकुल हुए शत्रुओंकी दाहिनी ओर पहुंचा दिया ॥ ६४ ॥

ततः प्रयान्तं त्वरितं धनञ्जयं शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ।
समन्वधावन्पुनरुच्छ्रितैर्ध्वजै रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः ॥ ६५ ॥
जैसे इन्द्र वृत्रासुरको मारनेकी इच्छासे आगे जाते हैं, वैसे ही वेगपूर्वक आगे बढनेवाले अर्जुनपर अनेक महारथियोंने ध्वजा उडाते हुए उत्तम रथोंसे आक्रमण किया ॥ ६५ ॥

अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्धनञ्जयस्याभि रथं महारथाः ।
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरैर्विदारयन्तो व्यनदन्सुभैरवम् ॥ ६६ ॥
अर्जुनके रथकी ओर जाते हुए शत्रुओंके पास पहुंचकर महारथी शिखण्डी, सात्यकि, नकुल और सहदेवने उन्हें रोका और अपने तेज बाणोंसे तुम्हारी सेनाको नाश करते हुए भयंकर गर्जना करने लगे ॥ ६६ ॥

ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं शरैस्तदाशुगतिभिः सुतेजनैः ।
कुरुप्रवीराः सह सृञ्जयैर्यथासुराः पुरा देववरैरयोधयन् ॥ ६७ ॥

जैसे पहले दानवोंने देवश्रेष्ठोंसे युद्ध किया था, इसी प्रकार सृञ्जयोंसे कौरवोंके योद्धा क्रुद्ध होकर वेगवान् और तेजस्वी बाणोंसे परस्पर आघात करने लगे ॥ ६७ ॥

जयेप्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः पतन्ति नागाश्वरथाः परन्तप ।
जगर्जुरुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक् ॥ ६८ ॥

परंतप ! हाथी, घोडे और रथी वीर अपनी अपनी विजयकी इच्छासे स्वर्गको चले जानेके लिये उत्सुक हो आक्रमणपूर्वक युद्ध करने लगे । जोरसे गर्जकर अच्छी तरहसे चलाये हुए बाणोंसे परस्पर विद्ध करने लगे ॥ ६८ ॥

शरान्धकारे तु महात्मभिः कृते महामृधे योधवरैः परस्परम् ।
बभुर्दशाशा न दिवं च पार्थिव प्रभा च सूर्यस्य तमोवृताभवत् ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ३३१८ ॥

उस समय युद्धभूमिमें महात्मा श्रेष्ठ योद्धाओंने परस्पर छोडे हुए बाणोंसे अन्धकार हो गया। हे पृथ्वीनाथ ! चारों दिशा, आकाश और सूर्यकी प्रभा भी अन्धकारसे आच्छादित हो गयी ॥ ६९ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ ३३१८ ॥

: ५८ :

संजय उवाच

राजन्कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम् ।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनञ्जयः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! कौरवोंके प्रमुख वीरोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनपर आक्रमण करके उनको सैन्यसागरमें डूबते-से किया था । उनका उद्धार करनेकी धनंजय इच्छा करते थे ॥ १ ॥

विमृद्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान्धनञ्जयः ॥ २ ॥

भारत ! इसलिये उन्होंने सूतपुत्र कर्णकी सेनाको छोडकर उधर ही धावा किया और बाणोंसे शत्रुओंके वीरोंको यमलोकको पहुंचाया ॥ २ ॥

ततोऽस्याम्बरमावृत्य शरजालानि भागशः ।
अदृश्यन्त तथान्ये च निघ्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ३ ॥

तब अर्जुनके बाण जाल आकाशके विभिन्न भागोंमें छा गये, और दूसरे भी अनेक बाण तुम्हारी सेनाका नाश करते दिखायी देने लगे ॥ ३ ॥

स पक्षिसङ्घाचरितमाकाशं पूरयञ्शरैः ।
धनञ्जयो महाराज कुरूणामन्तकोऽभवत् ॥ ४ ॥

महाराज ! अर्जुनने पक्षियोंके झुंडोंसे संचरित आकाशको अपने बाणोंसे पूरित कर दिया और वे कौरवोंके काल बन गये ॥ ४ ॥

ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्निर्मलैरपि ।
गात्राणि प्राक्षिणोत्पार्थः शिरांसि च चकर्त ह ॥ ५ ॥

तब अनेक प्रकारके क्षुरप्र भल्ल और निर्मल नाराच बाणोंसे अर्जुनने वीरोंके शरीरोंके अवयव और शिर भी काट डाले ॥ ५ ॥

छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः ।
पतितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत्समावृतम् ॥ ६ ॥

उस समय चारों ओर छिन्नभिन्न शरीरवाले, कवच रहित और शिर रहित योद्धा वहां युद्ध-भूमिमें गिरे थे और गिरते जा रहे थे, उनसे वह भूमि भरी थी ॥ ६ ॥

धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वनरद्विपैः ।
रणभूमिरभूद्राजन्महावैतरणी यथा ॥ ७ ॥

राजन् ! अर्जुनके बाणोंसे रथके घोडे, रथ और हाथी छिन्नभिन्न हो गये थे । वह रणभूमि यमलोककी महा वैतरणी नदीके समान हो गयी ॥ ७ ॥

ईषाचक्राक्षभङ्गैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम् ।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैः स्तीर्णाभवन्मही ॥ ८ ॥

योद्धाओंके टूटे हुए रथ, उन रथोंके कटे हुए ईषादण्ड, पहिये और धुरोंसे वह भूमि भरी हुई थी । कुछ रथोंके घोडे और सारथि जीवित थे और कुछके मारे गये थे ॥ ८ ॥

सुवर्णवर्मसंनाहैर्योधैः कनकभूषणैः ।
आस्थिताः कृतवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः ।
क्रुद्धाः क्रुद्धैर्महामात्रैः प्रेषितार्जुनमभ्ययुः ॥ ९ ॥

सदा मद बहानेवाले, कवचधारी, कल्याणप्रद और क्रुद्ध हाथी जिनपर सोनेके कवचवाले और सुवर्णालंकार भूषित वीर बैठे थे, वे क्रोधित महावतोंसे अर्जुनपर धावा करनेके लिये प्रेरित किये गये थे ॥ ९ ॥

चतुःशता शरवर्षैर्हताः पेतुः किरीटिना ।
पर्यस्तानीव शृङ्गाणि ससत्त्वानि महागिरेः ॥ १० ॥

उन सबके साथ किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर गिरे हुए वे चारसौ हाथी, प्राणियों सहित गिरे हुए इमान् पर्वतके शिखरोंके समान दीखते थे ॥ १० ॥

धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः ।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान्भिन्दन्निवांशुमान् ॥ ११ ॥

वह भूमि अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर गिरे हुए बडे हाथियोंसे पूरित हो गयी थी । जैसे सूर्य मेघोंको काटकर प्रकाशित होता है, ऐसे ही अर्जुनका रथ वहां आ गया ॥ ११ ॥

हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भग्नैश्च बहुधा रथैः ।
विशस्त्रपत्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ।
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत्फल्गुनेन वै ॥ १२ ॥

मारे गये हाथी, मनुष्य और घोडोंसे, भग्न हुए अनेक रथोंसे; शस्त्र, यन्त्र और कवचरहित हुए प्राणशून्य योद्धाओंसे और इधर उधर बिखरे हुए आयुधोंसे अर्जुनने वहांका मार्ग छा दिया था ॥ १२ ॥

व्यस्फूर्जयच्च गाण्डीवं सुमहद्भैरवस्वनम् ।
घोरो वज्रविनिष्पेषः स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥ १३ ॥

जैसे बिजली और वज्रपातका घोर शब्द आकाशमें होता है, ऐसे ही अर्जुनने अपने महान् गाण्डीव धनुषका भयंकर टंकार की ॥ १३ ॥

ततः प्रादीर्यत चमूर्धनञ्जयशराहता ।
महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे ॥ १४ ॥

जैसे समुद्रमें उठे तूफानसे कोई नाव टकराकर विदीर्ण हो जाती है, ऐसे ही अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर वह कौरवसेना भग्न हो गई ॥ १४ ॥

नानारूपाः प्राहरणाः शरा गाण्डीवचोदिताः ।
अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन् ॥ १५ ॥

गाण्डीव धनुषसे छुटे हुए अनेक प्रकारके प्राणहारक अलात, उल्का और बिजलीके समान प्रकाशमान् बाणोंसे वह सेना दग्ध होने लगी ॥ १५ ॥

महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा ।
तथा तव महत्सैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम् ॥ १६ ॥

जैसे रात्रिके समयमें किसी बडे पर्वतपर बांसोंका वनमें आग लगनेसे जलता है वैसे ही अर्जुनके बाणोंसे पीडित तुम्हारी महान् सेना दग्ध होते दीखने लगी ॥ १६ ॥

संपिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरीटिना ।
हतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः ॥ १७ ॥

किरीटधारी अर्जुनने तुम्हारी सेनाको पीस डाला, जला दिया, विध्वस्त कर दिया, बाणोंसे नष्ट किया और चारों दिशाओंमें भगा दिया ॥ १७ ॥

महावने मृगगणा दावाग्निग्रसिता यथा ।
कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना ॥ १८ ॥

जैसे महा वनमें दावानलसे ग्रस्त हुए हरिन भागते हैं, वैसे ही तुम्हारी सेना सव्यसाची अर्जुनके बाणोंसे दग्ध होकर इधर उधरको भागने लगी ॥ १८ ॥

उत्सृज्य हि महाबाहुं भीमसेनं तदा रणे ।
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ॥ १९ ॥

उस समय तुम्हारी युद्धमें उद्विग्न हुई सब सेना महाबाहु भीमसेनको छोडकर युद्धसे विमुख हो गयी ॥ १९ ॥

ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ।
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत ॥ २० ॥

तब इस प्रकार कौरवोंके भाग जानेपर अपराजित अर्जुन भीमसेनके पास गये और थोडे समयतक खडे हो गये ॥ २० ॥

समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फल्गुनः ।
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम् ॥ २१ ॥

अर्जुनने भीमसेनसे मिलकर कुछ सम्मति की और राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकाल दिये गये हैं, इसलिये वे कुशल हैं, यह कहा ॥ २१ ॥

भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद्धनञ्जयः ।
नादयन्रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत ॥ २२ ॥

भारत ! फिर भीमसेनकी आज्ञा लेकर अर्जुन अपने रथके शब्दसे पृथ्वी और आकाशको पूरित करते हुए वहांसे चले गये ॥ २२ ॥

ततः परिवृतो भीमैर्दशभिः शत्रुपुङ्गवैः ।
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनञ्जयः ॥ २३ ॥

दुःशासनसे छोटे बलवान् और शत्रुओंके श्रेष्ठ योद्धा तुम्हारे दस पुत्रोंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २३ ॥

ते तमभ्यर्दयन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।
आततेष्वसनाः क्रूरा नृत्यन्त इव भारत ॥ २४ ॥

भारत ! जैसे शिकारी जलती हुई लकडियोंसे हाथीको डराते हैं, वैसे ही अपने धनुषोंको खींचकर उन क्रूर वीरोंने नाचते हुए अर्जुनको बाणोंसे विध किया ॥ २४ ॥

अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ।
ततस्ते प्राद्रवञ्छूराः पराङ्मुखरथेऽर्जुने ॥ २५ ॥

तब श्रीकृष्णने रथसे उन्हें शीघ्र ही अपने दाहिने भागमें कर दिया। तब उन सब शूरवीरोंने, अर्जुनका रथ दूसरी ओर जाने लगा देख, उनपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् ॥ २६ ॥

अर्जुनने अपने तेज नाराच और अर्ध चन्द्र बाणोंसे उन आक्रमणकारियोंके ध्वज, घोडे और धनुष बाणोंको शीघ्रतासे काट दिया ॥ २६ ॥

अथान्यैर्दशभिर्भल्लैः शिरांस्येषां न्यपातयत् ।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले ।
तानि वक्त्राणि विबभुर्व्योम्नि तारागणा इव ॥ २७ ॥

फिर दूसरे दस भल्ल बाणोंसे ओठ चबाते, क्रोधसे लाल नेत्रवाले उन दसों वीरोंके शिर काट डाले। वे दसों शिर पृथ्वीमें गिरकर आकाशमें चमकनेवाले तारागणोंके समान शोभित होने लगे ॥ २७ ॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश कौरवान् ।
रुक्माङ्गदान्रुक्मपुङ्खैर्विद्ध्वा प्रायादमित्रहा ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ३३४६ ॥

इस प्रकार सुवर्ण पंखयुक्त महा वेगवान् दस भल्ल बाणोंसे सुवर्ण भूषण धारण किये उन दस कौरवोंको मारकर शत्रुनाशन अर्जुन आगे चले ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें अठ्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ ३३४६ ॥

: ५९ :

संजय उवाच

तं तु यान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम् ।
युद्धायाभ्यद्रवन्वीराः कुरूणां नवती रथाः ।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! श्रेष्ठ वानरयुक्त ध्वजावाले अर्जुनको शीघ्र चलनेवाले घोडोंके रथपर चढे आगे जाते देख, तुम्हारी सेनाके नब्बे महारथी युद्ध करनेको दौडे, उन नरव्याघ्र वीरोंने नरसिंह अर्जुनको युद्धमें घेर लिया ॥ १ ॥

कृष्णः श्वेतान्महावेगानश्वान्कनकभूषणान् ।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान्प्रैषीत्कर्णरथं प्रति ॥ २ ॥

परन्तु श्रीकृष्णने सुवर्णलंकारोंसे भूषित और मोतियोंके जालियोंसे आच्छादित सफेद वर्णवाले बहुत शीघ्र चलनेवाले घोडोंको कर्णके रथकी ओर हांके ॥ २ ॥

ततः कर्णरथं यान्तमरीन्घ्नन्तं धनञ्जयम् ।
बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥ ३ ॥

अनन्तर शत्रुनाशन अर्जुनको कर्णके रथकी ओर जाते देख, बाणोंकी वर्षासे पीडित करते हुए संशप्तक योद्धा दौडे ॥ ३ ॥

त्वरमाणांस्तु तान्सर्वान्ससूतेष्वसनध्वजान् ।
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ॥ ४ ॥

सारथि, ध्वज और धनुषोंके सहित उनको अपनी ओर त्वरासे आते देख अर्जुनने तेज बाणोंसे उन सब नब्बे वीरोंको काट डाला ॥ ४ ॥

तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना ।
सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात्पुण्यक्षये तथा ॥ ५ ॥

जैसे पुण्य नाश होनेसे विमानोंके सहित सिद्ध स्वर्गसे गिरते हैं, ऐसे ही किरीटधारी अर्जुनके अनेक रूपवाले बाणोंसे वे सब योद्धा मरकर गिर गये ॥ ५ ॥

ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तम ।
निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्तन्त फल्गुनम् ॥ ६ ॥

तब रथ, हाथी और घोडों सहित अनेक कौरव निर्भय होकर कुरुकुलश्रेष्ठ भरतर्षभ अर्जुनसे युद्ध करनेको चले ॥ ६ ॥

तदायस्तममुक्तास्त्रमुदीर्णवरवारणम् ।
पुत्राणां ते महत्सैन्यं समरौत्सीद्धनञ्जयः ॥ ७ ॥

तुम्हारे पुत्रोंकी वह विशाल सेना पीडित हो गई थी, तो भी बडे बडे हाथी और शस्त्र सहित हाथी सवार उद्धत होकर धावा करनेके लिये आगे बढे, तो धनंजयने उनको रोका ॥ ७ ॥

शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः ।
प्राच्छादयन्महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ॥ ८ ॥

उन महा धनुषधारी कौरवोंने कुरुकुलश्रेष्ठ अर्जुनके ऊपर शक्ति, ऋष्टि, तोमर, प्रास, गदा, खडग और बाण चलाये और उनको ढक दिया ॥ ८ ॥

तां कुरूणां प्रवितता शस्त्रवृष्टिं समुद्यताम् ।
व्यधमत्पाण्डवो बाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ ९ ॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश कर देते हैं, ऐसे ही अर्जुनने अपने बाणोंसे उन सज्ज कौरवोंकी विस्तृत बाण वर्षाको काट दिया ॥ ९ ॥

ततो म्लेच्छाः स्थितैर्मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः ।
पार्श्वतोऽभ्यहनन्पार्थं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १० ॥

तब तेरह सौ मतवाले हाथियोंके साथ म्लेच्छ तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे आये और अर्जुनको पार्श्वभागसे पीडित करने लगे ॥ १० ॥

कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरैः प्रासशक्तिभिः ।
कम्पनैर्भिण्डिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् ॥ ११ ॥

वे सब रथपर बैठे हुए अर्जुनकी ओर कर्णी, नालीक, नाराच बाण, तोमर, कम्पन, प्रास, शक्ति और भिन्डिपाल चलाने लगे ॥ ११ ॥

तामस्त्रवृष्टिं प्रहितां द्विपस्थैर्यवनैः स्मयन् ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्धचन्द्रैश्च फल्गुनः ॥ १२ ॥

अर्जुनने उन हाथियोंपर चढे यवन वीरों द्वारा कि हुई अस्त्रवर्षाको तीक्ष्ण अर्धचन्द्र और भल्ल नामक बाणोंसे हंसते हुए नष्ट कर दिया ॥ १२ ॥

अथ तान्द्विरदान्सर्वान्नानालिङ्गैर्महाशरैः ।
सपताकान्सहारोहान्गिरीन्वज्रैरिवाभिनत् ॥ १३ ॥

जैसे इन्द्रने वज्रसे अनेक पर्वतोंको काट दिया था, ऐसे ही अर्जुनने भी नाना प्रकारके चिन्होंवाले महान् बाणोंसे उन सब हाथियोको पताका, ध्वजा और वीरोंके सहित काट डाला ॥ १३ ॥

ते हेमपुङ्खैरिषुभिराचिता हेममालिनः ।
हताः पेतुर्महानागाः साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥ १४ ॥

जैसे अग्निकी ज्वाला सहित अनेक पर्वत कटकर पृथ्वीमें गिरते हैं, ऐसे ही वे सब सुवर्णमाला भूषित बडे हाथी सोनेके पङ्खवाले बाणोंसे व्याकुल होकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ १४ ॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद्विशां पते ।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम् ॥ १५ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! फिर गाण्डीव धनुषकी महान् टंकार सुनायी देने लगी और इस समय मरते हुए हाथी, मनुष्य और घोडोंका चिंघाडनेका और आर्तनादका शब्द भी सुनायी देता था ॥ १५ ॥

कुञ्जराश्च हता राजन्प्राद्रवंस्ते समन्ततः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १६ ॥

हे राजन् ! अनेक हाथी बाण लगनेसे इधर उधरको भागने लगे, वीरोंके मरनेसे घोडे भी दसों दिशाओंमें दौडने लगे ॥ १६ ॥

रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा ।
गन्धर्वनगराकारा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ १७ ॥

हे महाराज ! सहस्रों रथ, सारथि, घोडे और वीरोंसे रहित होकर गन्धर्व नगरोंके समान दीखने लगे ॥ १७ ॥

अश्वारोहा महाराज धावमानास्ततस्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते पतिताः पार्थसायकैः ॥ १८ ॥

महाराज ! इसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होकर अनेक घुडचढे भी जहां तहां इधर उधर दौडते दिखाई दे रहे थे ॥ १८ ॥

तस्मिन्क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यत्सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद्युधि ॥ १९ ॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाहुओंका बल दिखायी दिया गया, उन्होंने अकेले ही युद्धमें हाथी, रथ और सवारोंको जीत लिया ॥ १९ ॥

ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा परिवृतं राजन्भीमसेनः किरीटिनम् ॥ २० ॥

भरतर्षभ ! तब भीमसेन अर्जुनको तीन प्रकारकी महासेनासे घिरा हुआ देख ॥ २० ॥

हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान्कतिचिद्रथान् ।
जवेनाभ्यद्रवद्राजन्धनञ्जयरथं प्रति ॥ २१ ॥

तुम्हारे मरनेसे बचे हुए अनेक रथियोंको छोडकर अर्जुनके रथकी ओर वेगसे दौडे ॥२१॥

ततस्तत्प्राद्रवत्सैन्यं हतभूयिष्ठमातुरम् ।
दृष्ट्वा यदर्जुनं भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥ २२ ॥

उस समय तुम्हारे बहुत सैनिक मारे गये थे, अनेक विह्वल हो गये थे, फिर तो बची हुई कौरव सेना भागने लगी । यह देख भीम अपने भाई अर्जुनके पास गये ॥ २२ ॥

हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाजवान् ।
भीमो व्यधमदभ्रान्तो गदापाणिर्महाहवे ॥ २३ ॥

उस महायुद्धमें अर्जुनसे मारे जानेसे बचे हुए महा वेगशाली घोडों और सवारोंको स्वस्थ भीमसेनने गदासे मार डाला ॥ २३ ॥

+

कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोजनाम् ।
प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥ २४ ॥
ततो गदां नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत् ।
सा जघान बहूनश्वानश्वारोहांश्च मारिष ॥ २५ ॥

अनन्तर भीमसेन कालरात्रिके समान अत्यंत भयानक, मनुष्य, हाथी और घोडोंकी खानेवाली, छारदीवाली, (पुरकोट) कटारी और नगरके द्वारोंको तोडनेवाली महा भयङ्कर गदा, घोडे, हाथी और मनुष्योंपर चलाने लगे । मारिष ! उस गदाने अनेक घोडे और घुडसवारोंको नष्ट किया ॥ २४–२५ ॥

कांस्यायसतनुत्रांस्तान्नरानश्वांश्च पाण्डवः ।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन्हताः ॥ २६ ॥

भीमसेनने लोहेके कवच पहने अनेक घोडे और मनुष्योंको अपनी गदासे मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया । वे सब आर्तनाद करते हुए प्राणरहित होकर गिर पडे ॥ २६ ॥

हत्वा तु तद्गजानीकं भीमसेनो महाबलः ।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमन्वगात् ॥ २७ ॥

इस प्रकार उस गजसेनाका नाश करके महा बलवान् भीमसेन फिर अपने रथपर बैठे और पीछेसे अर्जुनकी रक्षा करनेको चले ॥ २७ ॥

हतं पराङ्मुखप्रायं निरुत्साहं परं बलम् ।
व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥ २८ ॥

हे महाराज ! उस समय जो तुम्हारी सेना मरनेसे बची सो उत्साह रहित और शस्त्रोंसे व्याकुल होकर विमुख और मुग्ध हो गयी ॥ २८ ॥

विलम्बमानं तत्सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम् ।
दृष्ट्वा प्राच्छादयद्बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥ २९ ॥

उस सेनाको जडवत् और डरकर खडी हुई देख अर्जुनने प्राण नाशक बाणोंसे उसे छा दिया ॥ २९ ॥

ततः कुरूणामभवदार्तनादो महामृधे ।
रथाश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥ ३० ॥

हे महाराज ! उस समय अर्जुनके प्राण लेनेवाले बाणोंसे व्याकुल तुम्हारी कौरव सेनाके रथ, हाथी, घोडे और मनुष्योंका महा युद्धमें घोर शब्द होने लगा ॥ ३० ॥

हाहाकृतं भृशं तस्थौ लीयमानं परस्परम् ।
अलातचक्रवत्सैन्यं तदाभ्रमत तावकम् ॥ ३१ ॥

तुम्हारी सेनामें अत्यंत हाहाकार होने लगा, एक मनुष्य दूसरेकी आड लेनेकी इच्छा करने लगा । थोडे समयमें वह सब सेना कुम्हारके चाकके समान घूमने लगी ॥ ३१ ॥

आदीप्तं तव तत्सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
आसीत्स्वशोणितक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ॥ ३२ ॥

उस समय सब सेना जलती हुईसी दिखती थी । जैसे फूले हुए अशोकोंका वन शोभित होता है, ऐसे ही रुधिरमें भीगी, बाणोंसे व्याकुल, टूटे कवचवाली तुम्हारी सेना दीखने लगी ॥ ३२ ॥

तद्दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनः ।
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ॥ ३३ ॥

सब कौरवोंने सव्यसाची अर्जुनके इस पराक्रमको देखकर कर्णके जीनेकी आशा छोड दी ॥ ३३ ॥

अविषह्यं तु पार्थस्य शरसंपातमाहवे ।
मत्वा न्यवर्तन्कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना ॥ ३४ ॥

युद्धमें गाण्डीवधारी अर्जुनके बाणोंको न सहकर और अर्जुनसे हारकर कौरवोंकी सब सेना पीछेको लौटने लगी ॥ ३४ ॥

ते हित्वा समरे पार्थं वध्यमानाश्च सायकैः ।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥ ३५ ॥

ये सब वीर बाणोंसे व्याकुल हो जानेके कारण भयभीत होकर युद्धमें अर्जुनको छोडकर सब दिशाओंमें भागे । भागते समय अपनी रक्षाके लिये सूतपुत्रको ही पुकारते रहे ॥ ३५ ॥

अभ्यद्रवत तान्पार्थः किरञ्शरशतान्बहून् ।
हर्षयन्पाण्डवान्योधान्भीमसेनपुरोगमान् ॥ ३६ ॥

उन वीरोंपर अर्जुन सैंकडों बाणोंकी वर्षा करने लगे । इससे भीमसेन आदि पाण्डवोंके सब वीर बहुत प्रसन्न हुए और तुम्हारे सैनिक भागने लगे ॥ ३६ ॥

पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति ।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा ॥ ३७ ॥

हे महाराज ! जैसे अगाध समुद्रमें डूबते मनुष्य द्वीपकी ओर जाते हैं, ऐसे ही तुम्हारे पुत्र कर्णके रथकी ओर भागे । उस समय संकटके अगाध समुद्रमें डूबनेवाले उनको कर्ण ही द्वीपके समान उनका रक्षक हुआ ॥ ३७ ॥

कुरवो हि महाराज निर्विषाः पन्नगा इव ।
कर्णमेवोपलीयन्त भयाद्गाण्डीवधन्वनः ॥ ३८ ॥

हे महाराज ! उस समय अर्जुनके भयसे सब कौरव विषरहित सांपोंके समान कर्णके पास छिपने लगे ॥ ३८ ॥

यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि भारत ।
धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि यानि च ॥ ३९ ॥

भारत ! जैसे कर्म करनेवाले सब मनुष्य मृत्युके भयसे धर्मकी शरण लेते हैं ॥ ३९ ॥

तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप ।
उपालीयन्त सन्त्रासात्पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ४० ॥

ऐसे ही महात्मा अर्जुनके भयसे तुम्हारे पुत्र महा धनुषधारी कर्णकी शरण गये ॥ ४० ॥

ताञ्शोणितपरिक्लिन्नान्विषमस्थाञ्शरातुरान् ।
मा भैष्टेत्यब्रवीत्कर्णो ह्यभितो मामितेति च ॥ ४१ ॥

उन रुधिरसे भीगे, बाणोंसे पीडित, आपत्तिमें पडे वीरोंसे कर्णने कहा– तुम लोग कुछ मत डरो और निर्भय होकर हमारे सङ्ग रहो ॥ ४१ ॥

संभग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात्पार्थेन तावकम् ।
धनुर्विस्फारयन्कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया ।
पाञ्चालान्पुनराधावत्पश्यतः सव्यसाचिनः ॥ ४२ ॥

तुम्हारी सेनाको अर्जुनने बलपूर्वक भगा दिया है, यह देख कर्णने शत्रुओंका वध करनेकी इच्छासे धनुषपर टङ्कार दिया और खडा हो गया। कर्णने अर्जुनके देखते पाञ्चाल सेनाकी ओर धावा किया ॥ ४२ ॥

ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः ।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥ ४३ ॥

जैसे अनेक मेघ पर्वतपर जल वर्षाते हैं, ऐसे ही पाण्डवोंकी ओरके अनेक राजा क्रोधसे लाल नेत्र करके क्षणभरमें कर्णके ऊपर बाण वर्षाने लगे ॥ ४३ ॥

ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष ।
व्ययोजयन्त पाञ्चालान्प्राणैः प्राणभृतां वर ॥ ४४ ॥

हे मनुष्य श्रेष्ठ ! तब कर्णके छोडे हुए सहस्रों बाण पांचालोंको प्राणहीन करने लगे ॥ ४४ ॥

ततो रणो महानासीत्पाञ्चालानां विशां पते ।
वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थेऽमित्रघातिनाम् ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ३३९१ ॥

हे पृथ्वीपते ! उस समय मित्रके लिये युद्ध करते हुए कर्णके बाणोंसे मारे जानेवाले पांचाल सैनिकोंका घोर शब्द होने लगा ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें उनसाठवां अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ ३३९१ ॥

: ६० :

सञ्जय उवाच

ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु वरूथिना श्वेतहयेन राजन् ।
पाञ्चालपुत्रान्व्यधमत्सूतपुत्रो महेषुभिर्वात इवाभ्रसङ्घान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जैसे वायु मेघोंके समूहोंको छिन्नभिन्न कर देती है, वैसे ही जब कौरवसैनिक भागने लगे तब सूतपुत्र कर्णने सफेद घोडेवाले रथसे धावा करके अपने महान् बाणोंसे पांचाल देशीय राजपुत्रोंको व्याकुल कर दिया ॥ १ ॥

सूतं रथादञ्जलिकेन पात्य जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य ।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लैरवाकिरद्धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥ २ ॥

कर्णने अपने अञ्जलिक बाणसे जनमेजयके सारथिको रथसे नीचे गिराकर उसके घोडोंको मार डाला । फिर शतानीक और सुतसोमको भल्ल बाणोंसे छा दिया और दोनोंके धनुष काट दिये ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भिर्जघान चाश्वं दक्षिणं तस्य संख्ये ।
हत्वा चाश्वान्सात्यकेः सूतपुत्रः कैकेयपुत्रं न्यवधीद्विशोकम् ॥ ३ ॥

फिर धृष्टद्युम्नको युद्धमें छः बाण मारकर घायल किया और उनके दहिने बाजूके घोडे मार डाले, फिर सूतपुत्रने सात्यकिके घोडे मारकर, कैकेय देशीय राजपुत्र विशोकको भी मार डाला ॥ ३ ॥

तमभ्यधावन्निहते कुमारे कैकेयसेनापतिरुग्रधन्वा ।
शरैर्विभिन्नं भृशमुग्रवेगैः कर्णात्मजं सोऽभ्यहनत्सुषेणम् ॥ ४ ॥

केकय राजपुत्र विशोकको मारा देख उसका सेनापति उग्रधन्वा कर्णकी ओर दौडा और अत्यंत वेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे कर्णके पुत्र सुयोगको मारने लगा ॥ ४ ॥

तस्यार्धचन्द्रैस्त्रिभिरुग्रकर्मा प्रसह्य बाहू च शिरश्च कर्णः ।
स स्यन्दनाद्भूमिमपतद्गतासुः परश्वधैः शाल इवाभिरुग्णः ॥ ५ ॥

कर्णने तीन अर्द्धचन्द्र बाणोंसे उग्रकर्माके दोनों हाथ और शिर काट लिया, वह परशुके काटे हुए शालवृक्षके समान प्राणरहित होकर रथसे पृथ्वीमें गिर गया ॥ ५ ॥

हताश्वमञ्जोगतिभिः सुषेणः शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः ।
प्रच्छाद्य नृत्यन्निव सौतिपुत्रः शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥ ६ ॥

तब कर्णपुत्र सुषेणने घोडे रहित रथपर बैठे हुए सात्यकिकी ओर शीघ्रगामी तीक्ष्ण बाण चलाये और उसको ढक दिया, तब सात्यकिने अपने बाणोंसे उसे घायल किया, फिर वह नाचता हुआसा पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ६ ॥

पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः ।
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन्स व्यवासृजद्बाणममित्रसाहम् ॥ ७ ॥

पुत्रके मरनेसे कर्ण महा क्रोधसे दुःखित चित्त हुआ और शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको मारनेके लिये मनमें इच्छा की । फिर सात्यकि अब तुम मारे गये, ऐसा कहकर एक शत्रुनाशन घोर बाण उन पर चलाया ॥ ७ ॥

स तस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम् ।
शिखण्डिनः कार्मुकं स ध्वजं च छित्त्वा शराभ्यामहनत्सुजातम् ॥ ८ ॥

तब शिखण्डीने उस बाणको तीन बाणोंसे काट दिया, और तीन बाण कर्णके शरीरमें मारकर उसको पीडित किया, तब कर्णने अपने दो बाणोंसे शिखण्डीकी ध्वजा और धनुष काटकर फिर उसको पीडित किया ॥ ८ ॥

शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो दान्तो धार्ष्टद्युम्नेःशिरश्चकर्त ।
अथाभिनत्सुतसोमं शरेण स संशितेनाधिरथिर्महात्मा ॥ ९ ॥

फिर उग्र वीर कर्णने छः बाणोंसे शिखण्डीको विद्ध करके, धृष्टद्युम्नके पुत्रका शिर काट डाला । महात्मा अधिरथपुत्रने तीक्ष्ण बाणसे सुतसोमको भी घायल कर दिया ॥ ९ ॥

अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः ।
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ कर्णं जहीत्यब्रवीद्राजसिंह ॥ १० ॥

राजसिंह ! इस प्रकार जब वह तुमुल युद्ध होने लगा और धृष्टद्युम्नका पुत्र मर गया तब श्रीकृष्णने वहां अर्जुनसे कहा– हे कुन्तीपुत्र ! कर्ण पाञ्चालोंका नाश कर रहा है, इसलिये तुम आगे चलकर उसे मार डालो ॥ १० ॥

ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो रथं रथेनाधिरथेर्जगाम ।
भये तेषां त्राणमिच्छन्सुबाहुरभ्याहतानां रथयूथपेन ॥ ११ ॥
तब उत्तम बाहुवाले पुरुषसिंह अर्जुन हंसकर भयके समय अपनी पीडित सेनाकी रक्षाके लिये अपने श्रेष्ठ रथसे सूतपुत्रके रथकी ओर शीघ्रतासे चले ॥ ११ ॥

विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं ज्यया समाहत्य तले भृशं च ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा जघान नागाश्वरथान्नरांश्च ॥ १२ ॥
और भयंकर शब्द करनेवाले गाण्डीव धनुषको खींचकर उसके रोदेपर घोर टंकार देकर, सहसा बाणोंसे अन्धकार कर दिया और हाथी, घोडे, रथ और मनुष्योंको नष्ट किया ॥ १२ ॥

तं भीमसेनोऽनु ययौ रथेन पृष्ठे रक्षन्पाण्डवमेकवीरम् ।
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां कर्णाय यातावरिभिर्विमुक्तौ ॥ १३ ॥
श्रेष्ठ वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके पीछे रक्षा करते हुए भीमसेन अपने रथसे चले, ये दोनों राजपुत्र शीघ्रतासे शत्रुओंसे मुक्त होकर कर्णकी ओर चले ॥ १३ ॥

अत्रान्तरे सुमहत्सूतपुत्रश्चक्रे युद्धं सोमकान्संप्रमृद्नन् ।
रथाश्वमातङ्गगणाञ्जघान प्रच्छादयामास दिशः शरैश्च ॥ १४ ॥
इसी बीचमें सूतपुत्रने सोमकोंका नाश करते हुए घोर युद्ध किया । उनके रथ, घोडे और हाथियोंको मार डाला और सब दिशाओंको बाणोंसे छा दिया ॥ १४ ॥

तमुत्तमौजा जनमेजयश्च क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च ।
कर्णं विनेदुः सहिताः पृषत्कैः संमर्दमानाः सह पार्षतेन ॥ १५ ॥
तब पाण्डवोंकी ओरसे भी धृष्टद्युम्नके साथ उत्तमौजा, जनमेजय, क्रोधित युधामन्यु और शिखण्डी ये सब बाणोंसे कर्णको विद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

ते पञ्च पाञ्चालरथाः सुरूपैर्वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः ।
तस्माद्रथाच्च्यावयितुं न शेकुर्धैर्यात्कृतात्मानमिवेन्द्रियाणि ॥ १६ ॥
जैसे महात्मा आत्मज्ञानी मनुष्यको इन्द्रियोंके विषय धैर्यसे विचलित नहीं कर सकते, ऐसे ही पाञ्चाल देशी श्रेष्ठ पांच रथि वीर वैकर्तन कर्णपर धावा करके भी उसे रथसे नीचे नहीं गिरा सके ॥ १६ ॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतांस्तूणं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान्पञ्चभिः स त्वहनत्पृषत्कैः कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १७ ॥
कर्णने इन सबके, धनुष, घोडे, सारथि, पताका और ध्वजाओंको अपने तेज बाणोंसे तुरंत ही काट डाला और पांच बाणोंसे उनको भी पीडित कर दिया । फिर सिंहके समान गर्जने लगा ॥ १७ ॥

तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात्पृथिवी विशीर्णा इत्येव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १८ ॥
उस समय बाण छोडते और शत्रुओंको मारते हुए कर्णके हाथमें सदा धनुषकी ज्या और बाण रहते थे । उसके धनुषकी टंकारके शब्दसे वृक्ष तथा पर्वतों सहित पृथ्वी फट जायगी ऐसा मानकर सब जगत् डरने लगा ॥ १८ ॥

स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना भृशाततेनाधिरथिः शरान्सृजन् ।
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ १९ ॥
जैसे तेज किरणोंवाले परिधियुक्त सूर्य दिखाई देता है, ऐसे ही इन्द्रधनुषके समान खींचे हुए मण्डलाकार धनुषसे बाण छोडते हुए अधिरथपुत्र कर्ण भी रणभूमिमें शोभित होता था ॥ १९ ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिनच्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥ २० ॥
कर्णने शिखण्डीको बारह, उत्तमौजाको छः, युधामन्युको तीन, जनमेजय और धृष्टद्युम्नको तीन तीन तीक्ष्ण बाण मारकर अत्यंत विह्वल किया ॥ २० ॥

पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रमर्दना यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः ॥ २१ ॥
मारिष ! जब सूतपुत्र कर्णने इन शत्रुमर्दन पांचों महारथियोंको पराजित किया, तब वे पाञ्चाल वीर आत्मज्ञानीसे निरुद्ध विषयोंके समान निरुद्यम होकर खडे हो गये ॥ २१ ॥

निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् ॥ २२ ॥
जैसे कोई उत्तम मनुष्य समुद्रमें जिनकी नाव डूबी गयी हो, उन डूबते हुए बनियोंको अपनी नावपर चढाकर बचाते हैं, ऐसे ही कर्णरूपी सागरमें डूबनेवाले अपने मामाओंको द्रौपदीके पांचों पुत्रोंने आयुधयुक्त रथोंसे बचाया ॥ २२ ॥

ततः शिनीनामृषभः शितैः शरैर्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून्बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयैस्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥ २३ ॥
तब शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने अपने तेज बाणोंसे कर्णके छोडे हुए अनेक बाणोंको काटकर, लोहेके तीक्ष्ण बाणोंसे कर्णको घायल किया और तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधनके शरीरमें आठ बाण मारे ॥ २३ ॥

कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २४ ॥
तब कृपाचार्य, कृतवर्मा, तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन और स्वयं कर्ण अपने तेज बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करने लगे । अकेले यदुश्रेष्ठ सात्यकि भी इन चारों वीरोंसे इस प्रकार लडे, जैसे चार लोकपालोंसे दैत्यराज लडे ॥ २४ ॥

समानतेनेष्वसनेन कूजता भृशाततेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः ॥ २५ ॥
जैसे शरदृऋतुमें आकाशके बीचमें आये हुए सूर्य बहुत तेज होते हैं, ऐसे ही उस समय असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाले और अपना धनुष कानतक खींचकर टंकार करनेवाले सात्यकि उस युद्धभूमिमें अत्यंत दुर्धर्ष हो गये ॥ २५ ॥

पुनः समासाद्य रथान्सुदंशिताः शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः ।
समेत्य पाञ्चालरथा महारणे मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २६ ॥
जैसे दैत्योंका दमन करते हुए इन्द्रकी मरुत् गण रक्षा करते हैं, ऐसे ही शत्रुतापन पाञ्चाल योद्धा कवच पहनकर उत्तम रथोंपर चढकर फिर आकर शिनिश्रेष्ठ सात्यकिकी महायुद्धमें रक्षा करने लगे ॥ २६ ॥

ततोऽभवद्युद्धमतीव दारुणं तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा यथा सुराणामसुरैः पुराभवत् ॥ २७ ॥
तदनन्तर तुम्हारे शत्रुओंका तुम्हारे सैनिकोंके साथ अत्यंत दारुण युद्ध हुआ, जो रथ, घोडे और हाथियोंको नष्ट करनेवाला था । जैसे पहले समयमें देवता और राक्षसोंका घोर युद्ध हुआ था, वैसा ही यह युद्ध भी हुआ ॥ २७ ॥

रथद्विपा वाजिपदातयोऽपि वा भ्रमन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः ।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलुर्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतन्त च ॥ २८ ॥
उस समय रथ, हाथी, घोडे और पैदल मनुष्य अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे परिवेष्टित होकर, एक दूसरेसे टकराकर लडखडाने लगे, दुःखसे पीडित होकर घोर शब्द करने लगे और मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २८ ॥

तथा गते भीममभीस्तवात्मजः ससार राजावरजः किरञ्शरैः ।
तमभ्यधावत्त्वरितो वृकोदरो महारुरुं सिंह इवाभिपेतिवान् ॥ २९ ॥
उसी समय राजा दुर्योधनके छोटे भाई तुम्हारे पुत्र दुःशासन बेडर होकर बाण वर्षाते हुए भीमसेनकी ओर दौडे । भीमसेन भी त्वरासे दुःशासनकी ओर इस प्रकार दौडे, जैसे सिंह महारुरु नामक हरिणपर दौडता है ॥ २९ ॥

×

ततस्तयोर्युद्धम् अतीतमानुषं प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरेऽभवत् ।
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयोरुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३० ॥
तब ये दोनों परस्पर अत्यंत क्रोधमें भरकर, प्राणोंकी आशा छोडकर, अत्यंत अमानुष युद्ध करने लगे, उन अत्यंत उग्र वीरोंका वह युद्ध शंबर और इन्द्रके समान हुआ ॥ ३० ॥

शरैः शरीरान्तकरैः सुतेजनैर्निजघ्नतुस्ताविततरेतरं भृशम् ।
सकृत्प्रभिन्नाविव वाशितान्तरे महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३१ ॥
जैसे एक हथिनीके लिये दो काममोहित मदयुक्त हाथी युद्ध करते हैं, ऐसे ही ये दोनों शरीरनाश करनेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर अत्यंत विद्ध करते हुए घोर युद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥

तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्धनुः क्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत् ।
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा शिरश्च कायात्प्रजहार सारथेः ॥ ३२ ॥
तब भीमसेनने शीघ्रतासे दो क्षुर बाणोंसे तुम्हारे पुत्र दुःशासनकी ध्वजा और धनुष काट दिये । और उसके माथेमें एक बाणसे घाव कर दिया, फिर सारथिका शिर धडसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३२ ॥

स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत् ।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः शरैश्च भीमं पुनरभ्यवीवृषत् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ३४२४ ॥

तब राजपुत्र दुःशासनने भी दूसरा धनुष लेकर बारह तेज बाण भीमसेनके शरीरमें मारे, और स्वयं ही घोडोंका नियंत्रण करने लगा। फिर उसने भीमसेनपर सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ ॥ ३४२४ ॥

: ६१ :

संजय उवाच

तत्राकरोद्दुष्करं राजपुत्रो दुःशासनस्तुमुले युध्यमानः ।
चिच्छेद भीमस्य धनुः क्षुरेण षड्भिः शरैः सारथिमप्यविध्यत् ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– हे राजन् ! उस समय तुमुल युद्ध करते हुए राजपुत्र दुःशासनने दुष्कर कर्म किया । उसने एक बाणसे भीमसेनका धनुप काट दिया, और छः बाणोंसे उनके सारथिको विद्ध किया ॥ १ ॥

ततोऽभिनद्धद्भिः क्षिप्रमेव वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा ।
स विक्षरन्नाग इव प्रभिन्नो गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद्वै ॥ २ ॥
अनन्तर महात्मा राजपुत्रने अत्यंत वेगसे भीमसेनको अनेक उत्तम बाणोंसे विद्ध किया । मदधारा बहानेवाले हाथीके समान अपने घावोंसे रक्त बहाते हुए भीमसेनने इस तुमुल युद्धमें गदा चलायी ॥ २ ॥

तयाहरद्दश धन्वन्तराणि दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य ।
तया हतः पतितो वेपमानो दुःशासनो गदया वेगवत्या ॥ ३ ॥
उससे भीमसेनने दुःशासनको जोरसे दस धनुष पीछे हटाया । उस वेगवती गदाके लगनेसे दुःशासन धरतीपर गिरकर कांपने लगे ॥ ३ ॥

हयाः ससूताश्च हता नरेन्द्र चूर्णीकृतश्चास्य रथः पतन्त्या ।
विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रग्विचेष्टमानो भृशवेदनार्तः ॥ ४ ॥
नरेन्द्र ! उस गदाने गिरते ही उसके सारथिसहित घोडोंको मार डाला और उसके रथको चूर कर दिया । अत्यंत वेदनासे तडफडाने लगा, उसका कवच टूट गया, आभूषण और माला बिखर गये और वस्त्र फट गये ॥ ४ ॥

ततः स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी सापत्नकं यत्प्रयुक्तं सुतैस्ते ।
रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ यत्नेन तस्मिन्प्रणिधाय चक्षुः ॥ ५ ॥
उस समय वेगवान् भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंके वैरको स्मरण करने लगे । भीमसेन अपने रथसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये और उन्होंने यत्नपूर्वक उसकी ओर दृष्टि लगायी ॥ ५ ॥

असिं समुद्धृत्य शितं सुधारं कण्ठे समाक्रम्य च वेपमानम् ।
उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमावथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः क्रुद्धोऽतिवेलं प्रजगाद वाक्यम् ॥ ६ ॥
अनन्तर अत्यंत तेज धारवाली तलवार उठाकर कांपते हुए दुःशासनके गलेपर चलायी । फिर पृथ्वीपर पडे हुए दुःशासनकी छाती चीरकर वे उसका गर्म रुधिर पीने लगे । दुःशासनका रुधिर चाखते हुए अत्यंत क्रोधमें भरकर उसकी ओर देखते हुए ऐसे बोले ॥ ६ ॥

स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषो वा माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य ।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य पानात्पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात् ।
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं मतो ममाद्याहितलोहितस्य ॥ ७ ॥
मैंने माताके दूधका, शहद, घी और उत्तम मधूक पुष्प पेयका, दिव्य जलके रसका दूध और दहीसे बिलोये हुए माखनका भी पान किया है; उन सबसे भी आज इस मेरे शत्रुके रुधिरका स्वाद अधिक है, ऐसा मैं मानता हूं ॥ ७ ॥

एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्तमास्वाद्य वल्गन्तमतिप्रहृष्टम् ।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः ॥ ८ ॥

ऐसा बोलते हुए वे अत्यंत आनंदित होकर उसके रुधिरका पान करने और कूदने लगे। उस समय जिन्होंने भीमसेनको देखा, वे भी डरके मारे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ८ ॥

ये चापि तत्रापतिता मनुष्यास्तेषां करेभ्यः पतितं चि शस्त्रम् ।
भयाच्च संचुक्रुशुरुच्चकैस्ते निमीलिताक्षा ददृशुश्च तत्र ॥ ९ ॥

जो लोग वहां डरके मारे नहीं गिर पडे, उनके हाथोंसे शस्त्र तो गिर ही गये; वे भयके कारण जोरसे पुकारने लगे और आंख बन्द कर देखने लगे ॥ ९ ॥

ये तत्र भीमं ददृशुः समन्ताद्दौःशासनं तद्रुधिरं पिबन्तम् ।
सर्वे पलायन्त भयाभिपन्ना नायं मनुष्य इति भाषमाणाः ॥ १० ॥

जिन्होंने वहां भीमसेनको दुःशासनका रुधिर पीते देखा, वे सब भयसे व्याकुल होकर, यह मनुष्य नहीं है; ऐसा कहते हुए भागने लगे ॥ १० ॥

शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत् ।
एष ते रुधिरं कण्ठात्पिबामि पुरुषाधम ।
ब्रूहीदानीं सुसंरब्धः पुनर्गौरिति गौरिति ॥ ११ ॥

प्रख्यात वीरोंको सुनाकर इस प्रकार बोले, हे नराधम ! अब मैं तेरे कण्ठका रुधिर पी रहा हूं, अब सन्तप्त होकर फिर मुझे बैल बैल करके पुकारो ॥ ११ ॥

प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम् ।
दशनं चाहिभिः कष्टं दाहं च जतुवेश्मनि ॥ १२ ॥

मुझे प्रमाणकोटि तीर्थमें विष पिलाकर नदीमें डाल दिया गया था, कालकूट विष खिलाया था और कृष्णसर्पोंसे कटवाया था तथा हमें लाखके घरमें जलाना चाहता था ॥ १२ ॥

द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या ।
इष्वस्त्राणि च संग्रामेष्वसुखानि च वेश्मनि ॥ १३ ॥

जुआ खेलकर कपटसे हमारा राज्य छीना और तेरह वर्षके लिये हम सबको वनको भेजा था। युद्धमें हमें बाण और घातक अस्त्रोंसे मारना चाहता था और घरमें भी सुखसे रहने नहीं दिया था ॥ १३ ॥

दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन ।
धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात्सपुत्रस्य सदा वयम् ॥ १४ ॥

इन सब दुःखोंको तो हम जानते हैं, परंतु हमें कभी सुख मिला ही नहीं। हमने पुत्रों सहित धृतराष्ट्रकी दुष्टतासे सदा दुःख ही पाया, सुख कभी नहीं ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः ।
पुनराह महाराज स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥

ऐसा बचन कहकर और विजय पाकर भीमसेन हंसकर फिर श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बोले ॥ १५ ॥

दुःशासने यद्रणे संश्रुतं मे तद्वै सर्वं कृतमद्येह वीरौ ।
अद्यैव दास्याम्यपरं द्वितीयं दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य ।
शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः शान्तिं लप्स्ये कौरवाणां समक्षम् ॥१६॥

वीरो ! दुःशासनके विषयमें मैंने जो सभामें प्रतिज्ञा की थी उसे आज यहां युद्धमें सत्य कर ली, यहीं दूसरे यज्ञपशु दुर्योधनको काटकर बलिदान करूंगा और अब मैं सब कौरवोंके सामने अपने पैरसे दुरात्मा दुर्योधनके शिरको पीसकर शांति प्राप्त करूंगा ॥ १६ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो ननाद चोच्चै रुधिरार्द्रगात्रः ।
ननर्त चैवातिबलो महात्मा वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ३४४१ ॥

ऐसा कहकर, जैसे वृत्रासुरको मारकर सहस्र नेत्रवाले इन्द्र प्रसन्न हुए थे, ऐसे ही रुधिरसे भींगे शरीरवाले महाबलवान् महात्मा भीमसेन दुःशासनको मारकर प्रसन्न होते जोरसे गर्जने लगे ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ ३४४१ ॥

: ६२ :

संजय उवाच

दुःशासने तु निहते पुत्रास्तव महारथाः ।
महाक्रोधविषा वीराः समरेष्वपलायिनः ।
दश राजन्महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्छरैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! दुःशासनके मारे जानेपर युद्धसे न भागनेवाले महान् क्रोधरूपी विषसे भरे हुए महारथी, अत्यंत पराक्रमी, वीर तुम्हारे दस पुत्रोंने भीमको बाणोंसे आच्छादित किया ॥ १ ॥

कवची निषङ्गी पाशी दण्डधारो धनुर्धरः ।
अलोलुपः शलः संधो वातवेगसुवर्चसौ ॥ २ ॥

कवची, निषङ्गी, पाशी, दण्डधार, धनुर्धर, अलोलुप, शल, सन्ध, वातवेग और सुवर्चा ॥२॥

एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः।
भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन् ॥ ३ ॥

ये सब एक साथ आकर अपने भाई दुःशासनकी मृत्युके शोकसे व्याकुल होकर महाबाहु भीमसेनको बाणोंसे रोकने लगे ॥ ३ ॥

स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात्तैर्महारथैः।
भीमः क्रोधाभिरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ ॥ ४ ॥

उन महारथियोंके बाणोंसे सब ओरसे रोके जानेपर भीमसेनकी आंखें क्रोधके मारे लाल हो गयीं और वे क्रोधित यमराजके समान हो गये ॥ ४ ॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दशभिः शितैः।
रुक्माङ्गदो रुक्मपुङ्खैः पार्थो निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥

और सुवर्णमय अंगदोंसे विभूषित भीमने सोनेके पंखवाले अत्यन्त शीघ्र चलनेवाले दस तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे उन दसों वीरोंको यमलोकको भेज दिया ॥ ५ ॥

हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव।
पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम् ॥ ६ ॥

उन दसों वीरोंके मारे जानेसे पाण्डुपुत्र भीमके भयसे तुम्हारी सेना इधर उधरको भागने लगी। उस समय कर्ण भी देख रहे थे, और तुम्हारी सेना भाग चली ॥ ६ ॥

ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महारणम्।
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव ॥ ७ ॥

महाराज ! जैसे प्रजाओंपर यमराजका बल होता है, वैसा भीमसेनका पराक्रम देखकर, कर्णने महायुद्धमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥

तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः।
उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिंदम।
मा व्यथां कुरु राधेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ ८ ॥

युद्धमें शोभित होनेवाले शल्य कर्णकी आकृति देखते ही उसके मनका भाव समझ गये; फिर शत्रुदमन कर्णसे समयानुसार यों बोले, हे राधापुत्र ! तुम व्यथित न हो जाओ, तुमको यह अनुचित है ॥ ८ ॥

एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः।
दुर्योधनश्च संमूढो भ्रातृव्यसनदुःखितः ॥ ९ ॥

ये देखो, तुम्हारी ओरके सब राजा भीमसेनके डरसे व्याकुल होकर भागे जाते हैं। राजा दुर्योधन भाइयोंकी मृत्युसे दुःखित होकर किंकर्तव्यमूढ हो गया है ॥ ९ ॥

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना ।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतमन्यवः ॥ १० ॥

महात्मा भीम जब दुःशासनका रुधिर पी रहे थे, दुःखित हृदय और शोकाकुल मन होकर ॥ १० ॥

दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः ।
कृपप्रभृतयः कर्ण हतशेषाश्च सोदराः ॥ ११ ॥

हे कर्ण ! ये सब कृपाचार्य आदि वीर और मरनेसे बचे हुए भाई राजा दुर्योधनको सब ओरसे घेरकर उसके पास खडे हैं ॥ ११ ॥

पाण्डवा लब्धलक्षाश्च धनंजयपुरोगमाः ।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपास्थिताः ॥ १२ ॥

ये सब अर्जुन आदि पाण्डव वीर अपना लक्ष्य सिद्ध करके, अब लडनेके लिये केवल तुम्हारे ही सामने चले आते हैं ॥ १२ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषे महति स्थितः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनंजयम् ॥ १३ ॥

हे पुरुषशार्दूल ! अब तुम महान् पुरुषार्थमें स्थित होकर क्षत्रियोंके धर्मानुसार अत्यन्त उत्साह करके अर्जुनसे लडनेको चलो ॥ १३ ॥

भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समर्पितः ।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम् ।
जये स्याद्विपुला कीर्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये ॥ १४ ॥

हे महाबाहो ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने युद्धका सब भार तुम्हारे ही भरोसे छोड दिया है, सो अब तुम अपने बल और शक्तिके अनुसार उस भारका वहन करो । विजय होनेसे बडी कीर्ति होगी और पराजय होनेपर सदैवके लिये स्वर्ग मिलेगा ॥ १४ ॥

वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव ।
त्वयि मोहसमापन्ने पाण्डवानभिधावति ॥ १५ ॥

हे राधेय ! यह तुम्हारा पुत्र वृषसेन तुमको मोहग्रस्त हुआ देखकर, अत्यन्त क्रोधित होकर पाण्डवोंसे युद्ध करने जाना चाहता है ॥ १५ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः ।
हृदि मानुष्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम् ॥ १६ ॥

महातेजस्वी शल्यके ऐसे वचन सुन कर्णने अपने हृदयमें मनुष्य योग्य भाव रखकर लडनेका दृढ सङ्कल्प किया ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधावदात्तस्थिवांसं स्वरथं हतारिम्।
वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं गदाहस्तं पोथमानं त्वदीयान् ॥ १७ ॥

अनन्तर क्रोधित वृषसेनने शत्रुओंको मारकर, अपने रथपर स्थित हुए भीमसेनपर धावा किया, वे दण्डधारी यमराजके समान गदा धारण करके तुम्हारे कौरव सैनिकोंसे युद्ध करते थे ॥ १७ ॥

तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो रोषादमित्रं प्रतुदन्पृषत्कैः।
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं जिष्णुर्जिघांसुर्मघवेव जम्भम् ॥ १८ ॥

उसको आते देख क्रुद्ध होकर श्रेष्ठ वीर नकुलने अपने शत्रु कर्णपुत्र वृषसेनको जो युद्धमें प्रसन्नतासे लडता था, जीतकर मार डालनेकी इच्छासे घोर बाण वर्षाते हुए उसपर धावा किया, जैसे अपने शत्रुको जम्भको मारनेके लिये इन्द्र दौडे थे ॥ १८ ॥

ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकम्बुं चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण।
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं भल्लेन जाम्बूनदपट्टनद्धम् ॥ १९ ॥

फिर वीर नकुलने एक क्षुर बाणसे कर्णके पुत्रकी स्फटिक जटित विचित्र कंकणवाली ध्वजा काट दी और एक भल्ल बाणसे सुवर्ण भूपित विचित्र धनुष भी काट दिया ॥ १९ ॥

अथान्यदादाय धनुः सुशीघ्रं कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत्।
दिव्यैर्महास्त्रैर्नकुलं महास्त्रो दुःशासनस्यापचितिं यियासुः ॥ २० ॥

कर्णपुत्र वृषसेनने शीघ्रतासे दूसरा धनुप लिया और पाण्डुकुमार नकुलको विद्ध किया। कर्णका पुत्र अस्त्रविद्याका ज्ञाता था, इसलिये वह दुःशासनकी मृत्युका प्रतिशोध लेनेके लिये नकुलपर दिव्य महान् अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २० ॥

ततः क्रुद्धो नकुलस्तं महात्मा शरैर्महोल्काप्रतिमैरविध्यत्।
दिव्यैरस्त्रैरभ्यविध्यच्च सोऽपि कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः ॥ २१ ॥

तब महात्मा नकुलने क्रोध करके महान् उल्काओंके समान बाणोंसे उसको घायल किया। फिर अस्त्रविद्या ज्ञाता कर्णपुत्रने भी नकुलको दिव्य अस्त्रोंसे विद्ध किया ॥ २१ ॥

कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः।
वनायुजान्सुकुमारस्य शुभ्रानलंकृताञ्जातरूपेण शीघ्रान् ॥ २२ ॥

राजन्! अनन्तर कर्णके पुत्रने वनायु देशमें उत्पन्न, सोनेके जालवाले, शीघ्रगामी और सफेद सुकुमार नकुलके सब घोडोंको अति उत्तम अस्त्रोंसे काट डाला ॥ २२ ॥

ततो हताश्वादवरुह्य यानादादाय चर्म रुचिरं चाष्टचन्द्रम्।
आकाशसंकाशमसिं गृहीत्वा पोप्लूयमानः खगवच्चचार ॥ २३ ॥

तब नकुल उस अश्वहीन रथसे उतरकर आकाशके समान निर्मल खड्ग और आठ चन्द्रमाके चिन्होंसे युक्त सुंदर ढाल लेकर उसे घुमाते हुए, उस युद्धमें पक्षीके समान विचरने लगे ॥ २३ ॥

ततोऽन्तरिक्षे नृवराश्वनागांश्चिच्छेद मार्गान्विचरन्विचित्रान् ।
ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा ॥ २४ ॥
फिर विचित्र मार्गोंसे घुमकर युद्ध करनेवाले नकुलने अनेक हाथी, घोडे और वीर श्रेष्ठ मनुष्योंको आकाशमें खड्ग घुमाकर मार डाला, वे सब तलवारसे कटकर इस प्रकार मरकर पृथ्वीमें गिरे, जैसे शमित्राके हाथसे अश्वमेध यज्ञमें पशु ॥ २४ ॥

द्विसाहस्रा विदिता युद्धशौण्डा नानादेश्याः सुभृताः सत्यसंधाः ।
एकेन शीघ्रं नकुलेन कृत्ताः सारेप्सुनेवोत्तमचन्दनास्ते ॥ २५ ॥
अकेले नकुलने अपनी विजयके लिये अनेक देशोंके उत्पन्न हुए, महायोद्धा, हृष्टपुष्ट, सत्यवादी, उत्तम चन्दन आदिसे विभूषित दो सहस्र क्षत्रियोंको मारा ॥ २५ ॥

तमापतन्तं नकुलं सोऽभिपत्य समन्ततः सायकैरभ्यविध्यत् ।
स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कैर्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः ॥ २६ ॥
इस प्रकार युद्ध करते अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले नकुलके समीप जाकर कर्णके पुत्रने अपने बाणोंसे उन्हें चारों ओरसे विद्ध किया । उन बाणोंके लगनेसे नकुल पीडित होकर बहुत क्रुद्ध हो गये और स्वयं विद्ध होनेपर भी उन्होंने वीर वृषसेनको घायल किया ॥२६॥

तं कर्णपुत्रो विधमन्तमेकं नराश्वमातङ्गरथप्रवेकान् ।
क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कैर्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः ॥ २७ ॥
लीलासे अनेक मनुष्य, घोडे, हाथी और रथोंका नाश करते हुए और खेलते हुएसे अकेले वीर नकुलको देख, बाणोंसे घायल हुए कर्णपुत्रने क्रोधसे नकुलको अठारह तेज बाण मारे ॥ २७ ॥

ततोऽभ्यधावत्समरे जिघांसुः कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः ।
तस्येषुभिर्व्यधमत्कर्णपुत्रो महारणे चर्म सहस्रतारम् ॥ २८ ॥
उन बाणोंके लगनेसे वीर तेजस्वी पाण्डुपुत्र नकुल कर्णके पुत्रको मारनेकी इच्छासे युद्धमें उसकी ओर दौडे । तब नकुलकी सहस्र तारोंके चिन्हवाली ढालको कर्णपुत्र वृषसेनने महा-युद्धमें बाणोंसे नष्ट कर दिया ॥ २८ ॥

तस्यायसं निशितं तीक्ष्णधारमसिं विकोशं गुरुभारसाहम् ।
द्विषच्छरीरापहरं सुघोरमाधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥ २९ ॥
लोहेकी बनी हुई, तीक्ष्ण, तेज धारवाली, म्यानसे बाहर निकाली हुई, बहुत भार सहन करनेमें समर्थ, सर्पके समान उग्र, अत्यंत भयंकर और शत्रुओंके शरीरोंका नाश करनेवाली वह तलवार नकुल घुमाने लगे ॥ २९ ॥

×

क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाहश्चकर्त खड्गं निशितैः सुधारैः ।
पुनश्च पीतैर्निशितैः पृषत्कैः स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविध्यत् ॥ ३० ॥

शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ वृषसेनने तीक्ष्ण और तेज धारवाले छः बाणोंसे शीघ्रतासे उस खड्गके टुकडे कर डाले । फिर दीप्तिमान् तीक्ष्ण बाणोंसे नकुलकी छातीमें गहरा प्रहार किया ॥ ३० ॥

स भीमसेनस्य रथं हताश्वो माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः ।
आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं संप्रेक्षमाणस्य धनंजयस्य ॥ ३१ ॥

अर्जुनके देखते देखते माद्रीपुत्र नकुल अपने रथके घोडे मारे जानेपर और कर्णपुत्र वृषसेनके बाणोंसे पीडित होकर, पर्वतके शिखरपर उछलकर चढनेवाले सिंहके समान कूदकर भीमसेनके रथपर बैठ गये ॥ ३१ ॥

नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम् ।
पवनधुतपताका ह्रादिनो वल्गिताश्वा वरपुरुषनियत्तास्ते रथाः शीघ्रमीयुः ॥ ३२ ॥

कर्णपुत्र वृषसेनने नकुलके धनुष और तलवार काटकर रथहीन किया है, वे शत्रुओंके बाणोंसे पीडित हैं और कर्णपुत्रने अस्त्रोंसे उन्हें परास्त किया है, यह जानकर श्रेष्ठ पुरुष भीमसेनकी आज्ञासे, जिनके रथकी पताकाएं वायुमे फहरा रही हैं और घोडे कूदकर दौडते हैं– ऐसे रथोंसे वे महारथी वीर गर्जते हुए वहां शीघ्र ही आये ॥ ३२ ॥

द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः ।
द्विरदरथनराश्वान्सूदयन्तस्त्वदीयान्भुजगपतिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः ॥ ३३ ॥

हाथोंमें शस्त्र लिये, शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ द्रुपदके पांच श्रेष्ठ पुत्र, छठे सात्यकि और द्रौपदीके पांच पुत्र– ये ग्यारह वीर सांपोंके समान बाणोंसे तुम्हारे हाथी, घोडे, रथ और पदातियोंका नाश करते हुए वहां आये ॥ ३३ ॥

अथ तव रथमुख्यास्तान्प्रतीयुस्त्वरन्तो हृदिकसुतकृपौ च द्रौणिदुर्योधनौ च ।
शकुनिशुकवृकाश्च क्राथदेवावृधौ च द्विरदजलदघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च ॥ ३४ ॥

तुम्हारी ओरसे भी उन सबका सामना करनेके लिये, मेघ और हाथीके समान शब्द करनेवाले रथोंपर चढकर कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, राजा दुर्योधन, शकुनि, शुक तथा वृक, क्राथ और देवावृध– ये तुम्हारे श्रेष्ठ महारथी शीघ्रतासे दिव्य धनुष धारण करके दौडे ॥ ३४ ॥

तव नरवरवर्यास्तान्दशैकं च वीरान्प्रवरशरवराग्र्यैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन् ।
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयुर्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुणिन्दाः ॥३५॥

हे महाराज ! तुम्हारे इन सब श्रेष्ठ नरवीरोंने पाण्डवोंके उन ग्यारह वीरोंको अपने उत्तम बाणोंकी वर्षा करके पीडित करते हुए आगे बढनेसे रोका । तब नवीन काले मेघके समान काले वर्णवाले, पर्वतोंके शिखरके समान भारी, शीघ्र चलनेवाले हाथियोंपर चढकर कुणिंद-देशके योद्धा उनपर दौडे ॥ ३५ ॥

सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा रणाभिकामैः कृतिभिः समास्थिताः ।
सुवर्णजालावतता बभुर्गजास्तथा यथा वै जलदाः सविद्युतः ॥ ३६ ॥

जैसे बिजलियोंके सहित काले मेघ आकाशमें शोभित होते हैं, वैसे ही हिमाचल प्रदेशके मतवारे, सुसज्ज, सुवर्ण जालवाले, युद्धकी इच्छा करनेवाले, युद्धकुशल महावीर योद्धासे युक्त हाथी शोभित होने लगे ॥ ३६ ॥

कुणिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः कृपं ससूताश्वमपीडयद्भृशम् ।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः सहैव नागेन पपात भूतले ॥ ३७ ॥

तब कुणिन्द देशके राजपुत्रने अपने लोहेके बने हुए दस महान् बाणोंसे सारथि और घोडोंके सहित कृपाचार्यको अत्यंत व्याकुल कर दिया, अनन्तर शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने बाणोंसे हाथीके सहित उसे मार डाला, तब वह हाथीके सहित भूमिपर गिर पडा ॥ ३७ ॥

कुणिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरैर्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः ।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दतस्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥ ३८ ॥

कुणिन्द राजपुत्रके छोटे भाईने सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी, लोहेके बने हुए अनेक तोमरोंसे गांधारराजके रथकी धज्जियां उडायी और गर्जने लगा, तब गान्धारराज शकुनिने गर्जते हुए उसका शिर काट लिया ॥ ३८ ॥

ततः कुणिन्देषु हतेषु तेष्वथ प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः ।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसंभवान्परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः ॥ ३९ ॥

इन दोनों कुणिन्द देशके राजपुत्रोंके मारे जानेसे तुम्हारे महारथी बहुत प्रसन्न हुए, सब योद्धा जोरसे शंख बजाने लगे । फिर हाथमें धनुष-बाण लेकर कुलिन्द देशकी सेनापर दौडे ॥ ३९ ॥

अथाभवद्युद्धमतीव दारुणं पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः ।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधैर्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम् ॥ ४० ॥

अनन्तर कौरवोंका पाण्डव और सृञ्जयोंके साथ घोर युद्ध होने लगा । अनेक बाण, खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, गदा और परशु चलने लगे । उनके प्रहारसे हाथी, घोडे और मनुष्य मरने लगे ॥ ४० ॥

रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः परस्परं विप्रहता पतन्क्षितौ ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः समास्थिता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः ॥४१॥
जैसे बडी आंधी चलनेसे बिजली और गर्जनाके सहित मेघ सब दिशाओंमें गिरने लगते हैं, ऐसे ही रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंसे परस्पर मारे गये वे योद्धा भूमिपर गिरने लगे॥४१॥

ततः शतानीकहतान्महागजांस्तथा रथान्पत्तिगणांश्च तावकान् ।
जघान भोजश्च हयानथापतन्विशस्त्रकृत्ताः कृतवर्मणा द्विपाः ॥ ४२ ॥
तब शतानीकसे पीडित तुम्हारे मतवाले हाथियों, अश्वों, रथों तथा अनेक पदातियोंको कृतवर्माने मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया, कृतवर्माने हाथियोंको शस्त्रविरहित कर दिया॥४२॥

अथापरे द्रौणिशराहता द्विपास्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतवः ।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवः प्रपातितास्तथा यथा वज्रहता महाचलाः ॥ ४३ ॥
अनन्तर अश्वत्थामाने भी सब आयुध, योद्धा और ध्वजाओं सहित अन्य तीन मतवाले हाथियोंको अपने बाणोंसे मारकर, इस प्रकार पृथ्वीमें प्राणरहित करके गिरा दिया, जैसे इन्द्र अपने वज्रसे महान् पर्वतोंको गिराते हैं ॥ ४३ ॥

कुणिन्दराजावरजादनन्तरः स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत् ।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः शितैः शरीरं विभिदे द्विपं च तम् ॥४४॥
कुणिन्द राजके तीसरे छोटे भाईने तुम्हारे पुत्रके छातीमें अनेक श्रेष्ठ बाण मारे, तब तुम्हारे पुत्रने भी अपने तेज बाणोंसे उसके शरीर और हाथीको छिन्नभिन्न कर दिया ॥ ४४ ॥

स नागराजः सह राजसूनुना पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन् ।
शचीशवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा ॥ ४५ ॥
दुर्योधनके बाण लगनेसे वह हाथी राजपुत्रके सहित भूमिपर गिर पडा और उस हाथीके शरीरसे सब ओर इस प्रकार बहुत रुधिर बहने लगा, जैसे वर्षाकालमें इन्द्रके वज्रसे ताडित हुए गेरुके पर्वतसे लाल रंगका जल बहता है ॥ ४५ ॥

कुणिन्दपुत्रप्रहितोऽपरद्विपः शुकं ससूताश्वरथं व्यपोथयत् ।
ततोऽपतत्क्राथशराभिदारितः सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः ॥ ४६ ॥
तीसरे कुणिन्द राजपुत्रने आगे बढाये दूसरे हाथीने सारथि, घोडे और रथके सहित शुकको कुचल डाला, तब क्राथके बाणोंसे पीडित वह हाथी वज्रके प्रहारसे विदीर्ण हुए पर्वतके समान अपने मालिकके साथ नीचे गिर गया ॥ ४६ ॥

रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः ।
स वाजिसूतेष्वसनस्तथापतद्यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥ ४७ ॥
तब हाथीपर बैठे हुए एक पर्वतवासी योद्धाने अपने बाणोंसे घोडे, सारथि, धनुष और ध्वजाके सहित दुर्जय महारथी राजा क्राथको मारकर रथसे नीचे इस प्रकार गिरा दिया, जैसे आंधी महान् वृक्षको उखाडकर पृथ्वीपर गिरा देती है ॥ ४७ ॥

वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत् ।
ततो वृकं साश्वरथं महाजवं त्वरंश्चतुर्भिश्चरणे व्यपोथयत् ॥ ४८ ॥
तब वृकने उस पर्वतीय राजाको बारह बाण मारकर अत्यंत विद्ध किया। उसी समय उस हाथीने दौडकर अपने चारों पैरोंसे महावेगवान् घोडे और रथके सहित त्वरासे वृकका चूरा कर दिया ॥ ४८ ॥

स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत्पराहतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम् ।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥ ४९ ॥
अनन्तर बभ्रूके पुत्रके बाणोंसे अत्यंत घायल होकर वह गजराज महावतके सहित भूमिपर गिर गया। फिर वह देवावृध पुत्र भी सहदेवके पुत्रसे आहत होकर पृथ्वीमें गिर गया ॥४९॥

विषाणपोत्रापरगात्रघातिना गजेन हन्तुं शकुनः कुणिन्दजः ।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥ ५० ॥
तब कुणिन्द देशके दूसरे राजपुत्रने दांत, सूंड और अवयवोंसे वीरोंको मारनेवाले हाथीसे शकुनिको मार डालनेके लिये उसपर जोरसे धावा किया और उसे अत्यंत घायल किया, तब गांधारराज शकुनिने अपने बाणोंसे उसका शिर काट लिया ॥ ५० ॥

ततः शतानीकहता महागजा हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः ।
सुपर्णवातप्रहता यथा नगास्तथा गता गामवशा विचूर्णिताः ॥ ५१ ॥
इतने ही समयमें शतानीकने तुम्हारी सेनापर आक्रमण करके, तुम्हारे अनेक बडे बडे हाथी, घोडे, रथ और पैदल मनुष्योंको विवश करके चूर कर डाला, जैसे गरुडकी पंखोंकी हवासे विह्वल होकर सांप पृथ्वीपर गिर पडते हैं ॥ ५१ ॥

ततोऽभ्यविध्यद्बहुभिः शितैः शरैः कुणिन्दपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन् ।
ततोऽस्य कायान्निचकर्त नाकुलिः शिरः क्षुरेणाम्बुजसंनिभाननम् ॥ ५२ ॥
अनन्तर हंसकर कुणिन्ददेशके राजपुत्रने नकुलपुत्र शतानीकको अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया। तब नकुलपुत्र शतानीकने एक क्षुर बाणसे उसका कमलके समान मुखवाला शिर धडसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ५२ ॥

ततः शतानीकमविध्यदाशुगैस्त्रिभिः शितैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः ।
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभिर्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः ॥ ५३ ॥
तब कर्णके पुत्रने शतानीकको तीन बाणोंसे विद्ध किया; फिर अर्जुनको तीन, भीमसेनको तीन, नकुलको सात और श्रीकृष्णको बारह बाण मारे ॥ ५३ ॥

तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः समीक्ष्य हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन् ।
पराक्रमज्ञास्तु धनंजयस्य ते हुतोऽयमग्नाविति तं तु मेनिरे ॥ ५४ ॥
अमानुष पराक्रम करनेवाले वृपसेनके इस कर्मको देख, सब कौरव बडे प्रसन्न हुए और उसकी स्तुति करने लगे; परन्तु अर्जुनके पराक्रम जाननेवाले वीरोंने निश्चित जाना कि यह आगकी आहुति बना है ॥ ५४ ॥

ततः किरीटी परवीरघाती हताश्वमालोक्य नरप्रवीरम् ।
तमभ्यधावद्वृषसेनमाहवे स सूतजस्य प्रमुखे स्थितं तदा ॥ ५५ ॥
तब शत्रुनाशन किरीटधारी अर्जुन नरश्रेष्ठ नकुलको हताश्व देख, उस समय कर्णके युद्धमें आगे खडे वृपसेनकी ओर दौडे ॥ ५५ ॥

तमापतन्तं नरवीरमुग्रं महाहवे बाणसहस्रधारिणम् ।
अभ्यापतत्कर्णसुतो महारथो यथैव चेन्द्रं नमुचिः पुरातने ॥ ५६ ॥
महायुद्धमें सहस्रों बाणधारी महापराक्रमी वीर अर्जुनको अपनी ओर आते देख, महारथी कर्णपुत्र वृपसेन उनकी ओर इस प्रकार दौडा, जैसे पहले समयमें नमुचि इन्द्रकी ओर दौडा था ॥ ५६ ॥

ततोऽद्भुतेनैकशतेन पार्थं शरैर्विध्द्वा सूतपुत्रस्य पुत्रः ।
ननाद नादं सुमहानुभावो विध्द्वेव शक्रं नमुचिः पुरा वै ॥ ५७ ॥
फिर महानुभाव वीर सूतपुत्र वृपसेनने युद्धमें सैकडों अद्भुत बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया, फिर वेगसे इस प्रकार गर्जा, जैसे पहले इन्द्रके शरीरमें बाण मारकर नमुचि गर्जा था ॥५७॥

पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रैर्बाणैरविध्यद्भुजमूलमध्ये ।
तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्पुनश्च पार्थं दशभि शिताग्रैः ॥ ५८ ॥
फिर वृपसेनने अर्जुनकी भुजाके मूलभागके मध्यमें अनेक तेज बाण मारे, फिर श्रीकृष्णको भी नौ बाण मारकर, अर्जुनके शरीरमें पहलेके समान फिर दस तीक्ष्ण बाण मारे ॥ ५८ ॥

ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात्कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे ।
मुमोच बाणान्विशिखान्महात्मा वधाय राजन्सूतपुत्रस्य संख्ये ॥ ५९ ॥
राजन् ! अनन्तर किरीटधारी महात्मा अर्जुनने सूतपुत्रको युद्धमें मारनेके लिये क्रोधसे ललाट स्थित भौंहें तीन जगह टेढी की, फिर तीक्ष्ण बाण छोडे ॥ ५९ ॥

विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कैर्मर्मस्वथास्त्रं प्रसभं किरीटी ।
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च क्षुरैश्चतुर्भिः शिर एव चोग्रैः ॥ ६० ॥

और यमराजके समान फिर किरीटधारी अर्जुनने त्वरा करके जोरसे दस बाण उसके मर्मस्थानोंमें मारे, फिर चार उग्र क्षुर बाणोंसे उसके दोनों हाथ, धनुष और शिर भी काट दिये ॥ ६० ॥

स पार्थबाणाभिहतः पपात रथाद्विबाहुर्विशिरा धरायाम् ।
सुपुष्पितः पर्णधरोऽतिकायो वातेरितः शाल इवाद्रिशृङ्गात् ॥ ६१ ॥

तब वह अर्जुनके बाणोंसे आहत हो, हाथ और शिरसे रहित होकर रथसे नीचे पृथ्वीमें गिर गया । जैसे फला फूला पर्णवाला विशाल शालका वृक्ष वायुसे कंपित होकर पर्वतके शिखरसे गिर जाता है ॥ ६१ ॥

तं प्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं रथात्सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ।
रथं रथेनाशु जगाम वेगात्किरीटिनः पुत्रवधाभितप्तः ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ३५०३ ॥

शीघ्र कार्य करनेवाला सूतपुत्र कर्ण अपने पुत्रको बाणोंसे विद्ध होकर रथसे नीचे गिरते देख, पुत्रवधसे संतप्त होकर वेगसे रथके द्वारा अर्जुनके रथकी ओर गया ॥ ६२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें बासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ ३५०३ ॥

: ६३ :

सञ्जय उवाच

वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः ।
मुक्त्वा शोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां सहसा वृषः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! वृषसेनको मारा गया देख, कर्ण शोक और क्रोधसे भरकर अपने दोनों नेत्रोंसे सहसा पुत्र शोकके कारण आंसू बहाने लगा ॥ १ ॥

रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपून् ।
युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनंजयम् ॥ २ ॥

फिर तेजस्वी कर्ण क्रोधसे लाल नेत्र करके शत्रु अर्जुनको युद्धके लिये पुकारते हुआ रथसे उनके सामने आया ॥ २ ॥

तौ रथौ सूर्यसंकाशौ वैयाघ्रपरिवारणौ ।
समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समागतौ ॥ ३ ॥

वे दोनों बाघके चमडेसे मढे और सूर्यके समान तेजस्वी एकत्र हुए रथ उस समय एक साथ आते हुए दो सूर्यके समान दीखने लगे ॥ ३ ॥

श्वेताश्वौ पुरुषादित्यावास्थितावरिमर्दनौ ।
शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि ॥ ४ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी नरश्रेष्ठ, सफेद घोडोंके रथपर चढे हुए, शत्रुओंको मारनेवाले दोनों महात्मा वीर आकाशमें चन्द्रमा और सूर्यके समान शोभित होने लगे ॥ ४ ॥

तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वभूतानि मारिष ।
त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ५ ॥

मारिष ! उन दोनोंको तीन लोकोंको जीतनेके लिये प्रयत्नशील हुए इन्द्र और वैरोचनके समान खडे हुए देख, सब सेना आश्चर्य करने लगे ॥ ५ ॥

रथज्यातलनिर्ह्रादैर्बाणशङ्खरवैरपि ।
तौ रथावभिधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम् ॥ ६ ॥

रथ, धनुषकी डोरी और तालके शब्द, बाण और शंखकी ध्वनिके साथ परस्पर दौडते हुए उन दोनों रथोंको देखकर ॥ ६ ॥

ध्वजौ च दृष्ट्वा संसक्तौ विस्मयः समपद्यत ।
हस्तिकक्ष्यां च कर्णस्य वानरं च किरीटिनः ॥ ७ ॥

कर्णकी हाथी युक्त और किरीटधारी अर्जुनकी वानर युक्त ध्वजाओंको परस्पर सटी हुई देखके सब नरेश आश्चर्य करने लगे ॥ ७ ॥

तौ रथौ संप्रसक्तौ च दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥ ८ ॥

हे भारत ! उन दोनों रथोंको एक दूसरेसे मिले देख, राजा लोग सिंहोंके समान गर्जकर, साधु साधु कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रुत्वा तु द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः समन्ततः ।
चक्रुर्बाहु बलं चैव तथा चेलवलं महत् ॥ ९ ॥

उन दोनोंको द्वैरथ युद्धके लिये उपस्थित सुनकर वहांके सब योद्धा लोग चारों ओरसे भुजाओंपर ताल ठोंकने लगे और कपडे हिलाने लगे ॥ ९ ॥

आजग्मुः कुरवस्तत्र वादित्रानुगतास्तदा ।
कर्णं प्रहर्षयन्तश्च शङ्खान्दध्मुश्च पुष्कलान् ॥ १० ॥

कर्णको प्रसन्न करनेके लिये चारों ओरसे बाजा बजाते हुए कौरव सैनिक वहां आये और बहुत शंख ध्वनि करने लगे ॥ १० ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनंजयम् ।
तूर्यशङ्खनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार सब पाण्डव योद्धा भी अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये चारों ओरसे तूर्य, शङ्ख आदि अनेक बाजे बजाकर सब दिशाओंको पूरित करने लगे ॥ ११ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ।
बाहुघोषाश्च वीराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥ १२ ॥

कर्ण और अर्जुनके उस समागममें वीरोंके ताल, सिंहनाद, गर्जन और बाहुओंके शब्दसे सब ओर घोर आवाज सुनाई देने लगी ॥ १२ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ ।
प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिगदायुधौ ॥ १३ ॥

वे दोनों रथियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह रथपर बैठे, महान् धनुष धारण किये, बाण, शक्ति, गदा आदि आयुधोंसे युक्त ॥ १३ ॥

वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शङ्खशोभिनौ ।
तूणीरवरसंपन्नौ द्वावपि स्म सुदर्शनौ ॥ १४ ॥

कवचधारी, कमरमें तलवार बांधे हुए, सफेद घोडोंसे युक्त, शङ्खसे शोभित, उत्तम तूणीरसे सम्पन्न और देखनेमें सुंदर रूपवाले थे ॥ १४ ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ समदौ वृषभाविव ।
आशीविषसमप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ ॥ १५ ॥

अंगोंमें लाल चन्दन लगे और सांडोंके समान पुष्ट थे । विषीले सर्पोंके समान तेज, यम, काल और अन्तकके समान भयंकर ॥ १५ ॥

इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्याचन्द्रमसप्रभौ ।
महाग्रहाविव क्रूरौ युगान्ते समुपस्थितौ ॥ १६ ॥

इन्द्र और वृत्रासुरके समान परस्पर क्रोधमें भरे, सूर्य और चंद्रमाके समान प्रकाशमान, क्रोधित दो महान् ग्रहोंके समान प्रलय करनेके लिये उठ खडे हुए थे ॥ १६ ॥

×

देवगर्भौ देवसमौ देवतुल्यौ च रूपतः ।
समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनंजयौ ॥ १७ ॥

ऐसे ही ये दोनों देवपुत्रोंके समान पराक्रमी वीर युद्ध करनेको उपस्थित हुए, दोनों ही देवताओंके कुमार, देवताओंके समान और देव तुल्य रूपवान् थे । पुरुषसिंह कर्ण और अर्जुनको युद्धके लिये एकत्र हुए सबने देखा ॥ १७ ॥

उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ ।
उभौ च बाहुशब्देन नादयन्तौ नभस्तलम् ॥ १८ ॥

वे दोनों उत्तम आयुध धारण किये, दोनों युद्धकी विद्या सीखनेमें परिश्रम किये वीर अपनी भुजाओंके तालके शब्दसे आकाशको पूरित करने लगे ॥ १८ ॥

उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च ।
उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ १९ ॥

दोनोंके पराक्रम जगत् प्रसिद्ध थे, दोनों युद्धमें पुरुषार्थ और बलमें देवराज इन्द्र और शम्बरके तुल्य थे ॥ १९ ॥

कार्तवीर्यसमौ युद्धे तथा दाशरथेः समौ ।
विष्णुवीर्यसमौ वीर्ये तथा भवसमौ युधि ॥ २० ॥

दोनों ही युद्धमें और वीर्यमें कार्तवीर्य अर्जुन, दशरथ पुत्र श्रीराम, विष्णु और शिवके समान योद्धा थे ॥ २० ॥

उभौ श्वेतहयौ राजन्रथप्रवरवाहिनौ ।
सारथी प्रवरौ चैव तयोरास्तां महाबलौ ॥ २१ ॥

राजन् ! वे दोनों युद्धमें सफेद घोडोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर विराजमान हुए थे । उन दोनोंके सारथि महाबलवान् श्रेष्ठ पुरुष थे ॥ २१ ॥

तौ तु दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ २२ ॥

हे महाराज ! उन शोभायमान दोनों महारथियोंको युद्धमें खडे देख, सब सिद्ध, चारण आदिके संघ आश्चर्य करने लगे ॥ २२ ॥

धार्तराष्ट्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ ।
परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनम् ॥ २३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तब तुम्हारे सब पुत्र शीघ्रता सहित बहुत सेना सङ्गमें लेकर युद्धमें शोभित होनेवाले महात्मा कर्णको घेरकर खडे हो गये ॥ २३ ॥

तथैव पाण्डवा हृष्टा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ २४ ॥

इसी प्रकार प्रसन्न हुए धृष्टद्युम्न आदि अनेक पाण्डव योद्धा युद्धमें अद्वितीय वीर अर्जुनको घीरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ २४ ॥

तावकानां रणे कर्णो ग्लह आसीद्विशां पते ।
तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवद्युधि ॥ २५ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! उस समय तुम्हारी ओरसे युद्धरूपी जुवेमें कर्ण अक्ष था और इसी प्रकार पाण्डवोंकी ओरसे अर्जुन अक्ष हो गये ॥ २५ ॥

त एव सभ्यास्तत्रासन्प्रेक्षकाश्चाभवन्स्म ते ।
तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २६ ॥

जो पहलेके जूएमें प्रेक्षक थे, वे ही वहां सब सभासदोंके समान खडे होकर देखने लगे, युद्धरूपी जूआ खेलनेवाले वीरोंमें एककी विजय और दूसरेकी पराजय निश्चित थी ॥ २६ ॥

ताभ्यां द्यूतं समायत्तं विजयायेतराय वा ।
अस्माकं पाण्डवानां च स्थितानां रणमूर्धनि ॥ २७ ॥

उस समय उन दोनोंने युद्धके लिये खडे हुए हम और पाण्डवोंकी विजय वा पराजयके लिये युद्धका द्यूत खेलना शुरू किया ॥ २७ ॥

तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ ।
अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यस्य जयैषिणौ ॥ २८ ॥

उस समय जय और पराजयका दांव रख हम और पाण्डव युद्धरूपी जुवा खेलने लगे । हे महाराज ! तब वे युद्धमें शोभित होनेवाले दोनों वीर परस्पर क्रुद्ध होकर एक दूसरेपर विजय पानेकी इच्छासे युद्ध करनेको खडे हुए ॥ २८ ॥

तावुभौ प्रजिहीर्षेतामिन्द्रवृत्राविवाभितः ।
भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥ २९ ॥

इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे दोनों निर्भय होकर परस्पर आघात करनेकी इच्छा करते थे । दो महान् ग्रहोंके समान उन्होंने भयंकर रूप धारण किया ॥ २९ ॥

ततोऽन्तरिक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ ।
मिथो भेदाश्च भूतानामासन्कर्णार्जुनान्तरे ।
व्याश्रयन्त दिशो भिन्नाः सर्वलोकाश्च मारिष ॥ ३० ॥

हे भरतकुल सिंह ! तब आकाशमें स्थित हुए भूतोंका कर्ण और अर्जुनकी विजय-पराजयके लिये परस्पर आक्षेपयुक्त विवाद और मतभेद होने लगा । मारिष ! उस समय सब लोग चारों ओर भिन्न विचार प्रगट करने लगे ॥ ३० ॥

देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
प्रतिपक्षग्रहं चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे ॥ ३१ ॥

देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और राक्षस आदि सब जगत्‌निवासी जीवोंने कर्ण और अर्जुनके युद्धके विषयमें पक्ष और प्रतिपक्ष ग्रहण कर लिया ॥ ३१ ॥

द्यौरासीत्कर्णतो व्यग्रा सनक्षत्रा विशां पते ।
भूमिर्विशाला पार्थस्य माता पुत्रस्य भारत ॥ ३२ ॥

पृथ्वीपते ! नक्षत्रोंके सहित सब आकाश कर्णके पक्षमें व्यग्रचित्त हुआ; भारत ! विशाल भूमि माताके समान अपने पुत्र अर्जुनके पक्षमें खडी हुई ॥ ३२ ॥

सरितः सागराश्चैव गिरयश्च नरोत्तम ।
वृक्षाश्चौषधयस्तत्र व्याश्रयन्त किरीटिनम् ॥ ३३ ॥

नरश्रेष्ठ ! ऐसे ही नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष और ओषधियां— इन सबने किरीटधारी अर्जुनके पक्षका आश्रय लिया ॥ ३३ ॥

असुरा यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परंतप ।
कर्णतः समपद्यन्त खेचराणि वयांसि च ॥ ३४ ॥

हे शत्रुतापन ! उस समय असुर, यातुधान गुह्यक, खेचर और पक्षियोंने कर्णका पक्ष लिया ॥ ३४ ॥

रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः ।
सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ ३५ ॥

रत्न, खान, इतिहास–पुराण सहित सब वेद, उपवेद, उपनिषद्, रहस्य और संग्रह ॥ ३५ ॥

वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षकश्चोपतक्षकः ।
पर्वताश्च तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः ।
विषवन्तो महारोषा नागाश्चार्जुनतोऽभवन् ॥ ३६ ॥

वासुकि, चित्रसेन, तक्षक और उपतक्षक, पर्वत अपने वंशजों सहित सब कद्रुके पुत्र अत्यंत क्रोधित हुए सब बिषैले नाग अर्जुनकी ओर हुए ॥ ३६ ॥

ऐरावताः सौरभेया वैशालेयाश्च भोगिनः ।
एतेऽभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पास्तु कर्णतः ॥ ३७ ॥

ऐरावत, सौरभेय तथा वैशालेय आदि सांप ये सब भी अर्जुन ही की ओर थे । और छोटे छोटे सांप कर्णकी ओर हुए ॥ ३७ ॥

ईहामृगा व्यालमृगा मङ्गल्याश्च मृगद्विजाः ।
पार्थस्य विजयं राजन्सर्वे एवाभिसंश्रिताः ॥ ३८ ॥

राजन् ! ईहामृग, व्यालमृग, मंगलप्रद मृग, पशु और पक्षी– ये सब अर्जुनकी विजयकी इच्छा करने लगे ॥ ३८ ॥

वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वेऽश्विनौ तथा ।
अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनश्च दिशो दश ।
धनंजयमुपाजग्मुरादित्याः कर्णतोऽभवन् ॥ ३९ ॥

वसु, मरुत, साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, चन्द्रमा, वायु, दसों दिशाएं– ये सब अर्जुनकी ओर और आदित्य नामक देवता कर्णके पक्षमें हुए ॥ ३९ ॥

देवास्तु पितृभिः सार्धं सगणार्जुनतोऽभवन् ।
यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोऽर्जुनः ॥ ४० ॥

देवता, पितर और उनके सब गण, वरुण, कुबेर और यमराज अर्जुनकी विजयकी इच्छा करने लगे ॥ ४० ॥

देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोऽभवन् ।
तुम्बुरुप्रमुखा राजन्गन्धर्वाश्च यतोऽर्जुनः ॥ ४१ ॥

राजन् ! देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंके समुदायोंने अर्जुनका पक्ष लिया । तुम्बुरु आदि सब गन्धर्व, ॥ ४१ ॥

प्रावेयाः सह मौनेयैर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ईहामृगव्यालमृगैर्द्विपाश्च रथपत्तिभिः ॥ ४२ ॥

प्राधा और मुनिसे उत्पन्न अप्सरा और गन्धर्वोंके समुदाय भी अर्जुनही की ओर हुए; ईहामृग, व्यालमृग तथा हाथी, रथ और पैदलोंके सहित ॥ ४२ ॥

उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः ।
दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम् ॥ ४३ ॥

मनीषी लोग पवन और मेघोंको वाहन बनाकर अर्जुन और कर्णका युद्ध देखनेके लिये वहां आये थे ॥ ४३ ॥

देवदानवगन्धर्वा नागा यक्षाः पतत्रिणः ।
महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः ॥ ४४ ॥

देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेद जाननेवाले महर्षि, श्राद्ध खानेवाले पितर, ॥ ४४ ॥

तपो विद्यास्तथौषध्यो नानारूपाम्बरत्विषः ।
अन्तरिक्षे महाराज विनदन्तोऽवतस्थिरे ॥ ४५ ॥

महाराज ! तब, विद्या और अनेक प्रकारके रूप और बलसे युक्त दिव्य ओषधियां ये सब गर्जन करते हुए आकाशमें स्थित हुए ॥ ४५ ॥

ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं प्रजापतिभिरेव च ।
भवेनावस्थितो यानं दिव्यं तं देशमभ्ययात् ॥ ४६ ॥

इस समय प्रजापति और ब्रह्मर्षियोंके सहित ब्रह्मा तथा शिव भी दिव्य विमान पर चढकर उस स्थलमें आये ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयंभुवमुपागमन् ।
समोऽस्तु देव विजय एनयोर्नरसिंहयोः ॥ ४७ ॥

प्रजापति स्वयम्भू ब्रह्माको आये देख सब देवताओंने उनसे कहा, हे देव ! इन दोनों नरसिंहोंकी समान ही विजय हो ऐसा हम चाहते हैं ॥ ४७ ॥

तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम् ।
कर्णार्जुनविनाशेन मा नश्यत्वखिलं जगत् ॥ ४८ ॥

देवताओंके ऐसे वचन सुन इन्द्र ब्रह्माको प्रणाम करके बोले, इस युद्धमें कर्ण और अर्जुन दोनोंका नाश होनेसे संपूर्ण जगत्का नाश होगा, यह न होवे ऐसा करो ॥ ४८ ॥

स्वयंभो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः ।
तत्तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन्मम ॥ ४९ ॥

हे स्वयंभू देवता ! इन दोनोंका विजय समान रहे, ऐसा आप कहो । आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये ॥ ४९ ॥

ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम् ।
विजयो ध्रुव एवास्तु विजयस्य महात्मनः ॥ ५० ॥

तब ब्रह्मा और शिव देवेश्वर इन्द्रसे बोले— महात्मा अर्जुनकी विजय तो निश्चित ही है ॥५०॥

मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रश्च तपोधनः ।
बिभर्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः ॥ ५१ ॥

मनस्वी, बलवान्, शूर, अस्त्र विद्याके ज्ञाता, तपस्वी, महातेजस्वी, और सब धनुर्वेदको जाननेवाले अर्जुन हैं ॥ ५१ ॥

अतिक्रमेच्च माहात्म्यादिष्टमेतस्य पर्ययात् ।
अतिक्रान्ते च लोकानामभावो नियतो भवेत् ॥ ५२ ॥

अर्जुनके रथको बलवान् शूरवीर तीन लोकके स्वामी साक्षात् श्रीकृष्ण हांक रहे हैं और जो आप भी सब शस्त्र विद्याको जानते हैं, ये अपनी महत्त्वतासे इनके दैवको भी पलट सकते हैं, यदि ऐसा हुआ तो सब लोकोंका नाश हो जायगा ॥ ५२ ॥

न विद्यते व्यवस्थानं कृष्णयोः क्रुद्धयोः क्वचित् ।
स्रष्टारौ ह्यसतश्चोभौ सतश्च पुरुषर्षभौ ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन क्रुद्ध होनेपर यह जगत् कहीं ठहर नहीं सकता; पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन ही वर्तमान और भूतके निर्माता हैं ॥ ५३ ॥

नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
अनियत्तौ नियन्तारावभीतौ स्म परंतपौ ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन ये ही प्राचीन ऋषिश्रेष्ठ नर और नारायण हैं; ये स्वयं अनियंत्रित हैं; ये सबके नियन्ता, निर्भय और शत्रुतापन हैं ॥ ५४ ॥

कर्णो लोकानयं मुख्यान्प्राप्नोतु पुरुषर्षभः ।
वीरो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः ॥ ५५ ॥

जगत्को अपने नियममें रखते हैं, और आप भी नियमसे चलते हैं, इससे इनके शत्रुओंका नाश होगा। पुरुषश्रेष्ठ शूरवीर वैकर्तन कर्ण श्रेष्ठ लोकको प्राप्त करे परंतु श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही विजय हो ॥ ५५ ॥

वसूनां च सलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात् ।
सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोके महीयताम् ॥ ५६ ॥

कर्ण, भीष्म और द्रोणाचार्यके सहित चाहे स्वर्गलोकमें निवास करें, चाहे वसुओंके अथवा मरुद्गणोंके लोकमें रहें ॥ ५६ ॥

इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोऽब्रवीद्वचः ।
आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनात् ॥ ५७ ॥
श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम् ।
तत्तथा नान्यथा तद्धि तिष्ठध्वं गतमन्यवः ॥ ५८ ॥

देवाधिदेव ब्रह्मा और शिवके वचन सुन इन्द्रने सब प्राणियोंको अपने पास बुलाकर उन दोनोंकी आज्ञासे कहा– जो कुछ इन दोनों ईश्वरोंने जगत्के कल्याणके लिये कहा, सो तुम लोगोंने सुना ही है, अब ऐसाही होगा, उसके विपरीत कुछ नहीं होगा; अब निश्चिन्त हो जाओ ॥ ५७–५८ ॥

इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष ।
विस्मितान्यभवन्राजन्पूजयांचक्रिरे च तत् ॥ ५९ ॥

हे राजन् ! इन्द्रके ऐसे वचन सुन सब प्राणी आश्चर्य चकित हो गये और प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५९ ॥

व्यसृजंश्च सुगन्धीनि नानारूपाणि खात्तथा ।
पुष्पवर्षाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥ ६० ॥

फिर प्रसन्न होकर आकाशमेंसे सुगन्धियोंसे भरे अनेक प्रकारके फूल वर्षाने लगे । देवता अनेक प्रकारके बाजे बजाने लगे ॥ ६० ॥

दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः ।
देवदानवगन्धर्वाः सर्वे एवावतस्थिरे ।
रथौ च तौ श्वेतहयौ युक्तकेतू महास्वनौ ॥ ६१ ॥

पुरुषसिंह अर्जुन और कर्णका अप्रतिम द्वैरथ युद्ध देखनेकी इच्छासे सब देवता, दानव और गन्धर्व वहां खडे हो गये । वे दोनों रथ सफेद घोडोंसे युक्त, ध्वजाओं सहित और महान् शब्द करनेवाले थे ॥ ६१ ॥

समागता लोकवीराः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ कर्णशल्यौ च भारत ॥ ६२ ॥

वहां इकट्ठे हुए जगत्के वीरोंने पृथक् पृथक् शंख बजाये । भारत ! तब इधरसे वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनने, तथा उधरसे कर्ण और शल्यने भी अपने अपने शंख बजाये ॥ ६२ ॥

तद्भीरुसंत्रासकरं युद्धं समभवत्तदा ।
अन्योन्यस्पर्धिनोर्वीर्ये शक्रशम्बरयोरिव ॥ ६३ ॥

तब एक दूसरेसे पराक्रममें स्पर्धा करनेवाले इन दोनोंका भयानक युद्ध इस प्रकार होने लगा, जैसे परस्पर इन्द्र और शम्बरका हुआ था; यह युद्ध भीरु मनुष्योंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला था ॥ ६३ ॥

तयोर्ध्वजौ वीतमालौ शुशुभाते रथस्थितौ ।
पृथग्रूपौ समार्छन्तौ क्रोधं युद्धे परस्परम् ॥ ६४ ॥

हे भारत ! इन दोनोंके रथोंपर मालासहित निर्मल ध्वजाएं शोभित हो रही थीं, मानो वे दोनों क्रोध करके पृथक् रूपोंसे युद्धमें परस्पर आच्छादित करती थीं ॥ ६४ ॥

कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारवती दृढा ।
पुरंदरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या व्यराजत ॥ ६५ ॥

कर्णके रथपर विषधर सांपके समान हाथीकी सांकलके चिन्हसे युक्त, सुवर्ण और मणियोंसे जटित उत्तम ध्वजा लगी थी, वह इन्द्र धनुषके समान शोभित होती थी ॥ ६५ ॥

कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्यो भयंकरः ।
भीषयन्नेव दंष्ट्राभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा ॥ ६६ ॥

इसी प्रकार अर्जुनकी ध्वजापर भयंकर एक वानरश्रेष्ठ बैठा हुआ था, वह दांतोंसे मनुष्योंको डरा रहा था, अपने तेजसे वह सूर्यके समान तेजस्वी जान पडता था, उसकी ओर देखना कठिन था ॥ ६६ ॥

युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।
कर्णध्वजमुपातिष्ठत्सोऽवधीदभिनर्दयन् ॥ ६७ ॥

गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनका ध्वज युद्धकी इच्छा करके कर्णके ध्वजपर, जोरसे गर्जना करके और आक्रमण करके पीडित करने लगा ॥ ६७ ॥

उत्पत्य च महावेगः कक्ष्यामभ्यहनत्कपिः ।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥ ६८ ॥

जैसे गरुड सांपपर प्रहार करता है, ऐसे ही उस महावेगवान् वानरने कूदकर कर्णकी ध्वजाकी हाथीकी सांकलको दांत और नाखूनोंसे चीर डाला ॥ ६८ ॥

सुकिङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमायसी ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धा नागकक्ष्या महाकपिम् ॥ ६९ ॥

कर्णके ध्वजपरकी कालपाशके समान, लोहनिर्मित, छोटी घण्टियोंसे विभूषित हाथीकी सांकलने अत्यंत क्रोधित होकर उस महा वानरपर धावा किया ॥ ६९ ॥

उभयोरुत्तमे युद्धे द्वैरथे द्यूत आह्वते ।
प्राकुर्वाते ध्वजौ युद्धं प्रत्यहेषन्हयान्हयाः ॥ ७० ॥

उन दोनोंका उत्तम द्वैरथ– युद्धरूपी जूएका समय प्राप्त हुआ था, इससे पहिले ही इनकी ध्वजाओंने युद्ध शुरू किया; दोनोंके घोडे परस्पर हिनहिनाने लगे ॥ ७० ॥

अविध्यत्पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः ।
स चापि पुण्डरिकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत ॥ ७१ ॥

कमलनयन श्रीकृष्णने अपने तेज नेत्ररूपी बाणोंसे शल्यको विद्ध किया, इसी प्रकार शल्यने श्रीकृष्णकी ओर देखा ॥ ७१ ॥

तत्राजयद्वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ।
कर्णं चाप्यजयद्दृष्ट्या कु[illegible]नंजयः ॥ ७२ ॥

परंतु श्रीकृष्णने नेत्ररूपी बाणोंसे शल्यको [illegible] दिया, इसी प्रकार नेत्रयुद्धमें कर्णको कुन्तीपुत्र अर्जुनने जीत लिया ॥ ७२ ॥

+

अथाब्रवीत्सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम् ।
यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित् ।
किमुत्तरं तदा ते स्यात्सखे सत्यं ब्रवीहि मे ॥ ७३ ॥

तब कर्णने शल्यसे हंसते हुए ऐसे वचन कहे– हे शल्य ! आप सत्य सत्य कहो, यदि कदाचित् आज अर्जुन मुझे युद्धमें यहां मार डालेंगे, तो आप क्या उत्तर देंगे ? ॥ ७३ ॥

शल्य उवाच

यदि कर्ण रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः ।
उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवपाण्डवौ ॥ ७४ ॥

शल्य बोले– हे कर्ण ! यदि श्वेतवाहन अर्जुन आज युद्धमें तुमको मारेंगे, तो मैं एकमात्र रथसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालूंगा ॥ ७४ ॥

संजय उवाच

एवमेव तु गोविंदमर्जुनः प्रत्यभाषत ।
तं प्रहस्याब्रवीत्कृष्णः पार्थं परमिदं वचः ॥ ७५ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! इसी प्रकार अर्जुनने भी श्रीकृष्णसे पूछा, वह सुनकर श्रीकृष्णने हंसकर यह श्रेष्ठ बात कही– ॥ ७५ ॥

पतेद्दिवाकरः स्थानाच्छीर्येतानेकधा क्षितिः ।
शैत्यमग्निरियान्न त्वा कर्णो हन्याद्धनंजयम् ॥ ७६ ॥

सूर्य अपने स्थानसे गिर जाय, पृथ्वी अनेक प्रकारसे विदीर्ण हो जाय और अग्नि ठण्डी होजाय, परन्तु कर्ण तुम धनंजयको न मार सकेगा ॥ ७६ ॥

यदि त्वेवं कथंचित्स्याल्लोकपर्यसनं यथा ।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥ ७७ ॥

यदि किसी तरह ऐसा होजाय तो यह सब जगत् उलट जायगा । मैं केवल अपने दोनों हाथोंहीसे कर्ण और शल्यको युद्धमें पीस दूंगा ॥ ७७ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन्कपिकेतनः ।
अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
ममाप्येतावपर्याप्तौ कर्णशल्यौ जनार्दन ॥ ७८ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन कपिकेतन अर्जुन हंसकर अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णसे ऐसे बोले– हे कृष्ण ! ये दोनों कर्ण और शल्य तो मेरे लिये पर्याप्त नहीं हैं ॥ ७८ ॥

सपताकाध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ।
सच्छत्रकवचं चैव सशक्तिशरकार्मुकम् ॥ ७९ ॥

मैं अकेला ही पताका, ध्वजा, रथ, घोडे, छत्र, कवच, धनुष, बाण और शक्ति तथा राजा शल्यके सहित कर्णको ॥ ७९ ॥

द्रष्टास्यद्य शरैः कर्णं रणे कृत्तमनेकधा ।
अद्यैनं सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम् ।
न हि मे शाम्यते वैरं कृष्णां यत्प्राहसत्पुरा ॥ ८० ॥

अपने बाणोंसे टुकडे कर डालूंगा, यह आज युद्धमें आप देखेंगे । आज ही मैं रथ, घोडे, शक्ति, कवच और आयुधों सहित कर्णको चूर कर डालूंगा । पहले जो कर्णने सभामें द्रौपदीकी हंसी उडायी, वह उसके साथकी मेरी शत्रुता तबतक शान्त नहीं होगी ॥ ८० ॥

अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया ।
वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥ ८१ ॥

गोबिन्द ! जैसे मतवाला हाथी फूले फले वृक्षको तोड डालता है, ऐसे ही मैं आज कर्णको मथ डालूंगा, आज आप यह देखेंगे ॥ ८१ ॥

अद्य ता मधुरा वाचः श्रोतासि मधुसूदन ।
अद्याभिमन्युजननीमनृणः सान्त्वयिष्यसि ।
कुन्तीं पितृष्वसारं च संप्रहृष्टो जनार्दन ॥ ८२ ॥

हे मधुसूदन ! आज आप कर्णके मारे जानेके पश्चात् मीठे वचनोंको सुनेंगे । हे जनार्दन ! अब आज तुम तुम्हारे पिताकी बहन कुन्ती और अभिमन्युकी माता सुभद्राको अनृण होकर प्रसन्न चित्तसे सान्त्वना देंगे ॥ ८२ ॥

अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव ।
वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ८३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ३५८६ ॥

माधव ! आज आप रोती हुई द्रौपदीको और धर्मराज युधिष्ठिरको अमृतके समान वचनोंसे सान्त्वना देंगे ॥ ८३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ ३५८६ ॥

: ६४ :

संजय उवाच

तद्देवनागासुरसिद्धसंघैर्गन्धर्वयक्षाप्सरसां च संघैः ।
ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं बभौ वियद्विस्मयनीयरूपम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! उस समय देवता, नाग, राक्षस, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंके समुदाय, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और गरुडसे आकाश भर गया और इस कारण आकाशका रूप आश्चर्यमय हो गया ॥ १ ॥

नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञैर्वादित्रगीतस्तुतिभिश्च नृत्तैः ।
सर्वेऽन्तरिक्षे ददृशुर्मनुष्याः खस्थांश्च तान्विस्मयनीयरूपान् ॥ २ ॥

उस समय आकाश अनेक प्रकारके मनोल्हादक शब्दों, वाद्यों, गीतों, स्तोत्रों और नृत्योंसे पूरित हो गया । पृथ्वीपरके मनुष्य उन आकाशचारी प्राणियोंके आश्चर्यमय रूपोंको देखते थे ॥ २ ॥

ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा वादित्रपत्त्रायुधसिंहनादैः ।
निनादयन्तो वसुधां दिशश्च स्वनेन सर्वे द्विषतो निजघ्नुः ॥ ३ ॥

अनन्तर कौरव और पाण्डवोंके सब योद्धा प्रसन्न होकर अनेक प्रकारके बाजे, वाहन, आयुध, सिंहनाद और कोलाहलसे रणभूमि और दिशाओंको निनादित करते हुए, सब शत्रुओंका विनाश करने लगे ॥ ३ ॥

नानाश्वमातङ्गरथायुताकुलं वरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम् ।
अभीरुजुष्टं हतदेहसंकुलं रणाजिरं लोहितरक्तमाबभौ ॥ ४ ॥

उस समय अनेक घोडे, हाथी और रथसे भरी हुई, उत्तम खड्ग, शक्ति और ऋष्टि आदि शस्त्रोंके आघातसे दुःसह और मरे हुए शरीरोंसे भरी हुई, वह युद्धभूमि रुधिरसे लाल दिखायी देने लगी ॥ ४ ॥

तथा प्रवृत्तेऽस्त्रभृतां पराभवे धनंजयश्चाधिरथिश्च सायकैः ।
दिशश्च सैन्यं च शितैरजिह्मगैः परस्परं प्रोर्णुवतुः स्म दंशितौ ॥ ५ ॥

तब अर्जुन और कर्णके बाणोंसे वह अस्त्रधारियोंके पराभवके लिये युद्ध शुरू होनेपर, वे दोनों कवचधारी वीर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर सब दिशाओं और सेनाको आच्छादित करने लगे ॥ ५ ॥

ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः कृतेऽन्धकारे विविदुर्न किंचन ।
भयात्तु तावेव रथौ समाश्रयंस्तमोनुदौ खे प्रसृता इवांशवः ॥ ६ ॥

उस समय सब दिशाओंमें छाये हुए बाणोंसे युद्धमें अन्धकार हो गया । तुम्हारे और शत्रुओंके वीरोंको कुछ नहीं दीख पडा । जैसे आकाशमें फैली हुई सूर्यकी किरणें अपने तेजसे अंधकारको नष्ट कर देती हैं, वैसे ही सब योद्धा भयसे व्याकुल होकर उन दोनों सूर्यके समान तेजस्वी रथियोंकी शरणमें आ गये ॥ ६ ॥

ततोऽस्त्रमस्त्रेण परस्परस्य तौ विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ।
घनान्धकारे वितते तमोनुदौ यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः ॥ ७ ॥

जैसे पूर्व और पश्चिमके वायु परस्पर नष्ट कर देते हैं, वैसे ही वे दोनों एक दूसरेके अस्त्रोंको अपने अस्त्रसे काटकर, फैले हुए घने अन्धकारमें उदित हुए दो सूर्योंके समान अत्यंत प्रकाशित होने लगे ॥ ७ ॥

न चाभिमन्तव्यमिति प्रचोदिताः परे त्वदीयाश्च तदावतस्थिरे ।
महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः सुरासुरा वासवशम्बराविव ॥ ८ ॥

किसीको भी सम्मति नहीं देनी चाहिये, इस ध्येयसे प्रेरित होकर तुम्हारे और शत्रुओंके योद्धा उन दोनों महारथियोंको सब ओरसे घेरकर वहां खडे रहे, जैसे पहले इन्द्र और शम्बरको घेरकर देवता और राक्षस खडे हुए थे ॥ ८ ॥

मृदङ्गभेरीपणवानकस्वनैर्निनादिते भारत शङ्खनिस्वनैः ।
ससिंहनादौ बभतुर्नरोत्तमौ शशाङ्कसूर्याविव मेघसंप्लवे ॥ ९ ॥

भारत ! मृदंग, भेरी, पणव, आनक और शंख आदि वाद्योंके शब्दोंको सुनकर वे दोनों नरश्रेष्ठ सिंहनाद करने लगे, तब वे दोनों प्रलयकालीन मेघोंकी गर्जनाके साथ उदित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ९ ॥

महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ सुवर्चसौ बाणसहस्ररश्मिनौ ।
दिधक्षमाणौ सचराचरं जगद्युगास्तसूर्याविव दुःसहौ रणे ॥ १० ॥

ये दोनों अपने विशाल धनुष रूपी मण्डलके मध्यमें स्थित होकर, सहस्रों बाणरूपी किरणोंसे सम्पन्न महान् तेजस्वी वीर इस प्रकार शोभित हुए, जैसे चराचर जगत्को जलानेके लिये प्रलयकालके दो सूर्य प्रकट हुए । वे शत्रुओंके लिये युद्धमें दुःसह हो रहे थे ॥ १० ॥

उभावजेयावहितान्तकावुभौ जिघांसतुस्तौ कृतिनौ परस्परम् ।
महाहवे वीरवरौ समीयतुर्यथेन्द्रजम्भाविव कर्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

ये दोनों ही अजेय, शत्रुओंका विनाश करनेवाले, अस्त्रशस्त्रोंके विद्वान् और एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छा करनेवाले वीर श्रेष्ठ कर्ण और अर्जुन महायुद्धमें इन्द्र और जंभके समान युद्ध करनेको खडे हुए थे ॥ ११ ॥

ततो महास्त्राणि महाधनुर्धरौ विमुञ्चमानाविषुभिर्भयानकैः ।
नराश्वनागानमितौ निजघ्नतुः परस्परं जघ्नतुरुत्तमेषुभिः ॥ १२ ॥

तब ये दोनों महा धनुर्धर वीर महान् अस्त्रोंको और भयंकर बाणोंको छोडते हुए अनंत हाथी, घोडे और मनुष्योंको मारने लगे और परस्पर उत्तम बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

ततो विसस्रुः पुनरर्दिताः शरैर्नरोत्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः ।
सनागपत्त्यश्वरथा दिशो गतास्तथा यथा सिंहभयाद्वनौकसः ॥ १३ ॥

फिर उन नरश्रेष्ठोंके बाणोंसे घायल हुए कौरव-पाण्डवोंके सैनिक हाथी, पैदल, घोडे और रथोंसहित सब ओर भागने लगे, जैसे सिंहसे डरे हुए वनके पशु सब ओर भागते हैं ॥ १३ ॥

ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः कृपश्च शारद्वतसूनुना सह ।
महारथाः पञ्च धनंजयाच्युतौ शरैः शरीरान्तकरैरताडयन् ॥ १४ ॥

तब दुर्योधन, कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य और कर्ण ये पांच महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर शरीरका विनाश करनेवाले बाण छोडकर उनको पीडित करने लगे ॥ १४ ॥

धनूंषि तेषामिषुधीन्हयान्ध्वजान्रथांश्च सूतांश्च धनंजयः शरैः ।
समं च चिच्छेद पराभिनच्च ताञ्शरोत्तमैर्द्वादशभिश्च सूतजम् ॥ १५ ॥

तब अर्जुनने क्षणमात्रमें अपने बाणोंसे इन पाचोंके धनुष, तरकस, ध्वज, घोडे, रथ और सारथि एक साथही काट दिये। फिर शत्रुओंको विद्ध करके सूतपुत्रके शरीरमें उत्तम बारह बाण मारे ॥ १५ ॥

अथाभ्यधावंस्त्वरिताः शतं रथाः शतं च नागार्जुनमाततायिनः ।
शकास्तुखारा यवनाश्च सादिनः सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः ॥ १६ ॥

उस समय आततायी सौ हाथी सवार और सौ रथी अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे। इसी प्रकार शक, तुखार, यवन और काम्बोज देशोंके उत्तम घुडसवार भी उनके साथ आये ॥ १६ ॥

वरायुधान्पाणिगतान्करैः सह क्षुरैर्न्यकृन्तंस्त्वरिताः शिरांसि च ।
हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतां धनंजयः शत्रुगणं तमक्षिणोत् ॥ १७ ॥

अर्जुनने अपने क्षुर बाणोंसे उन सबोंके हाथोंमेंके उत्तम आयुधोंको काट कर त्वरासे अनेक वीरोंके शिर काट दिये। अर्जुनने शत्रुओंके घोडे, हाथी और रथोंको और युद्धतत्पर शत्रु-समुदायको भी काट डाला ॥ १७ ॥

ततोऽन्तरिक्षे सुरतूर्यनिस्वनाः ससाधुवादा हृषितैः समीरिताः ।
निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः सुरूपगन्धाः पवनेरिताः शिवाः ॥ १८ ॥

उस समय आकाशमें स्थित देवता प्रसन्न होकर साधु साधु कहकर अनेक प्रकारके दिव्य बाजे बजाने लगे । वायुकी प्रेरणासे आकाशसे अनेक सुगन्धसे युक्त सुंदर, उत्तम और कल्याणप्रद फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ १८ ॥

तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं समीक्ष्य भूतानि विसिष्मियुर्नृप ।
तवात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ ॥ १९ ॥

नृप ! देवता और मनुष्योंकी साक्षीसे होनेवाली इस अद्भुत फूल वर्षाको देख वे सब प्राणी आश्चर्य करने लगे, परन्तु कर्ण और तुम्हारा पुत्र दुर्योधन न कुछ व्यथित हुए, न कुछ आश्चर्यमें आये; ये दोनों एक निश्चयपर स्थित थे ॥ १९ ॥

अथाब्रवीद्द्रोणसुतस्तवात्मजं करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन् ।
प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवैरलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम् ॥ २० ॥

तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने दुर्योधनका हाथ पकडकर उसे सान्त्वना देते हुए ऐसे वचन कहे, दुर्योधन ! आप प्रसन्न हो जाइये और पाण्डवोंसे सन्धि कर लीजिये, विरोध करनेसे कुछ प्राप्त नहीं होगा, लडाईको धिक्कार है ॥ २० ॥

हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित्तथैव भीष्मप्रमुखा नरर्षभाः ।
अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम् ॥२१॥

देखो, सब अस्त्रविद्याके जाननेवाले, ब्रह्माके समान बुद्धिमान् तुम्हारे गुरु और भीष्म आदि अनेक नरश्रेष्ठ वीर मारे गये, हम और हमारे मामा कृपाचार्य अवध्य हैं । आप पाण्डवोंसे मिलकर चिरकाल तक राज्य कीजिये ॥ २१ ॥

धनंजयः स्थास्यति वारितो मया जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ।
युधिष्ठिरो भूतहिते सदा रतो वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ ॥ २२ ॥

मैं अर्जुनको युद्धसे रोक देता हूं । श्रीकृष्ण भी युद्धको चाहते ही नहीं । युधिष्ठिर तो सदा ही जगत्के प्राणियोंका कल्याण ही चाहते हैं । भीमसेन, नकुल और सहदेव धर्मराजकी आज्ञाहीमें हैं ॥ २२ ॥

त्वया च पार्थैश्च परस्परेण प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छति त्वयि ।
व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि पार्थिवा निवृत्तवैराश्च भवन्तु सैनिकाः ॥ २३ ॥

अब सन्धि होना केवल आपकी इच्छा ही पर है, आपका और पाण्डवोंका मेल होनेसे प्रजा कल्याण-सुख पावेगी; फिर शेष राजा लोग अपने अपने नगरको चले जांय, सब सैनिक वैर मुक्त हो जाय ॥ २३ ॥

न चेद्वचः श्रोष्यसि मे नराधिप ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि ।
इदं च दृष्टं जगता सह त्वया कृतं यदेकेन किरीटमालिना ।
यथा न कुर्याद्धलभिन्न चान्तको न च प्रचेता भगवान्न यक्षराट् ॥ २४ ॥

हे महाराज ! यदि आप हमारे इन वचनोंको नहीं सुनियेगा, तो निश्चयसे युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारे जाकर, तुम्हें बहुत पश्चात्ताप होगा। तुमने सब जगत्के साथ किरीटधारी अर्जुनने अकेले जो पराक्रम किया है, इसे देख लिया है, ऐसा काम इन्द्र, यमराज, प्रचेता और भगवान् कुबेर भी नहीं कर सक्ते हैं ॥ २४ ॥

अतोऽपि भूयांश्च गुणैर्धनंजयः स चाभिपत्स्यत्यखिलं वचो मम ।
तवानुयात्रां च तथा करिष्यति प्रसीद राजञ्जगतः शमाय वै ॥ २५ ॥

धनंजय अपने गुणोंसे इससे भी अधिक हैं, तो भी वे मेरे सब वचनोंको स्वीकार करेंगे; और वे तुम्हारा अनुसरण करेंगे, इसलिये राजन् ! आप जगत्के शान्तिके लिये प्रसन्न हो जाइये ॥ २५ ॥

ममापि मानः परमः सदा त्वयि ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदात् ।
निवारयिष्यामि हि कर्णमप्यहं यदा भवान्सप्रणयो भविष्यति ॥ २६ ॥

आपके लिये मेरे मनमें सदैव परम आदरका भाव रहा है, परम मित्रताके कारण ही मैं आपको यह कह रहा हूं। जो आप प्रेमपूर्ण प्रसन्न हो जाओगे तो मैं कर्णको भी युद्धसे रोक दूंगा ॥ २६ ॥

वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणास्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम् ।
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं तदस्ति सर्वं त्वयि पाण्डवेषु च ॥ २७ ॥

पण्डित लोग चार प्रकारके मित्र बतलाते हैं—एक सहज मित्र, दूसरे मेल करके बनाये मित्र, तीसरे धन देकर अपनाये गये मित्र और चौथे पराक्रमके कारण शरणमें आये हुए मित्र। पाण्डवोंके सङ्ग आपकी चारों ही प्रकारकी मित्रता हो सकती है ॥ २७ ॥

निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः पुनश्च साम्ना च समाप्नुहि स्थिरम् ।
त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतामियुर्ध्रुवं नरेन्द्रेन्द्र तथा त्वमाचर ॥ २८ ॥

हे वीर ! पाण्डव लोग जन्महीसे आपके बन्धु हैं। आप इनसे सन्धि करके उन्हें दृढ मित्र बना लीजिये। हे नरेन्द्र ! यदि आप प्रसन्न होकर पाण्डवोंसे मित्रता करेंगे, तो वह शाश्वत होगी, ऐसाही आप कीजिये ॥ २८ ॥

स एवमुक्तः सुहृदा वचो हितं विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाब्रवीत्।
यथा भवानाह सखे तथैव तन्ममापि च ज्ञापयतो वचः शृणु ॥ २९ ॥
गुरुपुत्र मित्र अश्वत्थामाके ऐसे हितकर वचन सुन, दुर्योधन विचार करके लम्बी सांस लेकर और विमनस्क होकर बोला, हे सखे ! आप जो कहते हैं सो सभी सत्य है, परन्तु इस विषयमें मुझे भी कुछ कहना है, आप सुनिये ॥ २९ ॥

निहत्य दुःशासनमुक्तवान्बहु प्रसह्य शार्दूलवदेष दुर्मतिः।
वृकोदरस्तद्धृदये मम स्थितं न तत्परोक्षं भवतः कुतः शमः ॥ ३० ॥
इस दुष्ट भीमसेनने दुःशासनको मारकर जो शार्दूलके समान अत्यंत जोरसे वचन कहे थे, वे आप जानते ही हैं, सो मेरे हृदयमें सलते हैं। भला, अब उन वचनोंको सुनकर सन्धि कैसे हो सकती है ? ॥ ३० ॥

न चापि कर्णं गुरुपुत्र संस्तवादुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत।
श्रमेण युक्तो महताद्य फल्गुनस्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति ॥ ३१ ॥
हे गुरुपुत्र ! अच्युत ! इस समय तुम्हें कर्णसे यह भी कहना योग्य नहीं है, कि युद्ध मत करो; क्योंकि अर्जुन बहुत परिश्रमसे थक गये हैं, अब कर्ण इन्हें अवश्यही मार डालेंगे ॥ ३१ ॥

तमेवमुक्त्वाभ्यनुनीय चासकृत्तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान्।
समाघ्नताभिद्रवताहितानिमान्सबाणशङ्खान्किमु जोषमास्यते ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ३६१८ ॥

अश्वत्थामासे ऐसा कहकर अनेक बार अनुनय करके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उसे अनुकूल कर लिया, और फिर अपने सैनिकोंको आज्ञा देते हुए कहा, तुम लोग क्यों चुपचाप खडे हो ? अब शीघ्र शस्त्र लेकर शत्रुओंपर धावा करो, उनका नाश करो ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ ॥ ३६१८ ॥

: ६५ :

संजय उवाच
तौ शङ्खभेरीनिनदे समृद्धे समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ।
वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन् ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी कुमन्त्रणामें जब वहां शङ्ख और भेरी आदिका शब्द सुनायी देने लगा, तब दोनों पुरुषश्रेष्ठ, श्वेत घोडेवाले सूतपुत्र कर्ण और अर्जुन युद्ध करनेको उपस्थित हुए ॥ १ ॥

×

यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ प्रगृह्य दन्ताविव वाशितार्थे ।
तथा समाजग्मतुरुग्रवेगौ धनंजयश्चाधिरथिश्च वीरौ ॥ २ ॥

जैसे एक हथिनीके लिये बडे दांतवाले हिमाचलकी तराईके दो मतवाले हाथी युद्ध करते हैं, ऐसे ही अत्यंत वेगशाली वीर अर्जुन और कर्ण भी युद्धके लिये परस्पर सामने आ गये ॥ २॥

बलाहकेनेव यथा बलाहको यदृच्छया वा गिरिणा गिरिर्यथा ।
तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिस्वनौ समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ ॥ ३ ॥

जैसे मेघ दूसरे मेघके साथ या दैवेच्छासे एक पर्वत दूसरे पर्वतके साथ टक्कर लेनेके लिये चलते हैं, ऐसे ही वे दोनों वीर ताल, धनुपकी प्रत्यञ्चा और रथके पहियोंका शब्द करते हुए और बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्ध करनेको चले ॥ ३ ॥

प्रवृद्धशृङ्गद्रुमवीरुदोपधी प्रवृद्धनानाविधपर्वतौकसौ ।
यथाचलौ वा गलितौ महाबलौ तथा महास्त्रैरितरेतरं ग्नतः ॥ ४ ॥

जैसे अनेक वृक्ष और फली फूली लताओं और ओपधिओंके सहित, नाना प्रकारके पर्वतोंसे युक्त ऊंचे शिखरवाले दो पर्वत युद्ध करनेको चलते हैं, ऐसे ही दो पर्वतोंके समान महा बलवान् वीर अपने महान् अस्त्रोंसे एक दूसरेको विद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

स संनिपातस्तु तयोर्महानभूत्सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा ।
शरैर्विभुग्नाङ्गनियन्तृवाहनः सुदुःसहोऽन्यैः पटुशोणितोदकः ॥ ५ ॥

जैसे पहले समयमें इन्द्र और विरोचनका युद्ध हुआ था, ऐसे ही उन दोनोंका वह महान् युद्ध था। बाणोंके आघातसे उन दोनोंके शरीर, सारथि और घोडे छिन्नभिन्न हो गये और वहां निरामय रुधिर रूपी जल बहने लगा, वह युद्ध अन्योंके लिये दुःसह था ॥ ५ ॥

प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ महाहृदौ पक्षिगणानुनादितौ ।
सुसंनिकृष्टावनिलोद्धतौ यथा तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः ॥ ६ ॥

जैसे विपुल पद्म, उत्पल, मछली, कछवे आदियोंसे भरे, पक्षिसमुदायोंके आवाजसे युक्त दो बहुत निकटवर्ती बडे सरोवर वायुसे संचालित हो परस्पर मिलते हैं, ऐसे ही ये ध्वजा युक्त दोनों रथ मिल गये ॥ ६ ॥

उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमावुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ ।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकैर्महेन्द्रवृत्राविव संप्रजह्रतुः ॥ ७ ॥

ये दोनों इन्द्रके समान पराक्रमी और इन्द्रके समान महारथी वीर इन्द्रके वज्र तुल्य बाणोंसे इन्द्र और वृत्रासुरके समान एक दूसरेको विद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

सनागपत्त्यश्वरथे उभे बले विचित्रवर्णाभरणास्त्रवस्त्रजे ।
चकम्पतुश्चोन्नमतः स्म विस्मयाद्वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे ॥ ८ ॥
विचित्र और नाना रंगोंके आभूषण, वस्त्र और मालाओंसे युक्त, हाथी, पैदल, घोडे और रथों सहित दोनों पक्षोंकी सेनाएं और आकाशमें स्थित प्राणी अर्जुन और कर्णके युद्धमें आश्चर्यचकित होकर कांप उठे ॥ ८ ॥

भुजाः सवज्राङ्गुलयः समुच्छ्रिताः ससिंहनादा हृषितैर्दिदृक्षुभिः ।
यदार्जुनं मत्तमिव द्विपो द्विपं समभ्ययादाधिरथिर्जिघांसया ॥ ९ ॥
जैसे एक हाथी किसी मतवाले हाथीपर धावा करता है, वैसे अधिरथपुत्र कर्ण अर्जुनको मारनेकी इच्छासे जब उनपर आक्रमण करने लगा, तब देखनेवालोंने आनन्दित हो सिंहनाद करके शस्त्रोंसहित अपने हाथ ऊपर उठाकर हिलाये ॥ ९ ॥

अभ्यक्रोशन्सोमकास्तत्र पार्थं त्वरस्व याह्यर्जुन विध्य कर्णम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण श्रद्धां च राज्याद्धृतराष्ट्रसूनोः ॥ १० ॥
उस समय सोमक वहां अर्जुनसे गर्जना करके कहने लगे– अर्जुन ! तुम त्वरा करो। जाओ, कर्णको बिद्ध करो । अब देर न करो । कर्णके शिर और धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी राज्य-प्राप्तिकी श्रद्धा दोनोंको काट डालो ॥ १० ॥

तथास्माकं बहवस्तत्र योधाः कर्णं तदा याहि याहीत्यवोचन् ।
जह्यर्जुनं कर्ण ततः सचीराः पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः ॥ ११ ॥
इसी प्रकार हमारी ओरके अनेक योद्धा कर्णको कहने लगे– हे कर्ण ! तुम जाओ, आगे बढो। शीघ्र अर्जुनको मार डालो, फिर कुन्तीके सब पुत्र पुनः वल्कल धारण करके दीर्घकालतक वनमें चले जायं ॥ ११ ॥

ततः कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं महेषुभिर्दशभिः पर्यविध्यत् ।
तमर्जुनः प्रत्यविध्यच्छिताग्रैः कक्षान्तरे दशभिरतीव क्रुद्धः ॥ १२ ॥
अनन्तर वहां पहले कर्णने अर्जुनको दस बाण मारे, तब अर्जुनने भी अत्यंत क्रोधित होकर तेज दस बाण कर्णकी कोखमें मारे ॥ १२ ॥

परस्परं तौ विशिखैः सुतीक्ष्णैस्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च ।
परस्परस्यान्तरेप्सू विमर्दे सुभीममभ्याययतुः प्रहृष्टौ ॥ १३ ॥
तब सूतपुत्र कर्ण और अर्जुन परस्पर छिद्र चाहनेवाले वे दोनों अत्यंत प्रसन्न होकर एक दूसरेको अनेक तेज बाणोंसे क्षत-विक्षत करने लगे और घोर युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

अमृष्यमाणश्च महाविमर्दे तत्राक्रुध्यद्भीमसेनो महात्मा।
अथाब्रवीत्पाणिना पाणिमाघ्नन्संदष्टौष्ठो नृत्यति वादयन्निव
कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटिन्महेषुभिर्दशभिरविध्यदग्रे ॥ १४ ॥
महायुद्धमें अमर्षशील महात्मा भीमसेन वहां क्रोधित हुए और हाथसे हाथ मलकर, होठ चबाकर, नृत्य करते हुएसे जोरसे बोले– इस सूतपुत्रने किरीटधारी तुम्हें पहले ही दस महान् बाणोंसे कैसे विद्ध किया ? ॥ १४ ॥

यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषीर्ग्रासं दददृहये खाण्डवे त्वम्।
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्वमहं वैनं गदया पोथयिष्ये ॥ १५ ॥
जिस धैर्यसे तुमने पहले खाण्डव वनमें अग्निको ग्रास अर्पण करके तृप्त किया था और सब प्राणियोंपर विजय पायी थी, उसी ही धैर्यसे अब सूतपुत्रको मार डालो, या फिर मैं ही इस अपनी गदासे चूर कर डालूंगा ॥ १५ ॥

अथाब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थं दृष्ट्वा रथेषून्प्रतिहन्यमानान्।
अमीमृदत्सर्वथा तेऽद्य कर्णो ह्यस्त्रैरस्त्राणि किमिदं किरीटिन् ॥ १६ ॥
अनन्तर श्रीकृष्णने भी अर्जुनके रथको लक्ष्य करके छोडे बाणोंको कर्णसे नष्ट होते देख अर्जुनसे कहा, हे अर्जुन ! ऐसा क्यों ? तुम्हारे अस्त्रोंके सब प्रहार कर्णने आज अपने अस्त्रों-से पूर्णतः नष्ट कर दिये हैं ॥ १६ ॥

स वीर किं मुह्यसि नावधीयसे नदन्त्येते कुरवः संप्रहृष्टाः।
कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे त्वदस्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम् ॥ १७ ॥
वीर ! आज तुम कैसे मोहित हो गये हैं ? तुम सावधान क्यों नहीं होते ? ये कौरव प्रसन्न होकर गर्ज रहे हैं, ये सब लोग कर्णको आगे करके यही मान रहे हैं कि तुम्हारा अस्त्र कर्णके अस्त्रोंसे नष्ट होता है ॥ १७ ॥

यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः।
दम्भोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु तया धृत्या त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ १८ ॥
जिस धैर्यसे तुमने तामस अस्त्रका नाश किया था, और जिस विद्यासे युग युगमें घोर राक्षसों-का नाश किया है, और जिससे दम्भोद्भव दुष्ट दानवोंको युद्धोंमें मारा है, उसी साहससे तुम सूतपुत्र कर्णको मार डालो ॥ १८ ॥

अनेन वास्य क्षुरनेमिनाद्य संछिन्द्धि मूर्धानमरेः प्रसह्य।
मया निसृष्टेन सुदर्शनेन वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः ॥ १९ ॥
जैसे इन्द्रने वज्रसे अपने शत्रु नमुचिका शिर काट दिया था, ऐसे ही तुम मेरे दिये हुए इस सुदर्शन चक्रसे– जिसके किनारेमें क्षुर लगे हुए हैं– आज वेगसे शत्रुका शिर काट दो ॥ १९ ॥

किरातरूपी भगवान्यया च त्वया महत्या परितोषितोऽभूत्।
तां त्वं धृतिं वीर पुनर्गृहीत्वा सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम् ॥ २० ॥
वीर! तुमने अपने जिस महान् धैर्यसे युद्धमें किरात रूपधारी भगवान् शिवको प्रसन्न किया था, उसी धैर्यको फिर धारण करके बन्धु–बान्धवों सहित सूतपुत्रको मार डालो ॥ २० ॥

ततो महीं सागरमेखलां त्वं सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम्।
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसंघां यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम् ॥ २१ ॥
हे पार्थ! फिर समुद्रवलयांकित ग्राम और नगरोंके सहित तथा शत्रुसमुदायके रहित यह समृद्ध पृथ्वीको राजा युधिष्ठिरको दे दो और अतुल यश प्राप्त करो ॥ २१ ॥

संचोदितो भीमजनार्दनाभ्यां स्मृत्वा तदात्मानमवेक्ष्य सत्त्वम्।
महात्मनश्चागमने विदित्वा प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥ २२ ॥
भीमसेन और श्रीकृष्णके इस प्रकार प्रेरित करने और कहनेपर, अर्जुनने अपने स्वरूपका स्मरण कर, सब बातोंको ध्यानमें लिया और अपने आगमनका आशय जानकर श्रीकृष्णसे ऐसे बोले ॥ २२ ॥

प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः।
तन्मेऽनुजानातु भवान्सुराश्च ब्रह्मा भवो ब्रह्मविदश्च सर्वे ॥ २३ ॥
अब मैं जगत्के कल्याण और सूतपुत्रके मारनेके लिये एक महान् और घोर अस्त्र चलाता हूं। इसलिये आप, सब देवता, ब्रह्मा, शिव और सब ब्रह्मविद्या जाननेवाले मुझे अनुमति दें ॥ २३ ॥

इत्यूचिवान्ब्राह्ममसह्यमस्त्रं प्रादुश्चक्रे मनसा संविधेयम्।
ततो दिशश्च प्रदिशश्च सर्वाः समावृणोत्सायकैर्भूरितेजाः।
ससर्ज बाणान्भरतर्षभोऽपि शतंशतानेकवदाशुवेगान् ॥ २४ ॥
श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर अर्जुनने, जिसका मनसे ही प्रयोग किया जाता है, उस असह्य ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया। उस समय अर्जुनके तेजस्वी बाणोंसे सब दिशा और उपदिशा पूरित हो गये। भरतकुलसिंह अर्जुनने भी अत्यंत वेगवान् अनेक सहस्रों बाण छोडे ॥ २४ ॥

वैकर्तनेनापि तथाजिमध्ये सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः।
ते घोषिणः पाण्डवमभ्युपेयुः पर्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः ॥ २५ ॥
इसी प्रकार वैकर्तन कर्णने भी युद्धमें सहस्रों बाण समूहोंकी वर्षा की। वे सब बाण मेघोंकी बरसायी हुई जलधाराओंके समान शब्द करते हुए अर्जुनके शरीरमें लगे ॥ २५ ॥

स भीमसेनं च जनार्दनं च किरीटिनं चाप्यमनुष्यकर्मा ।
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य ननाद घोरं महता स्वरेण ॥ २६ ॥
फिर अमानुष कर्म करनेवाले महाबलवान् कर्णने भीमसेन, श्रीकृष्ण और अर्जुनको तीन तीन बाण मार कर, बडे जोरसे घोर गर्जना की ॥ २६ ॥

स कर्णबाणाभिहतः किरीटी भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च ।
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः शरान्दशाष्टौ च समुद्बबर्ह ॥ २७ ॥
उन कर्णके बाणोंसे विद्ध हुए किरीटधारी अर्जुन श्रीकृष्ण और भीमसेनको भी अत्यन्त व्याकुल देखकर वह सहन न कर सके । अर्जुनने फिर अपने तरकससे अठारह बाण निकाले ॥ २७ ॥

सुषेणमेकेन शरेण विद्ध्वा शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ।
ततः सुमुक्तैर्दशभिर्जघान सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम् ॥ २८ ॥
एक बाणसे सुषेणको विद्ध करके, चार बाणोंसे शल्यको और तीनसे कर्णको घायल किया । शेष दस बाण छोडकर सुवर्ण कवचधारी राजकुमार सभापतिको मार डाला ॥ २८ ॥

स राजपुत्रो विशिरा विबाहुर्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः ।
ततो रथाग्रादपतत्प्रभग्नः परश्वधैः शाल इवाभिकृत्तः ॥ २९ ॥
उन बाणोंके लगनेसे उस राजपुत्रके शिर, हाथ, घोडे, सारथि, धनुष और ध्वज सब कट गये । वह छिन्न भिन्न होकर अपने रथके अग्रभागमें इस प्रकार गिरा, जैसे कुल्हाडीसे कटा शाल वृक्ष ॥ २९ ॥

पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विद्ध्वा ।
चतुःशतान्द्विरदान्सायुधीयान्हत्वा रथानष्टशतं जघान ।
सहस्रमश्वांश्च पुनश्च सादीनष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान् ॥ ३० ॥
फिर अर्जुनने कर्णके शरीरमें तीन, आठ, दो, चार और दस बाण मारे, फिर शस्त्रधारी वीरोंके सहित चार सौ हाथियोंको मारकर, आठसौ रथोंका नाश कर दिया । फिर सवारों-सहित एक सहस्र घोडोंको मारकर, आठ सहस्र पैदलोंको मारा ॥ ३० ॥

दृष्ट्वाजिमुख्यावथ युध्यमानौ दिदृक्षवः शूरवरावरिघ्नौ ।
कर्णं च पार्थं च नियम्य वाहान्खस्था महीस्थाश्च जनावतस्थुः ॥ ३१ ॥
उन दोनों युद्ध कुशल, शत्रुनाशन प्रधान शूरवीर कर्ण और अर्जुनको परस्पर युद्ध करते देख, आकाश और पृथ्वीके सब लोग अपने वाहन रोककर खडे रह गये ॥ ३१ ॥

ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा सुघोषमाच्छिद्यत पाण्डवस्य ।
तस्मिन्क्षणे सूतपुत्रस्तु पार्थं समाचिनोत्क्षुद्रकाणां शतेन ॥ ३२ ॥

इसी समय अर्जुनके धनुषकी डोरी अत्यन्त वेगसे खींची जानेके कारण सहसा बडे जोरके आवाजके साथ टूट गयी । इतने ही समयमें सूतपुत्रने अर्जुनके शरीरमें सौ क्षुद्रक बाण मारे ॥ ३२ ॥

निर्मुक्तसर्पप्रतिमैश्च तीक्ष्णैस्तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः ।
षष्ट्या नाराचैर्वासुदेवं बिभेद तदन्तरं सोमकाः प्राद्रवन्त ॥ ३३ ॥

फिर केंचुलीसे निकले हुए सांपोंके समान, तेलमें धोये हुए, पक्षी पङ्ख युक्त तीक्ष्ण साठ नाराच बाण श्रीकृष्णको मारकर घायल कर दिया, अनन्तर सोमकोंने उसपर धावा किया ॥ ३३ ॥

ततो धनुर्ज्यामवधम्य शीघ्रं शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य ।
सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो रणे पार्थः सौमकान्प्रत्यगृह्णात् ।
न पक्षिणः संपतन्त्यन्तरिक्षे क्षेपीयसास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥ ३४ ॥

तब कर्णके बाणोंसे सब शरीर क्षत-विक्षत हुए कुन्तीपुत्र अर्जुनने अत्यंत क्रुद्ध होकर बहुत शीघ्रतासे धनुषकी प्रत्यञ्चाका आवाज करके, कर्णके चलाये हुए सब बाण काट दिये, और कौरवोंको रोक दिया । उस समय आकाशमें अर्जुनके छोडे गये महास्त्रसे ऐसा अन्धकार हो गया था, कि कोई पक्षी भी नहीं उड सकते थे ॥ ३४ ॥

शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कैर्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत् ।
ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तैर्विद्ध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविध्यत् ॥ ३५ ॥

अनन्तर अर्जुनने हंसकर शल्यके कवचमें दस बाण मारकर गहरी चोट पहुंचायी, फिर अच्छी तरह छोडे हुए बारह बाणोंसे कर्णको विद्ध करके, और सात बाण मारकर उसे घायल किया ॥ ३५ ॥

स पार्थबाणासनवेगनुन्नैर्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ।
विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः ॥ ३६ ॥

उन शीघ्र वेधवाले, अर्जुनके धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए बाण लगनेसे कर्ण बहुत पीडित हुआ और उसके सारे अंग विदीर्ण हो गये । अनेक बाण लगनेसे रुधिरसे भीगा कर्ण बाणोंसे व्याप्त शिवके समान शोभित हो गया ॥ ३६ ॥

ततस्त्रिभिश्च त्रिदशाधिपोपमं शरैर्विभेदाधिरथिर्धनंजयम् ।
शरांस्तु पञ्च ज्वलितानिवोरगान्प्रवीरयामास जिघांसुरच्युते ॥ ३७ ॥
तब अधिरथपुत्र कर्णने देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनको तीन बाणोंसे विद्ध किया और श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे उनके शरीरमें प्रज्वलित सर्पोंके समान पांच बाण मारे ॥ ३७ ॥

ते वर्म भित्त्वा पुरुषोत्तमस्य सुवर्णचित्रं न्यपतन्सुमुक्ताः ।
वेगेन गामाविविशुः सुवेगाः स्नात्वा च कर्णाभिमुखाः प्रतीयुः ॥ ३८ ॥
वे वेगवान् अच्छी तरह छोडे हुए बाण श्रीकृष्णके सुवर्णभूषित कवचको भग्न करके जोरसे पृथ्वीमें घुस गये और पाताल गंगामें नहाकर फिर कर्णकी ओर जाने लगे ॥ ३८ ॥

तान्पञ्च भल्लैस्त्वरितैः सुमुक्तैस्त्रिधा त्रिधैकैकमथोच्चकर्त ।
धनंजयस्ते न्यपतन्पृथिव्यां महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥ ३९ ॥
वे बाण तक्षकपुत्र अश्वसेनके पक्षपाती पांच बडे सांप थे, अर्जुनने सावधानीसे छोडे हुए अपने दस भल्ल बाणोंसे उनके तीन तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिये ॥ ३९ ॥

ततः प्रजज्वाल किरीटमाली क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः ।
स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः ।
मर्मस्वविध्यत्स चचाल दुःखाद्धैर्यात्तु तस्थावतिमात्रधैर्यः ॥ ४० ॥
फिर किरीटधारी अर्जुन सूखे काठको जलानेवाली अग्निके समान क्रोधसे जलने लगे । उन्होंने कानतक खींचकर छोडे गये शरीर नाशक प्रज्वलित बाणोंसे कर्णके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुंचायी । कर्ण दुःखसे कांपने लगा, परन्तु अत्यंत धैर्यवान् कर्ण मनमें धैर्य धारण करके वहां खडा रहा ॥ ४० ॥

ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च रविप्रभा कर्णरथश्च राजन् ।
अदृश्य आसीत्कुपिते धनंजये तुषारनीहारवृतं यथा नभः ॥ ४१ ॥
जैसे कुहर बरसनेसे आकाश छिप जाता है, ऐसे ही क्रोधित हुए अर्जुनके बाणोंसे प्रदिशा, दिशा, सूर्यकी किरण और कर्णका रथ ये सब छिप गये ॥ ४१ ॥

स चक्ररक्षानथ पादरक्षान्पुरःसरान्पृष्ठगोपांश्च सर्वान् ।
दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नान्समुच्चितान्सुरथान्सारभूतान् ॥ ४२ ॥
कर्णके चक्ररक्षक, पादरक्षक, आगे चलनेवाले और पृष्ठ रक्षक, दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले, शत्रुओंका नाश करनेवाले सब सारभूत श्रेष्ठ वीरोंको, रथोंसहित अर्जुनने मार डाला ॥ ४२ ॥

द्विसाहस्रान्समरे सव्यसाची कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम्।
क्षणेन सर्वान्सरथाश्वसूतान्निनाय राजन्क्षयमेकवीरः ॥ ४३ ॥
हे राजन् ! उस समय युद्धमें कुरुकुलश्रेष्ठ महावीर सव्यसाची अर्जुनने अपने बाणोंसे कौरव सेनाके दो सहस्र प्रमुख वीरोंको एक क्षणमें रथ, घोडे और सारथियोंके सहित मार डाला ॥ ४३ ॥

अथापलायन्त विहाय कर्णं तवात्मजाः कुरवश्चावशिष्टाः।
हतानवाकीर्य शरक्षतांश्च लालप्यमानांस्तनयान्पितॄंश्च ॥ ४४ ॥
अनन्तर मरनेसे बचे हुए तुम्हारे बेटे और कौरव सैनिक कर्णको छोडकर, और मारे गये बाणोंसे घायल होकर बुलानेवाले अपने पुत्र और पिताओंकी उपेक्षा करके युद्धसे भागे ॥४४॥

स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्या भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः।
न विव्यथे भारत तत्र कर्णः प्रतीपमेवार्जुनमभ्यधावत् ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ३६६३ ॥

भारत ! भयसे व्याकुल होकर भागे हुए सब सैनिकोंसे विहीन सब दिशाओंको निर्जन देख भी कर्ण वहां कुछ न व्यथित हुआ और उसने प्रसन्न होकर अर्जुनकी ओर धावा किया ॥४५॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें पैसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ ३६६३ ॥

: ६६ :

संजय उवाच

ततोऽपयाताः शरपातमात्रमवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः।
विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ताद्धनंजयास्त्रं समुदीर्यमाणम् ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– हे राजन् ! अनन्तर कौरव जिनकी सेना भिन्न होकर भाग गयी थी, जहां अर्जुनके धनुषसे छोडे हुए बाण नहीं पहुंचते हैं, उतनी दूरीपर जाकर खडे हो गये। वहींसे उन्होंने देखा कि अर्जुनका शस्त्र चारों ओर बिजलीके समान प्रकाशित होकर फैल रहा है ॥ १ ॥

तदर्जुनास्त्रं ग्रसते स्म वीरान्वियत्तथाकाशमनन्तघोषम्।
क्रुद्धेन पार्थेन तदाशु सृष्टं वधाय कर्णस्य महाविमर्दे ॥ २ ॥
इस महायुद्धमें अर्जुनने क्रोध करके कर्णको मारनेके लिये जिस अस्त्रको शीघ्रतासे छोडा था, वह आकाशको अनन्त शब्दोंसे पूरित करते हुए वीरोंका नाश करता था ॥ २ ॥

+

रामादुपात्तेन महामहिम्ना आथर्वणेनारिविनाशनेन ।
तदर्जुनास्त्रं व्यधमद्दहन्तं पार्थं च बाणैर्निशितैर्निजघ्ने ॥ ३ ॥
कर्णने परशुरामके दिये हुए शत्रुओंका नाश करनेवाले महातेजस्वी आथर्वण अस्त्रसे अर्जुनके उस अस्त्रको, जो कौरव सेनाको दग्ध कर रहा था, नष्ट कर दिया और अर्जुनको तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित किया ॥ ३ ॥

ततो विमर्दः सुमहान्बभूव तस्यार्जुनस्याधिरथेश्च राजन् ।
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कैर्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः ॥ ४ ॥
हे राजन् ! जैसे दो मतवाले हाथी अपने दांतोंसे एक दूसरेपर आघात करते हैं, ऐसे ही अधिरथपुत्र कर्ण और अर्जुन अपने बाणोंसे एक दूसरेपर प्रहार करके घोर युद्ध करते थे। उन दोनोंमें बडा भारी युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः सुसंशितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् ।
रौद्रं शरं संयति सुप्रधौतं पार्थार्थमत्यर्थचिराय गुप्तम् ॥ ५ ॥
फिर कर्णने शत्रुनाशक, निश्चित अन्तकारी, सांपके मुखवाला, प्रज्वलित, युद्धमें अत्यंत भयंकर, अत्यंत स्वच्छ, अर्जुनको मारनेके लिये ही बहुत कालसे रक्खा हुआ, बाणको धनुषपर रखा ॥ ५ ॥

सदार्चितं चन्दनचूर्णशायिनं सुवर्णनालीशयनं महाविषम् ।
प्रदीप्तमैरावतवंशसंभवं शिरो जिहीर्षुर्युधि फल्गुनस्य ॥ ६ ॥
सदा पूजित, सोनेके तरकसमें चन्दनके चूर्णके अंदर रखा हुआ, महाविषयुक्त, प्रकाशमान् और ऐरावत कुलमें उत्पन्न वह बाण था । कर्ण अर्जुनका शिर युद्धमें काटनेकी इच्छा करता था ॥ ६ ॥

तमब्रवीन्मद्रराजो महात्मा वैकर्तनं प्रेक्ष्य हि संहितेषुम् ।
न कर्ण ग्रीवामिषुरेष प्राप्स्यते संलक्ष्य संधत्स्व शरं शिरोघ्नम् ॥ ७ ॥
उस समय महात्मा मद्रराज शल्यने बाण छोडते हुए वैकर्तन कर्णको देखकर कहा—हे कर्ण ! तुम्हारा यह बाण धनुषसे छूट कर अर्जुनके कण्ठमें नहीं लगेगा, इसलिये वेधका ध्यान रखके बाणका संधान करो, जिससे वह शिर काट सके ॥ ७ ॥

अथाब्रवीत्क्रोधसंरक्तनेत्रः कर्णः शल्यं संधितेषुः प्रसह्य ।
न संधत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो न मादृशाः शाठ्ययुक्ता भवन्ति ॥ ८ ॥
यह सुनकर कर्णके आंख क्रोधसे लाल हो गये, उसने बाणका संधान करनेकी इच्छा करते हुए शल्यसे कहा— शल्य ! कर्ण दो बार बाणका संधान नहीं करता । मेरे जैसे वीर कपट युक्त युद्ध नहीं करते ॥ ८ ॥

तथैवमुक्त्वा विससर्ज तं शरं बलाहकं वर्षगणाभिपूजितम् ।
हतोऽसि वै फल्गुन इत्यथोच्चैस्ततस्त्वरन्नूर्जितमुत्ससर्ज ॥ ९ ॥

ऐसा कह कर बहुत वर्षोंसे निरन्तर पूजित उस घोर मेघ समान बाणको कर्णने छोड दिया और शीघ्रतासे जोरसे पुकारा कि– अर्जुन ! अब तू मारा गया ॥ ९ ॥

संधीयमानं भुजगं दृष्ट्वा कर्णेन माधवः ।
आक्रम्य स्यन्दनं पद्भ्यां बलेन बलिनां वरः ॥ १० ॥

कर्णने सर्पयुक्त बाणका संधान किया हुआ देखकर, बलवानोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने अपने पैरोंसे रथको नीचे दबाया ॥ १० ॥

अवगाढे रथे भूमौ जानुभ्यामगमन्हयाः ।
ततः शरः सोऽभ्यहनत्किरीटं तस्य धीमतः ॥ ११ ॥

रथका कुछ भाग पृथ्वीमें दबते ही घोडे धरतीपर घुटने टेककर झुक गये, और कर्णका चलाया हुआ बाण बुद्धिमान् अर्जुनके किरीटमें जा लगा ॥ ११ ॥

अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं धरावियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ।
बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः शरेण मूर्ध्नः स जहार सूतजः ॥ १२ ॥

अनन्तर उस बाणसे भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और वरुणलोकमें प्रसिद्ध अर्जुनके मस्तकको विभूषित करनेवाले उत्तम मुकुटको सूतपुत्रने इस बलास्त्र निर्मित, उत्तम प्रयत्न और क्रोध इन सबके सहयोगसे युक्त बाणसे नीचे गिरा दिया ॥ १२ ॥

दिवाकरेन्दुज्वलनग्रहत्विषं सुवर्णमुक्तामणिजालभूषितम् ।
पुरंदरार्थं तपसा प्रयत्नतः स्वयं कृतं यद्भुवनस्य सूनुना ॥ १३ ॥

वह सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और ग्रहोंके समान प्रकाशमान् और सुवर्ण, मुक्ता, मणियोंके जालसे विभूषित था । ब्रह्माने तप और प्रयत्न करके देवराज इन्द्रके लिये स्वयं ही इसका निर्माण किया था ॥ १३ ॥

महार्हरूपं द्विषतां भयंकरं विभाति चात्यर्थसुखं सुगन्धि तत् ।
निजघ्नुषे देवरिपून्सुरेश्वरः स्वयं ददौ यत्सुमनाः किरीटिने ॥ १४ ॥

अर्जुनका यह मुकुट अत्यंत सुंदर रूपवाला, शत्रुओंको भय देनेवाला, धारण करनेवालेके लिये सुखदायी और अत्यंत सुगंधित था। देवताओंके शत्रु दानवोंके वधकी इच्छावाले किरीटधारी अर्जुनको स्वयं देवराज इन्द्रने आनंदित मनसे यह किरीट दिया था ॥ १४ ॥

हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः ।
सुरोत्तमैरप्यविषह्यमर्दितुं प्रसह्य नागेन जहार यद्वृषः ॥ १५ ॥
शिवशंकर, वरुण, इन्द्र और कुबेर ये श्रेष्ठ देवता भी अपने पिनाक, पाश, वज्र और बाण आदि उत्तम शस्त्रोंसे इसको नष्ट नहीं कर सकते थे, उसी मुकुटको कर्णने सर्पमुख बाणसे बलपूर्वक हर लिया ॥ १५ ॥

तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना प्रदीप्तमर्चिष्मदभिक्षिति प्रियम् ।
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं दिवाकरोऽस्तादिव पर्वताज्ज्वलन् ॥ १६ ॥
जैसे अस्त होते समय अस्ताचलसे प्रज्वलित सूर्य नीचे गिरता है, ऐसे ही अर्जुनका वह प्रिय, उत्तम और तेजस्वी किरीट उस उत्तम बाणसे मथित और विषाग्निसे प्रज्वलित होकर पृथ्वीपर गिर गया ॥ १६ ॥

ततः किरीटं बहुरत्नमण्डितं जहार नागोऽर्जुनमूर्धतो बलात् ।
गिरेः सुजाताङ्कुरपुष्पितद्रुमं महेन्द्रवज्रः शिखरं यथोत्तमम् ॥ १७ ॥
जैसे नवजात अंकुर और फूलेफले वृक्षोंके सहित पर्वतका उत्तम शिखर इन्द्रके वज्रसे कटकर गिरता है, ऐसे ही अनेक रत्नोंसे विभूषित मुकुट अर्जुनके मस्तकसे बलपूर्वक उस नागने हर लिया ॥ १७ ॥

मही वियद्द्यौः सलिलानि वायुना यथा विभिन्नानि विभान्ति भारत ।
तथैव शब्दो भुवनेष्वभूत्तदा जना व्यवस्यन्व्यथिताश्च चस्खलुः ॥ १८ ॥
भारत ! जैसे बहुत आंधी आनेसे पृथ्वी, आकाश, द्यौ और जल क्षोभित होकर शोभित दीखते हैं, ऐसे ही सब लोकोंमें बडा शब्द हुआ और उस शब्दसे सब लोग भयसे व्यथित होकर अपने स्थानसे स्खलित होकर गिर पडे ॥ १८ ॥

ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा स्वमूर्धजानव्यथितः स्थितोऽर्जुनः ।
विभाति संपूर्णमरीचिभास्वता शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥ १९ ॥
तब अर्जुनने सावधान होकर सफेद कपडेसे अपने बिखरे हुए बालोंको बांधा, उस सफेद कपडेसे अर्जुनकी ऐसी शोभा बढी, जैसे पूर्ण सूर्यके प्रकाशसे उदयाचलकी ॥ १९ ॥

बलाहकः कर्णभुजेरितस्ततो हुताशनार्कप्रतिमद्युतिर्महान् ।
महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन किरीटमासाद्य समुत्पपात ॥ २० ॥
अनन्तर कर्णके हाथसे छुटा हुआ अग्नि और सूर्यके समान अत्यंत तेजस्वी महान् बाण– जो अर्जुनके साथ वैर रखनेवाला महानाग था– अर्जुनके किरीटपर आघात करके नीचे गिर गया ॥ २० ॥

तमब्रवीद्विद्धि कृतागसं मे कृष्णाद्य मातुर्वधजातवैरम् ।
ततः कृष्णः पार्थमुवाच संख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ २१ ॥
फिर कर्णको सांप बोला, अर्जुनने मेरा अपराध किया है; मेरी माताको मार डालनेके कारण उनसे मेरा वैर है । तब श्रीकृष्णने युद्धमें अर्जुनसे कहा— यह महानाग तुम्हारा बैरी है, इसलिये तुम इसे मार डालो ॥ २१ ॥

स एवमुक्तो मधुसूदनेन गाण्डीवधन्वा रिपुषूग्रधन्वा ।
उवाच को न्वेष ममाद्य नागः स्वयं य आगाद्गरुडस्य वक्त्रम् ॥ २२ ॥
श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर शत्रुओंपर अपने धनुषसे उग्र प्रहार करनेवाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनने पूछा— यह नाग कौन है जो आज मेरे पास आता है ? जो स्वयं ही मुझ गरुडके मुखमें आपसे आप चला आता है ॥ २२ ॥

कृष्ण उवाच
योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं संतर्पयानेन धनुर्धरेण ।
वियद्गतो बाणनिकृत्तदेहो ह्यनेकरूपो निहतास्य माता ॥ २३ ॥
श्रीकृष्ण बोले— हे अर्जुन ! खाण्डव वनमें जब तुम धनुष लेकर अग्निको तृप्त करते थे, तब बाणोंसे छिन्नभिन्न देहवाला यह अनेक रूप धारण करके आकाशमें उडा जा रहा था, उस समय तुमने इसकी माताका वध किया था ॥ २३ ॥

ततस्तु जिष्णुः परिहृत्य शेषांश्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः ।
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं स छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥ २४ ॥
तब अर्जुनने उत्तम धारवाले छः तेज बाणोंसे आकाशमें टेढी गतिसे उडते हुए शेष सांपोंके टुकडे कर दिये । वह शरीर छिन्नभिन्न होनेके कारण पृथ्वीमें गिर गया ॥ २४ ॥

तस्मिन्मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः शिलाशितैर्बर्हिणवाजितैश्च ।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरं धनंजयं तिर्यगवेक्षमाणम् ॥ २५ ॥
उतने ही समयमें कर्णने शिलापर घिसे हुए मोरपङ्खयुक्त दस बाण तिरछी दृष्टिसे देखनेवाले पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके शरीरमें मारकर उनको विद्ध किया ॥ २५ ॥

ततोऽर्जुनो द्वादशभिर्विमुक्तैराकर्णमुक्तैर्निशितैः समर्प्य ।
नाराचमाशीविषतुल्यवेगमाकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ २६ ॥
तब अर्जुनने भी धनुषको कानतक खींचकर अच्छी तरह छोडे हुए अत्यन्त तेज बारह बाण कर्णके शरीरमें मार कर, फिर एक विषैले सांपके समान वेगवान् नाराचको कानतक खींच-कर छोडा ॥ २६ ॥

स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य प्राणान्निरस्यन्निव साधु मुक्तः ।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश वसुंधरां शोणितवाजदिग्धः ॥ २७ ॥
वह श्रेष्ठ बाण अर्जुनके धनुपसे छूट कर कर्णका विचित्र कवच फाडकर, प्राण निकालते हुएसे रुधिर पी और रुधिरमें भीगकर पृथ्वीमें घुस गया ॥ २७ ॥

ततो वृषो बाणनिपातकोपितो महोरगो दण्डविघट्टितो यथा ।
तथाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम् ॥ २८ ॥
जैसे बडा विषैला सर्प लट्ठी लगनेसे क्रोधमें भरकर उत्तम विप छोडता है, ऐसे ही उस बाणके लगनेसे क्रोधमें भरकर शीघ्र कर्म करनेवाले कर्णने लाठीकी चोट खाये हुए बडे सर्पके समान उत्तम बाण छोडने आरम्भ किया ॥ २८ ॥

जनार्दनं द्वादशभिः पराभिनन्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम् ।
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं विभिद्य कर्णोऽभ्यनदज्जहास च ॥ २९ ॥
तब श्रीकृष्णके शरीरमें नौ बाण मारकर, अर्जुनके शरीरमें निन्यानवे बाण मारे; फिर एक घोर बाण अर्जुनको मारकर घायल करके कर्ण गर्जने और हंसने लगे ॥ २९ ॥

तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित् ।
परं शरैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रमस्तथा यथेन्द्रो बलमोजसाहनत् ॥ ३० ॥
परन्तु अर्जुन उसके हर्षको सहन नहीं कर सके और उसके मर्मस्थानोंको जाननेवाले इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनने उसके मर्मस्थानोंको इस प्रकार अनेक बाण मारकर विदीर्ण कर दिया, जैसे इन्द्रने बल दैत्यको बलपूर्वक घायल किया था ॥ ३० ॥

ततः शराणां नवतिर्नवार्जुनः ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाः ।
शरैर्भृशायस्ततनुः प्रविव्यथे तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः ॥ ३१ ॥
अनन्तर अर्जुनने यमराजके दण्डके समान भयंकर निन्यानवे बाण कर्णके शरीरमें मारे, उन बाणोंके लगनेसे उसका सब शरीर बहुत घायल हुआ और वह वज्रसे विदीर्ण किये हुए पर्वतके समान व्यथित हो गया ॥ ३१ ॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम् ।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभिर्धनंजयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥ ३२ ॥
अनन्तर सोनेका बना हुआ, उत्तम नीलम, हीरे, मणियोंसे जडा कर्णके मस्तकका आभूषण मुकुट और दोनों उत्तम कुण्डल भी अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३२ ॥

महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः कृतं यदस्योत्तमवर्म भास्वरम् ।
सुदीर्घकालेन तदस्य पाण्डवः क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ३३ ॥

जिस उत्तम, बहुमूल्य और तेजस्वी कवचको श्रेष्ठ कारीगरोंने बहुत यत्न करके बहुत कालमें बनाया था, उसके अर्जुनने अपने बाणोंसे क्षणभरमें अनेक टुकडे कर दिये ॥ ३३ ॥

स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः शरैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत् ।
स विव्यथेऽत्यर्थमरिप्रहारितो यथातुरः पित्तकफानिलव्रणैः ॥ ३४ ॥

फिर कवच रहित कर्णको क्रुद्ध अर्जुनने चार उत्तम बाणोंसे क्षत विक्षत कर दिया। शत्रुसे अत्यंत घायल किये गये कर्ण ऐसे व्याकुल हो गये जैसे वात, पित्त और कफके व्रणोंसे रोगी ॥ ३४ ॥

महाधनुर्मण्डलनिःसृतैः शितैः क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च ।
ततक्ष कर्णं बहुभिः शरोत्तमैर्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥ ३५ ॥

महान् धनुष मण्डलसे छूटे हुए और शीघ्रतासे क्रिया, प्रयत्न और बलसे छोडे हुए अनेक तीक्ष्ण और उत्तम बाणोंसे अर्जुनने कर्णके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुंचायी और उसे घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः ।
बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः क्षरन्प्रपातैरिव रक्तमम्भः ॥ ३६ ॥

अर्जुनके अत्यंत वेगवान् और तेज धारवाले अनेक प्रकारके बाण लगनेसे कर्ण बहुत व्याकुल हो गये और उनके शरीरसे रुधिर बहने लगा, और गेरु आदि धातुओंसे रंगा हुआ पर्वत जैसे अपने झरनोंसे लाल पानी बहाता है, वैसे वह शोभित हुए ॥ ३६ ॥

साश्वं तु कर्णं सरथं किरीटी समाचिनोद्भारत वत्सदन्तैः ।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुङ्खैः ॥ ३७ ॥

भारत ! किरीटधारी अर्जुनने घोडे और रथसहित कर्णको वत्सदन्त बाणोंसे भर दिया। फिर सब प्रकारके प्रयत्नसे सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे सब दिशाओंको छा दिया ॥ ३७ ॥

स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः समाचितः स्माधिरथिर्विभाति ।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलिर्यथाचलः स्पन्दनचन्दनायुतः ॥ ३८ ॥

जैसे फूले हुए अशोक, पलाश, सेमल और चन्दनके वृक्षोंसे युक्त पर्वत शोभित होता है, ऐसे ही पुष्ट ऊंचे हृदयवाले अधिरथ पुत्र कर्ण अर्जुनके वत्सदन्त बाणोंसे व्याप्त होकर शोभित हुए ॥ ३८ ॥

विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान् ।
ब्रह्मास्त्रमर्जुनश्चापि संमन्त्र्याथ प्रयोजयत् ॥ ५२ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! राधापुत्र कर्ण तुम्हारे बाणोंका नाश किये देता है, इसलिये तुम दूसरा कोई उत्तम अस्त्र छोडो । श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रको अभिमन्त्रित करके चलाया ॥ ५२ ॥

छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रभाव्य चार्जुनः ।
तस्य कर्णः शरैः क्रुद्धश्चिच्छेद ज्यां सुतेजनैः ॥ ५३ ॥

अर्जुनने बाणोंकी वृष्टि करके कर्णको मोहित करके आच्छादित किया, तब क्रोधित हुए कर्णने अर्जुनके धनुषका रोदा अपने तेज बाणोंसे काट दिया ॥ ५३ ॥

ततो ज्यामवधायान्यामनुमृज्य च पाण्डवः ।
शरैरवाकिरत्कर्णं दीप्यमानैः सहस्रशः ॥ ५४ ॥

तब अर्जुनने दूसरा एक रोदा मन्त्रित करके धनुषपर चढाया, और हजारो तेजस्वी बाण कर्णकी ओर चलाकर उसको छा दिया ॥ ५४ ॥

तस्य ज्याच्छेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे ।
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५५ ॥

युद्धमें अर्जुनके धनुषका रोदा काटना और फिर अर्जुनका दूसरा चढाना, इतनी शीघ्रतासे होता था कि कर्ण भी वह जान नहीं सका । वह एक अद्भुत घटना थी ॥ ५५ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि राधेयः प्रत्यहन्सव्यसाचिनः ।
चक्रे चाभ्यधिकं पार्थात्स्ववीर्यं प्रतिदर्शयन् ॥ ५६ ॥

कर्ण उस समय भी अर्जुनके सब अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे काटकर अपना पराक्रम दिखलाते हुए उसने स्वयंको अर्जुनसे अधिक वीर्यवान् बताया ॥ ५६ ॥

ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेणाभिपीडितम् ।
अभ्यस्येत्यब्रवीत्पार्थमातिष्ठास्त्रमनुत्तमम् ॥ ५७ ॥

तब श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्णके अस्त्रसे व्याकुल हुआ देखकर कहा— तुम इस समय चुप मत बैठो, शीघ्र अस्त्र चलाओ और उत्तम अस्त्र छोडो ॥ ५७ ॥

ततोऽन्यमग्निसदृशं शरं सर्पविषोपमम् ।
अश्मसारमयं दिव्यमनुमन्त्र्य धनंजयः ॥ ५८ ॥

तब अर्जुनने लोहेका बना, अग्नि और सांपके विषके समान भयानक एक दिव्य बाण अभिमन्त्रित करके ॥ ५८ ॥

रौद्रमस्त्रं समादाय क्षेप्तुकामः किरीटवान् ।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य महामृधे ॥ ५९ ॥

और रौद्रास्त्रसे युक्त करके चलानेकी इच्छा की, उसी समय महायुद्धमें पृथ्वीने कर्णके रथका पहिया भी पकड लिया ॥ ५९ ॥

ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः कोपादश्रूण्यवर्तयत् ।
सोऽब्रवीदर्जुनं चापि मुहूर्तं क्षम पाण्डव ॥ ६० ॥

उस समय पहिया फंस जानेके कारण क्रोधसे भरे कर्णकी आंखसे आंसू बहने लगे । और अर्जुनको कर्ण बोला– हे अर्जुन ! दो घडीतक ठहर जाओ ! ॥ ६० ॥

मध्ये चक्रमवग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम ।
पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसंधिं विवर्जय ॥ ६१ ॥

हे पार्थ ! प्रारब्धसे मेरे रथके पहियेको पृथ्वीमें फंसा हुआ देखकर, तुम नीच पुरुषके समान कपटयुक्त वर्तन करना छोड दो ॥ ६१ ॥

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणे च कृताञ्जलौ ।
शरणागते न्यस्तशस्त्रे तथा व्यसनगेऽर्जुन ॥ ६२ ॥

अर्जुन ! जो बाल खोलकर खडा हो, युद्धसे विमुख हुआ हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोडकर शरणमें आया हो, शस्त्र त्याग किया हो, संकट ग्रस्त हुआ हो ॥ ६२ ॥

अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ।
न शूराः प्रहरन्त्याजौ न राज्ञे पार्थिवास्तथा ।
त्वं च शूरोऽसि कौन्तेय तस्मात्क्षम मुहूर्तकम् ॥ ६३ ॥

और जो बाणहीन, कवचहीन और दूसरे आयुध नष्ट हो गया हो, ऐसे मनुष्यपर शूरवीर राजालोग युद्धमें प्रहार नहीं करते हैं । हे कौंतेय ! तुम तो शूरवीर हैं, इसलिये दो घडीतक ठहर जाओ ॥ ६३ ॥

यावच्चक्रमिदं भूमेरुद्धरामि धनंजय ।
न मां रथस्थो भूमिष्ठमसज्जं हन्तुमर्हसि ।
न वासुदेवात्त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम् ॥ ६४ ॥

हे धनंजय ! मैं जबतक इस रथके पहियेको पृथ्वीसे निकाल रहा हूं, तबतक तुम रथारूढ होकर मुझ असज्ज और भूमिपर खडे हुए पर बाण मत छोडो । हे पाण्डुपुत्र ! हम तुमसे और श्रीकृष्णसे कुछ भी नहीं डरते हैं ॥ ६४ ॥

त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः ।
स्मृत्वा धर्मोपदेशां त्वं मुहूर्तं क्षम पाण्डव ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ३७२८ ॥

तुम क्षत्रियके पुत्र हो, महान् कुलका आदर बढानेवाले हो, इसलिये हम तुमसे कहते हैं, धर्मोपदेशका स्मरण करके दो घडीतक ठहर जाओ ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें छाछठवां अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ ३७२८ ॥

: ६७ :

संजय उवाच

अथाब्रवीद्वासुदेवो रथस्थो राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम् ।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तत्तत् । ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तब श्रीकृष्णने रथमें बैठे बैठे कर्णसे कहा– हे राधापुत्र ! तुमने आज प्रारब्धसे धर्मका स्मरण किया । तुम्हारे समान नीच मनुष्य आपत्तिमें पडनेपरही प्रारब्धकी निन्दा करते हैं, परंतु अपने बुरे कर्मका स्मरण नहीं करते ॥ १ ॥

यद्द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानाय्य त्वं चैव सुयोधनश्च ।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः ॥ २ ॥

हे कर्ण ! जिस समय तुम, दुर्योधन, दुःशासन और सुबलपुत्र शकुनिने एक वस्त्र धारण करनेवाली द्रौपदीको सभामें बुलाया था, तब तुमने धर्म नहीं समझा था ? ॥ २ ॥

यदा सभायां कौन्तेयमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम् ।
अक्षज्ञः शकुनिर्जेता तदा धर्मः क्व ते गतः ॥ ३ ॥

जब जूएके खेलको न जाननेवाले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको जूएके खेलको जाननेवाले शकुनिने दुष्टतासे कौरवसभामें जीता था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था ? ॥ ३ ॥

यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम् ।
सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ४ ॥

हे कर्ण ! जब सभामें दुःशासनके वशमें पडी हुई रजस्वला द्रौपदीको देखकर तुम हंसे थे, तब तुम्हारा धर्म कहां चला गया था ? ॥ ४ ॥

राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवम् ।
गन्धारराजमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ५ ॥

हे कर्ण ! फिर राज्यके लोभमें पडकर तुमने शकुनिकी मन्त्रणासे जब धर्मराजको दूसरी बार जूआ खेलनेके लिये बुलाया था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था ? ॥ ५ ॥

एवमुक्ते तु राधेये वासुदेवेन पाण्डवम् ।
मन्युरभ्याविशत्तीव्रः स्मृत्वा तत्तद्धनंजयम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णके कर्णको कहे ऐसे वचन सुनते ही, पाण्डुपुत्र अर्जुनको कर्णके दुष्ट कर्मोंकी याद आयी और उनको अत्यंत क्रोध हुआ ॥ ६ ॥

तस्य क्रोधेन सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ।
प्रादुरासन्महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥

महाराज ! उस क्रोधसे उनके सब रोंओंसे आगकी चिनगारियां निकलने लगीं, उस समय एक अद्भुत बात हुई ॥ ७ ॥

तं समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनंजयम् ।
अभ्यवर्षत्पुनर्यत्नमकरोद्रथसर्जने ।
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहारास्य पाण्डवः ॥ ८ ॥

यह देखकर, कर्णने अर्जुनपर ब्रह्मास्त्र चलाकर अनेक बाणोंकी वर्षा की और फिर रथके पहियेको उठानेका प्रयत्न किया । तब अर्जुनने ब्रह्मास्त्रसे ही उसके अस्त्रको निवारण कर दिया और उसको घायल किया ॥ ८ ॥

ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः ।
मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत्प्रजज्वाल वै भृशम् ॥ ९ ॥

अनन्तर कुन्तीपुत्र अर्जुनने कर्णको वेध करके दूसरे जातवेद् अग्निके प्रिय दिव्यास्त्रको छोडा, वह अपने तेजसे बहुत प्रज्वलित हो रहा था ॥ ९ ॥

वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् ।
जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः ॥ १० ॥

परंतु कर्णने वरुण अस्त्रसे उस अग्निको शान्त कर दिया । उस समय सब दिशाओंमें मेघ छा गये और घोर अन्धकार हो गया ॥ १० ॥

पाण्डवेयस्त्वसंभ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् ।
अपोवाह तदाभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः ॥ ११ ॥

तब शूरवीर अर्जुनने निर्भयतापूर्ण चित्तसे वायव्यास्त्र चलाकर राधापुत्र कर्णके देखते देखते सब मेघोंको उडा दिया ॥ ११ ॥

तं हस्तिकक्ष्याप्रवरं च बाणैः सुवर्णमुक्तामणिवज्रमृष्टम् ।
कालप्रयत्नोत्तमशिल्पियत्नैः कृतं सुरूपं वितमस्कमुच्चैः ॥ १२ ॥

वह श्रेष्ठ ध्वजा हाथीकी सांकलके चिन्हसे युक्त, सोने, मोती और हीरे आदि मणियोंसे बनी हुई, बहुत युक्तिसे उत्तम शिल्पकारोंकी सुंदर बनाई हुई, बहुत ऊंचाईपर लहराती थी ॥ १२ ॥

ऊर्जस्करं तव सैन्यस्य नित्यममित्रवित्रासनमीड्यरूपम् ।
विख्यातमादित्यसमस्य लोके त्विषा समं पावकभानुचन्द्रैः ॥ १३ ॥

तुम्हारी सेनाके बलका प्रतीक, सदा शत्रुओंको डरानेवाली, स्तुति करने योग्य, जगत् प्रसिद्ध, अपनी प्रभासे, सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान तेजस्वी और कांतिमान थी ॥ १३ ॥

ततः क्षुरेणाधिरथेः किरीटी सुवर्णपुङ्खेन शितेन यत्तः ।
श्रिया ज्वलन्तं ध्वजमुन्ममाथ महारथस्याधिरथेर्महात्मा ॥ १४ ॥

महारथी कर्णके उस अपने तेजसे प्रकाशित ध्वजाको महात्मा अर्जुनने सोनेके पङ्खवाले एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे प्रयत्नपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ १४ ॥

यशश्च धर्मश्च जयश्च मारिष प्रियाणि सर्वाणि च तेन केतुना ।
तदा कुरूणां हृदयानि चापतन्बभूव हाहेति च निस्वनो महान् ॥ १५ ॥

मारिष ! कौरवोंके यश, धर्म, जय, सबके सब प्रिय कार्य और हृदय सभी उस ध्वजाके सङ्ग ही पतन हो गये और सेनामें महान् हाहाकार शब्द होने लगा ॥ १५ ॥

अथ त्वरन्कर्णवधाय पाण्डवो महेन्द्रवज्रानलदण्डसंनिभम् ।
आदत्त पार्थोऽञ्जलिकं निषङ्गात्सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम् ॥ १६ ॥

अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्जुनने कर्णके मारनेके लिये शीघ्रता करते हुए अग्निके दण्डके समान घोर, इन्द्रके वज्रके समान दृढ और सूर्यकी किरणके समान प्रकाशमान् एक अञ्जलिक नामक बाण अपने तूणीरसे निकाला ॥ १६ ॥

मर्मच्छिदं शोणितमांसदिग्धं वैश्वानरार्कप्रतिमं महार्हम् ।
नराश्वनागासुहरं त्र्यरत्निं षड्वाजमञ्जोगतिमुग्रवेगम् ॥ १७ ॥

वह मर्म स्थानको काटनेवाला, रुधिर और मांससे लिप्त होनेवाला, अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, बहुमूल्य, हाथी, घोडे और मनुष्योंके प्राण लेनेवाला, तीन अरत्निपरिमाणवाला, छः पंखोंसे युक्त, सीधी गतिसे चलनेवाला, अत्यंत वेगशाली ॥ १७ ॥

सहस्रनेत्राशनितुल्यतेजसं समानकव्यादमिवातिदुःसहम् ।
पिनाकनारायणचक्रसंनिभं भयंकरं प्राणभृतां विनाशनम् ॥ १८ ॥

इन्द्रके वज्रके समान तेजस्वी, हिंस्रपशुके समान अत्यंत दुःसह, शिवके त्रिशूल और विष्णुके चक्रके समान घोर और प्राणियोंका संहार करनेवाला था ॥ १८ ॥

युक्त्वा महास्त्रेण परेण मन्त्रविद्विकृष्य गाण्डीवमुवाच सस्वनम् ।
अयं महास्त्रोऽप्रतिमो धृतः शरः शरीरभिच्चासुहरश्च दुर्हृदः ॥ १९ ॥

उसे मन्त्रविशारद् अर्जुनने उत्तम और महान् अस्त्रसे अभिमन्त्रित करके उत्तम शब्दवाले गाण्डीव धनुषको खींचते हुए कहा— यह महान् अप्रतिम अस्त्रसे युक्त बाण शत्रुके शरीर, प्राण और हृदयका नाश करनेवाला है ॥ १९ ॥

तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता मया यदिष्टं सुहृदां तथा श्रुतम् ।
अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः सुदंशितः कर्णमरिं ममाजितः ॥ २० ॥

यदि मैंने कुछ तप किया हो, गुरुजनोंको सेवासे प्रसन्न रक्खा हो और यज्ञ किया हो, मित्रोंके हितकारी वचन सुने हों, तो यह सत्यसे युक्त अच्छी तरहसे छोडा हुआ अजेय बाण मेरे शत्रु कर्णको नष्ट करे ॥ २० ॥

इत्यूचिवांस्तं स मुमोच बाणं धनंजयः कर्णवधाय घोरम् ।
कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि ॥ २१ ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने उस घोर बाणको कर्णके वधके लिये छोड दिया । जैसे अथर्वाङ्गिरा मुनिकी बनाई हुई कृत्या उग्र, प्रदीप्त और युद्धमें मृत्युके लिये भी असह्य होती है, उसी प्रकार वह बाण था ॥ २१ ॥

ब्रुवन्किरीटी तमतिप्रहृष्टो अयं शरो मे विजयावहोऽस्तु ।
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः कर्णं समाप्तिं नयतां यमाय ॥ २२ ॥

अत्यन्त प्रसन्न होकर अर्जुन उस बाणको पुकारके बोले— यह बाण मुझे विजय देनेवाला हो । सूर्य और चन्द्रमाके समान इसका प्रभाव है, यह कर्णको समाप्त करके यमलोक पहुंचा दे ॥ २२ ॥

तेनेषुवर्येण किरीटमाली प्रहृष्टरूपो विजयावहेन ।
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण चक्रे विषक्तं रिपुमाततायी ॥ २३ ॥

किरीटधारी अर्जुनने अत्यंत प्रसन्न हो, शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे आततायी बनकर, चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रभायुक्त उस विजयदायी श्रेष्ठ बाणसे अपने शत्रुको छेद डाला ॥ २३ ॥

तदुद्यतादित्यसमानवर्चसं शरन्नभोमध्यगभास्करोपमम् ।
वराङ्गमुर्व्यामपतच्चमूपतेर्दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ॥ २४ ॥

जैसे लाल मण्डलवाले सूर्य अस्ताचलसे गिरते हैं, ऐसे उदित सूर्यके समान तेजस्वी और शरत्कालीन आकाशके मध्यभागमें तपनेवाले सूर्यके समान तापदायक वह शिर कटकर पृथ्वीमें गिर गया ॥ २४ ॥

तदस्य देही सततं सुखोदितं स्वरूपमत्यर्थमुदारकर्मणः ।
परेण कृच्छ्रेण शरीरमत्यजद्गृहं महर्द्धीव ससङ्गमीश्वरः ॥ २५ ॥

सदा सुख भोगने योग्य, उदार कर्म करनेवाले कर्णके अत्यन्त सुन्दर शरीरको उसके मस्तकने अत्यंत कष्टसे छोडा, जैसे धनवान् अपने समृद्ध घरको और जितेंद्रिय पुरुष सत्संगको बडे कष्टसे छोडता है ॥ २५ ॥

शरैर्विभुग्नं व्यसु तद्विवर्मणः पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम् ।
स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं गिरेर्यथा वज्रहतं शिरस्तथा ॥ २६ ॥

जैसे वज्रके आघातसे भग्न हुआ पर्वतका शिखर गेरु मिश्रित जलकी धारा बहता है, ऐसे ही कवच रहित कर्णका शरीर बाणोंसे छिन्नभिन्न होकर व्रणोंमे रुधिरकी धारा बहाता हुआ प्राणरहित होकर गिर गया ॥ २६ ॥

देहात्तु कर्णस्य निपातितस्य तेजो दीप्तं खं विगाह्याचिरेण ।
तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः पश्यन्ति राजन्निहते स्म कर्णे ॥ २७ ॥

गिराये गये कर्णके शरीरसे एक तेज तत्काल दीप्तिमान् आकाशमें समा गया । राजन् ! कर्णके मरे जानेपर यह अद्भुत दृश्य सब योद्धाओंने देखा ॥ २७ ॥

तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं प्रीता नादं सह सैन्यैरकुर्वन् ।
तूर्याणि चाजघ्नुरतीव हृष्टा वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च ।
बलान्विताश्चाप्यपरे ह्यनृत्यन्नन्योन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः ॥ २८ ॥

कर्णको मरकर गिरा हुआ देख सब सोमक प्रसन्न हो अपनी सेनाओंके साथ गर्जने लगे । सब अत्यंत प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे, और वस्त्र तथा हाथ हिलाने लगे । दूसरे बलवान् सैनिक एक दूसरेसे आलिंगन देकर नाचते और गर्जते हुए बातें करने लगे ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि निष्टनन्तं हतं रथात्सायकेनावभिन्नम् ।
महानिलेनाग्निमिवापविद्धं यज्ञावसाने शयने निशान्ते ॥ २९ ॥

अर्जुनके बाणोंसे छिन्नभिन्न और प्राणरहित हुए कर्णको रथसे नीचे पृथ्वीपर पडा देखा, मानो वायुके वेगसे टूटा हुआ पर्वतका शिखर, यज्ञके अन्तके अन्तमें बुझी हुई अग्निके समान था ॥ २९ ॥

शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः ।
विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान् ॥ ३० ॥

जैसे किरणों सहित प्रकाशित होनेवाले सूर्य शोभित होते हैं, ऐसे ही सब अंगमें बाणोंसे व्याप्त और रुधिरसे भरा हुआ कर्णका शरीर दीखता था ॥ ३० ॥

प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ॥ ३१ ॥

अपने बाणरूपी दीप्तिमान् किरणोंसे शत्रुकी सेनाको तपाकर बलवान् अर्जुनरूपी कालके वशमें होकर कर्णरूपी सूर्य अस्त हो गये ॥ ३१ ॥

अस्तं गच्छन्यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति।
एवं जीवितमादाय कर्णस्येषुर्जगाम ह। ॥ ३२ ॥

जैसे सूर्य अपनी प्रभाको लेकर अस्त हो जाता है, ऐसे ही वह बाण कर्णका प्राण लेकर शीघ्र शांत हो गया ॥ ३२ ॥

अपराह्णे पराह्णस्य सूतपुत्रस्य मारिष।
छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः ॥ ३३ ॥

हे महाराज! दिनके चौथे भागमें अर्जुनने अञ्जलिक बाणसे कटा हुआ सूतपुत्र कर्णका देह सहित शिर युद्धमें गिरा दिया ॥ ३३ ॥

उपर्युपरि सैन्यानां तस्य शत्रोस्तदञ्जसा।
शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः सोऽपाहरद्द्रुतम् ॥ ३४ ॥

उस बाणने सेनाके ऊपर ऊपर जाकर अर्जुनके शत्रु कर्णके शरीर सहित शिरको शीघ्रतासे सहसा काट दिया था ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम्।
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराजश्छिन्नध्वजेनापययौ रथेन ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले– राजन्! महा पराक्रमी वीर कर्णको बाणोंसे व्याप्त और रुधिरसे भरा पृथ्वीमें पडा हुआ देख मद्रराज शल्य भग्न हुई ध्वजा सहित रथसे वहांसे भाग गये ॥ ३५ ॥

कर्णे हते कुरवः प्राद्रवन्त भयार्दिता गाढविद्धाश्च संख्ये।
अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम् ॥ ३६ ॥

कर्णके मारे जानेके पश्चात् युद्धमें घावोंसे अत्यंत व्याकुल हुए कौरव सेनाके वीर अर्जुनके प्रज्वलित होते हुए महान् ध्वजको बार बार देखकर भयसे पीडित हो युद्ध छोडकर भागे ॥ ३६ ॥

सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः सहस्रपत्रप्रतिमाननं शुभम्।
सहस्ररश्मिर्दिनसंक्षये यथा तथापतत्तस्य शिरो वसुंधराम् ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ३७६५ ॥

सहस्र आंखोंवाले इन्द्रके समान कर्म करनेवाले कर्णका सहस्र पत्रवाले कमलके समान वह सुंदर शिर इस प्रकार कटकर पृथ्वीमें गिर पडा, जैसे सहस्र किरणवाला सूर्य सन्ध्याको अस्ताचलसे गिरता है ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें सरसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ ॥ ३७६५ ॥

: ६८ :

संजय उवाच

शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः ।
दुर्योधनं यान्तमवेक्षमाणो संदर्शयद्भारत युद्धभूमिम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन्! कर्ण और अर्जुनके घोर युद्धमें बाणोंसे सारी सेनाएं मारी गयी थी, यह देखकर राजा शल्य युद्धभूमिकी ओर देखते हुए दुर्योधनके पास गये ॥ १ ॥

निपातितस्यन्दनवाजिनागं दृष्ट्वा बलं तद्धतसूतपुत्रम् ।
दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो मुहुर्मुहुर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥ २ ॥

अपनी सेनाके रथ, घोडे और हाथियोंको मारा गया देख और सूतपुत्र कर्णको भी वध किया हुआ देख, दुर्योधनकी आखोंमें आंसू भर आये और वह बार बार ऊंचे सांस लेता हुआ दुःखी हो गया ॥ २ ॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं दिदृक्षवः संपरिवार्य तस्थुः ॥ ३ ॥

यदृच्छासे पृथ्वीपर उतरे हुए सूर्यके समान शूरवीर कर्णको पृथ्वीमें गिरा हुआ और सब शरीर बाणोंसे व्याप्त और रुधिरसे भीगा हुआ जानकर, सेनाके सब वीर देखनेको आये और उसको घेरकर खडे हो गये ॥ ३ ॥

प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मृतास्तथापरे शोकगता इवाभवन् ।
परे त्वदीयाश्च परस्परेण यथा यथैषां प्रकृतिस्तथाभवन् ॥ ४ ॥

कोई प्रसन्न हुआ तो कोई भयभीत; कोई विषण्ण था तो कोई आश्चर्य करने लगे; दूसरे अनेक शोकसे व्याकुल हो गये। इस प्रकार तुम्हारे और शत्रुओंके सैनिक अपने स्वभावके अनुसार उसी भावमें रह गये ॥ ४ ॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं धनंजयेनाभिहतं हतौजसम् ।
निशम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवुर्हतर्षभा गाव इवाकुलाकुलाः ॥ ५ ॥

जैसे सांडके मारे जानेसे गौ व्याकुल होकर समूहोंमेंसे भागने लगती हैं, ऐसे ही अर्जुनके बाणोंसे कवच, भूषण, वस्त्र, आयुध और दीप्ति रहित कर्णको मारा सुन तुम्हारी सेना इधर उधर भागने लगी ॥ ५ ॥

कृत्वा विमर्दं भृशमर्जुनेन कर्णं हतं केसरिणेव नागम् ।
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराजो भीतोऽपसर्पत्सरथः सुशीघ्रम् ॥ ६ ॥

जैसे सिंह हाथीको मारता है, वैसेही अत्यंत नाश करके अर्जुनने कर्णको मार डाला, और वह पृथ्वीपर गिरा हुआ है यह देखकर मद्रराज शल्य डरकर रथके साथ वहांसे शीघ्राति-शीघ्र चला गया ॥ ६ ॥

मद्राधिपश्चापि विमूढचेतास्तूर्णं रथेनापहृतध्वजेन ।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य शीघ्रं संभाष्य दुःखार्तमुवाच वाक्यम् ॥ ७ ॥

राजा शल्य भी विमूढचित्त होकर ध्वजा रहित रथको शीघ्रही दौडाते हुए, दुर्योधनके पास जाकर, दुःखसे भरे ऐसे वचन बोले ॥ ७ ॥

विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम् ।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भिर्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥ ८ ॥

तुम्हारी सेनाके हाथी, घोडे और श्रेष्ठ वीर नष्ट हो गये हैं, और वहां यमका राज्यसा हुआ है। पर्वत शिखरोंके समान बडे हाथी, घोडे और पैदल सैनिक एक दूसरेसे लडकर मर गये हैं ॥ ८ ॥

नैतादृशं भारत युद्धमासीद्यथाद्य कर्णार्जुनयोर्बभूव ।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णावन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ९ ॥

हे भारत! आज कर्ण और अर्जुनका जैसा युद्ध हुआ, वैसा कभी नहीं हुआ। कर्णने आक्रमण करके श्रीकृष्ण, अर्जुन और तुम्हारे अन्य सब शत्रुओंको ग्रस्त कर दिया था ॥ ९ ॥

दैवं तु यत्तत्स्ववशं प्रवृत्तं तत्पाण्डवान्पाति हिनस्ति चास्मान् ।
तवार्थसिद्ध्यर्थकरा हि सर्वे प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः ॥ १० ॥

दैव ही स्ववश होकर यह सब कर रहा है, वह सदा पाण्डवोंकी रक्षा करता है और हमारा नाश करता है; इसी कारण तुम्हारे अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले सब वीर शत्रुओंके हाथसे बलपूर्वक मारे गये ॥ १० ॥

कुबेरवैवस्वतवासवानां तुल्यप्रभावाम्बुपतेश्च वीराः ।
वीर्येण शौर्येण बलेन चैव तैस्तैश्च युक्ता विपुलैर्गुणौघैः ॥ ११ ॥

तुम्हारी ओरके वीर कुबेर, यमराज, इन्द्र और वरुणके समान सामर्थ्यसंपन्न और पराक्रम, शौर्य और बल आदि अनेक गुणोंसे भरे हुए थे ॥ ११ ॥

अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रास्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः ।
तन्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्पर्यायसिद्धिर्न सदास्ति सिद्धिः ॥ १२ ॥

तुम्हारे अर्थकी सिद्धि इच्छिनेवाले और अवध्यके समान जो राजा थे, उनको युद्धमें पाण्डवोंने मार डाला, सो भारत! तुम इसका कुछ सोच मत करो। प्रारब्ध बडा बलवान् है, उसका यह काम है। साहस रक्खो, सबको सर्व काल सिद्धि नहीं मिलती ॥ १२ ॥

एतद्वचो मद्रपतेर्निशम्य स्वं चापनीतं मनसा निरीक्ष्य ।
दुर्योधनो दीनमना विसंज्ञः पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥ १३ ॥

मद्रराज शल्यके ऐसे वचन सुन और अपने अन्यायपर मनसे निरीक्षण करके बहुत दुःखित हुआ दुर्योधन बहुत पीडित और अचेतसा होकर बार बार ऊंचे सांस लेने लगा ॥ १३ ॥

तं ध्यानमूकं कृपणं भृशार्तमार्तायनिदर्हीनमुवाच वाक्यम् ।
पश्येदमुग्रं नरवाजिनागैरायोधनं वीरहतैः प्रपन्नम् ॥ १४ ॥

मुग्ध, दुःखी, अत्यंत पीडित, दीन हुए दुर्योधनको शल्य बोले– देखो, मारे गये मनुष्य, घोडे और हाथियोंकी लाशोंसे भरा हुआ यह रणाङ्गण कैसा भयंकर दीखता है ? ॥ १४ ॥

महीधराभैः पतितैर्महागजैः सकृत्प्रविद्धैः शरविद्धमर्मभिः ।
तैर्विह्वलद्भिश्च गतासुभिश्च प्रध्वस्तयन्त्रायुधवर्मयोधैः ॥ १५ ॥

अनेक वार बाणोंसे मर्मस्थल विद्ध होनेके कारण मरे हुए पर्वतोंके समान मतवाले बडे बडे हाथी विदीर्ण होकर गिरे हैं । कितने वेदनासे विह्वल हो रहे हैं, कितने प्राणहीन हो गये हैं। उनके सवारोंके साधन, आयुध और कवच नष्ट हो गये हैं और वे स्वयं पृथ्वीमें पडे हैं ॥ १५ ॥

वज्रापविद्धैरिव चाचलेन्द्रैर्विभिन्नपाषाणमृगद्रुमौषधैः ।
प्रविद्धघण्टाङ्कुशतोमरध्वजैः सहेममालै रुधिरौघसंप्लुतैः ॥ १६ ॥

मरे हुए हाथी ऐसे दीखते हैं जैसे वज्रके आघातसे गिरे हुए बडे पर्वत और उनके प्रस्तारखण्ड, वृक्ष और औषधियां छिन्न भिन्न हो गयी हैं । उनके घंटा, अंकुश, तोमर और ध्वज बिखरे हुए हैं, उनपर सोनेकी नालीका आवरण पडा है, वे रुधिरसे भीगे हैं ॥ १६ ॥

शरावभिन्नैः पतितैश्च वाजिभिः श्वसद्भिरन्यैः क्षतजं वमद्भिः ।
दीनैः स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रैर्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः ॥ १७ ॥

बाणोंसे छिन्नभिन्न होकर घोडे गिरे हैं, दूसरे व्यथित हो श्वास लेते हैं और रुधिर वमन करते हैं, दीनतासे आर्तनाद करते हैं, आंखें घुमाते हैं, पृथ्वीमें दांत धंसाकर करुण चीत्कार करते हैं ॥ १७ ॥

तथापविद्धैर्गजवाजियोधैर्मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च ।
नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैर्मही महावैतरणीव दुर्दृशा ॥ १८ ॥

हाथी, घोडे और योद्धा क्षत–विक्षत हो मरे पडे हैं, किन्हींकी सांसे मन्द चलती हैं, कितने प्राण रहित हो गये हैं; हाथी, घोडे, मनुष्य और रथ चूर्ण हो गये हैं, इसीसे पृथ्वी महावैतरणीके समान भयंकर दीखती है ॥ १८ ॥

गजैर्निकृत्तापरहस्तगात्रैरुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्याम् ।
यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः ।
विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधैर्वृता निशान्तैरिव पावकैर्मही ॥ १९ ॥
हाथियोंके सूंड दण्ड और शरीर कट गये हैं, पृथ्वीपर गिरकर कितने ही कांप रहे हैं, हाथी, रथ और घोडोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले यशस्वी योद्धा और पैदल सैनिक आगे लडते हुए शत्रुओंसे मारे गये हैं। उनके कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध भग्न होकर बिखर गये हैं। इस प्रकार शान्त पडे हुए लोगोंसे पृथ्वी बुझी हुई अग्निके समान दीखती है ॥ १९ ॥

शरप्रहाराभिहतैर्महाबलैरवेक्ष्यमाणैः पतितैः सहस्रशः ।
प्रनष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भिर्मही बभूवानुगतैरिवाग्निभिः ।
दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भिर्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलेव दीप्ता ॥ २० ॥
बाणोंके प्रहारोंसे व्याकुल होकर गिरे हुए सहस्रों महाबलवान् योद्धाओंसे यह भूमि पूरित हो गई है। इनमेंसे कितनेही चेतनाहीन हो गये हैं और कितने ही फिर सांस ले रहे हैं। यह भूमि यज्ञमें रखी गई अग्नि-युक्त यज्ञभूमिके समान दीखती है। आकाशसे नीचे गिरे हुए अत्यंत प्रकाशमान् और निर्मल प्रभासे प्रकाशित ग्रहोंके समान ये योद्धा दीखते हैं, और उनसे भरी हुई यह भूमि रातके समय उन ग्रहोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान शोभित होती है ॥ २० ॥

शरास्तु कर्णार्जुनबाहुमुक्ता विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान् ।
प्राणान्निरस्याशु महीमतीयुर्महोरगा वासमिवाभितोऽस्त्रैः ॥ २१ ॥
कर्ण और अर्जुनके हाथोंसे छूटे हुए बाण हाथी, घोडे और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके उनके प्राण निकालकर तुरंत ही, अस्त्रोंसे ताडित होकर बिलमें घुसनेवाले सर्पोंके समान पृथ्वीमें घुस गये थे ॥ २१ ॥

हतैर्मनुष्याश्वगजैश्च संख्ये शरावभिन्नैश्च रथैर्बभूव ।
धनञ्जयस्याधिरथेश्च मार्गे गजैरगम्या वसुधातिदुर्गा ॥ २२ ॥
अर्जुन और कर्णके बाणोंसे मारे गये हाथी, घोडे और मनुष्योंसे और बाणोंसे भग्न हुए रथोंसे, तथा उनके मार्गपर पडे हुए हाथियोंसे पृथ्वीपर चलना अत्यंत दुर्गम हो गया है ॥ २२ ॥

रथैर्वरेषून्मथितैश्च योधैः संस्यूतसूताश्ववरायुधध्वजैः ।
विशीर्णशस्त्रैर्विनिकृत्तबन्धुरैर्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः ॥ २३ ॥
रथ बाणोंके प्रहारोंसे चूर हो गये हैं, वे रथ योद्धा, सारथि, घोडे, उत्तम आयुध और ध्वज युक्त थे, उनको भी नष्ट भ्रष्ट किया गया है। उनके शस्त्र, लगाम, पहिये, धुरे, जुए और त्रिवेणु काष्ठके भी टुकडे हो गये हैं ॥ २३ ॥

विमुक्तयन्त्रैर्निहतैरयस्मयैर्हतानुषङ्गैर्विनिषङ्गबन्धुरैः ।
प्रभग्ननीडैर्मणिहेममण्डितैः स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः ॥ २४ ॥
उनपर रक्खे गये लोहमय यन्त्र बिखर गये हैं, अनुषङ्ग, तूणीर और बन्धुर सब भग्न हुए हैं; सुवर्ण और मणियोंसे मण्डित रथोंसे पूरित हुई पृथ्वी शरदऋतुके मेघोंसे युक्त आकाशके समान दीखती है ॥ २४ ॥

विकृष्यमाणैर्जवनैरलंकृतैर्हतेश्वरैराजिरथैः सुकल्पितैः ।
मनुष्यमातङ्गरथाश्वराशिभिर्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः ॥ २५ ॥
युद्धमें जिनके रथी मारे गये हैं, उन सुसज्जित रथोंको बहुत शीघ्र चलनेवाले घोडे ले जाते थे और मनुष्य, हाथी, रथ और घोडोंके झुंड भागे जाते थे, तब शीघ्रतासे भागनेवाले अनेक लोग चूर हो गये ॥ २५ ॥

सहेमपट्टाः परिघाः परश्वधाः कडङ्गरायोमुसलानि पट्टिशाः ।
पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा गदाश्च जाम्बूनदपट्टबद्धाः ॥ २६ ॥
ये सोनेके पत्रोंसे जडे परिघ, परश्वध, कडंगराय, मुसल, पट्टिश म्यानसे बाहर निकाले हुए चमकदार खड्ग और सोनेसे जडी गदाएं आदि अनेक शस्त्र इधर ऊधर पडे हैं ॥ २६ ॥

चापानि रुक्माङ्गदभूषणानि शराश्च कार्तस्वरचित्रपुङ्खाः ।
ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः प्रासाः सखड्गाः कनकावभासाः ॥ २७ ॥
सोनेमें जडे अंगदयुक्त धनुष, सोनेके विचित्र पंखवाले बाण, ऋष्टि, तीक्ष्ण कोश रहित प्रास और सुवर्णमय खड्ग ॥ २७ ॥

छत्त्राणि वालव्यजनानि शङ्खाः स्रजश्च पुष्पोत्तमहेमचित्राः ।
कुथाः पताकाम्बरवेष्टिनाश्च किरीटमाला मुकुटाश्च शुभ्राः ॥ २८ ॥
छत्र, चंवर, शंख और उत्तम फूलोंकी सोनेकी तार जडी हुई विचित्र मालाएं, हाथियोंकी झूल, पताका, भूषण, उत्तम किरीटमाला, सुन्दर मुकुट, ॥ २८ ॥

प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च कुथाश्च प्रधानमुक्तातरलाश्च हाराः ।
आपीडकेयूरवराङ्गदानि ग्रैवेयनिष्काः ससुवर्णसूत्राः ॥ २९ ॥
चामर और उत्तम मोतियोंके दीप्तिमान् हार ये सब इधर उधर बिखरे पडे हैं। मुकुटमणि, केयूर, सुंदर बाजू बंद, गलेके सुवर्णमय हार, सोनेकी सांकल ॥ २९ ॥

मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि ।
गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि ॥ ३० ॥
उत्तम मणि, हीरे, सोना और मुक्ता आदि छोटे बडे शुभ रत्न, विपुल सुख भोगनेके योग्य शरीर, चन्द्रमाके समान सुंदर मुखवाले शिर ॥ ३० ॥

देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चापि।
स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य व्याप्तांश्च लोकान्यशसा समीयुः ॥ ३१ ॥

देह, भोग, वस्त्र और जगत्‌के प्रिय सुखोंको छोडकर, स्वधर्मका पालन करके, सब लोकोंमें अपने यशको बढाकर ये सब वीर सनातन स्वर्गको चले गये ॥ ३१ ॥

इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो दुर्योधनः शोकपरीतचेताः।
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाण आर्तो विसंज्ञो भृशमश्रुनेत्रः ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर राजा शल्य चुप हो गये। दुर्योधन भी शोकसे व्याकुल हुआ दुःखित होकर 'हा कर्ण! हा कर्ण!' कहकर मूर्च्छितसा हुआ। उसकी आंखोंसे आंसु बहने लगे ॥ ३२ ॥

तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः सर्वे समाश्वास्य सह प्रयान्ति।
निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् ॥ ३३ ॥

फिर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आदि सब नरेन्द्र आकर दुर्योधनको सान्त्वना देकर, अर्जुनकी यशसे भरी प्रज्वलित महान् ध्वजाको देखकर लौट जाते थे ॥ ३३ ॥

नराश्वमातङ्गशरीरजेन रक्तेन सिक्ता रुधिरेण भूमिः।
रक्ताम्बरस्रक्तपनीययोगान्नारी प्रकाशा इव सर्वगम्या ॥ ३४ ॥

उस समय मनुष्य, हाथी और घोडोंके शरीरसे बहते हुए लाल रुधिरसे भीगकर पृथ्वी, लाल वस्त्र, लाल फूलोंकी माला और सुवर्णके अलंकार परिधान की हुई वेश्याके समान दीखने लगी थी ॥ ३४ ॥

प्रच्छन्नरूपा रुधिरेण राजन्रौद्रे मुहूर्तेऽतिविराजमानाः।
नैवावतस्थुः कुरवः समीक्ष्य प्रव्राजिता देवलोकाश्च सर्वे ॥ ३५ ॥

राजन्! उस रौद्र मुहूर्त्तमें उस पृथ्वीको देखकर रुधिरसे जिनका स्वरूप छिप गया था और जो अत्यंत शोभायमान दीखते थे, वे कौरव वहां खडे न रह सके, और सबने देवलोकको जानेका निश्चय कर लिया ॥ ३५ ॥

वधेन कर्णस्य सुदुःखितास्ते हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः।
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ ३६ ॥

राजन्! उस समय सब कौरव कर्णके वधसे दुःखित होकर 'हा कर्ण! हा कर्ण!' बोलते थे, और सूर्यको लाल देखकर सब शीघ्रतासे अपने डेरोंपर चले गये ॥ ३६ ॥

सकाननाः साद्रिचयाश्चकम्पुः प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च मारिष ।
बृहस्पती रोहिणीं संप्रपीड्य बभूव चन्द्रार्कसमानवर्णः ॥ ४९ ॥
मारिष ! वनोंके सहित पर्वत समूह कांपने लगे, सब जगत्के भूतगण व्यथित हो गये । बृहस्पति ग्रह, रोहिणी नक्षत्रके समीप उदय हो गये और सूर्य—चन्द्रमाके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४९ ॥

हते कर्णे न दिशो विप्रजज्ञुस्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः ।
पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा निशाचराश्चाप्यभवन्प्रहृष्टाः ॥ ५० ॥
कर्णके मारे जानेके पश्चात् सब दिशाओंका ज्ञान नहीं होता था । आकाशमें अन्धकार छा गया, पृथ्वी हिलने लगी, आकाशसे अग्निके समान उल्का गिरने लगी और निशाचर प्रसन्न हो गये ॥ ५० ॥

शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत् ।
अथान्तरिक्षे दिवि चेह चासकृद्बभूव हाहेति जनस्य निस्वनः ॥ ५१ ॥
जब अर्जुनने अपने तेज क्षुर बाणसे पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखवाला कर्णका शिर काटा, तब अन्तरिक्षमें, आकाशमें और यहां लोगोंका बार बार हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ५१ ॥

स देवगन्धर्वमनुष्यपूजितं निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जुनः ।
रराज पार्थः परमेण तेजसा वृत्रं निहत्येव सहस्रलोचनः ॥ ५२ ॥
जैसे वृत्रासुरको मारकर महातेजस्वी इन्द्र शोभित हुए थे, ऐसे ही देवता, गन्धर्व और मनुष्योंसे पूजित अपने शत्रु कर्णको युद्धमें मारकर अर्जुन अपने परम तेजसे प्रकाशित होने लगे ॥ ५२ ॥

ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना शरन्नभोमध्यगभास्करत्विषा ।
पताकिना भीमनिनादकेतुना हिमेन्दुशङ्खस्फटिकावभासिना ।
सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमैरलंकृतेनाप्रतिमानरंहसा ॥ ५३ ॥
अनेक मेघोंकी गर्जनाके समान शब्दवाले, शरद्कालीन मध्याह्नके सूर्यके समान तेज भरे, भयंकर शब्द करनेवाले बैठे हुए वानरसहित पताका युक्त; बरफ, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकके समान मनोहर; सुवर्ण, मुक्ता, मणि, हीरे और विद्रुमके अलंकारोंसे भूषित, वेगमें अद्वितीय ऐसे रथसे चले ॥ ५३ ॥

नरोत्तमौ पाण्डवकेशिमर्दनावुदाहितावग्निदिवाकरोपमौ ।
रणाजिरे वीतभयौ विरेजतुः समानयानाविव विष्णुवासवौ ॥ ५४ ॥
नरश्रेष्ठ, अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी केशिसूदन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन बेडर होकर रथपर बैठे हुए युद्धमें ऐसे शोभित हुए, जैसे एक ही वाहनपर बैठे हुए विष्णु और इन्द्र ॥ ५४ ॥

ततो धनुर्ज्यातलनेमिनिस्वनैः प्रसह्य कृत्वा च रिपून्हतप्रभान् ।
संसाधयित्वैव कुरूञ्शरौघैः कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च ।
प्रसह्य शङ्खौ धमतुः सुघोषौ मनांस्यरीणामवसादयन्तौ ॥ ५५ ॥

फिर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा, ताल और नाभिके शब्दोंसे सब शत्रुओंको अत्यंत बलहीन करके, अपने बाणोंकी वर्षासे कौरवोंको जीतकर, गरुडध्वज श्रीकृष्ण और कपिध्वज अर्जुन शत्रुओंका हृदय भयभीत करते हुए उत्तम शब्द करनेवाले शंखोंको जोरसे बजाने लगे ॥५५॥

सुवर्णजालावततौ महास्वनौ हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः ।
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः ॥ ५६ ॥

वे दोनों शंख सोनेके तारोंसे खिंचे हुए, उत्तम शब्दवाले और बर्फके समान सफेद थे। वे नरश्रेष्ठ उन दोनों श्रेष्ठ शंखोंको लेकर अपने सुंदर मुखोंसे एक ही साथ चूमने और बजाने लगे ॥ ५६ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः ।
पृथिवीमन्तरिक्षं च द्यामपश्चाप्यपूरयत् ॥ ५७ ॥

पांचजन्य और देवदत्त दोनों शंखोंके शब्दने पृथ्वी, आकाश, द्यु और जलको पूरित कर दिया ॥ ५७ ॥

तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ वनानि शैलान्सरितो दिशश्च ।
वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां युधिष्ठिरं नन्दयतः स्म वीरौ ॥ ५८ ॥

इस प्रकार अपने शंखनादसे वन, पर्वत, नदी और दिशाओंको निनादित करके तुम्हारे पुत्रकी सेनाको डराकर, वे दोनों वीर युधिष्ठिरको प्रसन्न करने लगे ॥ ५८ ॥

ततः प्रयाताः कुरवो जवेन श्रुत्वैव शङ्खस्वनमीर्यमाणम् ।
विहाय मद्राधिपतिं पतिं च दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥ ५९ ॥

हे भारत ! उस शङ्खके शब्दको सुनकर तुम्हारी सब कौरव सेना, मद्रराज शल्य और भरतवंशियोंके नरेन्द्र दुर्योधनको वहीं छोडकर वेगसे इधर उधरको भाग गयी ॥ ५९ ॥

महाहवे तं बहु शोभमानं धनञ्जयं भूतगणाः समेताः ।
तदान्वमोदन्त जनार्दनं च प्रभाकरावभ्युदितौ यथैव ॥ ६० ॥

उदित हुए दो सूर्योंके समान उस महायुद्धमें अत्यंत शोभित होनेवाले अर्जुन और श्रीकृष्णको सब प्राणी धन्यवाद देने लगे ॥ ६० ॥

समाचितौ कर्णशरैः परंतपावुभौ व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ ।
तमो निहत्याभ्युदितौ यथामलौ शशाङ्कसूर्याविव रश्मिमालिनौ ॥ ६१ ॥

जैसे अपनी किरणोंके सहित आकाशमें उदित हुए निर्मल सूर्य और चन्द्रमा अन्धकारको नाश करके शोभित होते हैं, ऐसे ही समरमें अपने शरीरमें लगे कर्णके बाणोंसे वे दोनों शत्रुतापन अर्जुन और श्रीकृष्ण प्रकाशित होते थे ॥ ६१ ॥

विहाय तान्बाणगणानथागतौ सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ ।
सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ सदस्यहूताविव वासवाच्युतौ ॥ ६२ ॥

उन बाणोंको निकालकर वे अप्रतिम पराक्रमी श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन मित्रोंसे घिरे हुए डेरोंपर आये और यज्ञमें बुलाये हुए इन्द्र और विष्णुके समान सुखसे डेरोंमें प्रविष्ट हुए ॥ ६२ ॥

सदेवगन्धर्वमनुष्यचारणैर्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि ।
जयाभिवृद्ध्या परयाभिपूजितौ निहत्य कर्णं परमाहवे तदा ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ३८२८ ॥

महायुद्धमें कर्णके मारे जानेके पश्चात् देवता, गन्धर्व, मनुष्य, चारण, महर्षि, यक्ष और बडे नागोंने 'जय हो, वृद्धि हो' ऐसा कहकर अत्यंत प्रेमसे उन दोनोंको आशीर्वाद दिया ॥ ६३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ ३८२८ ॥

: ६९ :

संजय उवाच

तथा निपातिते कर्णे तव सैन्ये च विद्रुते ।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! कर्णके मरनेके और तुम्हारी सेना भागनेके पश्चात्, श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर और अर्जुनको आलिंगन देकर ऐसे वचन बोले ॥ १ ॥

हतो बलभिदा वृत्रस्त्वया कर्णो धनंजय ।
वधं वै कर्णवृत्राभ्यां कथयिष्यन्ति मानवाः ॥ २ ॥

धनंजय ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, ऐसे ही तुमने कर्णको मारा । कर्ण और वृत्रासुर इन दोनोंके वधका वृत्तान्त मनुष्य बहुत दिनतक कहते रहेंगे ॥ २ ॥

वज्रिणा निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा ।
त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः ॥ ३ ॥

महा तेजस्वी इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरको मारा था और तुमने केवल धनुष और तीक्ष्ण बाणोंसे ही कर्णको मार डाला ॥ ३ ॥

तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशोवहम् ।
निवेदयावः कौन्तेय धर्मराजाय धीमते ॥ ४ ॥

हे कौन्तेय ! अब चलो, यह तुम्हारे यश बढानेवाला और प्रसिद्ध पराक्रमका वृत्तान्त हम दोनों बुद्धिमान् कुरुराजसे निवेदन करें ॥ ४ ॥

वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम् ।
निवेद्य धर्मराजस्य त्वमानृण्यं गमिष्यसि ॥ ५ ॥

महाराज धर्मराज बहुत दिनसे युद्धमें कर्णके वधकी इच्छा करते थे, आज यह समाचार सुनाकर तुम उनके ऋणसे छूटोगे ॥ ५ ॥

तथेत्युक्ते केशवस्तु पार्थेन यदुपुंगवः ।
पर्यवर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम् ॥ ६ ॥

यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्णके वचन सुन, अर्जुनने कहा, बहुत अच्छा चलो, तब श्रीकृष्णने शान्त-चित्तसे रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके रथको लौटाया ॥ ६ ॥

धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम् ।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, नकुल, सहदेव, भीमसेन और सात्यकिसे ऐसे वचन फिर श्रीकृष्णने कहे ॥ ७ ॥

परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः ।
यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै ॥ ८ ॥

जब तक हम महाराज युधिष्ठिरको 'अर्जुनने कर्णको मार डाला' यह समाचार निवेदन करते हैं, तब तक तुम शत्रुओंका सामना करनेके लिये प्रयत्न करते सावधान होकर युद्धमें रहो, तुम्हारा सबका कल्याण हो ॥ ८ ॥

स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम् ।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम् ॥ ९ ॥

उन सब शूरवीरोंकी सम्मतिसे श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ राजभवनमें जाकर राजा युधिष्ठिरका दर्शन किया ॥ ९ ॥

×

शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे ।
अगृह्णीतां च चरणौ मुदितौ पार्थिवस्य तौ ॥ १० ॥

सोनेके उत्तम पलङ्गपर नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर लेटे हुए थे और दोनोंने प्रसन्नतासे राजाके चरण पकड लिये ॥ १० ॥

तयोः प्रहर्षमालक्ष्य प्रहारांश्चातिमानुपान् ।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

दोनोंकी प्रसन्नता और अतिमानुप घावोंको देखकर, राजा युधिष्ठिरने जान लिया कि राधापुत्र कर्ण मारा गया और वे शय्यासे उठकर खडे हो गये ॥ ११ ॥

ततोऽस्मै तद्यथावृत्तं वासुदेवः प्रियंवदः ।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुनन्दनः ॥ १२ ॥

फिर मधुर वचन बोलनेवाले यदुकुलनन्दन श्रीकृष्णने कर्णके मारे जानेका सब समाचार उन्हें यथावत् कहा ॥ १२ ॥

ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत् ।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णने हंसकर और हाथ जोडकर जिनका शत्रु मारा गया था, उन राजा युधिष्ठिरको कहा ॥ १३ ॥

दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
त्वं चापि कुशली राजन्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १४ ॥

प्रारब्धसे आप, गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन, पाण्डव भीमसेन, माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव कुशलसे हैं ॥ १४ ॥

मुक्ता वीरक्षयादस्मात्संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पार्थिव ॥ १५ ॥

हे राजन् ! इस वीरोंका नाश करनेवाले रोमांचकारी घोर युद्धसे आप सब लोग मुक्त हो गये, अब आगे जो कुछ करने योग्य काम हो, सो शीघ्र कीजिये ॥ १५ ॥

हतो वैकर्तनः क्रूरः सूतपुत्रो महाबलः ।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि पाण्डव ॥ १६ ॥

क्रूर महाबलवान् सूतपुत्र वैकर्तन कर्ण मारा गया, राजेन्द्र ! प्रारब्धसे ही आप विजयी हो रहे हैं । पाण्डव ! प्रारब्धसे ही आपकी उन्नति हो रही है ॥ १६ ॥

यः स द्यूतजितां कृष्णां प्राह सत्पुरुषाधमः ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम् ॥ १७ ॥

जिस नराधमने द्यूतमें जिती हुई द्रौपदीको कठोर वचन कहे थे, उस सूतपुत्र कर्णका रुधिर आज भूमि पी रही है ॥ १७ ॥

शेतेऽसौ शरदीर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुंगव ।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुधा शरैः ॥ १८ ॥

हे कुरुकुरुश्रेष्ठ ! अब तुम्हारा वह शत्रु बाणोंसे विदीर्ण हुए शरीरसे पृथ्वीमें सो रहा है । पुरुषसिंह ! अनेक बाणोंसे भग्न हुए कर्णको आप देखिये ॥ १८ ॥

युधिष्ठिरस्तु दाशार्हं प्रहृष्टः प्रत्यपूजयत् ।
दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र प्रीत्या चेदमुवाच ह ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! प्रसन्नचित्त युधिष्ठिरने श्रीकृष्णका बहुत सत्कार किया और आनन्दित होकर, 'दैवयोग, दैवयोग' ऐसा कहकर फिर बोले ॥ १९ ॥

नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन ।
त्वया सारथिना पार्थो यत्कुर्यादद्य पौरुषम् ॥ २० ॥

हे महाबाहु देवकीनन्दन! आपके लिये यह कार्य कठिन नहीं है। अर्जुनने जो आज पराक्रम किया है वह आपहीने उसका सारथ्य किया, इसी कारण ही है ॥ २० ॥

प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठः साङ्गदं दक्षिणं भुजम् ।
उवाच धर्मभृत्पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ ॥ २१ ॥

फिर श्रीकृष्णका बाजू बंद सहित दहिना हाथ पकड कर, कुरुकुलश्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंसे बोले ॥ २१ ॥

नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन ह ।
धर्मसंस्थापने युक्तौ पुराणौ पुरुषोत्तमौ ॥ २२ ॥

मुझसे नारद मुनिने कहा था, कि आप दोनों धर्मकी संस्थापनाके कार्यमें रत प्राचीन पुरुषश्रेष्ठ साक्षात् नारायण और नरका अवतार हैं ॥ २२ ॥

असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम ।
कथामेतां महाबाहो दिव्यामकथयत्प्रभुः ॥ २३ ॥

महाबाहो ! बुद्धिमान् प्रभु व्यासने भी मुझसे यह दिव्य कथा बार बार कही थी ॥ २३ ॥

तव कृष्ण प्रभावेण गाण्डीवेन धनञ्जयः ।
जयत्यभिमुखाञ्शत्रून्न चासीद्विमुखः क्वचित् ॥ २४ ॥

हे कृष्ण ! आप ही के प्रभावसे अर्जुन गाण्डीव धनुषके साथ सदा शत्रुओंके सम्मुख खडे होकर, युद्धमें शत्रुओंपर विजयी हुए हैं, और कभी युद्धसे विमुख नहीं हुए हैं ॥ २४ ॥

जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं न त्वस्माकं पराजयः ।
यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ २५ ॥

जिस समय आप युद्धमें अर्जुनके सारथि बने थे, तभी हमने जान लिया था, कि हमारी विजय निश्चित होगी; पराजय कदापि नहीं होगी ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा महाराज तं रथं हेमभूषितम् ।
दन्तवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्महारथः ॥ २६ ॥

महाराज ! श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर महारथी धर्मराज दांतोंके समान सफेद रंगवाले और काली पूंछवाले घोडोंसे युक्त सोनेके रथमें ॥ २६ ॥

आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ।
कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्य ततः प्रियम् ॥ २७ ॥

बैठकर और अपनी निज सेनाके सहित पुरुषसिंह युधिष्ठिर, दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रिय बातको मानकर ॥ २७ ॥

आगतो बहुवृत्तान्तं द्रष्टुमायोधनं तदा ।
आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफल्गुनौ ॥ २८ ॥

और उन दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ वार्तालाप करते हुए, अनेक घटना बनी हुई उस युद्धभूमिको देखनेको आये ॥ २८ ॥

स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः सर्वतः शकलीकृतम् ॥ २९ ॥

और उन्होंने युद्धभूमिमें गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे सब ओरसे छिन्नभिन्न शरीरवाले पुरुषश्रेष्ठ कर्णको पृथ्वीमें सोते हुए देखा ॥ २९ ॥

सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ।
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ॥ ३० ॥

पुत्र सहित मरे हुए कर्णको देखकर राजा युधिष्ठिर पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ३० ॥

अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह ।
त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥ ३१ ॥

हे श्रीकृष्ण ! आप जैसे विद्वान् वीर स्वामी और संरक्षकसे संरक्षित होकर आज हम भाइयोंके सहित सब पृथ्वीके राजा हुए ॥ ३१ ॥

हतं दृष्ट्वा नरव्याघ्रं राधेयमभिमानिनम् ।
निराशोऽद्य दुरात्मासौ धार्तराष्ट्रो भविष्यति ।
जीविताच्चापि राज्याच्च हते कर्णे महारथे ॥ ३२ ॥

आज अत्यन्त अभिमानी, नरव्याघ्र, महारथी राधापुत्र कर्णको मरा हुआ देखकर दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन राज्य और जीवनसे भी निराश हो जायगा ॥ ३२ ॥

त्वत्प्रसादाद्वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ।
त्वं च गाण्डीवधन्वा च विजयी यदुनन्दन ।
दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या कर्णो निपातितः ॥ ३३ ॥

हे पुरुषसिंह ! हम लोग आपकी कृपासे कृतार्थ हो गये । हे यदुकुलनन्दन ! प्रारब्धहीसे आप और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन युद्धमें विजयी हुए हैं। हे गोविंद ! सौभाग्यसे आपकी विजय हुई है और दैवयोगसेही कर्ण मारा गया है ॥ ३३ ॥

एवं स बहुशो हृष्टः प्रशशंस जनार्दनम् ।
अर्जुनं चापि राजेन्द्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी भी बहुत प्रशंसा की ॥ ३४ ॥

ततो भीमप्रभृतिभिः सर्वैश्च भ्रातृभिर्वृतम् ।
वर्धयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ॥ ३५ ॥

उस समय हर्षयुक्त सब महारथी भीमसेन आदि सब भाईयोंसे घिरे हुए महाराज युधिष्ठिरका आनन्द बढाने लगे ॥ ३५ ॥

नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः ॥ ३६ ॥

महाराज ! तब नकुल, सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन, यदुकुल श्रेष्ठ महारथी सात्यकि ॥ ३६ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः ।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ॥ ३७ ॥

धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि सब पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयवंशी वीर सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३७ ॥

ते वर्धयित्वा नृपतिं पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
जितकाशिनो लब्धलक्षा युद्धशौण्डाः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥

वे सब युद्ध कुशल, महावीर योद्धा अपना लक्ष्य साध्य करके विजयी हो गये थे, उन्होंने पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरको धन्यवाद दिये ॥ ३८ ॥

स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वाग्भिः कृष्णौ परंतपौ ।
जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महारथाः ॥ ३९ ॥

और वे स्तुतियुक्त वचनोंसे शत्रुतापन श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करके प्रसन्नता सहित अपने डेरोंको चले गये ॥ ३९ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्नतीतं किं नु शोचसि ॥ ४० ॥

हे राजन् ! इस प्रकार यह महान् रोमांचकारी मनुष्योंका नाश केवल आपकी दुर्बुद्धिसे हुआ है, अब शोच करनेसे क्या होगा ? ॥ ४० ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तदप्रियं राजन्धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
पपात भूमौ निश्चेष्टः कौरव्यः परमार्तिवान् ।
तथा सत्यव्रता देवी गान्धारी धर्मदर्शिनी ॥ ४१ ॥

श्रीवैशम्पायन बोले– राजन् जनमेजय ! सञ्जयके ऐसे अप्रिय वचन सुनकर कुरुकुलोत्पन्न पृथिवीपति धृतराष्ट्र अत्यंत दुःखित मनसे निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पडे, इसी प्रकार धर्मका विचार करनेवाली सत्यव्रती गान्धारी देवी भी पृथ्वीमें गिर पडी ॥ ४१ ॥

तं प्रत्यगृह्णाद्विदुरो नृपतिं सञ्जयस्तथा ।
पर्याश्वासयतश्चैवं तावुभावेव भूमिपम् ॥ ४२ ॥

उस समय विदुर और सञ्जयने राजा धृतराष्ट्रको पकडकर संभाला; अनन्तर दोनों राजाको समझाने लगे ॥ ४२ ॥

तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं राजयोषितः ।
ताभ्यामाश्वासितो राजा तूष्णीमासीद्विचेतनः ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ३८७१ ॥

॥ समाप्तं कर्णपर्व ॥

इसी प्रकार कुरुकुलकी राजस्त्रियोंने आकर गान्धारीको उठाकर ठीक प्रकार समझाया । विदुर और संजय दोनोंके समझानेपर राजा धृतराष्ट्र अचेत होकर चुप बैठ गये ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके कर्णपर्वमें उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ ३८७१ ॥

॥ कर्णपर्व समाप्त ॥